आधुनिक हिन्दी के विकास में खड्गविलास प्रेस की भूमिका

डॉ० धीरेन्द्रनाथ सिंह

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

आधुनिक हिन्दी के विकास में खड्गविलास प्रेस की भूमिका

डॉ० धीरेन्द्रनाथ सिंह

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

आधुनिक हिन्दी के विकास में खड्गविलास प्रेस की भूमिका

चित्र-सं० : १

सत्यनारायण सिंह

जन्म : जुलाई, १८९१ ई०

निधन : १९ जून, १९७६ ई०

समर्पण

मधुद्यौरस्तुनः पिता

आधुनिक शिक्षा के अनन्य प्रेमी, सहृदय साहित्यानुरागी

पुण्यश्लोक पितामह

ठाकुर श्रीसत्यनारायण सिंह जी

[जन्म : सन् १८९१ ई० : निधन : १७ जून, १९७६ ई०]

को सश्रद्ध समर्पित

—धीरेन्द्र

चित्र-सं० : २

महाराजकुमार रामदीन सिंह

वक्तव्य

मुझे हर्ष है कि 'आधुनिक हिन्दी के विकास में खड्गविलास प्रेस की भूमिका' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ मेरे कार्यकाल में प्रकाशित हो रहा है। परिषद् को अनेक विशिष्ट शोधग्रन्थों के प्रकाशन का श्रेय रहा है। उसी क्रम में यह ग्रन्थ भी शोधार्थियों एवं सामान्य पाठकों के लिए प्रस्तुत है। ऐसे श्रमसाध्य शोध एवं लेखन के लिए डॉ० **धीरेन्द्रनाथ सिंह** को हार्दिक बधाइयाँ !

इस ग्रन्थ में हिन्दी-मुद्रण एवं प्रकाशन का शताधिक वर्षव्यापी इतिहास निहित है, जो संक्षिप्त होते हुए भी पर्याप्त सूचनामूलक है। इस इतिहास के निर्माण एवं विकास में ऐतिहासिक पटना नगर में संस्थापित **खड्गविलास प्रेस** की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इसने न केवल मुद्रण के क्षेत्र में, प्रत्युत हिन्दी-साहित्य-प्रकाशन एवं हिन्दी-पत्रकारिता के उद्भव और विकास में भी आधार-शिलात्मक कार्य किया है। विद्वान् लेखक के ही शब्दों में—'खड्गविलास प्रेस उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के अन्तिम दो दशकों में आधुनिक हिन्दी-साहित्य के प्रकाशन की अकेली प्रकाशन-संस्था रहा है।' ऐसे ऐतिहासिक प्रेस के हिन्दी-प्रेमी तथा सुधी संस्थापक एवं संचालक पुण्यश्लोक महाराजकुमार बाबू रामदीन सिंह के प्रति हमारी शत-शत श्रद्धांजलियाँ निवेदित हैं। उनका दृष्टिकोण व्यावसायिक नहीं, अपितु सेवात्मक था और था सारस्वत सुरुचि से सम्प्रेरित भी। आधुनिक हिन्दी के जनक तथा हिन्दी-नाट्य साहित्य के प्रवर्त्तक और राष्ट्रीय कविता के उन्नायक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की कृतियों के प्रकाशन का भी गौरव खड्गविलास प्रेस को ही प्राप्त है। भारतेन्दु-मण्डल के प्रोत्साहक के रूप में भी इस प्रेस की सेवाएँ अविस्मरणीय रहेंगी।

हम आशान्वित हैं कि इस ग्रन्थ का पर्याप्त अभिनन्दन एवं उपयोग शोधकर्त्ता विद्वानों के द्वारा होगा। हमें खेद है कि आवश्यक वित्त एवं कागज के अभाव में इसके प्रकाशन में विलम्ब हुआ।

रामदयाल पाण्डेय

वट-सावित्री, ज्येष्ठ कृष्ण १५,
दिनांक १९ मई, १९८५ ई०

आमुख

उन्नीसवीं सदी हिन्दी-साहित्य का नवजागरण-काल है। इसी सदी में भारत में प्रकाशन-व्यवसाय का उदय हुआ। हिन्दी-प्रकाशन-व्यवसाय का आरम्भ भले ही अर्थोपार्जन के उत्साह से उद्भूत हुआ हो, किन्तु इस युग के प्रकाशन-प्रतिष्ठानों का व्यवस्थित स्वरूप शोध-साहित्यिक संस्थाओं-जैसा रहा है। इस युग में ऐसे अनेक मुद्रणालय रहे हैं, जिन्होंने हिन्दी-पुस्तकों का प्रकाशन कर हिन्दी-भाषा और साहित्य का हित-साधन किया है। ऐसे ही संस्थाकल्प प्रकाशन-प्रतिष्ठानों में पटना का खड्गविलास प्रेस अपना उल्लेखनीय महत्त्व रखता है। कहना न होगा कि आधुनिक हिन्दी-साहित्य को उजागर करने में इस प्रेस के योगदान का ऐतिहासिक मूल्य है। प्रस्तुत पुस्तक में आधुनिक हिन्दी के विकास में खड्गविलास प्रेस के विशिष्ट अवदान के मूल्यांकन का प्रयास किया गया है।

विज्ञान की महार्घ देन प्रेस, आधुनिक सभ्यता और संस्कृति का अभिन्न अंग है और भारत में इसके प्रसार का मुख्य श्रेय ईसाई मिशनरियों को है। भारत में हिन्दी-प्रकाशन-व्यवसाय का शुभारम्भ ईसाई मिशनरियों ने किया और उन्नीसवीं सदी के चार दशकों तक हिन्दी-प्रकाशन-जगत् में ईसाई मिशनरियों का वर्चस्व था। यद्यपि इस अवधि में भारतीय प्रकाशकों ने पुस्तकों के मुद्रण-प्रकाशन किये, तथापि इस दिशा में ईसाई मिशनरियाँ नेतृत्व कर रही थीं। उनके प्रकाशनों की खड़ीबोली हिन्दी के विकास में बहुत बड़ी भूमिका है। ईसाई मिशनरियों के बाद हिन्दी-प्रकाशन-जगत् का नेतृत्व लखनऊ के नवलकिशोर प्रेस ने किया। इस प्रेस ने उन्नीसवीं सदी के पाँचवें दशक से आठवें दशक के प्रारम्भ में हिन्दी, उर्दू और संस्कृत-पुस्तकों के प्रकाशन में क्रान्तिकारी कार्य किया। आठवें दशक में हिन्दी-प्रकाशन की दिशा में खड्गविलास प्रेस ने हिन्दी की विभिन्न विधाओं में पुस्तकें प्रकाशित कर स्कूल से कचहरियों तक पहुँचायीं। इस प्रकार, उन्नीसवीं सदी के पूरे सौ वर्षों के हिन्दी-प्रकाशन की कालावधि को तीन युगों में बाँटा जा सकता है: पहला मिशन-युग (सन् १८००—'५७ ई०), दूसरा नवलकिशोर-युग (सन् १८५८—'७९ ई०) तथा तीसरा खड्गविलास प्रेस-युग (सन् १८८०—१९२६ ई०)। प्रकाशन-युगों का नामकरण युग की समकालीन प्रवृत्तियों के आधार पर किया गया है।

इस पुस्तक में हिन्दी-पुस्तक-प्रकाशन-व्यवसाय और हिन्दी के विकास में उसके अंशदान के सर्वेक्षण की पूर्वपीठिका के रूप में भारत में मुद्रणालय के आगमन और उसके प्रचार-प्रसार की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। इससे पाठकों को हिन्दी-प्रकाशन का इतिहास समझने में सुविधा होगी।

बलिया-निवासी **महाराजकुमार रामदीन सिंह** ने सन् १८८० ई० में पटना में खड्ग-विलास प्रेस की स्थापना की थी। उन्होंने अपना जीवन शिक्षक के रूप में आरम्भ किया था और पाठ्यपुस्तकों तथा हिन्दी-पुस्तकों के अभाव ने उन्हें प्रकाशन-व्यवसाय के लिए प्रेरित

किया था। उन्होंने स्वयं पाठ्यपुस्तकें तैयार कीं और अन्य लोगों से पुस्तकें लिखवाईं। इन कृतियों का सुनियोजित ढंग से खड्गविलास प्रेस से प्रकाशन किया गया। **भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र** और उनके युग के लेखक यदि आधुनिक हिन्दी-साहित्य के निर्माता हैं, तो निश्चय ही खड्गविलास प्रेस और उसके संस्थापक **महाराजकुमार रामदीन सिंह** को उनका एकमात्र प्रकाशक माना जाना उचित होगा। यदि महाराजकुमार रामदीन सिंह का सद्भाव और सहयोग न मिला होता, तो **भारतेन्दु हरिश्चन्द्र** और उनके समकालीन साहित्यकारों को अपनी रचनाओं के व्यवस्थित प्रकाशन का इतना अच्छा सुयोग नहीं मिला होता।

इस प्रकाशन-संस्थान ने **भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, पण्डित अम्बिकादत्त व्यास, पण्डित शीतलाप्रसाद त्रिपाठी**, भारतीय सिविल सेवा में हिन्दी के प्रतिष्ठापक **फ्रेडरिक पिंकाट**, आधुनिक हिन्दी खड़ीबोली के प्रथम महाकाव्य 'प्रियप्रवास' के प्रणेता **पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', पण्डित दामोदर शास्त्री सप्रे, लाल खड्गबहादुर मल्ल, शिवनन्दन सहाय** प्रभृति साहित्यकारों को प्रकाशकीय संरक्षण प्रदान किया और उनकी कृतियों के प्रकाशन पर मुक्तहस्त से व्यय किया।

महाराजकुमार रामदीन सिंह ने एक ओर जहाँ अनेक पाठ्यपुस्तकों की रचना कर स्कूली पाठ्यपुस्तकों के अभाव की पूर्ति की, वहाँ दूसरी ओर 'बिहार-दर्पण' जैसी पुस्तक की रचना कर हिन्दी में चरित्र-साहित्य-भाण्डार को समृद्ध किया। उन्होंने दर्जनों पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं का सफल सम्पादन किया। साथ ही, अपने मित्रों को प्रोत्साहित कर उनसे लिखवाया और उनकी रचनाएँ प्रकाशित कीं। इस पुस्तक में उनकी साहित्य-सेवा को हिन्दी-जगत् के समक्ष रखने का प्रयत्न किया गया है।

बिहार में हिन्दी-पत्रकारिता का शुभारम्भ 'बिहार-बन्धु' से होता है। यद्यपि **पण्डित मदनमोहन भट्ट** ने सन् १८७२ ई० में कलकत्ता से 'बिहार-बन्धु' का प्रकाशन प्रारम्भ किया था, तथापि पटना से इसका प्रकाशन सन् १८७४ ई० में शुरू हुआ। 'बिहार-बन्धु' ने बिहार में हिन्दी-पत्रकारिता की शुरुआत कर दी थी, किन्तु उसे विकसित करने का गौरव खड्गविलास प्रेस को प्राप्त है। इसने मासिक 'क्षत्रिय-पत्रिका' (सन् १८८२ ई०), पाक्षिक 'भाषा-प्रकाश' (सन् १८८३ ई०), मासिक 'हरिश्चन्द्रकला' (सन् १८८५ ई०), पाक्षिक 'द्विज' पत्रिका (सन् १८८९ ई०), मासिक 'ब्राह्मण' (सन् १८९० ई०), मासिक 'विद्याविनोद' (सन् १८९४ ई०), 'कवि-समाज' (सन् १८९७ ई०) और साप्ताहिक 'शिक्षा' जैसी वरेण्य पत्रिकाओं का प्रकाशन कर हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता के विकास में महार्घ योगदान किया है। इस पुस्तक में इन पत्रिकाओं पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है।

खड़ीबोली हिन्दी को राष्ट्रभाषा-पद पर प्रतिष्ठित करने के पूर्व उन्नीसवीं सदी में ही साहित्यकारों तथा हिन्दी-प्रेमियों ने उसे कचहरियों तथा स्कूल की पाठ्यपुस्तकों की भाषा बनाने का प्रयास किया था। हिन्दीभाषी प्रदेशों में सबसे पहले बिहार-प्रदेश में सन् १८३५ ई० में हिन्दी-आन्दोलन हुआ था। इस अनवरत प्रयास के फलस्वरूप सन् १८७५ ई० में बिहार की कचहरियों तथा स्कूलों में हिन्दी प्रतिष्ठित हुई, किन्तु पाठ्यपुस्तकों का सर्वथा अभाव था। खड्गविलास प्रेस ने विभिन्न विषयों में पाठ्यपुस्तकें तैयार कराकर

इनका प्रकाशन किया। साहबप्रसाद सिंह, उमानाथ मिश्र, चण्डीप्रसाद सिंह, कालीप्रसाद मिश्र, प्रेमन पाण्डेय प्रभृति लेखकों ने इस दिशा में सक्रिय रूप से सहयोग किया था। साहबप्रसाद सिंह की 'भाषा-सार' नामक पुस्तक सन् १८८४ ई० से १९३६ ई० तक बिहार के स्कूलों और कॉलेजों में पढ़ाई जाती रहीं।

खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित पुस्तकों का साहित्यिक मूल्य तो है ही, साथ ही इनका ऐतिहासिक मूल्य भी है। इस प्रेस से कुल कितनी पुस्तकें प्रकाशित हुईं, इसकी पूरी सूची कभी तैयार नहीं की गई। मैंने इस पुस्तक में खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित पुस्तकों की वर्गीकृत सूची दी है। इसकी पूरी सूची प्रस्तुत करना कठिन प्रयास के बाद भी सम्भव नहीं हो सका। इस पुस्तक में उन्हीं प्रकाशित पुस्तकों को मैंने सूचीबद्ध किया है, जिन पुस्तकों को देखने, पढ़ने और मूल्यांकन करने का अवसर मुझे मिला है। अतः, यह पुस्तक-सूची मेरी दृष्टि में खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित पुस्तकों की प्रथम प्रामाणिक सूची है।

इस पुस्तक के प्रणयन के प्रेरणास्रोत पुण्यश्लोक पितामह ठाकुर सत्यनारायण सिंह थे। वे मुझे बचपन से ही बाबू रामदेनी सिंह (तारणपुर के लोग स्नेहवश महाराजकुमार रामदीन सिंह को इसी नाम से सम्बोधित करते थे), भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, पण्डित अम्बिकादत्त व्यास, जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन, साहबप्रसाद सिंह, दामोदर शास्त्री सप्रे प्रभृति साहित्यकारों के संस्मरण सुनाया करते थे। साथ ही, वह महाराजकुमार रामदीन सिंह और भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की घनिष्ठ मैत्री के अनेक मर्मस्पर्शी प्रसंग और खड्गविलास प्रेस की साहित्य-सेवा की कहानी भी सुनाया करते थे, जिसका मेरे मन पर गहरा प्रभाव पड़ा।

महाराजकुमार रामदीन सिंह का बचपन मेरे गाँव—पटना जिले के तारणपुर में बीता था। तारणपुर में महाराजकुमार रामदीन सिंह के मामा का घर था। भारतेन्दु-युग के लेखक-पत्रकार तथा मेरे प्रपितामह बाबू रामचरित्र सिंह, महाराजकुमार रामदीन सिंह के घनिष्ठ-वरिष्ठ मित्र थे। इसलिए, पुण्यश्लोक पितामह ठाकुर सत्यनारायण सिंह को महाराजकुमार तथा खड्गविलास प्रेस को अत्यन्त निकट से जानने-देखने का सुअवसर मिला था। महाराजकुमार रामदीन सिंह ने तारणपुर के अपने समकालीन अनेक युवकों को लेखक बनाया, जिनमें भारतेन्दु-युग के प्रख्यात वैयाकरण बाबू रामचरण सिंह, बाबू रामचरित्र सिंह, बाबू दीनदयाल सिंह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। पितामह ठाकुर सत्यनारायण सिंह के संस्मरणों का गहन संस्कार इस पुस्तक के प्रणयन का प्रेरणा-स्रोत है।

यह पुस्तक उनके जीवन-काल में ही तैयार हो गई थी तथा वे इसे पढ़कर भाव-विभोर हो उठे थे। पितामह को यह पुस्तक पढ़कर पूर्ण आत्म-तुष्टि मिली थी और उससे मुझे भी आतमसुख मिला। अतः मुझे सन्तोष है कि मेरा लेखन सार्थक हुआ।

उल्लेख्य है कि यह पुस्तक 'उन्नीसवीं सदी में हिन्दी की प्रमुख प्रकाशन-संस्थाओं के संदर्भ में खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर का हिन्दी के विकास में योग' नामक मेरे शोध-प्रबन्ध का संशोधित-परिवर्द्धित रूप है। यह शोध-प्रबन्ध काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय के हिन्दी,

विभाग के रीडर और मेरे श्रद्धेय गुरुवर **डॉक्टर विजयशंकर मल्ल** के निर्देशन में लिखा गया था। अतः मैं केवल कृतज्ञता-ज्ञापन-मात्र से गुरुऋण से मुक्त नहीं हो सकता।

वयोवृद्ध साहित्यकार **पण्डित छविनाथ पाण्डेयजी** का मैं ऋणी हूँ। उनका वात्सल्यपूर्ण सहज स्नेह मेरे जीवन-विकास का प्रेरणामन्त्र रहा है। प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन उनकी अहैतुकी कृपा का ही सारस्वत फल है।

इस ग्रन्थ-लेखन से मुझे परम सन्तोष मिला है, किन्तु इसकी पाण्डुलिपि के संशोधन-सम्पादन और सुबोध बनाने में मेरे पिताश्री (पटना से प्रकाशित दैनिक 'आज' के पूर्व सम्पादक और 'प्रदीप' के प्रधान सम्पादक) **श्रीपारसनाथ सिंह** ने जो दुस्साध्य सारस्वत श्रम किया है, वह मेरे लिए प्रेरक और पथ-प्रदर्शक सिद्ध हुआ है। मैं उनकी वात्सल्य-विभूति के प्रति नतशीर्ष हूँ।

मैंने इस पुस्तक के तीसरे अध्याय में पण्डित दामोदर शास्त्री के जीवन और उनके साहित्य का मूल्यांकन करते समय उनके द्वारा सम्पादित संस्कृत पत्रिका '**विद्यार्थी**, की चर्चा मासिक पत्र के रूप में की थी। इस सम्बन्ध में हाल में ही सम्पन्न शोध से यह ज्ञात हुआ है कि जब सन् १८८१ ई० से उसका प्रकाशन जयपुर से होने लगा था, तब वह पाक्षिक हो गई थी। 'विद्यार्थी' का उद्देश्य-वाक्य था :

विद्यार्थी विद्ययापूर्णो भवतात्कुरुतान्नरान्।
विदुषां मित्रवर्गाणां संलापैः सहवासतः॥

यह पत्रिका नाथद्वारा से प्रकाशित '**हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका**' और '**मोहन-चन्द्रिका**' के संयुक्त रूप में प्रकाशित होने लगी और सन् १९०८ ई० तक इसका प्रकाशन होता रहा। बाद में, प्राप्त जानकारी के अनुसार, शास्त्रीजी का निधन सन् १९०९ ई० में हो गया था।

खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित पुस्तकों की सूची तैयार करने में प्रेस के विशाल संग्रहालय से मुझे प्रचुर सहायता मिली है। इस कार्य में प्रेस के स्वनामधन्य संचालक, प्रख्यात शिक्षाविद्, पटना तथा राँची विश्वविद्यालयों के भूतपूर्व कुलपति **बाबू शार्ङ्गधर सिंह** और उनके अभिन्न **पण्डित केदारनाथ चतुर्वेदी** ने मुझे पूरी सुविधा प्रदान की। मैं उन दोनों व्यक्तियों का कृतज्ञ हूँ।

मान्यास्पद मामा ठाकुर **यदुवंशनारायण सिंह** ने इस पुस्तक के लेखन में सबसे अधिक प्रोत्साहित कर मुझे आत्मबल प्रदान किया है। मैं उनके निजी संग्रहालय से भी लाभान्वित हुआ हूँ। उनका स्नेहाशीर्वाद्य मेरे अध्ययन का पाथेय रहा है। कृतज्ञता-ज्ञापन कर मैं उनके स्नेह-ऋण से उन्मुक्त नहीं हो सकता।

पुस्तक-लेखन के क्रम में काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के आर्यभाषा-पुस्तकालय और भगवानदास स्वाध्याय-पीठ, पटना के चैतन्य पुस्तकालय एवं तारणपुर, पुनपुन,

(पटना) के श्रीवेणी पुस्तकालय से पत्र-पत्रिकाओं और सन्दर्भ-ग्रन्थों के अवलोकन में सहायता मिली है। मैं इन संस्थाओं के संचालकों के प्रति हृदय से आभारी हूँ।

इस पुस्तक में विश्व तथा भारत में मुद्रणालय के उद्भव और विकास को समझने के लिए विश्व और भारत के मानचित्र पर मुद्रण का विकासक्रम अंकित किया गया है। ये दोनों मानचित्र बनाने में दिल्ली के 'कार्टोग्राफिक न्यूज सर्विस' के निदेशक **श्री के० बी० कुमार** ने जो सहृदयता और आत्मीयतापूर्ण सहयोग किया है, उसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। भारत के मानचित्र पर कुछ स्थानों की सही स्थिति का पता लगाने तथा उन्हें यथास्थान अंकित करने में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के भूगोल-विभाग के **श्रीजियालाल जी** तथा **श्रीओमप्रकाश श्रीवास्तव** ने अतिशय आत्मीयतापूर्ण सहयोग किया है। मेरा उन्हें हार्दिक साधुवाद!

बाबा सुमेर सिंह 'साहबजादे' का दुर्लभ चित्र पत्रकार श्रीरामजी मिश्र 'मनोहर' के सौजन्य से प्राप्त हुआ है। मैं उनका भी आभारी हूँ। **फ्रेडरिक पिंकाट** का हस्ताक्षरित चित्र हिन्दी-जगत् की कीर्तिलब्ध मासिक पत्रिका 'सरस्वती' के सन् १९०७ ई० के अंक से लिया गया है।

इस पुस्तक के पृष्ठ ८३ पर भूल से **महाराजकुमार रामदीन सिंह** के मामा **बाबु हितनाराण सिंह** के प्रसंग में 'मामा' की जगह 'नाना' मुद्रित हो गया है। वस्तुतः **हितनारायण सिंह** उनके मामा थे, नाना नहीं। सुविज्ञ पाठक कृपया इसे सुधार लें।

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के उपाध्यक्ष-सह-निदेशक कविर्मनीषी **पण्डित रामदयाल पाण्डेय** ने इस पुस्तक की पाण्डुलिपि प्रेस में भेजवाकर यथाशीघ्र इसका प्रकाशन कराया है। मैं उनकी आदरणीयता के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ।

सफला एकादशी,
मंगलवार; सं० २०४१ वि०

डॉ० धीरेन्द्रनाथ सिंह
को० ४।३७, देवदत्त कुटीर,
लालघाट, वाराणसी।

विषय-सूची

विश्व में मुद्रण और प्रकाशन

डेनमार्क
१४८२
७

स्वीडन
१४८३
८

जर्मनी २
स्ट्रासबर्ग १४४०
मेंज १४४०
कोलन १४४०
लुबेक १४४०

६
वेस्टमिन्स्टर (इंगलैंड)
१४७७

४
पेरिस (फ्रांस)
१४७०

५
यु रो प

१०
सोवियत संघ
१५५३

१
चीन
११ मई ८६८

६
पुर्तगाल
१४९५

स्पेन
१४७४

३
रोम (इटली)
१४६५
वेनिस
१४६८

ए शि या

भारत

प्रशांत
महा
सागर

११
गोवा
६ सितम्बर
१५५६

अ फ्री का

अंध महा सागर

हिंद महा सागर

KBK

पहला अध्याय

आधुनिक भारत में मुद्रण-कार्य

अपनी अनुभूतियों और ज्ञान-विज्ञान की उपलब्धियों को संचित रखने तथा उनसे समाज का लाभान्वित करने की मानव की प्रवृत्ति सभ्यता के आदिकाल से निरन्तर चली आ रही है। विश्व के विभिन्न भागों में विभिन्न काल में अनेक सभ्यताओं का आविर्भाव हुआ और वे लुप्त हो गईं, किन्तु उनके भग्नावशेष पर नई सभ्यताओं का विकास हुआ। यद्यपि प्राचीन काल में परिवहन तथा संचार के साधनों का अभाव था, तथापि उन सीमित साधनों के सहारे उनमें उपलब्धियों का परस्पर आदान-प्रदान भी हुआ। प्रस्तर-युग से आज के अन्तरिक्ष-युग में प्रवेश करने के दीर्घकालीन इतिहास में मनुष्य सदैव इस बात के लिए प्रयत्नशील रहा है कि उसके द्वारा अर्जित ज्ञानराशि परवर्त्ती पीढ़ियों को सुलभ होती रहे। ज्ञानगंगा के प्रवाह की दो दिशाएँ स्पष्ट हैं—देशाभिमुख और कालाभिमुख। विचारों का प्रवाह एक देश से दूसरे देश में तथा भूतकाल से भविष्यत्काल में होता रहा है। इसी अजस्र प्रवाह को ध्यान में रखकर भवभूति ने कहा था : 'कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।' उत्तम कृति का सम्मान करनेवाला इस विस्तृत भूमण्डल में कभी-न-कभी कोई होगा ही। इसलिए उसकी उपादेयता सार्वभौम और शाश्वत है।

विचारों के वाहक के रूप में भाषा का विकास हुआ। देशभेद से भाषाभेद तो प्राचीन काल में भी था और आज भी है। यह भी निर्विवाद है कि एक भाषा का प्रभाव दूसरी पर पड़ता है और उनमें आदान-प्रदान होता रहता है। भाषाओं के माध्यम से पुराकाल में विचारों तथा भावों की जो अभिव्यक्ति हुई, वह वाणी द्वारा हुई, इसीलिए वाणी या वाग्देवी को विद्या की अधिष्ठात्री कहा गया। वाणी-प्रसूत विचारों और भावों को ग्रहण करने का साधन श्रवणेन्द्रिय है। अतः, हमारे यहाँ कर्मकाण्ड, उपासना और ज्ञानपरक निधि श्रुति के रूप में प्रतिष्ठित हुईं। गुरु से सुनकर शिष्यों ने वेदमन्त्रों को कण्ठाग्र किया और यह परम्परा अद्यावधि विद्यमान है। विद्वान् के लिए बहुश्रुत शब्द का प्रयोग भी इसी तथ्य का द्योतक है।

लिपियों का विकास भाषाओं के विकास के बहुत बाद हुआ, इसीलिए हस्तलिखित ग्रन्थ भी बाद में तैयार किये गये और इनकी संख्या बहुत कम होती थी। इसीलिए, वे बहुधा प्रमाण के रूप में ही सुरक्षित रखे जाते थे। कण्ठस्थ विद्या ही काम देती थी और विद्या भी क्या थी : 'आन्वीक्षकी त्रयी वार्त्ता दण्डनीतिश्चेति विद्या'। सांख्य, योग, वेद, कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य और नयापनय—ये विद्या के अंग थे। तद्विषयक ग्रन्थ श्लोकबद्ध या छन्दोबद्ध थे। यह इसलिए किया गया था कि कण्ठस्थ करने में यह विधि सुविधाजनक थी। सूत्ररूप में ग्रन्थों का प्रणयन भी इसी उद्देश्य से किया गया। ब्रह्मसूत्र, योगसूत्र, कौटिलीय अर्थशास्त्र आदि ग्रन्थ सूत्रों में लिखे गये। संस्कृत में आयुर्वेद और ज्योतिष के ग्रन्थ भी श्लोकों में इसलिए लिखे गये कि लोग आसानी से उन्हें याद कर सकें।

कालान्तर में जनसंख्या-वृद्धि और शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ अनेक नये विषयों की पढ़ाई होने लगी और एक-एक विषय की अनेक शाखाएँ हो गईं, अतः ग्रन्थों की आवश्यकता बढ़ गई। कागज और स्याही के भी आविष्कार हुए। जो ग्रन्थ किसी समय तालपत्रों पर लिखे जाते थे, वे कागज पर लिखे जाने लगे। किन्तु, तब भी आवश्यकता की पूर्त्ति न हो सकी। आवश्यकता आविष्कार की जननी तो है ही, अतः अन्त में मुद्रण का भी आविष्कार हुआ।

मुद्रण का आदिम स्वरूप

मुद्रण-कला का प्रारम्भिक रूप बेबिलोनिया और असीरिया में मिलता है। वहाँ के लोग कच्ची ईंट तथा मृत्तिपट्टिका पर लौह-शलाकाओं से धार्मिक तथा नैतिक मूल्यों के उपदेश और प्रशस्ति-पत्र उत्कीर्ण किया करते थे। इस क्रिया के द्वारा अक्षर कील के आकार के बन जाते थे। इसीलिए उन्हें 'कीलाक्षर' कहते हैं। असीरिया के राजा तथा प्राचीन पुराविद् असुरबनिपाल ने कीलाक्षर-अभिलेखों का निनवे के अपने संग्रहालय में संग्रह किया। ये सभी अभिलेख ईसा-पूर्व सातवीं सदी के हैं। कुछ अभिलेख पेनसिल्वानिया और शिकागो के संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। जल-प्लावन का सर्वप्रथम वर्णन बाबुली-महाकाव्य 'गिलमगेश' में मिलता है, जो ईंटों पर कीलाक्षरों में लिखा गया था। यह ग्रन्थ लेनिनग्राद के एरमिताज संग्रहालय में सुरक्षित है। खत्तियों और मितन्नियों के युद्ध-विराम का प्रसिद्ध सन्धिपत्र— बोगाजकोई— कीलाक्षर में लिखा गया था। उसमें ऋग्वैदिक देवताओं, जैसे इन्द्र, वरुण और मित्र का साक्षी-रूप में उल्लेख किया गया है।

मिस्र में लकड़ी की तख्ती पर मधुमक्खी का मोम लगाकर नुकीली लौह-शलाका से लिखा जाता था। लिखावट को रंग से भर दिया जाता था, जिससे वह टिकाऊ तथा स्पष्ट हो जाता था। विचार-सम्प्रेषण की यह पद्धति ईसा-पूर्व चार हजार वर्ष तक प्रचलित थी।

प्राचीन भारत में भी मिट्टी की पट्टिका पर लिखा जाता था। पट्टिका को आग में पकाकर मजबूत बनाया जाता था। बाद में युद्ध-विजय, प्रशासकीय आदेश और धर्मोपदेश शिलाखण्डों, मन्दिर की दीवालों और प्रस्तर-मंजूषाओं पर लिखे जाने लगे। अशोक ने अपने स्तम्भ-अभिलेख में लिखा है कि मैं अपने धर्मलेख के लिए प्रस्तर-खण्ड का प्रयोग इसलिए कर रहा हूँ कि वे चिरस्थायी हों।

सभ्यता के विकास के साथ-साथ लेखन-प्रक्रिया का भी विकास हुआ। कुमारगुप्त तथा बन्धु वर्मा-युगीन एक मुद्रा-अभिलेख पर तन्तुवाय के कपड़े का विज्ञापन अंकित किया गया था : "तारुण्य तथा सौन्दर्य से युक्त सुवर्णहार, ताम्बूल, पुष्प आदि से सुशोभित स्त्री तबतक अपने प्रियतम से मिलने नहीं जाती, जबतक वह दशपुर के बने पट्टमय (रेशमी) वस्त्रों के जोड़ों को नहीं धारण करती। इस प्रकार स्पर्श करने में कोमल, विभिन्न रंगों में चित्रित नयनाभिराम रेशमी वस्त्रों से सम्पूर्ण पृथ्वी-तल अलंकृत है।"[१]

---

१. हिन्दी-विश्वकोश, पहला खण्ड, पृ० १७८

मध्ययुग में भारत में भोजपत्र पर ग्रन्थ-रचना की जाने लगी। एक हस्तलेख से अनेक प्रतियाँ तैयार करने की इससे सुविधा प्राप्त हो गई। मुद्रण-कला के इस प्रारम्भिक स्वरूप की विशेषता यह थी कि अभिलेखों में लेखन-तिथि, संवत्, दिन और लेखक का नामोल्लेख किया जाने लगा। यह परम्परा लीथो-मुद्रण के आविष्कार के समय तक कायम रही।

मुद्रण के प्राचीन साधन और स्वरूप

पुस्तक-प्रकाशन के लिए मुद्रण के प्रमुख साधन स्याही और कागज हैं। आधुनिक मुद्रण-शिल्प-विधि के उद्‌भव के पूर्व कागज का आविष्कार हो चुका था। कागज का प्रारम्भिक रूप पार्चमेण्ट था। कहा जाता है, ईसा से बत्तीस सौ वर्ष पूर्व मीसिया का राजा यूमेनिस पुस्तक-प्रेमी था। उसे पुस्तकों के संग्रह का बेहद शौक था। उसने ग्रन्थ-रचना के लिए पेपाइरस (Papyrus) की खोज की, किन्तु उसे पेपाइरस नहीं मिला। इसलिए उसने बकरी, भेंड़, सूअर और बछड़े की खाल निकालकर उसका पार्चमेण्ट तैयार कराया। उस समय इसे 'कारटापरगैमेना' (Cartapergamena) कहते थे। पार्चमेण्ट के बालों को हटाकर उसकी पतली परत तैयार कर सुखा दी जाती थी। उसी पर सुन्दर अक्षरों से काव्य-रचना की जाने लगी। इस प्रकार के पार्चमेण्ट का प्रयोग मिस्र में चौदहवीं सदी तक किया जाता था।

कागज का दूसरा पूर्व रूप पेपाइरस है। मिस्र की नील नदी के दलदल में, ईसा से तीन हजार वर्ष पूर्व, एक प्रकार का नरकुल पाया जाता था। उसकी छाल निकालकर सुखा ली जाती थी और हाथी-दाँत या किसी अन्य कठोर वस्तु से उसे चमकदार बना दिया जाता था। उसी पर धार्मिक उपदेश तथा राजाज्ञाएँ लिखी जाती थीं। उस नरकुल को 'पेपाइरस' कहते थे। अँगरेजी शब्द 'पेपर' उसी से निकला। पेपाइरस पर लिखा गया ग्रन्थ इंगलैण्ड के संग्रहालय में उपलब्ध है। मुद्रण-कला के प्रारम्भ में लेखन-सामग्री के लिए कागज के स्थान पर पेपाइरस, पार्चमेण्ट आदि का प्रयोग होता था। भारत में उस समय भोजपत्र का प्रयोग हो रहा था। कागज के आविष्कार से मुद्रण के लिए सामग्री की समस्या का समाधान हो गया।

कागज का सर्वप्रथम निर्माण तथा प्रयोग चीन में हुआ। चीन के बादशाह होती (Hoti) को सन् १०५ ई० में वहीं के निवासी त्साई लून (Ts'ai Lun) ने कागज के आविष्कार की प्रथम सूचना दी। त्साई लून ही कागज का आविष्कारक माना जाता है। इस घटना का विवरण पाँचवीं सदी के लेखक फानयेह (Fan Yeh) ने अपनी पुस्तक 'हानवंश का इतिहास' में इस प्रकार दिया है :

In ancient times writing was generally on bamboo or on pieces of silk, which were then called *chih*. But silk being expensive and bomboo heavy, these two materials were not convenient. Then Ts'ai Lun thought of using tree-bark, hemp, rags and fish-nets. In the first year of the Yuan-hsing period (A. D. 105) he made a report to the emperor on the process of paper-making and received high praise for his ability. From this time

paper has been in use everywhere and is called the 'paper of Marquis Ts'ai'."[१]

कागज के आविष्कार की औपचारिक सूचना त्साई लून ने सन् १०५ ई० में चीनी बादशाह को दी। इसके साथ ही कागज पर लिखने का कार्य आरम्भ हो गया। पाँचवीं सदी तक चीन में कागज का सार्वजनिक रूप से प्रयोग शुरू हो गया था। पाश्चात्त्य देशों में मुद्रण के लिए कागज का प्रयोग बहुत बाद में धीरे-धीरे शुरू हुआ। मध्यचीन में कागज के आविष्कार के साथ ही इसका प्रयोग चीनी तुर्किस्तान के तून-ह्वांग में सन् १५० ई० में, तुर्फान में सन् ३९९ ई० में, कश्मीर के गिलगिट-क्षेत्र में छठी सदी में, समरकन्द में सन् ७५१ ई० में, बगदाद में सन् ७९३ ई० में, मिस्र में लगभग सन् ९०० ई० में, मोरक्को में सन् ११०० ई० में, स्पेन में सन् ११५० ई० में, इटली में सन् १२५० ई० में, न्यूरम्बर्ग में सन् १३९० ई० में और इंगलैण्ड में लगभग सन् १४९४ ई० में होने लगा था।

बौद्ध भिक्षुओं ने बुद्ध के उपदेशों को कागज पर लिखकर बौद्धधर्म का प्रचार जापान तक किया, पर उस समय तक कागज के प्रयोग का प्रसार चीन तक ही सीमित रहा। आक्रमणकारी मुसलमानों ने चीनी कागज के कारीगरों को गिरफ्तार कर समरकन्द में कागज-उद्योग का आरम्भ किया। सन् ७५१ ई० से समरकन्द में कागज-उद्योग प्रारम्भ हो गया। समरकन्द में सन (हेम्प) तथा फ्लेक्स की बहुलता से इस उद्योग का पर्याप्त विकास हुआ। सातवीं सदी के एक अरबी लेखक ने लिखा है :

"Among the specialities of Samarkand that should be mentioned is paper. It has replaced the rolls of Egyptian papyrus and the parchment which was formerly used for writing, because it is more beautiful, more agreeable and more convenient..... The manufacture grew and not only filled the local demand, but also became for the people of Samarkand an important article of commerce. Thus it came to minister to the needs and well-being of mankind in all the countries of the earth."[२]

समरकन्द के कागज-उद्योग के कुछ ही वर्ष बाद भारत में कागज का प्रयोग आरम्भ हो गया।

अधुनातन सन्दर्भ में ग्रन्थ-निर्माण की जो प्रक्रिया है, उसका प्राचीनतम स्वरूप मिस्र में प्रचलित पेपाइरस-विधि है। वहाँ पेपाइरस पर ग्रन्थ लिखे जाने लगे थे। उसके पश्चात् ही चीन में पुस्तकों में मुद्रण के लिए लकड़ी का ब्लॉक बनाकर मुद्रण का आरम्भ किया गया। मुद्रण की इस प्रक्रिया में अक्षरों तथा चित्रों को लकड़ी पर उत्कीर्ण कर, उसपर स्याही लगाकर, उसकी अनेक प्रतियाँ तैयार कर लेते थे। यहाँ यह स्मरणीय है कि चीन में कागज पर मुद्रण सर्वप्रथम सन् १३७ ई० में प्रारम्भ हो गया था।

---

१. द बुक : डगलस सी० मैकमट्री; पृ० ६१-६२
२. वही, पृ० ६४

आधुनिक मुद्रण-कला का उद्भव :

चीन में जिस मुद्रण-कला का उद्भव हुआ, उसी का विकास यूरोप में हुआ और वहाँ से विश्व के अन्यान्य भागों में इस कला का प्रसार हुआ। चीन में ब्लॉक-मुद्रण-पद्धति से सचित्र धर्मग्रन्थ छापे गये। साथ ही टाइप का आविष्कार भी, गुटेनबर्ग के आविष्कार के पूर्व, चीन में हुआ। चीनी लिपि के प्रतीकात्मक होने के कारण वहाँ टाइप-मुद्रण की अपेक्षा ब्लॉक-मुद्रण-पद्धति को प्रधानता मिली।

मुद्रण के लिए चीनी भाषा में 'विन' (Vin) शब्द प्रयुक्त होता है। कागज पर किसी पुस्तक या चित्र या अक्षर का ब्लॉक बनाकर और उसपर स्याही लगाकर उसकी प्रतिलिपि उतारना मुद्रण कहलाता है। चीन में इस प्रकार के मुद्रण का प्रचलन पाँचवीं-छठी सदी में हो चुका था। लकड़ी की ब्लॉक-पद्धति से प्राचीन मन्त्रों को कागज पर मुद्रित करने का प्रथम प्रयास जापान में सन् ७७० ई० में किया गया।

एक समय था, जब जापान पर चीन का धार्मिक प्रभुत्व था। जापान चीनी बौद्धधर्म का अनुयायी था। जापान की सम्राज्ञी शोतोकु (शासनकाल ७४८--७६९ ई०) की बौद्धधर्म के प्रति अटूट आस्था थी। उसने बौद्ध-मन्त्रों की करोड़ों प्रतियाँ मुद्रित कराकर छोटे बौद्ध-विहारों तथा जनता में वितरित कराईं। मन्त्रों के मुद्रण का यह कार्य सन् ७७० ई० में पूरा किया गया। इसके कुछ नमूने ब्रिटिश म्युजियम में उपलब्ध हैं। कागज पर मुद्रण के ये प्राचीनतम उपलब्ध नमूने हैं। यद्यपि चीन में इसके पूर्व इस पद्धति से मुद्रण प्रारम्भ हो गया था, तथापि उसके नमूने अब उपलब्ध नहीं हैं।

तांग-वंश (आरम्भ सन् ६१८ ई०) के शासन-काल से चीन में 'स्वर्णयुग' का प्रारम्भ होता है। इस युग में साहित्य, कला और बौद्धधर्म का अत्यधिक विकास हुआ। इस काल में ब्लॉक-पद्धति से भगवान् बुद्ध के चित्र छापकर वितरित किये गये, यद्यपि यह तरीका बहुत मँहगा पड़ता था।

तांग-वंश का शासन-काल समाप्त होते ही सन् ८४५ ई० के अन्त में चीन का धार्मिक जागरण-काल समाप्त होता है। वस्तुतः यह काल बौद्धधर्म की समाप्ति का काल था। बौद्धधर्म को निर्ममता से नष्ट किया जा रहा था। लगभग ४६०० बौद्ध-विहार ध्वस्त कर दिये गये और यह चेष्टा की गई कि बौद्धधर्म का वहाँ नामोनिशान न रह जाय। यही कारण है कि इस युग की मुद्रित सामग्री के नमूने उपलब्ध नहीं हैं। सन् ८३५ ई० के एक राजकीय अभिलेख से प्रकट होता है कि निजी दैनन्दिनी छापने पर भी रोक लगा दी गई थी। साथ ही, मुद्रित धार्मिक संलेखों को भी सन् ८४५ ई० के आसपास जला दिया गया।

अँगरेज पुरातत्त्वविद् ऑरेलस्टीन के भगीरथ प्रयास से चीन के तून-ह्वांग नगर में अत्यधिक संख्या में मुद्रित अभिलेख उपलब्ध हुए हैं। इन अभिलेखों में चीनी भाषा के अतिरिक्त संस्कृत, ईरानी, तिब्बती, तुर्की और हिब्रू भाषाओं के भी अभिलेख हैं। इन अभिलेखों का मुद्रण-काल सन् ४०६ ई० से ९९७ ई० के मध्य माना गया है। इन्हीं में 'हीरकसूत्र' नामक ग्रन्थ भी उपलब्ध है। इससे यह ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ का मुद्रण

११ मई, ४६८ ई० को हुआ था। मुद्रक वांगचिह ने अपने माता-पिता की पुण्यस्मृति में इस ग्रन्थ का मुद्रण कर जनता में वितरित किया था।[१]

चीन में उपलब्ध यह ग्रन्थ विश्व का प्राचीनतम मुद्रित ग्रन्थ है। इसका मुद्रण ब्लॉक-मुद्रण-पद्धति से हुआ था। इस ग्रन्थ के एक चित्र में शाक्यमुनि कमलासन पर प्रतिष्ठित हैं। उनके चतुर्दिक् देवता और भिक्षु हैं। उन्हें अपने समवयस्क शिष्य सुमति को धर्मोपदेश देते हुए दिखाया गया है। ग्रन्थ १६ फुट गोलाकार लम्बा, एक फुट चौड़ा और कागज के सात अलग-अलग पृष्ठों में है।

चीन का जेचुएन-प्रदेश मुद्रण-कला का प्रधान केन्द्र था। सन् ८८३ ई० के आसपास यहाँ ब्लॉक-पद्धति से कागज पर पुस्तकें मुद्रित की जाती थीं। वरिष्ठ चीनी अधिकारी वोचाओ के निर्देशन में सरकारी मुद्रण का प्रारम्भ हुआ था, पर ये मुद्रित ग्रन्थ मुद्रण की दृष्टि से स्वच्छ और सुन्दर नहीं थे। बाद में फेंगताओ के युग में मुद्रण का प्रधान केन्द्र शु बना। फेंगताओ चीन का 'गुटेनबर्ग' कहा जाता है। फेंगताओ ने मुद्रण-कला के विकास की दृष्टि से नहीं, वरन् प्राचीन शास्त्रीय ग्रन्थों के प्रामाणिक संस्करणों की दृष्टि से मुद्रण-यन्त्र के विकास पर सर्वाधिक ध्यान दिया था। पहले शास्त्रीय ग्रन्थों को पत्थरों पर उत्कीर्ण किया जाता था और बाद में उन्हें विद्यार्थियों के लिए कागज पर छापा जाता था।

ब्लॉक-मुद्रण के प्रसार का प्रमुख कारण ताश की छपाई तथा जनता में उसकी अधिकाधिक माँग बताया जाता है। ताश का जन्म भी चीन में हुआ। वहाँ इसे पहले शीट-डाइस (sheet-dice) कहा जाता था। यह हाथी-दाँत तथा हड्डी पर बनाया जाता था। बाद में कागज के ताश बनाये जाने लगे। ताश का प्रचार सन् ९६९ ई० तक चीन में हो गया था। यूरोप में चौदहवीं सदी में इसका प्रचार हुआ। ब्लॉक-मुद्रण का प्रचार पहले कोरिया और जापान में हुआ और बाद मे एशिया के अन्य देशों और यूरोप में।

टाइप के माध्यम से मुद्रण :

चीन : चीन में ब्लॉक-मुद्रण के पश्चात् टाइप-मुद्रण का भी आविष्कार किया गया। गुटेनबर्ग के टाइप-निर्माण के लगभग चार शतक पूर्व चीनी नागरिक पीशेंग ने मिट्टी के अलग-अलग आकार बनाकर और उन्हें आग में पकाकर पक्का बनाया था। इससे मुद्रण का कार्य होता था। पीशेंग के समकालीन उसके मित्र शेन-कुआ ने टाइप के आविष्कार के सम्बन्ध में लिखा है :

"Under the Tang dynasty, block printing though carried on, was not fully developed. In the time of Feng Ving-Wang (Feng Tao), first the five classics and then in general all the ancient canonical works were printed.

During the period Ch'ing-li (A.D. 1041—1049) Pi Sheng, a man in cotton cloth (a man of common people), made also movable type. His method

---

१. द बुक : डगलस सी० मैकमट्री; पृ० ६१

was as follows : He took sticky clay and cut in it characters as thin as the edge of cash. Each character formed as it were a single type. He baked them in the fire to make them hard. He had previously prepared an iron plate and he had covered this plate with mixture of pine resin, wax and paper-ashes. When he wished to print, he took an iron frame and set it on the iron plate. In this he placed the type, set close together. When the frame was full, the whole made one solid block of type. He then placed it near the fire to warm it. When the paste (at the back) was slightly melted, he took a perfectly smooth board and rubbed it over the surface, so that the block of type became as even as a whet stone.

If one were to print only two or three copies, this method would be neither convenient nor quick. But for printing hundreds or thousands of copies, it was marvellously quick. As a rule he kept two forms going. While the impression was being made from the one form, the type were being put in place on the other. When the printing of one form was finished, the other was all ready. In this way the two forms alternated, and the printing was done with great rapidity.

When Pi Sheng died, his font of type passed into the possession of my followers and upto this time it has been kept as a precious possession."[1]

मिट्टी के टाइप के साथ ही टीन के टाइप का भी निर्माण पीशेंग के समय में हुआ। रंगों के साथ टीन के टाइप से मुद्रण करने में कागज पर छपाई अच्छी नहीं होती थी, इस कारण टीन के स्थान पर लकड़ी के टाइप काटे जाने लगे। सन् १३१४ ई० में लकड़ी के टाइप बनाने का विवरण उपलब्ध है। कहा जाता है, वांग चेंग ने सर्वप्रथम लकड़ी पर अक्षर खोदकर और बाद में उसे काटकर अलग-अलग किया। उसने चल-टाइप-केस का निर्माण किया, जिसमें कृषि-विज्ञान की पुस्तक के मुद्रण के लिए छह हजार टाइप रखे गये थे।

कोरिया : चीन के बाद कोरिया में टाइप तथा मुद्रण का कार्य प्रारम्भ हुआ। जेनरल यी के शासन-काल में कोरिया में साहित्य और कला की अधिक प्रगति हुई। उसने पुस्तक-निर्माण-विभाग की स्थापना की, जिसके निर्देशन में पुस्तक के मुद्रण के लिए टाइप ढालने का कार्य होता था। तेरहवीं सदी के पूर्वार्द्ध से १४वीं सदी के अन्त तक कोरिया में मुद्रण तथा टाइप-निर्माण का कार्य बड़ी तेजी से हुआ। वहाँ लोहे के टाइप-निर्मित किये जाने लगे। जेनरल यी के उत्तराधिकारी ताई-सुंग के समय ताँबे के हजारों टाइप ढाले जा चुके थे। सन् १४०३ ई० से १५०४ ई० के बीच ११ राजकीय संस्थान टाइप ढालने का काम कर रहे थे। सन् १४३४ ई० में बड़े टाइप ढाले गये। प्रति दो मास में दो लाख बड़े टाइप ढाले जाते थे। अधिक संख्या में पुस्तकें भी मुद्रित हुईं। एक इतिहासकार ने लिखा है :

---

१. द बुक : डगलस सी० मैकमट्री; पृ० ९५-९६

"There will be no book left unprinted, and no man who does not learn. Literature and religion will make daily progress, and cause of morality must gain enormously. The Tang and Han rulers, who considered the first duty of the sovereign to be finance and war, are not to be mentioned in the same day with the sovereign to whom this work is due."[१]

कोरिया में चल-टाइपों के द्वारा मुद्रण-कार्य सन् १५४४ ई० तक काफी विकसित पर पहुँच चुका था। जापान में सन् १५०६ ई० में टाइप द्वारा मुद्रित पुस्तकें प्रकाशित हुईं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राच्य देशों में ब्लॉक-पद्धतिवाली मुद्रण-कला का आविष्कार हुआ। यहीं से इसका प्रचार कोरिया और जापान होते हुए यूरोपीय देशों में भी हुआ।

जर्मनी : अक्षरों को अलग-अलग टाइप के रूप में ढालने और उन टाइपों को जोड़कर मनचाहे आकार के पृष्ठों में व्यवस्थित कर अनेक प्रतियाँ छाप लेने की क्रिया को मुद्रण-कला की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। इस अर्थ में पन्द्रहवीं सदी के मध्य में मुद्रण-कला का आविष्कार हो गया था। आधुनिक मुद्रण-कला के उद्गाता के रूप में जर्मनी का प्रमुख स्थान है। जर्मनी के सम्बन्ध में कहा गया है :

हालैण्ड में पुस्तकें हैं, प्रलेख नहीं;
फ्रांस में प्रलेख हैं, पुस्तकें नहीं;
इटली में न पुस्तकें हैं, न प्रलेख;
जर्मनी में पुस्तकें भी हैं, प्रलेख भी।[२]

अत: आधुनिक मुद्रण-कला की उद्भव-भूमि जर्मनी है। इस देश का जॉन गेन्सफ्लीश्जम गुटेनबर्ग इस कला का जन्मदाता कहा जाता है।

जॉन गुटेनबर्ग का जन्म सन् १३९४ से '९९ ई० के आसपास जर्मनी के मेञ्ज नगर के सम्भ्रान्त स्वर्णकार-परिवार में हुआ था। गुटेनबर्ग का नाम जॉन गेन्सफ्लीश्जम था। उसकी माँ प्यार से उसे गुटेनबर्ग कहती थी और वह इसी नाम से विश्वविश्रुत हुआ। वह राजनीतिक निर्वासन के कारण जर्मनी के स्ट्रॉसबर्ग में सपरिवार रहने लगा। उसने 'गुप्तकला' के अनुसन्धान के लिए सन् १४३९-४० ई० में अपने सहयोगी के रूप में हान्सरिफ (Hans Riff) के साथ अनुबन्ध किया। इस अनुसन्धान के प्रयास में वहाँ के सोनार से भी उसने गुप्त रूप से इस विद्या का अध्ययन किया। इस सम्बन्ध में उसने यन्त्र-सम्बन्धी सामान खरीदे। गुटेनबर्ग ने इस विद्या को गुप्त रखने की कोशिश की। यद्यपि इसी समय एविगनन, बर्गेस और गोलोंगना नामक स्थानों में भी अनेक स्वर्णकार कृत्रिम अक्षरों के अनुसन्धान में सचेष्ट थे। गुटेनबर्ग को अपने अनुसन्धान में उत्साहवर्द्धक सफलता नहीं मिली। वह सन् १४४८ ई० के आसपास

१. द बुक : डगलस सी० मकमट्री; पृ० ९८
२. हिन्दी के आदिमुद्रित ग्रन्थ, प्रस्ताविकी, पृ० २

मेञ्ज चला गया। उसके पहले सहयोगी हान्सरिफ की स्ट्रॉसबर्ग में मृत्यु हो गई। अतः वह अपने दूसरे सहयोगी लारेञ्ज बेल्डेक को अपने साथ लेता आया। उसने अपनी 'गुप्त विद्या' की खोज में पुनः कार्य आरम्भ किया। उसने मेञ्ज नगर के एक धनिक वकील जॉन फास्ट से दो किस्तों में १६०० सुवर्ण गुल्डेन छह प्रतिशत ब्याज पर लिया। अन्ततः उसे अपने अनुसन्धान में सफलता मिली तथा सन् १४५० ई० में उसने आधुनिक मुद्रण-कला का आविष्कार किया।

स्ट्रॉसबर्ग में उसने ब्लॉक-प्रिण्टिंग की जानकारी अच्छी तरह से प्राप्त कर ली थी। यहाँ आकर उसने अपने प्रेस में स्कूल तथा प्रार्थना-सम्बन्धी कई छोटी-छोटी पुस्तकों के मुद्रण किये। उसने लकड़ी के टाइप का निर्माण भी किया। सन् १४५५ ई० में उसने 'बिब्लिया लैटिना बेलगाटा' नामक पुस्तक का मुद्रण किया।

गुटेनबर्ग ने अपने अनुसन्धान-काल में आर्थिक कठिनाइयों से अपने उद्योग के आर्थिक सहायक जॉन फास्ट के साथ अनुबन्ध कर उसे साझीदार बनाया। अन्ततः जॉन फास्ट उसके उद्योग का अधिपति बन गया। दुर्भाग्यग्रस्त गुटेनबर्ग इस उद्योग से आर्थिक लाभ प्राप्त नहीं कर सका। इस उद्योग-संस्थान के सहायक पेटर सोफर ने, जो बाद में जॉन फास्ट का जामाता तथा उसका उत्तराधिकारी बना, इस प्रेस में बहुत अच्छा मुद्रण-कार्य किया। गुटेनबर्ग को इस उद्योग में हमेशा नुकसान उठाना पड़ा था। उसने सन् १४६२ ई० में इस उद्योग से सम्बन्ध-विच्छेद कर अवकाश ले लिया। मेञ्ज का एक पादरी उसे आर्थिक सहायता देता था। ३ फरवरी, १४६८ ई० को मेञ्ज में गुटेनबर्ग का देहान्त हो गया।

आधुनिक मुद्रण-कला के आविष्कारक के रूप में गुटेनबर्ग को प्रतिष्ठित करने के अनेक कारण हैं। वह मुद्रक की अपेक्षा सुविज्ञ प्रेस-शिल्पी था। उसने मुद्रण-कला का काफी विकास किया। उसकी मुद्रण-पद्धति का विकसित रूप प्रायः उन्नीसवीं सदी के आरम्भ तक चलता रहा। उसने पंचकटिंग, मैट्रिक्स-फिटिंग, टाइप ढालना, कम्पोजिंग और प्रूफ-रीडिंग की जिस प्रक्रिया का प्रारम्भ किया, वह लगभग चार-पाँच शताब्दियों तक प्रचलित रही। उसने लकड़ी के टाइप के स्थान पर लौह-टाइप, ब्लॉक-मुद्रण के स्थान पर अक्षर-मुद्रण तथा पुस्तकों के स्वच्छ मुद्रण के लिए तीन बार प्रूफ-रीडिंग की परम्परा कायम की। उसने मुद्रण के लिए हस्त-दाब लकड़ी का प्रेस बनाया। इन्हीं कारणों से उसे मुद्रण-कला का प्रतिष्ठापक माना जाता है। उसने सन् १४५२ ई० में लोहे के टाइप का निर्माण कर लिया था।

गुटेनबर्ग ने मुद्रण के लिए स्याही की भी खोज की। उसने ऐसी स्याही तैयार की, जो लोहे के अक्षरों से छापने के काम आती थी। यह स्याही उस स्याही से भिन्न कोटि की थी, जिसका प्रयोग लकड़ी के टाइपों तथा ब्लॉक-मुद्रण में होता था।

गुटेनबर्ग द्वारा मुद्रित तीन कृतियों के सम्बन्ध में जानकारी उपलब्ध है। पहली पुस्तक बाइबिल है। इसका मुद्रण सन् १४५२ ई० में आरम्भ हुआ और सन् १४५५ ई० के पूर्व समाप्त हुआ। यह बाइबिल दो खण्डों में है। इसके प्रति पृष्ठ के लिए दो कॉलमों में टाइप की ४२ पंक्तियाँ सेट की गई थीं। इसमें कुल १२८२ पृष्ठ हैं, जिनमें २९० विभिन्न प्रकार के टाइप तथा संकेतों के प्रयोग किये गये थे। इसकी २०० प्रतियाँ छापी गई थीं। पुस्तक

तीन मिलीमीटर लम्बे और ३ मिलीमीटर चौड़े आकार में छापी गई थी। गुटेनबर्ग ने अपनी मुद्रण-कला को गुप्त रखने के विचार से इस पुस्तक में मुद्रण और प्रकाशन की तारीख तथा स्थान का उल्लेख नहीं किया।

गुटेनबर्ग की दूसरी कृति 'कैथलिकॉन' का मुद्रण है। जेनेवा-निवासी जान बालबस ने 'कैथलिकॉन' नामक विश्वकोश तैयार किया था। गुटेनबर्ग की ४२ पंक्तियोंवाली बाइबिल की अपेक्षा इस पुस्तक के टाइप एक-तिहाई छोटे हैं। इस ग्रन्थ के अन्त में मुद्रित पुष्पिका से गुटेनबर्ग की मुद्रण-दृष्टि का परिचय मिलता है। उसने लिखा है :

"With the help of the Most High at whose will the tongues of infants become eloquent and who often reveals to the lowly what he hides from the wise, this noble book CATHOLICON has been printed and accomplished without the help of reed, stylus or pen but by the wondrous agreement, proportion and harmony of punches and types, in the year of the Lord's incarnation 1460 in the noble city of Mainz of the renowned German nation which God's grace has designed to prefer and distinguish above all other nations of the Earth with so lofty a genius and liberal gifts. Therefore all praise and honour be offered to thee, Holy Father, Son and Holy Spirit, God in three persons; and thou, Catholicon, resound the glory of the Church and never cease praising the Holy Virgin. Thanks be to God."[1]

गुटेनबर्ग ने जिस गुप्त विद्या—मुद्रण-कला – का आविष्कार किया, उससे विश्व-ज्ञान के प्रसार में बहुत सहायता मिली।

मुद्रण-कला का विकास :

जिन दिनों गुटेनबर्ग मुद्रण-कला के अनुसन्धान में कार्यरत था, उन्हीं दिनों इस कला की चर्चा विदेशों में फैलने लगी। मुद्रण में अभिरुचि रखनेवाले अनेक देशों के व्यक्तियों ने गुप्त रूप से इस विद्या का गुटेनबर्ग से अध्ययन किया। परन्तु, यूरोपीय देशों में मुद्रण के फैलाव का श्रेय जर्मन कलाकारों तथा व्यवसायियों को है। जर्मनी के अनेक व्यवसायी जीविका की तलाश में सन् १४६० ई० के बाद मेन्ज से बाहर गये। उन्होंने मुद्रण-व्यवसाय को जीविका का साधन बनाया और बाद में व्यवसायियों ने इस अभिनव उद्योग को अन्तरराष्ट्रीय उद्योग का स्वरूप प्रदान किया।

पन्द्रहवीं सदी के अन्त तक जर्मनी के प्राय: साठ नगरों में प्रेसों की स्थापना हो गई। प्रेस के संस्थापकों ने मुद्रण का व्यावसायिक रूप में व्यापार आरम्भ किया। इनमें मेन्ज तथा बामबर्ग मुद्रण-प्रकाशन के आरम्भिक प्रधान केन्द्र थे, पर आर्थिक दृष्टि से ये दोनों क्षेत्र महत्त्वपूर्ण नहीं थे। परिणामस्वरूप प्रकाशन-व्यवसाय अस्त-व्यस्त हो गया। इसके विपरीत दक्षिण-जर्मनी के स्ट्रॉसबर्ग और बेसेल नगर में मुद्रण-व्यवसाय का विकास अधिक

१. फाइव हण्ड्रेड ईयर्स ऑफ प्रिण्टिंग : एस० एच० स्टीनबर्ग; पृ० १९

हुआ। इसके अलावा कोलोन, लुबेक और बर्गेस में भी इस धन्धे ने अपने क्षेत्र का विस्तार किया।

स्ट्रॉसबर्ग : गुटेनबर्ग के सहयोगी जान मेन्तालिन ने स्ट्रॉसबर्ग में मुद्रण-प्रकाशन के व्यवसाय का कार्य आरम्भ किया। कहा जाता है कि वह अच्छा मुद्रक नहीं था, पर व्यवसाय की दृष्टि से वह अच्छा प्रकाशक था। उसने सन् १४६० ई० में बाइबिल का प्रकाशन किया। यह धर्मग्रन्थ गुटेनबर्ग की प्रतिस्पर्द्धा में प्रकाशित किया गया था। यह बाइबिल ८५० पृष्ठों की थी। उसकी मृत्यु के बाद उसका जामाता उस प्रकाशन-व्यवसाय की देखरेख करता रहा। उसने लोक-कथाओं, गीतों और समकालीन कथाओं का प्रकाशन किया। सन् १५५० ई० तक इस व्यवसाय में अनेक प्रकाशक आ गये।

बेसेल : बेसेल मुद्रण-कला के उच्चस्तरीय प्रकाशन का प्रधान केन्द्र था। वहाँ भी गुटेनबर्ग के शिष्य बर्थोल्ड रूपेल ने सन् १४६७ ई० में बाइबिल का भाष्य **मोरालिना सुपर-जॉब** प्रकाशित किया। सेण्ट ग्रिगॉरी-कृत यह भाष्य बहुप्रचलित हुआ। इस नगर के दूसरे मुद्रक-प्रकाशक जॉन एमरबाच ने सन् १४७७ ई० में प्रेस की स्थापना की। उसने ईसाई धर्म के प्रचार के लिए ईसाई-साहित्य का प्रकाशन किया। उसने अपने गुरु जॉन हेलिन को अपने प्रकाशन-संस्थान का साहित्य-निदेशक बनाया। इस प्रकाशन-संस्थान को बेसेल विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों का भी सहयोग प्राप्त हुआ। प्राध्यापकों ने प्रूफ-संशोधन तथा सम्पादन किया। एमरबाच ने ग्यारह खण्डों में सेण्ट आगस्टाइन की रचनाओं का सन् १५०६ ई० में प्रकाशन किया। इस संस्थान ने लम्बे अरसे तक मुद्रण और प्रकाशन का कार्य किया।

न्यूरेम्बर्ग : जर्मन मुद्रण-कला के आरम्भिक दिनों में न्यूरेम्बर्ग उद्योग-धन्धे का प्रमुख अन्तरराष्ट्रीय केन्द्र था। विश्व के विभिन्न भागों के सौदागरों का यह आकर्षण-केन्द्र रहा। यहाँ सर्वप्रथम बड़े पैमाने पर प्रकाशन-उद्योग करनेवाले ऐण्टन कोबर्गर ने सन् १४७० ई० में मुद्रण-प्रकाशन और बिक्री-केन्द्र की स्थापना की थी। उसने २४ प्रेसों की स्थापना की, जिनमें कोई १०० कम्पोजीटर कम्पोज करते थे। यहाँ पुस्तक की छपाई, जिल्दबन्दी और प्रकाशन की विस्तारपूर्वक व्यवस्था की गई थी। सन् १४७३ से १५१३ ई० के मध्य उसने लगभग २०० पुस्तकों का मुद्रण और प्रकाशन किया। उसने अपनी प्रकाशन-संस्था की अनेक शाखाएँ स्थापित कीं। मुद्रण-व्यवसाय का वह अपने समय का सबसे बड़ा पूँजीपति कहा जाता था।

कोलोन : कोलोन मध्य जर्मनी का सबसे सघन आबादीवाला प्रदेश है। अनेक दशकों तक यह नगर जर्मन मुद्रण का प्रधान केन्द्र था। उलरिच जिल ने सन् १४६४ ई० में यहाँ प्रेस की स्थापना की। यहाँ का यह प्रथम प्रेस था। पन्द्रहवीं शती के अन्त में लगभग १३०० किताबें इस नगर के मुद्रकों ने प्रकाशित कीं। यहाँ से मुद्रित पुस्तकों की उल्लेखनीय विशेषता यह थी कि सभी ग्रन्थ लैटिन में छापे गये थे और सभी धर्मग्रन्थ थे। उलरिच जिल ने स्वयं २०० ग्रन्थ छापे। स्ट्रॉसबर्ग के निवासी हेनरिच क्वेण्टल ने सन् १४८६ ई० में मुद्रण-कार्य आरम्भ किया। उसने सन् १५०१ ई० तक (अपनी मृत्यु-पर्यन्त) लगभग ४००

पुस्तकें मुद्रित कीं। इस प्रकार कोलोन नगर ने मुद्रण-व्यवसाय में उल्लेखनीय प्रगति की।

इसी कोलोन नगर में सन् १४७१-७२ ई० में विलियम कैक्सटन ने मुद्रण-कला का ज्ञान प्राप्त किया था। जान सीबर्च भी यहीं का निवासी था, जिसने इंगलैण्ड में कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस की स्थापना की थी।

ल्यूबेक : ल्यूबेक से यूरोप के पूर्वी तथा पूर्वोत्तर भागों में मुद्रण-कला का प्रसार हुआ। हैम्बर्ग-निवासी स्टिफेन आडेन्स ने मेञ्ज में मुद्रण, कम्पोजिंग तथा टाइप ढालने की कला सीखी। ग्यारह वर्षों तक (सन् १४७०-७८ ई०) वह इटली में था। सन् १४८६ ई० में उसने ल्यूबेक में प्रेस की स्थापना की और अनेक पुस्तकें मुद्रित कीं। उनमें सचित्र बाइबिल का सन् १४९४ ई० में मुद्रण और प्रकाशन महत्त्वपूर्ण घटना है। किन्तु, वह सफल मुद्रक नहीं बन सका। उसका व्यापार सदा घाटे में चलता रहा। फिर भी किरानीगिरी करते हुए मृत्यु-पर्यन्त (सन् १५१९ ई०) मुद्रण-व्यवसाय को वह चलाता गया। जो हो, इस नगर से मुद्रण-कला के प्रसार में विशेष सहायता मिली। यहाँ से मुद्रक डेनमार्क, स्वीडन, फिनलैण्ड, रूस आदि देशों में गये और प्रेस स्थापित कर उन्होंने मुद्रण-उद्योग को नई दिशा प्रदान की।

इटली : इटली पहला देश है, जहाँ जर्मन मुद्रकों ने मुद्रण-कला की जानकारी वहाँ के निवासियों को सन् १४६५ ई० में दी। तबतक अन्य देशों में मुद्रण-उद्योग में जर्मन कलाकार या व्यवसायी ही कार्य कर रहे थे। किन्तु, कालान्तर में इटली में जर्मनों का एकाधिपत्य समाप्त हो गया। जॉन फिलिप्स ने ३ अगस्त, १४७० ई० में 'क्विण्टेलियन' का मुद्रण किया। वह मूलतः इतालवी था। इटली ने मुद्रण के विकास में उल्लेखनीय योगदान किया। वहाँ विशेष प्रकार के टाइप का निर्माण हुआ। 'इटालिक' तथा 'गॉथिक' टाइप इटली की देन हैं। इटली में ही सर्वप्रथम हिब्रू और ग्रीक भाषाओं के लिए फॉण्ट ढाले गये।

रोम : मुद्रण-कला को रोम में प्रचलित करने का श्रेय स्वेनहेम तथा पैनार्त्स नामक दो कारीगरों को है। उन्होंने रोम के सुबियाको नामक स्थान में प्रेस की स्थापना की। सन् १४७२ ई० तक उन्होंने २८ ग्रन्थों को ४६ खण्डों में मुद्रित किया। उनमें कई पुस्तकों के अनेक संस्करण हुए। प्रायः प्रति पुस्तक की २७५ प्रतियाँ मुद्रित की जाती थीं। उसी समय उलरिच जिल नामक मुद्रक ने भी सन् १४७६ ई० में ८० ग्रन्थों का मुद्रण किया। ये सभी ग्रन्थ प्रायः लैटिन भाषा के थे।

वेनिस : पन्द्रहवीं सदी में वेनिस उद्योग का महत्त्वपूर्ण केन्द्र था। पहली बार यहाँ मुद्रण को व्यावसायिक रूप दिया गया और टाइपों के निर्माण का प्रशंसनीय प्रयास किया गया। वेनिस का प्रथम मुद्रक जॉन ऑफ स्पायर था। वह मूलतः जर्मनी के मेञ्ज नगर का निवासी था। जॉन ने वेनिस में सबसे पहले सन् १४४९ ई० में पुस्तकें मुद्रित कीं। पाँच साल तक वह अकेला इस उद्योग में क्रियाशील था।

मुद्रण-कला के इतिहास में वेनिस के मुद्रक जेन्सन और एडलस को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। टाइप के विभिन्न रूपों के निर्माण में जेन्सन का प्रयास उल्लेखनीय है। टाइप के अलावा उसने विभिन्न प्रकार के कागजों का निर्माण किया। एल्डिन नाम से जेन्सन का कागज मशहूर था। जर्मन जॉन गुटेनबर्ग ने चल-टाइपों द्वारा मुद्रण-प्रक्रिया का आविष्कार किया। फ्रेंज निकोलस जेन्सन ने सर्वप्रथम टाइप-फेसों को कलात्मक रूप प्रदान किया, जबकि इतालवी एल्डिन माइन्यूटियस ने मुद्रण को लाभ की दृष्टि से पुस्तक के आकार-प्रकार तथा समुचित मूल्य पर बिक्री की व्यवस्था कर प्रकाशन-व्यवसाय की नींव डाली।

जेन्सन का जन्म फ्रांस के सोम्मेवायरे स्थान में हुआ था। वह फ्रांसीसी सरकार के सिक्का-घर में सिक्का-विशेषज्ञ के रूप में काम करता था। फ्रांस के राजा ने ४ अक्टूबर, १४५८ ई० को जेन्सन को गुप्त रूप से मुद्रण-कला सीखने के लिए मेञ्ज भेजा। गुटेनबर्ग से मुद्रण-कला सीखकर जेन्सन ने सर्वप्रथम फ्रांस के लोगों को इस विद्या से परिचित कराया। जेन्सन जब मेञ्ज से लौटकर आया तब चार्ल्स षष्ठ की मृत्यु हो चुकी थी। लुई ११वाँ राजगद्दी पर था। उसे मुद्रण-कला के प्रति कोई अभिरुचि नहीं थी। वेनिस आकर जेन्सन ने सन् १४७० ई० में मुद्रण-कला के लिए प्रेस की स्थापना की। इटली में उसने नये-से-नये ढंग तथा सुन्दर रूप में टाइप ढालने की प्रक्रिया सीखी। वेनिस में उसने सबसे पहले टाइप ढालने का कार्य किया। वस्तुतः वह संसार का सर्वोत्तम टाइप-परिकल्पक था, जिसने संसार-प्रसिद्ध रोमन टाइप का निर्माण किया था। स्मरणीय है कि इस टाइप के पूर्वरूप का निर्माण इटली के रोम नगर में हो चुका था। जेन्सन ने लैटिन-ग्रन्थों का मुद्रण किया। उसने लगभग ९० ग्रन्थ प्रकाशित किये। ग्रन्थों के सम्पादन और संशोधन के लिए उसने विद्वान् सम्पादकों को नियुक्त किया था। सन् १४७५ ई० में उसने अपने धन्धे को कम्पनी का रूप दिया। तदनन्तर उसने प्रकाशन की ओर विशेष ध्यान दिया। सम्मिलित सहयोग से उसने नवम्बर, १४८० ई० में प्रथम पुस्तक प्रकाशित की। जेन्सन की मृत्यु सन् १४८० ई० हुई। इसके बहुत दिनों बाद तक उसकी कम्पनी निकोल्सन जेन्सन के नाम से प्रकाशन का काम करती रही।

वेनिस का दूसरा मुद्रक एल्डस माइन्यूटियस था। उसके व्यवसाय का लक्ष्य पाठ्य-सामग्री और पाठकों की रुचि को परिष्कृत करना था। अधिकाधिक पाठकों को अच्छी पुस्तकें उपलब्ध कराने के लिए उसने संकल्पयुक्त प्रचारोत्साह से काम किया। एल्डस का जन्म सन् १४५० ई० में हुआ था। उसने रोम विश्वविद्यालय में शिक्षा पाई थी। प्राचीन ग्रीक-साहित्य में उसने अनुसन्धान किया था। आरम्भ में उसने अध्यापन किया और बाद में कुशल मुद्रक और प्रकाशक बना। एल्डस ने सन् १४९० ई० में वेनिस में मुद्रण-प्रकाशन-उद्योग की स्थापना की, जिसमें उसने साहित्यकारों और कलाकारों का सहयोग प्राप्त किया। उसने ग्रीक और लैटिन-साहित्य के विकास के लिए इस उद्योग की स्थापना की थी। सन् १४९५ ई० में उसने ईरोलेमाटा नामक ग्रीक-व्याकरण का मुद्रण-प्रकाशन किया। सन् १४९९ ई० तक उसने ग्रीक-भाषा के अट्ठारह व्याकरण, शब्दकोश और साहित्यिक ग्रन्थों

का मुद्रण-प्रकाशन किया। अच्छे ग्रन्थों के सस्ते पॉकेट-संस्करण की शुरुआत भी उसने ही की। सन् १५१५ ई० तक वह इतालवी और ग्रीक भाषा के प्राचीन ग्रन्थों का प्रकाशन करता रहा।

सन् १५०० ई० में उसने अपनी टाइप-फाउण्ड्री के कारीगर फ्रांसिस्को ग्रिफो की सहायता से नवीन टाइप-फेस का निर्माण किया, जिसे 'इटालिक' कहते हैं। आज भी यह टाइप अपने आंगिक सौन्दर्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। इस टाइप का प्रयोग एल्डस ने सेण्ट कैथेराइन के 'इपिस्टोले' ग्रन्थ के शीर्षकों में किया। अप्रैल, १५०१ ई० में वर्जिल के २२८ पृष्ठों के ऑक्टेवो आकार के ग्रन्थ को उसने पूरे इटालिक टाइप में मुद्रित किया।

एल्डस ने सन् १५०१ ई० में अपने व्यवसाय को साहित्यिक प्रकाशन-संस्थान का रूप दिया, जिसके संयोजन में ग्रीक भाषा के अनेक विद्वानों का सहयोग था। इस संस्थान का उद्देश्य था—प्राचीन ग्रीक भाषा के ग्रन्थों का सम्पादन-प्रकाशन। ग्रीक भाषा के बृहद् ग्रन्थों के छोटे तथा सस्ते संस्करण प्रकाशित किये गये। पर, बाजार और पाठकों का सहयोग नहीं मिला। अन्य प्रकाशक इटालिक टाइप में ही एल्डस के ट्रेडमार्क पर अन्य कितावें बेचने लगे। इससे इस प्रकाशन-संस्थान को गहरा धक्का लगा। सन् १५०६ ई० में उसने संस्थान बन्द कर दिया। वेनिस भी उसे छोड़ना पड़ा। सन् १५१५ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। बाद में उसके उत्तराधिकारियों ने सन् १५९७ ई० तक यह प्रकाशन चलाया।

फ्रान्स : फ्रान्स के पेरिस और लायन्स में मुद्रणालयों का स्वतन्त्र अस्तित्व था। वहाँ मुद्रण-प्रकाशन प्रमुख व्यवसाय के रूप में विकसित हो रहा था। सोलहवीं सदी के मध्य तथा लायन्स के पतन के बाद पेरिस ही मुद्रण-प्रकाशन का प्रमुख केन्द्र था। यहाँ टाइप ढालने से लेकर पुस्तक-प्रकाशन तक का व्यवसाय चलता था। फ्रान्स में मुद्रण को राजकीय समर्थन प्राप्त हुआ। यह ध्यातव्य है कि चार्ल्स षष्ठ ने निकोलसन जेन्सन को मुद्रण-कला के अध्ययन के लिए मेञ्ज भेजा था, पर वह इस विद्या की जानकारी के बाद फ्रान्स नहीं लौटा। उसने अपना स्वतन्त्र व्यवसाय वेनिस में आरम्भ किया। पर, मुद्रण-प्रकाशन के क्षेत्र में फ्रान्स के सॉरबोन विश्वविद्यालय ने अत्यधिक कार्य किया। मुद्रणालय की स्थापना के लिए वहाँ के रेक्टर तथा पुस्तकालयाध्यक्ष ने तीन जर्मन मुद्रण-शिल्पियों को आमन्त्रित किया। विश्व-विद्यालय-भवन में सन् १४७० ई० में प्रेस की स्थापना हुई। सन् १४७२ ई० में प्लेटो के पत्रों का प्रकाशन किया गया। यहाँ से प्रकाशित अधिकतर ग्रन्थ स्कूल के छात्रों के लिए उपयोगी थे।

सॉरबोन विश्वविद्यालय के अतिरिक्त अनेक जर्मन मुद्रक पेरिस में कार्यरत थे। पास्क्वायर-बनहोम में फ्रेंच में पहली पुस्तक कार्निके-द-फ्रान्स का सन् १४७० ई० में तीन खण्डों में प्रकाशन किया गया।

फ्रेंच-पुस्तक के प्रकाशन-व्यवसाय के विकास की दृष्टि से फ्रान्स के ज्यां दुप्रे तथा अण्टोनियो वेरार्ड का अंशदान उल्लेखनीय रहा है। दोनों मुद्रक फ्रेंच-पुस्तकों के सचित्र संस्करणों के मुद्रण-प्रकाशन में सिद्धहस्त थे। ज्यां दुप्रे ने पुस्तक-विक्रेता का कार्य सन् १४८१

ई० में टूस्वानस नामक स्थान में आरम्भ किया। प्रदेश में अनेक शाखाएँ खोलीं। दूसरी ओर, वेरार्ड ने सन् १४८५ ई० में मुद्रण का कार्य किया। उसने लगभग २०० विभिन्न प्रकार की पुस्तकें प्रकाशित कीं। सोलहवीं सदी तक फ्रान्स में मुद्रण-कला का पर्याप्त विकास हो चुका था।

अँगरेजी-मुद्रण : इंगलैण्ड :

यूरोपीय देशों में मुद्रण-कला के उन्नयन में जर्मन कलाकारों का विशिष्ट अंशदान रहा है। इंगलैण्ड में मुद्रणालय की स्थापना विलियम कैक्स्टन ने की। यह विद्या उसने जर्मनों से सीखी थी। विलियम कैक्स्टन का जन्म विल्ड ऑफ केण्ट में लगभग सन् १४२२ ई० में हुआ था। उसने सन् १४३६ ई० में लन्दन की मरसर कम्पनी में नौकरी शुरू की। कम्पनी की सेवा में लगभग तीस वर्षों तक वह बर्गेस में था। बर्गेस उत्तरी यूरोप का प्रमुख व्यावसायिक केन्द्र था। वहाँ रहते हुए कैक्स्टन अँगरेज सौदागरों के हित में अँगरेजी सरकार के सलाहकार के रूप में कार्य करता था। बाद में इस पद से मुक्त होकर वह लन्दन चला आया। लन्दन में उसे गवर्नर नियुक्त किया गया। तदनन्तर उसे फ्रान्स में इंगलैण्ड का प्रतिनिधि बनाकर भेजा गया। जिन दिनों वह फ्रान्स में था, उसने 'रिक्वेल ऑफ द हिस्टरीज ऑफ ट्राय' नाम से फ्रेन्च ग्रन्थ 'रिक्वेल डेस हिस्टरीज डि ट्राय' का अँगरेजी-अनुवाद तैयार किया। उसने मुद्रण-कला का विशेष रूप से अध्ययन किया। सन् १४७१ ई० में उसने कोलोन से 'डी प्रोप्राइटालिक्स रिटर्न' नामक ग्रन्थ मुद्रित किया। कोलोन से वह बर्गेस गया। वहाँ उसने कोलार्ड मेण्शन की सहायता से मुद्रणालय की स्थापना की। कोलार्ड सुलेखक था। उसके सहयोग से कैक्स्टन ने 'रिक्वेल ऑफ दी हिस्टरीज ऑफ ट्राय' नामक पुस्तक का लगभग सन् १४७६ ई० में प्रकाशन किया। वह ३५१ पृष्ठों की पुस्तक थी और लाल स्याही में मुद्रित की गई थी। कैक्स्टन ने एक विशेष प्रकार का टाइप भी ढाला था। यहीं उसने 'गेम ऐण्ड प्ले ऑफ दी चेस' का अनुवाद भी मुद्रित किया था।

कैक्स्टन सन् १४७६ ई० में बर्गेस से इंगलैण्ड लौटा। यहाँ वेस्टमिन्स्टर अबे के निकट एलमाँनरी नामक स्थान पर उसने अपना निजी मुद्रणालय कायम किया। लन्दन से उसने जिस 'सेयिंजिस ऑफ दी फिलॉसोफर्ज़' नामक पुस्तक का प्रकाशन १८ नवम्बर, १४७७ ई० को और चौसर के 'कैण्टरबरी टेल्स' का प्रकाशन सन् १४७८ ई० में किया।

कैक्स्टन ने लगभग ९० पुस्तकें मुद्रित कीं, जिनमें ७४ अँगरेजी में थीं। इनमें से बीस पुस्तकों का उसने स्वयं अनुवाद किया था। अँगरेजी-गद्य-लेखन की दिशा में कैक्स्टन का महत्त्वपूर्ण योगदान है। वह वस्तुतः मुद्रण-कला का प्रेमी एव साहित्यिक व्यक्ति था। उसका लक्ष्य अच्छी पुस्तकों का सुसम्पादित संस्करण प्रकाशित करना था। उसकी मुद्रण-चेतना निम्नस्तरीय कही जाती है। अँगरेज लेखक उपडिके (Updike) ने लिखा है :

"His services to literature in general, and particularly to English literature, as a translator, and publisher, would have made him a commanding figure if he had never printed a single page. In the history of English

printing he would be a commanding figure if he had never translated or published a single book. He was a great Englishman, and among his many activities, was a printer. But he was not, from a technical point of view, a great printer."[१]

कैक्स्टन का निधन सन् १४९१ ई० में हुआ। उसकी मृत्यु के बाद मुद्रणालय का संचालन उसके सहयोगी फोरमैन विन्किन-डी-वर्डे ने किया, जो उसके यहाँ सन् १५०० ई० से कार्य करता था। अधिक संख्या में पुस्तकों के प्रकाशन की अपेक्षा उसने उच्चस्तरीय मुद्रण पर विशेष ध्यान रखा। सन् १५३५ ई० तक उसने ८०० ग्रन्थ मुद्रित किये। उसके प्रकाशनों में 'गोल्डेन लीजेण्ड' का अँगरेजी-अनुवाद (सन् १४९३ ई०) तथा 'कैण्टरवरी टेल्स' के दो नये संस्करण विशेष प्रसिद्ध हैं। उसके प्रकाशनों में २/५ भाग स्कूली पुस्तकें थीं। विन्किन इंगलैण्ड का प्रथम प्रकाशक है, जिसने स्कूली पुस्तकें छापने का व्यवसाय विशेष रूप से विकसित किया।

कैक्स्टन के पश्चात् सन् १४७८ ई० में इंगलैण्ड के ऑक्सफोर्ड में मुद्रणालय की स्थापना एक जर्मन व्यवसायी ने की। उसने साहित्य-क्षेत्र में अन्यतम प्रकाशन किये। इसी प्रकार कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस की स्थापना भी जर्मन उद्योगकर्त्ता ने की। पन्द्रहवीं सदी के अन्त तक पूरे इंगलैण्ड में मुद्रण-प्रकाशन का व्यावसायिक रूप प्रकाश में आ गया था। ध्यान देने की बात यह है कि उस समय कैक्स्टन को छोड़ अन्य सभी मुद्रक-प्रकाशक विदेशी थे। अँगरेजी मुद्रण-प्रकाशन के अवदान में विलियम कैक्स्टन विलायत के प्रथम मुद्रक तथा साहित्य-सम्पादक के रूप में लब्धकीर्त्ति हुआ।

भारत में मुद्रण-कला का आरम्भ :

मुद्रण-कला का उद्भव प्राच्य देश में और उसका विकास पाश्चात्त्य देशों में हुआ। पश्चिम से उसे भारत पहुँचने में लगभग सौ वर्ष लग गये। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि मुद्रण-कला का जन्म धार्मिक चित्रों तथा ग्रन्थों के मुद्रण और उनके माध्यम से धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए हुआ था। चीन से पूरे यूरोप तक मुद्रण-कला के उद्भव की यह आधारभूत प्रवृत्ति रही है। भारत में भी मुद्रण-कला का आरम्भ जेसुइट ईसाई मिशनरियों द्वारा धर्म-प्रसार के लिए हुआ, यद्यपि जेसुइटों के आगमन के पहले भी भारत में प्रेस की स्थापना का उल्लेख मिलता है। कहा जाता है, गवर्नर जेनरल वारेन हेस्टिंग्स के कार्यकाल में बनारस में किसी स्थान पर खुदाई हुई थी, जिसमें प्रेस मिला था। इस प्रेस का समय एक हजार वर्ष पूर्व बताया जाता है। इसका विवरण डॉक्टर योगेन्द्रनाथ घोष के उस लेख में मिलता है, जो उन्होंने सन् १८७० ई० में नेशनल सोसाइटी के समक्ष पढ़ा था।

"An extraordinary discovery was made of a press in India when Warren Hastings was Governor General. He observed that in the district

---

१. फाइव हण्ड्रेड ईयर्स ऑफ प्रिण्टिंग : एस० एच० स्टीनबर्ग; पृ० १००

of Benares a little below the surface of the earth was to be found a structure of a kind of fibrous woolly substance of various thicknesses in horizontal layers. Major Roebuck, informed of this, went out to the spot where an excavation has been made, displaying the singular phenomenon. In digging somewhat deeper for the purpose of further research, they laid open a vault which on further examination, proved to be of some size; and to their astonishment they found a fair of printing presses set in a vault and moveable types placed as if ready for printing. Every enquiry was set on foot to ascertain the probable period at which such an instrument could have been placed there, for it was evidently not of modern origin, and from all the major could collect it appears probable that the press had remained there in the state in which it was found for at least one thousand years."[१]

पर, खुदाई में प्राप्त इस प्रेस का पर्याप्त प्रामाणिक विवरण सम्प्रति उपलब्ध नहीं है, इसलिए इसके सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

मुद्रण-कला का गोआ में प्रवेश :

भारत में मुद्रण-कला का आगमन यूरोप से हुआ। भारत में प्रेस के प्रवर्त्तन का श्रेय पुर्त्तगाली जेसुइट मिशनरी को प्राप्त है, जिसने ६ सितम्बर, १५५६ ई० को गोआ में मुद्रण-यन्त्र की स्थापना की।[२]

गोआ में पुर्त्तगालियों का आगमन सन् १४८८ ई० में हुआ था। पुर्त्तगाल-नरेश किंग जॉन द्वितीय का निजी प्रतिनिधि पारूदे कोविला अरब व्यापारी के वेष में जहाज से सन् १४८८ ई० में आज के केरल-राज्य के कन्नानोर नगर में पहुँचा।[3] कन्नानोर में जोसेफ और अब्राहम नामक दो यहूदियों ने उनका स्वागत किया। ये दोनों किंग जॉन के दूत थे। पुर्त्तगाली प्रतिनिधि कोविला गोआ, कालिकट और मालाबार के समुद्रतटीय व्यापारिक क्षेत्र से सुविज्ञ था।

गोआ उन दिनों मसाला-उद्योग का प्रमुख केन्द्र था। इसके अलावा ईसाई धर्म की दृष्टि से वह महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। प्रसिद्ध पुर्त्तगाली नाविक वास्कोडिगामा ८ जुलाई, १४९७ ई० को लिस्बन से भारत के लिए, तीन जहाजों के साथ रवाना हुआ। वह अफ्रिका के पूर्वी तटवर्त्ती मलिन्दा स्थान पर पहुँचा। वहाँ उसने गुजराती नाविक अहमद इबन मजीद से साँठगाँठ की। उसके सहयोग से समुद्र-सन्तरण करता हुआ वह २० मई, १४९८ ई० को मालाबार-तटवर्त्ती कालिकट पहुँचा, जहाँ गोआ के तत्कालीन राजा जमोरिन ने नवागन्तुकों का स्वागत किया।

वास्कोडिगामा के सहयोग से गोआ में सन् १५०५ ई० तक पुर्त्तगाली-साम्राज्य की स्थापना हो गई। साम्राज्य-स्थापना के लिए अनेक सामरिक प्रयत्न किये गये। परिणामतः सन् १५४० ई० तक गोआ में पुर्त्तगाली प्रभुसत्ता प्रतिष्ठित हो गई। इससे गोआ में ईसाई-धर्म के प्रचार

---

१. हिन्दी-भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास, पृ० ८-९

२. प्रिण्टिंग प्रेस इन इण्डिया, पृ० २

३. पोर्चुगीज रूल इन इण्डिया, पृ० २३

के लिए सुअवसर प्राप्त हुआ । पुर्तगाली पादरी सेण्ट फ्रांसिस सेण्ट जेवियर ६ मई, १५४२ ई० को गोआ पहुँचा ।[१] जेसुइट मिशन के लिए यह सुनहला अवसर मिला । फलतः, जेसुइट मिशन एशिया में ईसाई धर्म के प्रचार का प्रधान केन्द्र बन गया । इसके द्वारा नये-नये यूरोपीय युवकों को प्रशिक्षित कर धर्म-प्रचार के लिए प्रेरित किया जाता था । इस कार्य में राजकीय संरक्षण के लिए सेण्ट फ्रांसिस ने २० जनवरी, १५४८ ई० को पुर्तगाल के राजा तथा मिशन के उच्च अधिकारी को निम्नलिखित आशय का पत्र लिखा :

If in the spreading of the Christian religion the authority of His Majesty and of the Viceroy is not made felt nothing can be done.[२]

सेण्ट फ्रांसिस ने सन् १५४९ ई० में अपने एक पत्र में ईसाई-साहित्य को जापानी भाषा में मुद्रित करने का विचार व्यक्त किया था ।[३] पर, उस समय तक मुद्रण-यन्त्र की विशेष आवश्यकता नहीं समझी गई थी । संयोग की बात थी कि जिस मुद्रण-यन्त्र को समुद्री मार्ग से अबिसीनिया (वर्त्तमान इथिओपिया) भेजा जा रहा था, उसे गोआ में ही रह जाना पड़ा ।

गोआ की जेसुइट मिशन की 'कासा द सान्ता फे' नामक संस्था के पादरी फादर जोन्स द बेरा ने अपने रोम-स्थित अधिकारी को २० नवम्बर, १५४५ ई० को ईसाई धर्म की पुस्तकों के मुद्रण-प्रकाशन के सम्बन्ध में निम्नलिखित आशय का पत्र लिखा :

In this college, known as the House of Holy Faith, live sixty young men of various nationalities and they are of nine different languages, very much distinct one from another; most of them read and write our language, and also know to read and write their own. Some understand Latin reasonably well and study poetry. Due to the absence of books and a teacher they cannot derive as much profit as they need. The Christian doctrine could be published here in all these languages, if Your Reverence feels that it may be printed.[४]

पर, ऐसा प्रतीत होता है कि उनके अधिकारियों ने ईसाई-साहित्य के मुद्रण-प्रकाशन का महत्त्व नहीं समझा ।

अबिसीनिया के सम्राट् प्रेस्टर जॉन ने सन् १५१४ ई० के आसपास यूरोप से मुद्रण-कला के कुशल जानकारों की माँग की थी, लेकिन वे सुलभ नहीं हो सके । उसने पुर्त्तगाल के राजा डिमैनोल से ऐसे व्यक्तियों को भेजने का आग्रह किया, जो प्रबुद्ध धर्मशास्त्री, मुद्रण-कला का मर्मज्ञ और कला-पारखी हो । प्रेस्टर जॉन का पत्र पहुँचने के पूर्व डिमैनोल की मृत्यु हो चुकी थी । शिल्पी अबिसीनिया भेजे गये या नहीं, इसकी जानकारी उपलब्ध नहीं है । आग्रह करने पर पुनः डिमैनोल के उत्तराधिकारी ने सन् १५५६ ई० में प्रेस-शिल्पियों का दल अबिसीनिया भेजा । जेसुइट मिशनरियों की एक टुकड़ी २९ मार्च, १५५६ ई० को अबिसीनिया

१. जर्नल ऑफ द बम्बई एशियाटिक सोसाइटी, खण्ड ९, संख्या ४; सन् १९१३ ई०

२. प्रिण्टिग प्रेस इन इण्डिया, पृ० २

३. जर्नल ऑफ द एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बेंगाल, खण्ड ९, संख्या ४; सन् १९१३ ई०

४. प्रिण्टिग प्रेस इन इण्डिया, पृ० ३

(वर्त्तमान इथिओपिया) से पुर्त्तगाल के बेले बन्दरगाह के लिए रवाना हुई। उस दल में जुआन द बुस्टामाण्टी नामक व्यक्ति था, जो मुद्रण-कला का शिल्पी था। फादर सी० जी० रॉडल्स ने इस सम्बन्ध में लिखा है :

The first batch of Jesuit missionaries embarked at Belem, on the Tagus, and left for Ethiopia on March 29, 1556, four months before the death of St. Ignatius of Loyola. It consisted of Fr. John Nunes, Patriarch of Ethiopia; Fr. Andrew de Oviedo, Bishop of Hierapolis and appointed as successor to the Patriarch; Fr. John Gualdames; Three brothers of the Society, and some young men who were soliciting admission into it. One of the brothers was Juan de Bustamante, just mentioned, who knew the art of printing.

King D. Joao III, the royal family, and other friends had been munificent towards the members of the expedition. The king adjoined to the Patriarch an Indian of good character, an able and experienced printer, to help Brother Bustamante, who was taking with him a printing press to Goa. An eye-witness gives us this information."[1]

शिल्पियों का वह दल ६ सितम्बर, १५५६ ई० को गोआ पहुँचा। दरअसल, शिल्पियों का वह दल गोआ के लिए नहीं, अबिसीनिया के लिए रवाना हुआ था।[2] अबिसीनिया के लिए भारत की कन्याकुमारी से होकर जाना पड़ता था, इसलिए बीच में गोआ रुकना पड़ा। पैट्रियार्क, जो अपने साथ पुर्त्तगाल से प्रेस लेकर आया था, जनवरी, १५५७ ई० में अबिसीनिया जाने की तैयारी करने लगा। इस बीच गोआ के गवर्नर ने उससे कुछ दिन और गोआ में रहने का अनुरोध किया। इस प्रकार अबिसीनिया को भेजा गया प्रेस, भारतीय प्रदेश में, गोआ में ६ सितम्बर, १५५६ ई० को पहुँचा। ज्ञातव्य है कि उपर्युक्त प्रेस पुर्त्तगाल से इथिओपियाई मिशनरी के अनुरोध पर भेजा गया था। जेसुइट मिशनरी और इथिओपियाई मिशनरी में मतभेद था। इस कारण प्रेस गोआ से अबिसीनिया नहीं भेजा जा सका। इथिओपियाई मिशनरी ने सोलहवीं सदी के अन्त में रोम के मिशन से निवेदन किया :

As we find ourselves obliged to compose many treatises, and distribute a great number of copies of the same, and this cannot be done easily unless we print them, we beg of Your Most Illustrious Lordship to send us a press with the Ethiopic types that are found in Rome, as also one or two persons knowing the art of printing.[3]

इस प्रकार का आग्रह सन् १६२८ ई० में भी किया गया था। जुआन द बुस्टामाण्टी वास्तव में अबिसीनिया का निवासी था। पुर्त्तगाली इतिहासकार विकी ने लिखा है :

He here prepared moulds and matrices and other art types, and other things in round lettering and in characters current in the kingdom of *Preste*,

---

१. द जर्नल ऑफ द एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बेंगाल; खण्ड ९, सं० ४, पृ० १५४-५५; १९१३ ई०

२. वही

३. प्रिण्टिंग प्रेस इन इण्डिया, पृ० ५

(Abyssinia), in which their books are written, in which I should be very glad to compose Christian doctrines, manuals for confession, and other necessary books; because such a vast land could not be taught the doctrine without many printed books in their language, which I shall have printed there in the matter which I have now ready.[१]

पुर्त्तगाली मुद्रण-यन्त्र के गोआ पहुँचने की जो तारीख दी गई है, उसके सम्बन्ध में अनेक मत हैं।[२] कोई अगस्त के आरम्भ में कहता है, तो दूसरे लोग रविवार, ३ सितम्बर, १५५६ ई० को मानते हैं। पर, उस जहाज के सहयात्री फादर फ्रान्सिस को रॉड्रिग्स ने २ नवम्बर, १५५६ ई० को सेण्टपाल कॉलेज, गोआ से लिखे अपने पत्र में गोआ पहुँचने की तारीख ६ सितम्बर, १५५६ ई० लिखी है :

"...We departed two days before the end of March from the city of Lisbon and reached this city of Goa on the 6th of September, i.e. within five months and 8 days.[3]

इस प्रकार पुर्त्तगाल से चलकर पाँच माह, आठ दिनों में, ६ सितम्बर, १५५६ ई० को आधुनिक संस्कृति की अभिव्यक्ति का प्राविधिक माध्यम भारत पहुँचा और जेसुइट मिशन ने पहली बार भारतीय क्षेत्र गोआ में मुद्रणालय की स्थापना की। प्रेस गोआ के जेसुइट मिशन के सेण्टपाल कॉलेज में स्थापित किया गया। फादर जाओनन्स बैरेटो ने, जो अबिसीनिया में पैट्रियार्क था, अपने ६ नवम्बर, १५५६ ई० के पत्र में इस प्रेस के बारे में लिखा है :

"There were public discussions of these which appeared as though they were held at Coimbra and were attended by a large concourse of people and Priests.

John printed these theses (*conclusoes*) and other things, which are doing good and will produce yet more fruit later on. The Indian is well-behaved and is fond of going for confessions often; at sea he helped us a lot in the kitchen and has proved here to be competent in press-work, and Father Francis Rodrigues is happy over it and desires to have another (press) in this College. Now they want to print Master Francis' Christian Doctrine, and I have hopes that this work will do much good in Ethiopia."[४]

सेण्ट फ्रान्सिस-कृत 'क्रिश्चियन डॉक्ट्राइन' नामक पुस्तक गोआ के सेण्टपाल कॉलेज के छापाखाने से सन् १५५७ ई० में मुद्रित की गई। इसी प्रेस से 'काक्लूसोस फिलासोफिकॉस' नामक ग्रन्थ भी छापा गया।[५] पर, अब दोनों ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं। पादरी लुईस फ्रोइस ने अपने ३० नवम्बर, १८५६ ई० के पत्र में लिखा था :

१. प्रिण्टिग प्रेस इन इण्डिया, पृ० ६

२. वही

३. वही

४. वही, पृ० ७

५. प्रेमी-अभिनन्दन-ग्रन्थ, पृ० १६७

"The Patriarch and Father Francis Rodrigues and Fr. Antonio de Quadros ordered during this Lent some *confecionarios* to be printed, and a respectable gentleman, devoted to the society, offered to give the paper free for the love of God, and requested that the printing be carried out by the college at home; and for the love of God placed them into the hands of those desiring to have them, and forwarded to all the Fortresses to be distributed among the Priests of the Society residing therein together with copies of the *Doctrina* which the Father Master Francis, who is with God, ordered to be printed here. ?"[१]

सेण्टपाल कॉलेज के प्रेस का कारीगर ज्वाओ द बुस्टामाण्टी प्रेस के साथ पुर्त्तगाल से आया था। उसने ही उपर्युक्त ग्रन्थों का मुद्रण किया था। कहना चाहिए कि वह भारतीय मुद्रण का अग्रदूत था।

बुस्टामाण्टी का जन्म सन् १५३६ ई० के आसपास स्पेन के वेलेंसिया नामक स्थान पर हुआ था। उसने सन् १५५६ ई० में जेसुइट सोसाइटी की सदस्यता ग्रहण कर ली थी। गोआ में उसने प्रेस का संचालन किया तथा अपना नाम ज्वाओ रॉड्रीग्ज् रखा।[२] गोआ में ही २३ अगस्त, १५८८ ई० को उसका निधन हो गया।

बुस्टामाण्टी के साथ ही एक भारतीय, जो मुद्रण-कला का शिल्पी था, उसकी सहायता के लिए आया था। खेद की बात है कि पुर्त्तगाली अधिकारियों ने उस भारतीय का उल्लेख कहीं नहीं किया है। कदाचित् उन्हें भय था कि इससे बुस्टामाण्टी को भारतीय मुद्रण-कला के प्रवर्त्तन का श्रेय प्राप्त नहीं होगा। गोआ के प्रेस से निम्नलिखित चार पुस्तकें मुद्रित हुईं : 'कॉनक्लूसोज ए आतरस क्वेसाज', सन् १५५६ ई०; डॉक्ट्राइना क्रिस्टा, सन् १५५७ ई०; कन्फेसियोनैरियोज, सन् १५५७ ई० और 'ट्राटाडो' ...., सन् १५६० ई०। इन पुस्तकों का मुद्रक ज्वाओ बुस्टामाण्टी था। सम्प्रति, इनमें से एक भी पुस्तक प्राप्य नहीं है।

गास्पारद लिओ-कृत 'कम्पेण्डियो स्पिरिचुअल डा विडा क्रिस्टा' नामक पुस्तक का प्रकाशन गोआ से हुआ था। उसकी प्रति न्यूयार्क के सार्वजनिक पुस्तकालय में उपलब्ध है। उसका मुद्रण सन् १५६१ ई० में हुआ था। दूसरी उपलब्ध पुस्तक 'कम्पेण्डियम इण्डिकम' का प्रकाशन गोआ के सेण्टपाल कॉलेज से सन् १५८१ ई० में हुआ था। उसकी प्रति पेकिंग के पीतांग पुस्तकालय में उपलब्ध है।

गार्सिया दा ओर्टा-कृत 'कोलोक्विओज सिम्पल्स' का मुद्रण सेण्टपाल कॉलेज से सन् १५६३ ई० में हुआ था। इसकी प्रति लन्दन के ब्रिटिश म्यूजियम में सुलभ है।

जापानी पादरी डी मार्टिनो एफारा-कृत 'ओराटिओ हैबिटा एफारा द मार्टिनो' का मुद्रण-प्रकाशन सन् १५८८ ई० में हुआ था। उसकी प्रति रोम के जेसुइट संग्रहालय में सुरक्षित है। इसके अलावा चार अन्य पुस्तकें मुद्रित हुई थीं। इस प्रकार, सोलहवीं शताब्दी में गोआ के सेण्टपाल कॉलेज से कुल तेरह ग्रन्थ मुद्रित और प्रकाशित हुए। यद्यपि हिन्दी-साहित्य को

---

१. प्रिण्टिग प्रेस इन इण्डिया, पृ० ८

२. वही

दृष्टि से उनका विशेष महत्त्व नहीं है; क्योंकि वे पुर्त्तगाली भाषा में थे, तथापि भारतीय मुद्रणालय के इतिहास के अध्ययन की दृष्टि से उनका अपना महत्त्व अवश्य है।

रायतूर का मुद्रणालय (सन् १६१६—१६६८ ई०) :

सेण्ट इग्नेशस नाम से रायतूर में एक दूसरा काँलेज स्थापित किया गया था। वहाँ भी एक मुद्रणालय था, जिसमें अनेक भाषाओं का मुद्रण-कार्य होता था। वहाँ से मराठी, कोंकणी आदि भाषाओं में पुस्तकें छापी गई थीं। फादर टॉमस स्टीफेन्स पहला अँगरेज पादरी था, जो रोम में शिक्षा ग्रहण करने के बाद जेसुइट मिशन का सदस्य होकर मालाबार-तट के सालसेट नामक स्थान पर धर्म-प्रचार के लिए आया। वहाँ वह ईसाई कॉलेज का रेक्टर नियुक्त किया गया। पुर्त्तगाली लेखकों ने उसे टॉमस वुस्टेन, बुस्टन डी बुवस्टेन और इस्टेन नाम से सम्बोधित किया है। कोंकणी और मराठी भाषाओं में उसकी गति थी। उसने रायतूर के सेण्ट इग्नेशस कॉलेज से पुर्त्तगाली, कन्नड, मालाबारी और सिरियक भाषाओं में पुस्तकें मुद्रित और प्रकाशित कराईं।[1]

टॉमस स्टीफेन्स ने मराठी में 'क्राइस्ट पुराण' लिखा। उसका मुद्रण सन् १६१६ ई० में सेण्ट इग्नेशस कॉलेज के छापाखाने में हुआ। यद्यपि उसकी भाषा मराठी थी, तथापि उसकी लिपि रोमन थी।[2] उस पुस्तक का दूसरा संस्करण सेण्ट इग्नेशस छापाखाना, रायतूर से सन् १६४९ ई० में तथा तीसरा संस्करण सेण्टपाल कॉलेज, गोआ के छापाखाने से सन् १६५४ ई० में प्रकाशित हुआ।[3] उस ग्रन्थ में ग्यारह हजार मराठी के ओवी छन्द हैं।[4] उसका दूसरा संस्करण सन् १६३२ ई० में प्रकाशित हुआ था। वह बच्चों की शिक्षा के लिए लिखा गया था। इसी प्रेस से स्टीफेन्स-लिखित 'ख्रिस्ती धर्म-सिद्धान्त' सन् १६२२ ई० में मुद्रित हुआ। उसकी प्रति लिस्बन के संग्रहालय में मौजूद है। मराठी-बोली का स्टीफेन्स-कृत व्याकरण सन् १६४० ई० में मुद्रित हुआ। उस पुस्तक का नाम 'आर्ति द लिंग्व कनारी' है। उसी प्रेस से सन् १६५५ ई० में फादर अण्टोनियो द सालदांज्य-कृत सेण्ट अण्टोनी का पुराण छापा गया था। कोंकणी, मराठी-भाषा तथा रोमन लिपि में फादर मिगेल द आलमेद-कृत 'किसान-बाग' का मुद्रण सन् १६५८ ई० में हुआ। वह पुस्तक गोआ के राजकीय संग्रहालय में है। जुआन द पेट्रोज के 'दैविक आत्मगत भाषण' का भी मुद्रण रायतूर के छापाखाने में सन् १६६० ई० में हुआ था, जिसकी प्रति गोआ के राजकीय संग्रहालय में है।[5]

इस प्रकार, हम देखते हैं कि रायतूर के सेण्ट इग्नेशस कॉलेज का छापाखाना सोलहवीं शताब्दी में मुद्रण की दिशा में प्रमुख रूप से क्रियाशील रहा है।

पुनिकेल का मुद्रणालय, सन् १५७८ ई० :

भारत के पश्चिमी समुद्र-तट के पुनिकेल नामक स्थान पर जेसुइट मिशनरी ने सन् १५७८

---

१. जर्नल ऑफ द एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बेंगाल, खण्ड ९, सं० ४; १९१३ ई०

२. प्रेमी-अभिनन्दन-ग्रन्थ, पृ० १६८-६९

३. जर्नल ऑफ द एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बेंगाल, खण्ड ९, सं० ४; १९२१ ई०

४. प्रेमी-अभिनन्दन-ग्रन्थ, पृ० १६९-७०

५. वही

ई० के आसपास प्रेस की स्थापना की थी। वहाँ से तमिल में ईसाई-धर्मग्रन्थ प्रकाशित हुए थे। फादर ज्वाओ द फारिआ ने तमिल में पुस्तक की रचना की। उसने पुस्तक-लेखन का ही कार्य नहीं किया, बल्कि सन् १५७८ ई० में लकड़ी के टाइपों को उत्कीर्ण किया। उसकी ईसाई-सिद्धान्त-विषयक पुस्तक 'फ्लोज सैंक्टोरम' सन् १५७८ ई० में पुनिकेल के प्रेस से मुद्रित हुई। उसी प्रेस से ईसाई-धर्म की प्रार्थना-सम्बन्धी पुस्तकों का भी मुद्रण हुआ। उसने ईसाइयों को तमिल सीखने के लिए पुस्तक मुद्रित की थी। पुनिकेल के प्रेस से मुद्रित पुस्तकों की ईसाई-समाज में अधिक माँग थी। फादर फारिआ का निधन सन् १५८२ ई० में, गोआ में हुआ।[1]

कोचीन, सन् १५७९ ई० :

कोचीन में ईसाई-धर्म के सिद्धान्त-ग्रन्थ का मालाबारी में सर्वप्रथम मुद्रण १४ नवम्बर, १५७९ ई० को हुआ था। मूल पुस्तक की रचना पुर्त्तगाली में फादर मारकोज जॉर्ज ने की थी, जिसका मालाबारी में अनुवाद फादर हेनरिक हेनरीक्ज़ ने किया था। कोचीन के ईसाई-कॉलेज प्रेस से मुद्रित इस पुस्तक का तमिल में भी मुद्रण फादर मैनोल ने किया था, पर किस स्थान से वह पुस्तक मुद्रित की गई, इसका उल्लेख नहीं मिलता।[2]

अनंगामेल और श्रृंगानोर, सन् १६०१—१६२४ ई० :

मालाबार-मिशन के संरक्षक फादर फ्रांसिस रोज ने अनंगामेल में सामान्य जनता के बीच अपने धार्मिक कार्यों से अत्यधिक लोकप्रियता अर्जित कर रखी थी। वे २५ जनवरी, १६०१ ई० में, अनंगामेल-चर्च के प्रधान पादरी नियुक्त हुए। उन्होंने यूरोप से चाइल्डियन टाइप मँगवाकर लैटिन से धर्मग्रन्थों तथा प्रार्थना-पुस्तकों का सिरियक भाषा में अनुवाद मुद्रित कर जनता तथा धर्म-प्रचारकों को सुविधा प्रदान की। अनंगामेल में राजाओं के परस्पर संघर्ष के कारण सन् १६०९ ई० में वहाँ से प्रेस हटाकर श्रृंगानोर भेज दिया गया। फादर रोज वहाँ भी इसी प्रकार मुद्रण और प्रकाशनों के द्वारा जनता की सेवा करते हुए १६ फरवरी, १६२४ ई० को पंचत्व प्राप्त हुआ।[3]

वैपिकोटा : मालाबारी, कन्नड और सिरियक-मुद्रण :

सेण्ट टॉमस मालाबार पर्वत पर निवास कर धर्मोपदेश दिया करते थे। वे सिरियक भाषा में उपदेश देते थे। उनके मिशन के निरीक्षक फादर अलेक्जेण्डर वैलिगनानो ने सेण्ट टॉमस के प्रधान पादरी को उनकी संस्था के पुजारी के लिए बहुमूल्य उपहार दिये तथा उन्हें लेखन की सुविधा प्रदान की। उस धन से श्रृंगानोर से कुछ दूर वैपिकोटा नामक स्थान पर चर्च की स्थापना हुई। फादर बर्नाडिनो फर्रो तथा एक स्थानीय पादरी पेड्रोलुइस के सम्मिलित प्रयास से सन् १५७७ ई० में मालाबारी भाषा में एक छोटी पुस्तक 'क्रिश्चियन डॉक्ट्राइन' की रचना आरम्भ हुई। इस पुस्तक के तैयार हो जाने पर इसके मुद्रण की समस्या उपस्थित हुई। समस्या के समाधान के लिए स्पेन-निवासी कोआडजुटर ब्रदर जुआन गोनजालेज को

१. जर्नल ऑफ द एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बेंगाल, खण्ड ९, संख्या ४; १९१३ ई०

२. वही

३. वही

गोआ से वैंपिकोटा आमन्त्रित किया गया। ये दोनों शिल्पी लौहधातु-कला के मर्मज्ञ थे।[१]

स्पेनी बन्धु-द्वय ने टाइप के साँचे तैयार कर मालाबारी टाइप ढाले। कुछ ही समय में उन्होंने अत्यधिक संख्या में धर्मग्रन्थों के मुद्रण-प्रकाशन किये। वहाँ से मुद्रित पुस्तकें लोकप्रिय हुईं। तदनन्तर, वहाँ कॉलेज खोला गया। वहाँ की भाषा मालाबारी थी, पर चर्च की भाषा सिरियक। जुआन गोनजालेज ने मालाबारी लिपि के टाइप ढाले। उसने कन्नड के टाइप भी ढालने का प्रयास किया, पर लिपि की विचित्रता और अनिश्चित उच्चारण के कारण उसे अपना इरादा बदलना पड़ा।[२]

अम्बालाकाटा, सन् १६७९ ई० :

जेसुइट मिशन के पादरियों ने तमिल और तेलुगु में भी सामान्य जनता के लिए और अपने पादरियों के लिए ग्रन्थ लिखे तथा उनका मुद्रण कराया। उस मिशन के मदुरा-स्थित अम्बालाकाटा में तमिल-शब्दों का संकलन कर पुर्त्तगाली भाषा में तमिल-शब्दों के अर्थ लिखे गये। शब्दकोश का प्रकाशन सन् १६७९ ई० में हुआ। उस शब्दकोश का प्रणयन पादरी प्रोनेका ने अपने सहयोगी एक्नॉट सब्रुनो रॉबर्ट द नोबिली और मेनोल मार्टिनस की सहायता से किया था। उस पुस्तक के अन्त में तमिल-व्याकरण भी सन्निविष्ट कर दिया गया था।

अम्बालाकाटा से प्रकाशित पुस्तकों के मुद्रक इग्नाट्स आचमोनी थे, जो अम्बालाकाटा के निवासी थे। उन्होंने स्वयं तमिल में लकड़ी के टाइप तैयार किये थे, जो देखने में सुन्दर थे, पर नरम लकड़ी से तैयार उस टाइप का निश्चित अवधि के बाद स्वतः टूट जाना स्वाभाविक था।

रॉबर्ट नोबिली ने तमिल, तेलुगु और मालाबारी भाषा में दक्षता प्राप्त कर ली थी। उसने अनेक धार्मिक ग्रन्थों की रचना कर उसका मुद्रण अम्बालाकाटा के मुद्रणालय में कराया।

बम्बई के मुद्रणालय :

गोआ के पश्चात् प्रिंण्टिग प्रेसों के विकास की दिशा में बम्बई का दूसरा स्थान है। सत्रहवीं सदी के सातवें दशक में प्रेस की ओर छत्रपति महाराज शिवाजी का ध्यान गया। उन्होंने प्रेस की स्थापना कराई, पर उस प्रेस से मुद्रण का कोई कार्य नहीं हुआ। सन् १६७४ ई० में बम्बई के भीमजी पारीख ने उस प्रेस को खरीद लिया। इस सम्बन्ध में कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी ने लिखा है :

"Shivaji Maharaj set up a printing press, but as he could not get it worked he sold it in 1674 to Bhimjee Parekh, an enterprising Kapol Bania of Gujerat, who not only set it up but called out an expert printer from England".[३]

---

१. जर्नल ऑफ द एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, खण्ड ९, संख्या ४; १९१३ ई०

२. प्रेमी-अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० १६७

३. प्रिण्टिग प्रेस इन इण्डिया, पृ० २९

पर, इस सूचना का आधार क्या है, पता नहीं चलता। वास्तव में, भीमजी पारीख ने प्रिण्टिग प्रेस शिवाजी महाराज से खरीदा नहीं था, बल्कि विदेश से आयात कराया था। सन् १६७० ई० के अँगरेजी-अभिलेखों से इस बात की पुष्टि होती है। सूरत से कम्पनी के प्रतिनिधि ने कम्पनी को ६ जनवरी, १६७० ई० को लिखा था :

"*Bimgee Parrack* makes his humble request to you that you would please to *send out an able Printer to Bombay,* for that he hath a curiosity and earnest Inclynation to have some of the Ancient Braminy writings in Print and for the said Printer's encouragement he is willing to allow him £. 50 sterling a year for three years, and also to be at (bear ?) the charges of tooles and Instruments necessary for him, and in case that will not be sufficient he humbly referrs it to your Prudence to agree with the sayd Printer according as you shall See good, and promises to allow what you shall enorder, 'its not improbable that this curiosity of his may tend to a common good, and by the industry of some searching spirits produce discovery out of those or other ancient manuscripts of these partes which may be usefull or at least grateful to posterity, wee recommend his request to you and intreat your pardon for his and our boldness therein."[१]

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपने ३ अप्रैल, १६७४ ई० के उत्तर में प्रेस-शिल्पी हेनरी हिल्स को भेजने की सूचना दी थी :

"Wee have also entertained Mr. Henry Hills a printer for our Island of Bombay at the salary of £. 50 per annum and ordered a printing press with letters and other necessaries as also a convenient quantity of paper to be sent along with him, as you will perceive per the Invoice all which is to be charged upon Bhimgee from whome you are to receive it."[२]

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने लन्दन से बम्बई के लिए भीमजी पारीख के अनुरोध पर प्रेस-शिल्पी भेजा था। कम्पनी के अधिकारियों को भीमजी पारीख के कार्यों से इसलिए सन्तोष था कि मुद्रण की सुविधा से ईसाई-धर्म के प्रचार-प्रसार में सहूलियत मिलेगी। इस विचार से कम्पनी के अधिकारियों ने भीमजी को हार्दिक सहयोग प्रदान किया। लन्दन से सूरत के लिए लिखे गये ८ मार्च, १६७५ ई० के पत्र से यह बात स्पष्ट हो जाती है :

"We should gladly heare that *Bimgees* design about the *printing* do take effect, that it may be a means *to propogate our religion* whereby soules may be gayned as well as Estates."[३]

हेनरी हिल्स भीमजी के प्रेस में काम करने लगा। किन्तु, उस टाइप-शिल्पी को 'बनिया' टाइप ढालने में सफलता नहीं मिली। अतः, भीमजी ने कम्पनी के उच्चाधिकारी से पुनः

१. प्रिण्टिंग प्रेस इन इण्डिया, पृ० ३०

२. वही, पृ० ३०

३. वही, पृ० ३१

आग्रह किया कि टाइप ढालनेवाले को भेजा जाय। सूरत से २३ जनवरी, १६७६ ई० को ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लन्दन-कार्यालय को पत्र लिखा गया, जो इस प्रकार था :

"The *Printing designe* doth not yett meet with the successe as expected by Bimgee Parrack, who hath taken great paines and been at noe meane charges in contriving ways to cast the *Banian Characters* after our English manner; but this printer being wholly ignorant therein, and not knowing anything more than his owne trade, is noe wayes usefull to this designe; wherefore Bimgee hath desired he may bee imployed in the Companys service, and soe indeed he hath bin ever since he came, and he will be very usefull to your Island Bombay, whither wee intend to send him to stay there till your further order. Wee have seen some papers printed in the Banian Character by the persons employed by Bimgee which look very well and legible and shews the work is feasible; but the charge and teadiousness of these people for want of better experience doth much discourage, if your Honours would please to send out a founder of (? or) Caster of letters at Bimgees charge he would esteem it a great favour and honour, having already made good what wee can reasonably demand of him for the printers charge hitherto."[१]

१५ मार्च, १६७७ के पत्र में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने टाइप ढालनेवाली मशीन भेजने की सूचना दी : "Wee wish the Printing business may take effect, if we can procure a Founder of letters he shall be sent by these ships."[२]

टाइप-फाउण्डरी मशीन (टाइप ढालनेवाली मशीन) सन् १६७७-७८ ई० में बम्बई आ गई। इसकी पुष्टि के लिए 'बम्बई गजेटियर' में प्रमाण उपलब्ध है। तदनुसार, सन् १६७८ ई० में टाइप फाउण्डरी बम्बई में स्थापित हो गई थी।

"Bhimji was disappointed to find that Hill, albeit an expert printer, was not a founder and was quite unable "to cut the Banian letters., and he therefore wrote once again to the Court of Directors *who replied by sending out a type-founder in* 1678."[३]

पर, उक्त टाइप-फाउण्डरी वास्तव में बम्बई नहीं भेजी गई। इस सम्बन्ध में छानबीन करने के बाद प्रिओलकर ने पूर्व मत का प्रतिवाद किया है।[४] मेरे मत से प्रिओलकर का कथन सही है। इस प्रकार, यह स्पष्ट हो जाता है कि सन् १६७४-७५ ई० में भीमजी पारीख ने प्रिंटिग प्रेस की स्थापना देवनागरी-लिपि में साहित्य-प्रकाशन के लिए की थी। फिर भी, उन्होंने टाइप के मामले में, अर्थात् टाइप की कमी दूर करने के लिए कोई उल्लेखनीय कार्य किया, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

---

१. प्रिण्टिग प्रेस इन इण्डिया, पृ० ३१
२. वही, पृ० ३२
३. वही
४. वही, पृ० ३३

ट्रावणकोर के मुद्रणालय :

पहले कहा जा चुका है कि भारत में प्रिण्टिग प्रेस की स्थापना सर्वप्रथम जेसुइट मिशन ने गोआ में की थी। उसके पश्चात् मिशन ने रायतूर, पुनिकेल, अनंगामेल, वैंपिकोटा और अम्बालाकोटा में प्रेस स्थापित किये। तदनन्तर, एक भारतीय नागरिक ने बम्बई में प्रेस की स्थापना की। उसके बाद मद्रास के ट्रावणकोर में डेनिश मिशन ने कार्य किया। भारत के दक्षिणी भाग में डेनिश मिशन ने प्रेस की स्थापना कर भारत को पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति का सन्देश दिया था।

डेनमार्क के राजा फ्रेडरिक चतुर्थ के कुलगुरु डाक्टर लुकेन्स (Dr. Lutkens) ने प्रोटेस्टैण्ट ईसाई-मत का भारत में प्रचार-प्रसार के लिए योजना बनाई। उसने इस योजना को कार्यरूप में परिणत करने के लिए तंजोर के राजा से ट्रावणकोर में भूमि खरीदी तथा बार्थोल्म्यु जेगेन्बाल्ग (Bartholemew Ziegenbalg) और हेनरी प्लेश्च्यू (Henery Plutschau) को डेनिश मिशन का प्रधान बनाकर भेजा। इस मिशन ने दक्षिणी भारत में ईसाई-मत के प्रचार-प्रसार के लिए प्रेसों की स्थापना की।

जेगेन्बाल्ग का जन्म २४ जून, १६८३ ई० को हाले में हुआ था। डेनमार्क में उसने शिक्षा प्राप्त की थी। वह सन् १७०६ ई० के आसपास मद्रास के ट्रावणकोर में डेनिश मिशन का प्रधान पुजारी नियुक्त किया गया। उसने तमिल, तेलुगु और मालाबारी भाषाएँ स्थानीय पण्डितों की सहायता से सीखीं। उसने मुद्रित पुस्तकों के अभाव और उससे उत्पन्न कठिनाइयों पर विचार किया। उसने १६ अक्टूबर, १७०६ ई० के अपने पत्र में लिखा था :

"Their *language* is both hard and variable; whatever of the *Fundamental Points of Christianity* is necessary for 'em to know, must first be put into the *Portuguese* language, and out of that into *Malabarick*. And whereas the Art of Printing is not known in these Parts, *Transcribing* must supply the Place of the Press. Upon the whole, you see, that as our Charity-School cannot well go forward without taking in some Men to assist us; so the whole Design cannot advance, without employing more Hands, first to translate and then with some Iron Tools to print upon Leaves of *Palm-Trees*, such things as are thought useful for Edification."[1]

डेनिश मिशन के आरम्भिक काल में उस क्षेत्र में लोग कागज से परिचित नहीं थे। कागज के स्थान पर भोजपत्र का प्रयोग होता था। इस स्थिति की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए जेगेन्बाल्ग ने १४ जून, १७०९ ई० के पत्र में लिखा :

"As for the *outside* of these Books, they are of a quite different Dress from those in Europe. There is neither Paper nor Leather, neither

१. प्रिण्टिग प्रेस इन इण्डिया, पृ० ३८-३९

Ink nor Pen used by the Natives at all, but the Characters are by *Iron Tools* impressed on a Sort of Leaves of a Certain Tree, which is much like a Palm-Tree. At the End of every Leaf a Hole is made, and through the Hole a String drawn, whereby the whole Sett of Leaves is kept together; but then they must be untied or loosened, whenever the Prints of these Characters shall appear and be read."[१]

ट्रावणकोर में इस प्रकार की स्थिति देखकर उसने प्रेस खोलने की इच्छा प्रकट की। उसने २२ अगस्त, १७०८ ई० के अपने पत्र में मालाबारी-पुर्त्तगाली प्रिंटिंग प्रेस के लिए डेनमार्क के प्रधान कार्यालय को लिखा था :

"We heartily wish to be supplied with a *Malabarick* and *Portuguese* Printing Press to save the expensive Charges of getting such Books transcribed as are necessary for carrying on this Work. I have hitherto employed Six *Malabarick* Writers in my House; which, however,considering our present Circumstances will prove too chargeable in Time."[२]

जेगेन्बाल्ग को दृढ़ विश्वास था कि प्रेस के अभाव में धर्म-प्रचार का कार्य निर्बाध रूप में नहीं चल सकता।[३] उसके सहयोगी एफ० इ० ग्रुण्डलर ने भी अपने पत्र में अधिकारियों से प्रेस की स्थापना पर बल देते हुए २० अप्रैल, १७०९ ई० के पत्र में आग्रह किया था :

"If a *Founder* and *Printer* could be sent over in time, and readily provided with a Sett of *Latin* Types, it would effectually, and without any Delay, further our present Design; For the *Portuguese* Language being of so ample a Use, true and practical Christianity might be scattered by this Means throughout most of these Eastern Countries."[४]

उन्होंने इसी माँग को अपने १४ जून, १७०९ ई० के पत्र में दुहराया :

"...Our present Efforts are chiefly bent upon *Translating the New Testament* into *Malabarick*; in Hopes, that such Work may prove the Foundation of a plentiful Blessing, if once it should happen to see the light. A Malabarick and Portuguese Printing Press, you know, would be highly serviceable for the whole Design, the Transcribing of Books being attended with almost insuperable difficulties."[५]

इन सभी पत्रों को डेनिश राजकुमार के कुलगुरु रेवरेण्ड ए० डब्ल्यू० बोहम ने लन्दन की संस्था '**दि सोसाइटी फॉर प्रोमोटिंग क्रिश्चियन नॉलेज** को भेजा था। इस संस्था ने सन् १७११ ई० में बाइबिल के पुर्त्तगाली संस्करण की कुछ प्रतियाँ, प्रिंटिंग प्रेस, पाइका

१. प्रिण्टिंग प्रेस इन इण्डिया, पृ० ३९
२. वही, पृ० ४०
३. वही, पृ० ४२
४. वही
५. वही

टाइप और सम्बद्ध सामान के साथ एक प्रेस-शिल्पी भी भेजा। प्रेस के साथ प्रेस-शिल्पी जान फीनक जब जहाज से आ रहा था, तभी फ्रान्सीसियों ने ब्राजिल में उसे गिरफ्तार कर लिया। बाद में उसे रिहा कर दिया गया, पर कन्याकुमारी पहुँचने पर उसकी मृत्यु हो गई। शिल्पी के बिना ही मुद्रण-यन्त्र भारत पहुँचा। उस प्रेस के साथ सौ रीम कागज और न्यू टेस्टामेण्ट के पुर्त्तगाली-संस्करण की २१३ प्रतियाँ थीं। यह प्रेस ट्रावणकोर में सन १७१३ ई० में स्थापित हुआ। मुद्रण-कार्य में प्रेस-शिल्पी के रूप में एक जर्मन रखा गया था। वह प्रेस-शिल्पी तथा कम्पोजीटर--दोनों का कार्य करता था। उसने ११ जून, १७१३ ई० को प्रेस के सम्बन्ध में लिखा था :

"Of what we have been printing hitherto, we send some copies for Satisfaction to our Benefactors. The Press being set up, proves so helpful to our Design, that we have Reason to praise the Lord for so signal a Benefaction. Our Printer, a Native of *Germany*, is in the Danish Company's Service here; being Printer and Composer too at the same time."[1]

प्रारम्भ में इस प्रेस से पुर्त्तगाली-भाषा में ईसाई-धर्म के ग्रन्थ छापे गये। बाद में मालाबारी टाइप में ग्रन्थ छापे गये। मालाबारी टाइप यूरोप से मँगाये गये थे। उस प्रेस से पुर्तगाली-भाषा में मुद्रित पहली पुस्तक 'एक्सप्लिकेशन ऑफ क्रिश्चियन डॉक्ट्राइन' (Explication of the Christian Doctrine) अक्टूबर, १७१३ ई० में छपी थी। इसी वर्ष मालाबारी-भाषा में भी एक छोटी पुस्तक छापी गई। पुस्तक का नाम था 'एबोमिनेशन ऑफ पैगानिज्म' (Abomination of Paganism)। तमिल-भाषा में वहाँ से सन् १७१४ ई० में 'द फोर इवानजेलिस्ट्स ऐण्ड द आर्ट्स ऑफ द एपोस्ल्स' (The Four Evangelists and the Arts of the Apostles) नामक पुस्तक छपी। यह पुस्तक श्रीरामपुर कॉलेज के पुस्तकालय में उपलब्ध है। इस प्रेस में मालाबारी-टाइप ढालने की भी व्यवस्था थी। साथ ही, पुर्त्तगाली-भाषा में ग्रन्थ छापने का अदम्य उत्साह था। ११ दिसम्बर, १७१३ ई० के पत्र में बताया गया है :

"The *Malabar-Press* and *Foundry* is now in pretty good Forwardness, and we are entering with all possible Expedition upon the impression of the *New-Testament* in this Pagan Language."[2]

ट्रावणकोर के डेनिश मिशन ने मुद्रण-प्रकाशन का काम सुव्यवस्थित ढंग से शुरू किया था। उसे अत्यधिक सफलता मिली, पर कागज का अभाव बना रहा। विदेश से जितना कागज उसे सुलभ होता था, उससे उसका पूरा काम नहीं हो पाता था। इसलिए, मिशन ने कागज का कारखाना भी स्थापित करना चाहा। सन् १७१४ ई० के २७ सितम्बर के पत्र में कागज के अभाव के सम्बन्ध में रोचक विवरण प्रस्तुत किया गया है :

"The Scarcity of Paper has hindered us from pursuing the impression to the End of the Epistles : For of the *Seventyfive* Ream of the largest Paper you were pleased to send us last year, only six remain; but of

१. प्रिण्टिग प्रेस इन इण्डिया, पृ० ४३

२. वही, पृ० ४४

the lesser Size, which made up your first Present of Paper, we have *thirty* Ream left in our Store. For the setting up a *Paper Manufacture* here, though we do not think it altogether impracticable, yet our perpetual want of Money has not permitted us hitherto to attempt any such thing. The *Malabar*-Types which were sent from *Germany*, proved so very large that they consumed Abundance of Paper : To remove this Inconveniency, our Letter Founder has, about two months since, cast another type of a smaller Size, wherewith we design to print the remaining Part of the New Testament."[१]

कागज की कमी के कारण डेनिश मिशन जितनी संख्या में ईसाई-साहित्य का प्रकाशन करना चाहता था, उतना कर नहीं पाता था। अतः, समकालीन गवर्नर तथा मिशन के सहयोग से कागज के अभाव की पूर्त्ति के लिए कागज-मिल की स्थापना का कार्य सन् १७१६ ई० की जनवरी में शुरू कर दिया गया।[२]

जेगेन्ब्राल्ग तथा उसके सहयोगी ट्रावणकोर-स्थित प्रेस को भारत के बड़े मुद्रणालय के स्तर पर पहुँचाना चाहते थे। ९ जनवरी, १७१३ ई० के पत्र में लिखा गया था :

"The Great Scarcity of *Almanacks* in this part of the World, moved us to Print a *Sheet Alamanack*, which will not be vended on the Cost of *Coromandel* but also on that of *Malabar* and in Bengall. By this Means, we hope, our Printing Press will come to be known to other Nations and Countries hereabouts."[3]

उपर्युक्त तथ्यों से यह प्रमाणित होता है कि भारत में प्रेस की स्थापना की दिशा में और उसके माध्यम से जन-जागरण फैलाने में डेनिश मिशन की सेवा विशेष उल्लेखनीय रही है।

मद्रास के मुद्रणालय (सन् १७७९ ई०) :

सन् १७६२-६३ ई० के आसपास मद्रास में प्रेस की स्थापना हुई। सन् १७६१ ई० में सर इरिक कूट ने पाण्डिचेरी पर हमला किया। पाण्डिचेरी के गवर्नर के आवास में उसे प्रिण्टिंग प्रेस मिला। उसे वह अपने साथ लेता आया। उसने उस प्रेस को वहाँ की शैक्षणिक संस्था 'फोर्ट सेण्ट जॉर्ज' को दे दिया, पर मुद्रक के अभाव में वहाँ के अधिकारियों ने उसका कोई उपयोग नहीं किया। बाद में, वेपरी के लब्धकीर्त्ति तमिल-विद्वान् फेब्रिशस को वह प्रेस दे दिया गया। फेब्रिशस ने इस प्रेस से अनेक प्रार्थना-पुस्तकों का प्रकाशन किया। प्रेस में तमिल-अँगरेजी-शब्दकोश का मुद्रण सन् १७७९ ई० में किया गया था।

भारत में मुद्रण-यन्त्र के विकास का तीसरा दौर बंगाल में आरम्भ होता है। मुद्रण-कला की आधुनिकता, प्रेस-प्रकाशन की महत्ता और उसके विकास में बंगाल के श्रीरामपुर मिशन का अंशदान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

---

१. प्रिण्टिंग प्रेस इन इण्डिया, पृ० ४४-४५

२. वही, पृ० ४६

३. वही

मुद्रणालय का विकास : बंगाल :

"Without Ziegenbalg there could be no Carey;
Without Tranquebar no Serampure."[१]

ट्रावणकोर के डेनिश मिशन के बाद मुद्रणालय के विकास में बंगाल के श्रीरामपुर-मिशन के बैपटिस्ट मिशन का अंशदान विस्मृत नहीं किया जा सकता। भारत में आधुनिकता का प्रवेश बंग-वातायन से हुआ। तबतक मुद्रणालयों की स्थापना की मूलभूत प्रवृत्ति धर्म का प्रचार-प्रसार थी, पर बंगाल में मुद्रणालय नवजागरण, राजनीतिक चेतना एवं शैक्षणिक विकास का प्रतिफल था। बैपटिस्ट मिशन की स्थापना के पूर्व कलकत्ता में प्रेस पहुँच चुका था।

प्रोटेस्टेण्ट डेनिश मिशन का जॉन जकारिया क्रिनेण्डर सन् १५५८ ई० में ट्रावणकोर से कलकत्ता आया। उसने प्रोटेस्टेण्ट मिशन की स्थापना की। वह पुर्त्तगाली-भाषी था। धर्म-प्रचार के लिए गोआ के कैथोलिक-मिशन के सदस्य वटोण्डी सिल्वेस्टा ने प्रचार-कार्य के लिए प्रार्थनाएँ लिखीं, पर कलकत्ता में छापाखाने के अभाव में उसने अपनी पुस्तकें लन्दन से मुद्रित कराईं।

बंगाल में, सन् १७७८ ई० में सर्वप्रथम छापाखाने के अस्तित्व का पता चलता है। कलकत्ता के निकट हुगली में एण्ड्र्यूज नामक किसी व्यक्ति ने छापाखाने की स्थापना की। ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अधिकारी नेथियल ब्रेसी हेल्हेड, विलियम जोन्स की प्रेरणा से प्राच्य साहित्य की ओर उन्मुख हुआ। उसने '**बंगला-ग्रामर**' की रचना की, जो हुगली के प्रेस से सन् १७७८ ई० में मुद्रित हुआ। बँगला-ग्रामर के मुद्रण के लिए बँगला-टाइप का निर्माण संस्कृतज्ञ चार्ल्स विल्किन्स ने किया।

अट्ठारहवीं शताब्दी के सातवें दशक के पश्चात् बंगाल में छापाखानों की स्थापना में लोगों ने विशेष रुचि ली। उस शताब्दी के अन्त तक वहाँ अनेक छापाखाने स्थापित हो गये। ए० उपजान की '**इंगलिश ऐण्ड बंगाली वोकेबुलरी**' का मुद्रण कलकत्ता के क्रॉनिकल प्रेस से सन् १७९३ ई० में हुआ।[२]

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भी अपने कार्यों के लिए छापाखाने की स्थापना की। रॉबर्ट जोन्स-कृत '**ए न्यू पर्सियन ऐण्ड इंग्लिश वर्क आफ्टर द मेथड ऑफ ब्यायर ऐण्ड अदर्स**' नामक पुस्तक ऑनरेरी कम्पनी प्रेस, कलकत्ता से सन् १७९२ ई० में मुद्रित हुई। इसी प्रेस से सर इल्जाइम्पीकोड के **जोनाथन डंकन-कृत** बँगला-अनुवाद सन् १७८५ ई० में तथा **एच० पी० फारेस्टर-कृत** '**कार्नवालिस कोड**' का बँगला-अनुवाद सन् १७९३ ई० में मुद्रित हुआ।[3]

श्रीरामपुर-मिशन : विलियम केरी

इंग्लैण्ड के नार्थम्पटनशायर के गिरजाघरों के बारह सदस्यों की बैठक २ अक्टूबर,

---

१. प्रिण्टिंग प्रेस इन इण्डिया, पृ० ५०
२. हिन्दी के आदिमुद्रित ग्रन्थ की प्रास्ताविकी
३. उपरिवत्

१७९२ ई० को हुई। ईसा के सन्देश विदेशों में प्रचारित करने के लिए बैपटिस्ट मिशन की स्थापना हुई। **विलियम केरी** उस संस्था के प्रधान धर्मोपदेशक थे। वे धर्म-प्रचार के लिए बंगाल भेजे गये। ११ नवम्बर, १७९३ ई० को वे कलकत्ता पहुँचे। लेकिन, ईस्ट इण्डिया कम्पनी की धारणा थी कि मिशनरियों के प्रचार-कार्य से जनता में शिक्षा का प्रसार एवं बौद्धिक चेतना का उदय होगा, जिससे जनता में कम्पनी-सरकार के प्रति आक्रोश की भावना पैदा होगी। फलतः, केरी को कलकत्ता में काम करने की अनुमति नहीं दी गई। केरी माल्दा जिले के मदनावती स्थान पर रहने लगे। मदनावती के निकट केरी ने नील की खेती शुरू की। उसी समय धर्म-प्रचार के लिए उसने बाइबिल का बँगला में अनुवाद किया।

विलियम केरी का बंगाल में आगमन, भारतीय मुद्रण एवं प्रकाशन के क्षेत्र में नये अध्याय का शुभारम्भ था। मदनावती में केरी ने राम बसु नामक बँगाली सज्जन से बँगला सीखी। बाइबिल का उनका बँगला-अनुवाद सन् १७९७ ई० में तैयार हुआ। विलियम केरी ने अपने लन्दन-स्थित प्रधान कार्यालय को २५ मार्च, १७९७ ई० के पत्र में लिखा :

"I have been with the Printer, at Calcutta, to consult him about the expense of printing the New Testament, which is now translated, and may be got ready for the press in a little time. It has undergone one correction, but must undergo several more."[१]

विलियम केरी ने अपने बाइबिल के मुद्रण के लिए बैपटिस्ट मिशन सोसाइटी के प्रधान कार्यालय, लन्दन को पत्र लिखा कि प्रेस तथा मुद्रक शीघ्र कलकत्ता भेजने का प्रबन्ध किया जाय। इस बीच कलकत्ता में लकड़ी के प्रेस के बिकाऊ होने की सूचना उसे मिली। केरी ने उस प्रेस को चालीस पौण्ड में खरीद लिया। उसने मदनावती में अपने आवास पर प्रेस स्थापित किया। वह प्रेस स्थानीय जनता के लिए आश्चर्य की वस्तु प्रतीत हुआ।

प्रेस की स्थापना जितनी आसान थी, टाइप की समस्या उतनी ही जटिल। बँगला-टाइप ढालने के लिए केरी ने लन्दन के प्रख्यात टाइप-फाउण्डर कासलोन (Caslon) को लिखा। लन्दन में बँगला-टाइप तैयार कराने पर पाँच शिलिंग प्रति टाइप कीमत बैठती थी। इस बीच केरी को सूचना मिली कि कलकत्ता में भी किसी टाइप-फाउण्डरी की स्थापना हुई है, जिसमें भारतीय भाषाओं के टाइप ढालने की सुविधा है। उन्हें उस व्यक्ति की भी सूचना मिली, जिसने चार्ल्स विल्किन्स के निर्देशन में टाइप ढालने की प्रविधि का प्रशिक्षण प्राप्त किया था। केरी ने उस व्यक्ति की सेवा विलकिन्स के माध्यम से प्राप्त की। परिणामस्वरूप, लन्दन से टाइप मँगाने का विचार छोड़ देना पड़ा।

केरी की सहायता के लिए सन् १७९९ ई० के आसपास जोशुआ मार्शमैन, विलियम वार्ड, डेनियल ब्रून्सडन और विलियम ग्राण्ट बंगाल आये, पर दो वर्ष बाद ही डेनियल ब्रून्सडन तथा विलियम ग्राण्ट की मृत्यु हो गई। केरी मदनावती से खिदिरपुर

१. प्रिण्टिंग प्रेस इन इण्डिया, पृ० ५६

आकर बसना चाहते थे। मदनावती में बाढ़ से नील की खेती की दशा दयनीय हो गई थी। अतः, केरी अपने प्रेस के साथ १० जनवरी, १८०० ई० को श्रीरामपुर पहुँचे। उन्होंने अपने प्रेस के सम्बन्ध में ५ फरवरी, १८०० ई० के पत्र में लिखा था :

"The setting up of the press would have been useless at Mudnabatty, without brother Ward, and perhaps might have been ruined, if it had been attempted. At this place, we are settled out of the Company's dominions and under the government of a power very friendly to us and our designs."[१]

केरी ने अपने प्रेस से मुद्रित पुस्तकों तथा प्रेस में उत्पन्न कठिनाइयों की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए ११ अक्टूबर, १८०० ई० के अपने पत्र में लिखा :

"Had we staid at Mudnabatty, or its vicinity, it is a great wonder whether we could set up our press; Government would have suspected us, though without any reason to do so; and would, in all probability, have prevented us from printing; the difficulty of procuring proper materials would also have been almost insuperable. We have printed several small pieces, which have been dispersed; we have circulated several copies of Metthew's gospel, I suppose near three hundred. We have printed the New Testament, as far as the Acts of the Apostles, and it will be wholly printed before this reaches you, unless some unforeseen obstructions lie in the way."[२]

उपर्युक्त सर्वेक्षण से स्पष्ट है कि अट्ठारहवीं सदी के अन्त तक भारत में छापाखाने का प्रचार हो चुका था। सोलहवीं सदी के पाँचवें दशक में आधुनिक सांस्कृतिक चेतना के उदय के अनन्तर अट्ठारहवीं सदी के अन्त तक अपरिहार्य साधन के रूप में छापाखाने का प्रचलन हो गया था।

देवनागरी-टाइप का निर्माण : विदेश में :

देवनागरी-टाइप का निर्माण पहले-पहल यूरोप में सन् १६६७ ई० में हुआ। अथानासी किर्चरी-कृत '**चाइना इलेस्ट्रेटा**' नामक पुस्तक का मुद्रण सन् १६६७ ई० में हुआ। उसमें देवनागरी-टाइप प्रयुक्त हुआ था। उस पुस्तक के सातवें अध्याय में पाणिनि के सूत्र और अवतारों के नाम तथा बारहखड़ी नागरी-लिपि में छापे गये। उक्त पुस्तक के एम्सटरडम से छपी थी।

एम्सटरडम से सन् १६७८ ई० में 'होरटस इण्डिकस' नामक मालाबारी-पुस्तक छपी। पुस्तक की भूमिका में संस्कृत की ग्यारह पंक्तियाँ नागरी-लिपि में मुद्रित हैं। दोनों पुस्तकें ब्लॉक-पद्धति से छापी गई थीं।

---

१. प्रिण्टिग प्रेस इन इण्डिया, पृ० ५८

२ वही

नागरी-टाइप का तीसरा उदाहरण हमें जर्मनी के लिपजिग-निवासी थियोफिलसस सिगफ्रिड वेयर की '**हिस्टोरिया रेग्नी ग्रेइकोरम बैक्ट्रियानी**' पुस्तक में मिलता है। यह पुस्तक सेण्टपीटर्सबर्ग से सन् १७३८ ई० में प्रकाशित हुई थी। उस पुस्तक में महीना, दिन, गिनती आदि नागरी-लिपि में मुद्रित हैं। पुस्तक रोमन-लिपि में लिखी गई है, पर अवतरणों के बीच नागरी-लिपि के अक्षर भी हैं।

बेंजामिन शुल्जी की '**ग्रामेटिका हिन्दुस्तानिका**' की भूमिका के पृष्ठ तीन पर '**देवनागरिकाएँ**' शब्द का प्रयोग और उसी के नीचे 'व्यंजन' शीर्षक से क से ह तक के अक्षर नागरी-लिपि में हैं। रोम से गियोवानी क्रिस्टोफोरो अमादुजी और कैसियानस बेलिगत्ती ने '**अल्फाबेटम ब्राह्मणीकम सिउ इन्दोस्तानम् उनवर्सिटाटिस काशी**' नामक पुस्तक प्रकाशित की थी। **बखा बोली** और बनारस-जनपद के चतुर्दिक् बोली जानेवाली भाषा पर लिखी गई यह पहली पुस्तक है। इसमें पहली बार नागरी-टाइप, चल-टाइप का प्रयोग हुआ है। इसमें नागरी-वर्णमाला, बारहखड़ी और व्याकरण का परिचय है। सात-आठ पृष्ठों में हिन्दी-गद्य भी दिया गया है। यह खड़ीबोली का पहला व्याकरण या वर्णमाला-पुस्तक है।

विदेशों में नागरी-टाइप में मुद्रित इन्हीं चार ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है, जिनसे यह प्रकट होता है कि सर्वप्रथम नागरी-टाइप का निर्माण विदेश में हुआ।

भारत में देवनागरी-टाइप का निर्माण ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन-काल में कलकत्ता में अट्ठारहवीं सदी के अन्तिम दशक (सन् १७९५ ई०) में हुआ।

भारत में देवनागरी-टाइप का निर्माण :

ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेवा में नैथेनियल ब्रे से हेलहेड नामक एक प्राच्यविद्याविद् कार्य करता था। प्रसिद्ध प्राच्यविद्याविद् विलियम जोन्स की प्रेरणा से हेलहेड प्राच्य भाषाओं के अध्ययन की ओर प्रवृत्त हुआ। उसने 'बँगला-भाषा का व्याकरण' नामक ग्रन्थ की रचना की। उस ग्रन्थ के मुद्रण के लिए बँगला-टाइप अपेक्षित था। बँगला-टाइप का निर्माण अन्यत्र सम्भव नहीं था। अतः, ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेवा में कार्यरत अँगरेज अधिकारी चार्ल्स विल्किन्स ने बँगला-फॉण्ट का निर्माण किया। कलकत्ता में निर्मित उस बँगला-टाइप में हेलहेड का '**बंगाली ग्रामर**' कलकत्ता के हुगली में एण्ड्रयूज के प्रेस से सन् १७७८ ई० में मुद्रित हुआ। हेलहेड ने अपने व्याकरण की भूमिका में लिखा है :

The advice and even solicitations of the Governor-general prevailed upon Mr. Wilkins, a gentleman who has been some years in the India Company's civil service in Bengal, to undertake a set of Bengal types. He did, and his success has exceeded every expectation. In a country so remote from all connection with European artists, he has been obliged to charge himself with all the various occupations of the metalurgist, the Engraver, the Founder and the Printer. To the merit of invention he was compelled to add application of personal labour. With a rapidly unknown in Europe, he surmouted all the obstacles which necessarily clog the first rudiments

of a difficult art, as well as the disadvantages of solitary experiment."[1]

इसी कारण चार्ल्स विल्किन्स को भारतीय प्रेस का जनक कहते हैं। उन्होंने न केवल बँगला-टाइप बनाया, वरन् देवनागरी-टाइप का भी निर्माण किया।

भारत का कैक्स्टन : चार्ल्स विल्किन्स :

चार्ल्स विल्किन्स ने देवनागरी-टाइप के निर्माण में बंगाली शिल्पी पंचानन कर्मकार तथा उसके सहयोगी शिष्य मनोहर की सहायता प्राप्त की थी। पर, कार्यालय में एक दिन अचानक आग लग गई, जिससे उसके बनाये देवनागरी-टाइप जलकर नष्ट हो गये और कोई पुस्तक नहीं छापी जा सकी। पंच तथा मेट्रिस बच गये। उसे वे सन् १७८६ ई० में लन्दन लौटते समय साथ लेते गये। उसी मेट्रिस से उन्होंने देवनागरी-टाइप ढाला तथा उसी टाइप से '**ए ग्रामर ऑफ द संस्कृत लैंग्वेज**' नामक पुस्तक सन् १८०८ ई० में लन्दन से मुद्रित की गई। विल्किन्स ने अपनी उस पुस्तक की भूमिका में लिखा है :

"About the year 1778, my curiosity was excited by the example of my friend, Mr. Halhead, to commence the study of Sanskrit......At commencement of the year 1795, resideing in the country, and having much leisure, I began to arrange my materials, and prepare them for publication. I cut letters in speel, made matrics and moulds, and cast from them a fount of types of the Deva-nagri character, all with my own hands; and with the assistance of such mechanics as a country village could afford, I very speedily prepared all the other implements of printing in my own dwelling house; for by the second of May of the same year, I had taken proofs of sixteen pages, differing but little from those now exhibited in the first two sheets. Till two o'clock on that day every thing had succeeded to my expectation; when, alas ! premises were discovered to be in flames, which spreading too rapidly to be extinguished, the whole buildiug was presently burnt to ground. In the midst of this misfortune I happily saved all my books and manuscripts, and the greatest part of the punches and matrics; but the types themselves having been thrown out and scattered over the lawn were either lost or rendered useless."[2]

विल्किन्स सन् १७७० ई० में कम्पनी की सेवा में भारत आये थे। कम्पनी की सेवा करते हुए उन्होंने संस्कृत तथा अन्यान्य भारतीय भाषाएँ सीखीं। सन् १७७८ ई० में टाइप का निर्माण किया। वे सन् १७८६ ई० में लन्दन वापस चले गये। वे सन् १८०० ई० में '**इण्डिया आफिस पुस्तकालय**' के प्रथम पुस्तकाध्यक्ष नियुक्त किये गये।

भारत में देवनागरी-टाइप के ढालने का दूसरा प्रयास श्रीरामपुर मिशन के निर्देशन में पंचानन कर्मकार तथा उसके जामाता मनोहर ने किया था। पंचानन कर्मकार ने यह

---

१. ए ग्रामर ऑफ द संस्कृत लैंग्वेज, पृ० ६

१. वही, पृ० ११

विद्या चार्ल्स विल्किन्स से सीखी थी। उसके साथ बँगला-टाइप ढालने का कार्य पंचानन ने किया था। केरी ने जब मदनावती से अपना प्रेस श्रीरामपुर में स्थापित किया, तब उन्हें टाइप ढालनेवाले शिल्पी की जरूरत हुई। केरी ने कलकत्ता में टाइप फाउण्डरी का विज्ञापन पढ़ा था। बाद में, उन्हें पंचानन के सम्बन्ध में जानकारी मिली। पंचानन प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ कोलब्रुक के बँगले के पास रहते थे और वे कोलब्रुक की सेवा में थे। केरी ने कुछ दिनों के लिए उनकी सेवा कोलब्रुक से माँगी। उन्होंने पहले केरी के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया, पर बाद में पंचानन को केरी की सेवा में भेज दिया। पंचानन के साथ ही मनोहर ने भी श्रीरामपुर मिशन की सेवा स्वीकार कर ली। जोशुआ मार्शमैन ने श्रीरामपुर मिशन की टाइप-फाउण्डरी के सम्बन्ध में लिखा है :

"At the beginning of 1803 the missionaries had made considerable progress in the preparation of a fount of Deva Nagree types. The Deva Nagree is the parent of all the various Indian alphabets, and, according to mythological tradition, the special gift of the gods. This was the first fount of this type which had been attempted in India. Soon after the establishment of the press at Serampore, the native blacksmith Punchanon, who had been instructed in the art of punch cutting by sir Charles Wilkins, came to the Missionaries in search of employment. Mr. Carey was then contemplating a Sanskrit Grammar, for which it was necessary to obtain Nagree types and Punchanon was immediately engaged for the work."[१]

चार्ल्स विल्किन्स के 'संस्कृत-ग्रामर' के प्रकाशन के पूर्व सन् १७९६ ई० में गिलक्राइस्ट के **'ग्रामर ऑफ द हिन्दुस्तानी लैंग्वेज'** का प्रकाशन कलकत्ता के क्रानिकल प्रेस से हुआ था, जिसमें देवनागरी-टाइप का प्रयोग किया गया था। भारत में वह देवनागरी-मुद्रण का प्रथम उदाहरण है। इसके पश्चात् सन् १८०२ ई० में श्रीरामपुर कॉलेज के छात्रों की थीसिस में देवनागरी-टाइप का प्रयोग किया गया था। केरी के **'मराठी ग्रामर'** तथा **'संस्कृत ग्रामर'** नामक पुस्तकों में, जिनका प्रकाशन क्रमशः सन् १८०५ और १८०६ ई० में हुआ था, देवनागरी-टाइप का प्रयोग किया गया था।

पंचानन कर्मकार और मनोहर :

पंचानन कर्मकार लोहार था। उसने चार्ल्स विल्किन्स से पंच काटकर टाइप बनाने की कला सीखी थी। वह श्रीरामपुर मिशन की सेवा में कार्य करता था। मृत्यु-पर्यन्त वह मिशन से सम्बद्ध रहा। पंचानन ने सात सौ टाइप-पंच तैयार किये थे। बाद में, उसके सहयोगी मनोहर की सेवाएँ मिशन को प्राप्त हुईं। मार्शमैन ने लिखा है :

"Owing to the large number of compound letters in the Deva Nagree, the fount required seven hundred separate punches, of which about one half had been completed at the beginning of the present year (1803). To accelerate the progress of the work, Punchanon was advised to take an

१. प्रिण्टिग प्रेस इन इण्डिया, पृ० ५९

assistant, a youth of the same caste and craft, of the name, Monohar, an expert and elegant workman, who was subsequently employed for forty years at the Serampore press, and to whose exertions and instructions Bengal is indebted for the various beautiful founts of the Bengalee, Nagree, Persian, Arabic, and other characters which have been gradually introduced into the different printing establishments."[१]

पंचानन की मृत्यु के बाद मनोहर ने मिशन में लगभग चालीस वर्षों तक काम किया। पंचानन को टाइप की जो जानकारी थी, उससे उसने मनोहर को परिचित कराया था। मनोहर भी लोहार था। कुछ विद्वानों का कथन है कि मनोहर पंचानन का भतीजा था, जबकि अन्य विद्वान् उसे पंचानन के जामाता मानते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि मनोहर टाइप बनाने की विद्या में निपुण था। जॉर्ज स्मिथ ने लिखा है :

"Punchanana's apprentice, Monohur, continued to make elegant founts of type in all Eastern languages for the mission and for sale to others for more than forty years, becoming a benefactor not only to literature but to Christian civilization to an extent of which he was unconscious, for he remained a Hindoo of the blacksmith caste. In 1839 when he first went to India as a young missionary, the Rev. James Kennedy saw him, as the present writer has often since seen his successor, cutting the matrices or casting the type for the Bibles, while he squatted below his favourite idol under the auspices of which alone he would work. Serampore continued down till 1860 to be the principal Oriental type-foundary of the East."[२]

इस प्रकार, देवनागरी-चल टाइप के विकास में वैपटिस्ट मिशन के पंचानन कर्मकार और मनोहर का योगदान स्वर्णाक्षरों में लिखा जाने योग्य है। मिशन की टाइप-फाउण्डरी से और लोगों को प्रेस खोलने के लिए मार्ग प्रशस्त हो गया। यथार्थतः श्रीराम-पुर मिशन की टाइप-फाउण्डरी भारतीय भाषाओं की सर्वप्रथम टाइप-फाउण्डरी थी।

विलियम केरी ने अपनी पुस्तक 'ए मेम्वायर रिलेटिव टु द ट्रान्सलेशन्स' (A Memoir relative to the Translations) में लिखा है : "हमने श्रीरामपुर में काम शुरू किया। कुछ ही दिन बाद, भगवान् की दया से हमें वह व्यक्ति मिला, जिसने मिस्टर विल्किन्स के साथ टाइप बनाने का काम किया था और जो इस काम में होशियार था। उसकी मदद से हमने टाइप-फाउण्डरी लगाई। यद्यपि वह मर गया, तथापि उसने बहुत-से व्यक्तियों को यह काम सिखा दिया है और वे लोग टाइप बनाने का काम किये जा रहे हैं। इतना ही नहीं, वे मेट्रिस भी बनाते हैं, जो इतनी सही होती है कि यूरोपियन कारीगरों की बनावट से समता करती है। इन्होंने हमारे लिए बँगला के तीन-चार फाउण्ट बनाये हैं। अब हमने उनको वर्त्तमान टाइप के साइज को एक-चौथाई कम करने के काम में लगाया है। इससे कागज की बचत होगी और पुस्तक भी छोटी हो जायगी। मगर इस बात का पूरा खयाल रखा जायगा कि अक्षर ऐसे बनें, जो छपने पर साफ-साफ पढ़े जा सकें। हमने देवनागरी-

---

१. लाइफ आफ विलियम केरी : जार्ज, स्मिथ पृ० २४३-४४

२. वही, पृ० २४४-४५

अक्षरों का भी एक फाउण्ट बनाया है। इसके अक्षर हिन्दुस्तान में सबसे सुन्दर हैं। इसमें करीब-करीब एक हजार विभिन्न अक्षरों के समूह हैं। इसको बनाने में केवल पन्द्रह सौ रुपये खर्च हुए। इस खर्च में टाइप ढालने और दूसरी चीजों की कीमत शामिल नहीं है।[1]

अमेरिकन मिशन टाइप-फाउण्ड्री का देवनागरी-टाइप :

देवनागरी-टाइप ढालने का तीसरा प्रयत्न बम्बई के अमेरिकन मिशन ने किया। अमेरिकन मिशन ने सन् १८१६ ई० में कलकत्ता में प्रेस स्थापित किया था। बम्बईवाले प्रेस को मराठी-ग्रन्थ छापने के लिए कलकत्ता से टाइप मँगाना पड़ता था, इसलिए टाइप-फाउण्डरी बैठाने की योजना बनाई गई। इस मिशन की स्थापना से पूर्व थॉमस ग्राहम नामक व्यक्ति मराठी-स्कूल में काम करता था। कुछ समय बाद वह इस काम को छोड़कर जीवनवल्लभ नामक स्वर्णकार के पास धौंकनी चलाने का काम करने लगा। उसने लोहा गलाने की प्रविधि स्वर्णकार से सीख ली। वह प्रखर बुद्धि का श्रमशील व्यक्ति था। अत, प्रेस के मैनेजर ग्रेव्ज ने ग्राहम को अपने प्रेस में नौकर रख लिया। उस समय उस प्रेस में लकड़ी का एक प्रेस तथा एक फाउण्ट मराठी-टाइप का था, पर इतने से प्रेस का काम नहीं चल सकता था। इसलिए, ग्राहम को टाइप-पंच काटने के लिए प्रवृत्त किया गया। ग्राहम ने परिश्रम के साथ इस्पात के पंच काटने का अभ्यास किया। एक सप्ताह में अँगरेजी का 'टी' अक्षर काटने की जानकारी उसे हो गई। अमेरिका से एलिजा वेब्स्टर फाउण्डरी खड़ी करने की मशीन और उससे सम्बद्ध समस्त उपकरण लेकर ११ अक्टूबर, १८३५ ई० को बम्बई पहुँचा। टाइप काटने का कार्य ग्राहम करने लगा और वेब्स्टर ने ढलाई के लिए साँचा बनाना शुरू किया। इस प्रकार, सन् १८३६ ई० में पहला फाउण्ट तैयार हो सका। कलकत्ता में बनाये गये टाइप से यह सुन्दर था। ग्राहम ने दोहरे टाइपों को कुछ छोटा कर दिया। इस प्रकार, अमेरिकन मिशन की टाइप-फाउण्डरी में मराठी, गुजराती और देवनागरी-टाइपों का निर्माण शुरू हो गया। ये टाइप कलकतिया टाइप से सुन्दर होते थे। आज भी गुजराती और मराठी-टाइप अपने उसी पूर्वरूप में ढाले जाते हैं।

बम्बई के गणपतिकृष्णजी ने भी देवनागरी तथा मराठी-टाइपों के निर्माण में योगदान किया। उन्होंने सन् १८४० ई० में अपने सत्प्रयास से लकड़ी का प्रेस तैयार किया। इसके लिए उन्होंने पत्थरों के टाइप बनाये तथा इसकी स्याही भी तैयार की। तदनन्तर, उन्होंने लोहे का प्रेस स्थानीय कारीगरों की मदद से तैयार कराया। इसी प्रेस से उन्होंने सबसे पहले मराठी-पंचांग मुद्रित किया। गणपतिजी ने सन् १८४३ ई० में टाइप ढालने पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। टाइप बनाने का काम उन्होंने अपने विवेक से शुरू किया। उन्होंने स्वयं पंच काटे और साँचे बनाकर उनमें टाइप ढाले। इस प्रकार, उन्होंने पूरे फाउण्टों में टाइप ढालकर तैयार कर लिया। मुद्रण-प्रकाशन के साथ उन्होंने टाइप ढालने का भी काम शुरू किया।

देवनागरी-टाइप को नई दिशा प्रदान करनेवाली टाइप-फाउण्डरियों में बम्बई का प्रख्यात निर्णयसागर प्रेस, हिन्दी और संस्कृत-साहित्य के मुद्रण के इतिहास में सुप्रसिद्ध हुआ।

---

१ प्रेमी-अभिनन्दन-ग्रन्थ, पृ० १७४-७५

इस प्रेस से उत्पादित टाइप 'बम्बइया टाइप' के नाम से न केवल भारत में, बल्कि उन देशों में भी प्रसिद्ध हुआ, जहाँ देवनागरी-टाइप का प्रयोग होता था।

निर्णयसागर मुद्राक्षर-निर्माणशाला :

बम्बईनिवासी जावजी दादाजी का जन्म सन् १८३९ ई० में निर्धन परिवार में हुआ था। साधारण शिक्षा प्राप्त करने के बाद उन्होंने बम्बई के अमेरिकन मिशन प्रेस में टाइप-घिसाई की नौकरी कर ली। उनका मासिक वेतन दो रुपया था। टाइप-घिसाई का काम करते हुए उन्होंने प्रेस-सम्बन्धी सभी प्रकार की जानकारी हासिल कर ली। उनकी प्रतिभा प्रखर थी। जिज्ञासावश उन्होंने प्रेस-शिल्प का ज्ञान प्राप्त किया। इस कला में निष्णात होने के बावजूद उन्हें सात रुपया मासिक पारिश्रमिक मिलता था। उन्होंने नौकरी छोड़ दी और टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रेस में नौकरी कर ली। वहाँ उन्हें दस रुपया मासिक वेतन मिलता था। कुछ दिनों बाद वे बम्बई के **इन्दुप्रकाश मुद्रणालय** में काम करने लगे। यहाँ उन्हें तेरह रुपया महीना मिलता था। बाद में उनकी कार्यपटुता से प्रभावित होकर उनके वेतन में दो रुपये की वृद्धि कर दी गई। उन्होंने टाइप काटने, ढालने और घिसने की अच्छी जानकारी प्राप्त कर ली। तदनन्तर, बम्बई के 'ओरियण्टल प्रेस' में उन्हें तीस रुपये मासिक की नौकरी मिली। जावजी ने वहाँ अपने कला-कौशल से प्रसिद्धि प्राप्त की। जिस गुरु ग्राहम से उन्होंने इस कला की शिक्षा पाई थी, वह भी उनको अब अधिक ज्ञान देने में संकोच करने लगा।

अब जावजी को नौकरी के बजाय व्यवसाय में अधिक रुचि हुई। उन्होंने नौकरी छोड़ दी और निजी मुद्राक्षर-निर्माणशाला खोलने का निश्चय किया। पूँजी का अभाव था, अतएव बम्बई-निवासी खुमा सेठ नामक व्यक्ति से सात सौ रुपया उधार लिया। उन्होंने थॉमस ग्राहम और जीवनवल्लभ स्वर्णकार से देवनागरी और गुजराती-टाइपों का साँचा खरीद लिया। एक स्थानीय शिल्पी से टाइप काटने की मशीन बनवाई। तत्पश्चात् उन्होंने बम्बई की कोलभाट गली में, सन् १८६४ ई० में एक छोटी-सी मुद्राक्षर-निर्माणशाला स्थापित की। इसमें उन्हें यथेष्ट सफलता मिली।

जावजी के मुद्राक्षर-निर्माण में उनके सबसे बड़े सहायक राणूरावजी आरू थे, जो स्वयं मुद्राक्षर-निर्माणशिल्प में निपुण थे। दोनों के प्रयत्न से देवनागरी, गुजराती, मराठी, कन्नड, इंग्लिश, जैनी और हिब्रू टाइपों का निर्माण हुआ। जावजी ने राणूजी को अपनी मुद्राक्षर-निर्माणशाला का प्रबन्धक नियुक्त किया। उनकी मुद्राक्षर-निर्माणशाला में निर्मित टाइप **बम्बइया टाइप** के नाम से अभिहित हुआ। वहाँ के निर्मित टाइपों का एक अपना वैशिष्ट्य था। **कलकतिया टाइप की** अपेक्षा बम्बइया टाइप में अधिक सुघड़पन, सौष्ठव और आकर्षण था। टाइपों के रूप को चारुता प्रदान करने में जावजी विशेष निपुण थे। इसलिए, उनके मुद्राक्षर की माँग विदेशों में भी हुई। उन्होंने संस्कृत-ग्रन्थों के मुद्रण के लिए वैदिक स्वरों के संकेतवाले मुद्राक्षरों का निर्माण किया। इससे संस्कृत-ग्रन्थों के मुद्रण में वैज्ञानिकता तथा प्रामाणिकता आई। मुद्राक्षर-निर्माणशाला की स्थापना के बीस वर्षों के भीतर उन्होंने सात भाषाओं के मुद्राक्षर तैयार किये। उनकी मुद्राक्षर-निर्माणशाला में

चालीस प्रकार के देवनागरी-टाइप, अड़तालीस प्रकार के अँगरेजी-टाइप, तेईस प्रकार के गुजराती-टाइप, दस प्रकार के कन्नड-टाइप, तीन प्रकार के जैनी-टाइप तथा सात प्रकार के हिब्रू-टाइप तैयार किये गये थे।

जब जावजी का व्यवसाय चमक रहा था, तब उनके कारखाने में कोई चार सौ व्यक्ति काम करते थे। आज भी उनका कारखाना संस्कृत-टाइप के लिए अकेली मुद्राक्षर-निर्माण-शाला है। इस प्रकार, हम देखते हैं कि निर्णयसागर मुद्राक्षर-निर्माणशाला ने देवनागरी-लिपि के मुद्राक्षरों को नया रूप दिया।

लीथो प्रेस तथा टाइप प्रेस :

उन्नीसवीं सदी के आठवें दशक तक हिन्दी में लीथो प्रेस से अत्यधिक संख्या में ग्रन्थ मुद्रित किये गये थे। इससे यह धारणा बनती है कि टाइप के पूर्व लीथो-मुद्रण की प्रणाली का जन्म हो गया था। पर, यह भ्रान्तिमूलक धारणा है। यथार्थतः टाइप-मुद्रण के बहुत बाद लीथो-मुद्रण की प्रणाली का जन्म एवं विकास हुआ; पर यह मुद्रण-प्रणाली, टाइप-प्रेस की अपेक्षा अधिक सस्ती थी, जिसके फलस्वरूप लीथो प्रेस का प्रचार टाइप-प्रेस की अपेक्षा अधिक हुआ।

'लीथोग्राफी' ग्रीक-भाषा के 'लीथो' (पत्थर) और 'ग्राफ' (लेखन) शब्द के मेल से बना है, जिसका अर्थ है पत्थर पर लिखना। पत्थर पर चिकनी वस्तु से लिखकर अथवा डिजाइन बनाकर उससे कागज पर उतारने की क्रिया लीथोग्राफी है। इस मुद्रण-पद्धति का प्रवर्त्तन एलाइस सेनेफेल्डर (Alois Senefelder) ने ६ नवम्बर, १७७१ ई० को किया था। वह अभिनेता तथा नाटककार था। इन दोनों क्षेत्रों में जब उसे सफलता नहीं मिली, तब उसने फोटोग्राफी के क्षेत्र में काम करना शुरू किया।

जर्मनी के नरेश ने सेनेफेल्डर को प्राश्रय और संरक्षण प्रदान किया। सन् १८०८ ई० में उसने बैरन आर्टिन की साझेदारी में प्रेस की स्थापना की। प्रेस में सर्वप्रथम नोट छापा गया। इस प्रणाली के प्रेस का प्रचार सन् १८८० ई० में लन्दन में सेनेफेल्डर ने ही किया था। इसको लोकप्रियता प्रदान करने का श्रेय रूडॉल्फ अक्रमाण को है, जिसने सन् १८१७ ई० में लन्दन में अपने प्रथम लीथो प्रेस की स्थापना की थी।

भारत में लीथो प्रेस :

भारत में लीथो प्रेस का आगमन भी विदेश से, अर्थात् लन्दन से हुआ। सन् १८२० ई० में स्थापित बम्बई की नेटिव स्कूल ऐण्ड स्कूल-बुक कमिटी नामक संस्था स्कूली पुस्तकों के मुद्रण-प्रकाशन के लिए काम कर रही थी। स्कूलों में मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देना तथा मराठी और गुजराती में पुस्तकें छापना उस संस्था का उद्देश्य था। उसे मराठी-टाइप लन्दन से मँगाना पड़ता था, जो महँगा पड़ता था। साथ ही, इससे मिशन के कार्य में लगी अन्य मिशनरियों को भी असुविधा होती थी। इन असुविधाओं को देखते हुए 'सोसाइटी' के सचिव जॉर्ज जर्विस ने सरकार से ४ अक्टूबर, १८२३ ई० को अधिक संख्या में टाइप देने तथा एक लीथो प्रेस की भी माँग की थी। उन्होंने अपने पत्र में लिखा था :

"The Society deems it a great object to obtain a larger supply of Mahratha Types and a new font of Guzerathee; the latter to be executed like the new Balbodh; drawings of the letters might be sent home. They might afterwards be disposed of on moderate terms to the Native Presses, as then the works could be most conveniently printed. The Society would solicit moreover a lithographic Press....."[१]

सरकार ने सोसाइटी की उपर्युक्त माँगों में से केवल लीथो प्रेस देने की माँग मंजूर की। सरकार ने सोसाइटी को १० मार्च, १८२४ ई० के पत्र में लिखा :

"Several Lithographic presses having been applied for from the Court of Directors, one of them will be supplied to the Society."[२]

कम्पनी-सरकार की माँग पर लन्दन से तीन बड़े तथा तीन छोटे लीथोग्राफिक प्रेस भारत भेजे गये। पहले एक-एक प्रेस हर प्रदेश को भेजने की योजना थी, पर बाद में यह विचार स्थगित कर दिया गया। बम्बई में ही 'सरकारी लीथोग्राफिक ऑफिस' की स्थापना की गई। मैक्डोवाल नामक अँगरेज लीथोग्राफ-शिल्पी २६ जून, १८२४ ई० को नियुक्त हुआ, जिसका मासिक वेतन ३५० रुपया था। उसकी सहायता के लिए मादोबापू, अबिया नामाजी, रमारागू और शेकअली प्रेसमैन नियुक्त किये गये।[१] बम्बई-सरकार ने विभिन्न सरकारी कार्यालयों को २६ अगस्त, १८२४ ई० को छपाई-सम्बन्धी सुविधा के लिए लीथोग्राफिक प्रेस को कागज भेजने को लिखा था। परिपत्र इस प्रकार था :

"The Court of Directors having sent out a set of Lithographic printing presses, I am directed to inform you that advertisement in the English or Native languages or Circular letters etc., which it may be requisite to issue from your office, and which it would have been necessary to print at the charge of Government, are henceforward to be sent to the Lithographic office to be printed.[3]

2nd. If it be thought desirable, the letter or other document should be a facsimile of the handwriting of any clerk in your office, you will be pleased to direct him to attend with the draft of the letter that it may be printed from his manuscript."[४]

इससे यह स्पष्ट है कि भारत में सबसे पहले बम्बई में सन् १८२४ ई० के अगस्त में लीथो प्रेस का आगमन हुआ। अतएव, गासदितासी का यह कथन कि लीथो प्रेस सबसे पहले सन् १८३४ ई० में दिल्ली में स्थापित हुआ, तथ्यों के आधार पर प्रमाणित नहीं होता। बम्बई के बाद बनारस में सन् १८२४ ई० के आसपास प्रेस स्थापित हुआ।

१. प्रिण्टिग प्रेस इन इण्डिया, पृ० ९०

२. वही, पृष्ठ ९१

३. प्रिण्टिग प्रेस इन इण्डिया, पृ० ९३

४. वही

बनारस के पूर्व लखनऊ में सन् १८१९-२० ई० में गाजी अलाउद्दीन हैदर द्वारा लीथो प्रेस की स्थापना का उल्लेख मिलता है[१], पर इसका कोई युक्तिसंगत प्रमाण नहीं मिलता। इसी प्रकार भारत के अन्य बड़े नगरों में प्रेस स्थापित हुए। मद्रास में सन् १८२४ ई० में, आगरा में सन् १८२६ ई० में, कानपुर में सन् १८३१ ई० में, दिल्ली में सन १८३७ ई० में और लाहौर में सन् १८३७ ई० में लीथो प्रेस स्थापित हुए।

लीथोग्राफिक प्रेस टाइप-प्रेस की तुलना में सस्ता तथा सहज सुलभ था। इस कारण भारत में इस प्रेस का प्रारम्भ में अत्यधिक प्रचलन हुआ। हिन्दी में मुद्रण और प्रकाशन के लिए टाइप की गम्भीर समस्या थी। टाइप का आसानी से तथा सस्ते मूल्य पर मिलना सम्भव न था। किन्तु, लीथो प्रेस से टाइप के बिना ही, अच्छी लिखावट में टाइप-जैसे आकर्षक ढंग की पुस्तक का मुद्रण सम्भव था। इस कारण उन्नीसवीं सदी में हिन्दी की अधिकतर पुस्तकें छोटे-छोटे प्रेसों से लीथो में छापी गईं। टाइप-मुद्रण कलकत्ता और बम्बई में ही हो रहा था। अतः टाइप की कठिनाई के कारण लीथो प्रेस का प्रचलन अधिक हुआ।

लीथोग्राफिक प्रेस के लिए स्याही, कागज और पत्थर की भी आवश्यकता होती थी। लिथोग्राफिक पत्थर विदेश से आता था। इस कठिनाई को दूर करने के लिए भारत में ऐसे पत्थरों की खोज की गई, जो इस काम में आ सकें। फोर्ट सेण्ट जॉर्ज के मुख्य अभियन्ता डब्ल्यू ग्राण्ड ने ऐसे पत्थर की खोज की। इस प्रकार विदेश से आयातित पत्थर से भी उत्तम कोटि का पत्थर भारत में सुलभ हुआ। यह पत्थर आन्ध्र प्रदेश के अन्तर्गत कुर्नूल नामक स्थान में उपलब्ध हुआ। डब्ल्यू ग्राण्ड ने अपने पत्र में लिखा था :

"I do myself the honour to submit to you this specimen of Lithography from a Kurnool stone, the existence of which I had the honour to bring to the notice of Government in my letter bearing date 15th November, 1826, and I have the further gratification of adding that the article is to be obtained in any quantity, it is much denser and of finer grain than in any I have yet seen from Europe, and may be considered as so far superior for manuscript copies, and every description of fine work where clearness and minuteness of character are required."[२]

इस प्रकार भारत में सस्ते प्रेस के रूप में लीथोग्राफिक प्रेस के विकास का मार्ग और भी सुगम हो गया। सन् १८३० ई० में सार्जेण्ट जेब ने कुर्नूल जाकर कम्पनी के लीथो-ग्राफी प्रेस के लिए एक सौ पत्थर खरीदे।[३]

बम्बई में सन् १८२५ ई० में मुद्रण-प्रकाशन पर प्रतिबन्ध लग जाने से प्रेस खोलने के लिए सरकार की अनुमति आवश्यक हो गई। किन्तु, सामान्य जन के लिए लीथो प्रेस के माध्यम से मुद्रण-व्यवसाय सुलभ हो गया। बम्बई-निवासी फरदूनजी सोराबजी दस्तूर ने

---

१. दी राइज ऐण्ड ग्रोथ ऑफ हिन्दी-जर्नलिज्म, पृ० ६८३

२. प्रिण्टिंग प्रेस इन इण्डिया, पृ० ९९

३. वही

लीथो प्रेस खोलने के लिए ८ नवम्बर, १८२६ ई० को अपने आवेदन-पत्र में लिखा था :

"Your poor Petitioner had opened a Lithographic Press to print the book or paper for commercial Nature. Therefore your Honorable Board will be pleased to order the Chief Secretary to Government to give certificate to your petitioner for the same purpose, and that the Honorable Company had published the Regulation for Printing office in this year, 1825."[1]

इस प्रकार सरकारी सहायता से भारतीयों को मुद्रण-व्यवसाय के क्षेत्र में सुविधा प्राप्त हो गई तथा इसी कारण टाइप-प्रेस की अपेक्षा लीथो प्रेस का उन्नीसवीं सदी में सबसे अधिक विकास हुआ। यद्यपि लीथो प्रेस का उद्भव टाइप-प्रेस के बहुत बाद हुआ, तथापि इसका प्रचलन सबसे अधिक हुआ।

हिन्दी-क्षेत्र का पहला मुद्रणालय

मैंने इस अध्याय के आरम्भ में यह उल्लेख किया है कि भारत में प्रेसों की स्थापना में निहित मूल प्रवृत्ति धार्मिक साहित्यों का प्रकाशन रही है। यह प्रवृत्ति न केवल विदेशी धर्म-प्रचारकों में ही रही है, बल्कि भारतीयों में भी यह मूलभूत रूप से मौजूद रही है। हिन्दी-क्षेत्रों में स्थापित प्रेस प्रायः भारतीयों के थे। थोड़े धन में लीथो प्रेस की स्थापना कर मुद्रण-व्यवसाय आरम्भ किया जाता था। अतः यह स्वाभाविक था कि ऐसी पुस्तकें छापी जायँ, जिनकी अधिक बिक्री हो सके। इस दृष्टि से ऐसे साहित्य की, जिसका धर्म और शास्त्रीयता से लगाव था, बिक्री की अधिक सम्भावना थी। इस परिप्रेक्ष्य में **रामचरितमानस** सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ रहा है।

हिन्दी-क्षेत्रों में काशी, कानपुर, प्रयाग और लखनऊ के प्रेस इस दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण रहे हैं। हिन्दी की गतिविधि इन्हीं क्षेत्रों में सर्वाधिक रही है। इन क्षेत्रों में काशी का विशेष महत्त्व है। यह संयोग की बात है कि समस्त हिन्दी-क्षेत्र में काशी में सबसे अधिक लीथो प्रेस रहे हैं। हिन्दी-भाषा में जितनी अधिक पुस्तकें उन्नीसवीं सदी में काशी में मुद्रित हुईं, उतनी अन्यान्य स्थानों में नहीं। इस दृष्टि से हिन्दी-क्षेत्र का अद्यावधि ज्ञात प्रथम प्रेस काशी में ही था। यहाँ के **केदार प्रभाकर** तथा **गोपाल चौबे का छापाखाना** से संवत् १८१९ वि०, मिति पूस सुदी एकादशी, सोमवार को **रामचरितमानस** का मुद्रण-प्रकाशन हुआ था। यह लीथो प्रेस था।

रामचरितमानस की यह मुद्रित प्रति हिन्दी की अबतक ज्ञात प्राचीनतम प्रति है। यह पुस्तक देशी कागज पर दस इञ्च लम्बे और साढ़े आठ इञ्च चौड़े आकार में छपी थी। इस पुस्तक के मुखपृष्ठ पर छपी सूचना से इसके सम्बन्ध में पूरी जानकारी मिलती है, जो इस प्रकार है :

श्री काशी विश्वनाथ में केदार प्रभाकर छापाखाना में रामायण तुलसीकृत सातो काण्ड मय तस्वीर छापी गई सो मुहल्ला सोनारपुरा में गोपाल छापाखाना में छापी। लिखा

---

१. प्रिण्टिग प्रेस इन इण्डिया, पृ० १००

दुर्गा मिश्र व छापनेवाले का नाम बेचू मिश्र काडीगर। पोथी जिसको लेना होय सो चाननी चौक में बिहारी चौबे के दुकान पर मिलैगी। संवत् १८१९ मिति पूस सुदी ११ चन्द्रवार।

हिन्दी-क्षेत्र में मुद्रित यही सर्वप्रथम ज्ञात पुस्तक है। हिन्दी-क्षेत्र की दूसरी ज्ञात पुस्तक **'रामायण भाषा'** है। यह पुस्तक कानपुर के **लीथोग्राफिक कम्पनीज प्रेस** से छपी थी। लन्दन के ब्रिटिश म्युजियम पुस्तकालय में यह पुस्तक सुरक्षित है। कृष्णाचार्य के अनुसार कानपुर का लीथोग्राफिक कम्पनीज प्रेस ही हिन्दी का प्रथम मुद्रणालय है।

मुद्रणालय के विकास में सरकार की भूमिका :

मुद्रणालय आधुनिक संस्कृति का आवश्यक एवं प्रमुख अंग है। देश की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और शैक्षणिक जनजागरण का यह बहुत बड़ा माध्यम है। सरकार और जनता के बीच प्रेस एक ऐसी कड़ी है, जिसके माध्यम से जनता की आवाज सरकार तक पहुँचाई जा सकती है। अतः मुद्रणालय के विकास में सरकार की भूमिका भी विचारणीय है।

भारत में सबसे पहले मुद्रणालय का आगमन गोआ में हुआ और वहाँ के राजा और जनता ने इसका स्वागत किया। मुद्रणालय गोआ की जनता के लिए आकर्षण की वस्तु था। यद्यपि गोआ में ईसाई धर्म के प्रचार और धार्मिक साहित्य के प्रकाशन के लिए पुर्तगाल से मुद्रणालय लाया गया था, तथापि गोआ की जनता ने भी इसे पसन्द किया। भारत में आधुनिक मुद्रणालय का आरम्भ कलकत्ता और श्रीरामपुर में हुआ। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने ईसाई मिशनरियों के धर्म-प्रचार, और इस कार्य के लिए प्रेस की स्थापना को अनुचित समझा। इसलिए कम्पनी के अधिकारियों ने प्रोटेस्टेण्ट-मिशन की स्थापना अपनी सीमा में नहीं होने दी। अतः भारत में आधुनिक मुद्रणालय के संस्थापक विलियम केरी को डेनिश सरकार की शरण लेनी पड़ी। डेनिश सरकार की कृपा से ही श्रीरामपुर में बैपटिस्ट प्रोटेस्टेण्ट-मिशन की स्थापना हुई। यहीं विलियम केरी ने प्रेस तथा प्रकाशन-उद्योग आरम्भ किया।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भी अपने मुद्रण-कार्यों के लिए मुद्रणालयों की स्थापना की थी। कम्पनी के निदेशक-मण्डल ने सन् १६७४ ई० में हेनरी मिल्स नामक व्यक्ति को मशीन, टाइप और कागज के साथ बम्बई भेजा था। सन् १७७२ ई० में मद्रास और सन् १७७९ ई० में बम्बई में सरकारी प्रेसों की स्थापना हुई थी। कलकत्ता में भी सरकारी प्रेस स्थापित हुआ था और चार्ल्स विल्किन्स प्रेस के प्रबन्धक नियुक्त किये गये थे।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी को १६ जुलाई, १७५३ ई० को यह पता चला कि उसके अधिकतर प्रेस नाकाम हालत में पड़े हैं। इसी कारण उनका उपयोग नहीं हो रहा है। इसलिए कम्पनी ने आदेश दिया था कि प्रेसों का सर्वेक्षण करा लिया जाय और उनकी मरम्मत कराकर उन्हें उपयोग में लाया जाय।[1]

---

१. इण्डियन प्रेस : मार्गारीटा बर्न्स, पृ० ४४

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपने प्रशासन-कार्य से सम्बद्ध छपाई के लिए प्रेसों की स्थापना की थी, किन्तु जब भारत की जनता ने प्रेसों की स्थापना आरम्भ की, तब सरकार की दृष्टि कठोर और अनुदार हो गई। सरकार ने इसे अपने नियन्त्रण में रखने का विचार किया। गवर्नर जेनरल लॉर्ड वेलेजली ने सबसे पहले सन् १७९९ ई० में मुद्रण-प्रकाशन पर नियन्त्रण लगाने के लिए आदेश जारी किया।

जब कलकत्ता से **'हिक्की-गजट'** का २९ जनवरी, १७८० ई० को प्रकाशन आरम्भ हुआ, तब उसमें प्रकाशित समाचारों पर सरकार की दृष्टि गई। जेम्स ऑगस्टस हिक्की इस पत्र का मुद्रक था। अखबारी व्यवसाय करने के पूर्व वह ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेवा में था। वह सरकारी प्रेस का मुद्रक था। कम्पनी की सेवा से मुक्त होने के बाद उसने मुद्रण-प्रकाशन का व्यवसाय करने को सोचा। उसने दो हजार रुपये कर्ज लेकर कलकत्ता में सन् १७७८ ई० में प्रेस की स्थापना की।

प्रेस की स्थापना के बाद उसने **'हिक्की-गजट'** का प्रकाशन आरम्भ किया। समाचारों के कारण उसे कम्पनी-सरकार का कोप-भाजन बनना पड़ा। कहा जाता है, उसने प्रेस की स्थापना के लिए जो रुपये कर्ज लिये थे, उन्हें वह वापस नहीं कर सका। इस कारण उसे कुछ समय तक जेल की सजा भी भुगतनी पड़ी।

कम्पनी-सरकार ने **'हिक्की-गजट'** पर नियन्त्रण रखने के लिए सन् १७७९ ई० में यह आदेश जारी किया कि प्रत्येक मुद्रक अपने द्वारा मुद्रित कृति के अन्त में अपना नाम छापे। प्रत्येक पत्र का मालिक और सम्पादक अपने नाम और स्थान के सम्बन्ध में सरकार के सचिव को सूचित करे। रविवार को अखबार का प्रकाशन न किया जाय।

कम्पनी-सरकार ने प्रेस की स्थापना तथा पुस्तक-प्रकाशन के प्रति सन् १८२३ ई० में कड़ा रुख अपनाया। बंगाल के गवर्नर एडम ने सन् १८२३ ई० में बंगाल के फोर्ट विलियम-क्षेत्र में 'बंगाल प्रेस-रेगुलेशन ऐक्ट' लागू किया। इस ऐक्ट के अनुसार गर्वनर की आज्ञा के बिना कोई भी व्यक्ति किसी भी प्रेस की स्थापना नहीं कर सकता था। प्रेस की स्थापना के लिए शपथ-पत्र और घोषणा-पत्र जमा करना पड़ता था, जिनमें प्रेस का नाम, स्थान, मुद्रक और प्रकाशक के नाम-पते लिखने पड़ते थे। सरकार द्वारा अनुमति मिलने पर ही प्रेस खोला जा सकता था। प्रेस से मुद्रित-प्रकाशित पुस्तक के प्रथम एवं अन्तिम पृष्ठ पर प्रेस, मुद्रक तथा प्रकाशक का नाम और स्थान का मुद्रण करना आवश्यक बना दिया गया। मुद्रित पुस्तक की प्रति जिलाधिकारी के पास भेजना आवश्यक कर दिया गया।

बंगाल प्रेस ऐक्ट, सन् १८२३ ई० की भाँति ही बम्बई में भी सन् १८२५ ई० में प्रेस-रेगुलेशन ऐक्ट जारी किया गया। प्रेसों पर नियन्त्रण करने की दिशा में यह दूसरा प्रयास था। यह प्रेस-रेगुलेशन ऐक्ट भी बंगाल के प्रेस-रेगुलेशन ऐक्ट की तरह ही था। इसमें भी प्रेस-स्थापना के लिए शपथ-पत्र और घोषणा-पत्र जमा करना जरूरी कर दिया गया था। इसके साथ ही दोषी व्यक्ति के लिए छह महीने की कैद और चार सौ रुपये के अर्थदण्ड का प्रावधान किया गया था। प्रेस का स्थान बदलने पर मुद्रक और प्रकाशक के नाम में परिवर्त्तन करने पर जिलाधिकारी को नया घोषणा-पत्र देना पड़ता था। चार्ल्स मेटकाफ ने

इन ऐक्टों में कुछ संशोधन किया। सरकार ने इन कानूनों में सन् १८५७ ई० और सन् १८६७ ई० में भी कुछ संशोधन किये। यद्यपि प्रेस-स्थापना तथा मुद्रण-प्रकाशन-विषयक मूलभूत धाराएँ यत्किंचित् संशोधन के बाद भी पूर्ववत् रहीं।

पुस्तकों के मुद्रण-प्रकाशन तथा संरक्षण की दृष्टि से सन् १८६७ ई० के प्रेस-कानून का अधिक महत्त्व है। इस कानून के अनुसार पुस्तक में मुद्रक-प्रकाशक का नाम प्रकाशित करना आवश्यक बना दिया गया। पुस्तक की प्रतियाँ क्षेत्रीय जिलाधिकारी, लन्दन की इण्डिया ऑफिस-लाइब्रेरी और ब्रिटिश म्युजियम-लाइब्रेरी को भेजना अनिवार्य कर दिया गया।

इसके साथ ही बुक-डेलिवरी ऐक्ट के अन्तर्गत पुस्तकों के लिए पंजीयन की भी व्यवस्था की गई, जिसमें निम्नलिखित सूचनाएँ संकलित की जाती थीं :

(१) पुस्तक का नाम, (२) पुस्तक की भाषा, (३) लेखक/अनुवादक/सम्पादक, (४) विषय, (५) मुद्रण और प्रकाशन-स्थान, (६) प्रेस का नाम, (७) प्रकाशन की तारीख, (८) पृष्ठ-संख्या, (९) आकार, (१०) संस्करण, (११) कितनी प्रतियाँ मुद्रित हुईं, (१२) लीथो-मुद्रण है या टाइप-मुद्रण — इसकी सूचना, (१३) मूल्य, (१४) पुस्तक के स्वत्वाधिकारी का नाम।

इस सर्वेक्षण से यह पता चलता है कि उन्नीसवीं सदी में मुद्रणालयों के प्रसार में वृद्धि हुई। इससे शिक्षा के प्रचार में बहुत बड़ा बल मिला। अँगरेजी सरकार ने शिक्षा के प्रचार-प्रसार में प्रेसों की उपयोगी भूमिका को देखते हुए प्रेस पर नियन्त्रण लगाने के लिए अनेक उपाय किये, फिर भी प्रेसों के विकास की गति रुकी नहीं, वरन् उसमें अभिवृद्धि ही हुई।
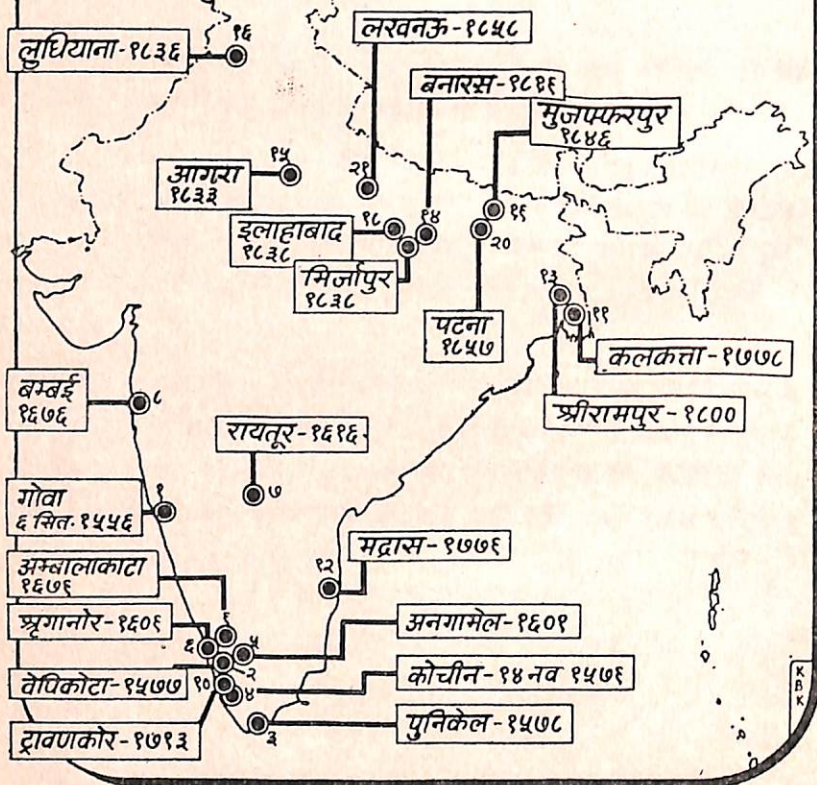
चित्र-सं० : ४

हिन्दी-प्रकाशन का विकास

दूसरा अध्याय

हिन्दी की प्रकाशन-संस्थाएँ

हिन्दी की प्रकाशन-संस्थाओं का उदय—प्रेस के माध्यम से पुस्तक-प्रकाशन वैज्ञानिक युग की उल्लेखनीय प्रगति है। यह ज्ञान-संचार का उपयोगी साधन है। यद्यपि भारत के गोआ-प्रदेश में प्रेस की स्थापना ६ सितम्बर, १५५६ ई० में ही हो गई थी, फिर भी उसकी संख्या में वृद्धि अट्ठारहवीं सदी में हुई। इन प्रेसों की स्थापना ईसाई धर्म के प्रचार के लिए हुई थी। पर, उन्नीसवीं सदी में प्रेस की स्थापना का उद्देश्य बदल गया। अब इन प्रेसों से धार्मिक पुस्तकों की तुलना में विभिन्न विषयों की शिक्षा-सम्बन्धी पुस्तकें अधिक संख्या में मुद्रित होने लगीं। इतना ही नहीं, उन्नीसवीं सदी के पहले के प्रेस, केवल धर्म-प्रचार के लिए स्थापित किये गये थे। बाद में व्यावसायिक दृष्टि से भी अनेक प्रेस खोले गये।

जेसुइट मिशनरी सेण्ट जेवियर ने ईसाई धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए सन् १५५६ ई० में गोआ के सेण्टपॉल कॉलेज में प्रेस की स्थापना कर प्रकारान्तर से भारत में प्रकाशन-संस्था की आधार-शिला रखी थी। उस संस्था ने सन् १५६० ई० में पुर्त्तगाली भाषा की **कम्पेण्डियो स्पिरिचुअल डा विडा क्रिस्टा** नामक पुस्तक प्रकाशित की, जो भारत में मुद्रित पहली पुस्तक थी। इस संस्था से प्रकाशित पुस्तकों की भाषा इटालवी और पुर्त्तगाली होती थी। यद्यपि अट्ठारहवीं सदी के आठवें-नवें दशक तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी और कुछ उद्यमी अँगरेजों ने मद्रास और कलकत्ता में प्रेसों की स्थापना की थी, तथापि इन प्रेसों का उपयोग निजी कार्यों के लिए होता था। भारत में पुस्तक-प्रकाशन का समारम्भ गोआ के जेसुइट मिशन ने ही किया।

हिन्दी की प्रकाशन-संस्थाओं का उदय उन्नीसवीं सदी के पहले दशक में हुआ। सबसे पहले फोर्ट विलियम कॉलेज और श्रीरामपुर-मिशन ने हिन्दी-प्रकाशन का कार्य शुरू किया। तदनन्तर ईसाई मिशनरियों ने धर्म-प्रचार के लिए विभिन्न प्रेसों की स्थापना की। यद्यपि इनका प्रमुख लक्ष्य धर्म-सम्बन्धी पुस्तकें प्रकाशित करना था, तथापि शिक्षा-सम्बन्धी कई पुस्तकें भी इन्होंने प्रकाशित कीं। ईसाई मिशनरियों के पास निजी प्रेस था। वे अपनी पुस्तकें छापती थीं, साथ ही दूसरों की पुस्तकें भी वे अपने प्रेस से मुद्रित कर दिया करती थीं। उस युग की अधिकतर प्रकाशन-संस्थाओं के पास निजी प्रेस न था। वे अपने प्रकाशनों का मुद्रण दूसरे प्रेसों से कराती थीं।

उन्नीसवीं सदी में हिन्दी-प्रकाशन-संस्थाओं का विकास-क्रम निर्दिष्ट करने के लिए उसका काल-विभाजन निम्नांकित तीन वर्गों में करना समीचीन होगा :

मिशन-युग, : सन् १८००—१८५८ ई०,
नवलकिशोर-युग : सन् १८५८—१८८० ई० और
खड्गविलास-युग : सन् १८८०—१६३६ ई०

मिशन-युग : सन् १८००—१८५८ ई०

हिन्दी-पुस्तकों के प्रकाशन की दृष्टि से ईसाई मिशनरियों का योगदान महत्त्वपूर्ण है। श्रीरामपुर-मिशन और उसके प्रेस के संचालक **विलियम केरी** ने इस कार्य का शुभारम्भ किया। फोर्ट विलियम कॉलेज के अध्यापकों ने भी अपने छात्रों के उपयोग के लिए पुस्तकें लिखीं, किन्तु ईसाई मिशनरियों ने धर्म-प्रचार के अतिरिक्त लोकहित की दृष्टि से भी अनेक पुस्तकें प्रकाशित कीं। उन दिनों मिशनरियों की संस्थाएँ बहुत अधिक संख्या में काम कर रही थीं। कलकत्ता स्कूल-बुक सोसाइटी, आगरा स्कूल-बुक सोसाइटी, लुधियाना मिशन, सिकन्दरा छापाखाना, मिर्जापुर का ऑरफन प्रेस, आगरा स्कूल-बुक सोसाइटी, बम्बई स्कूल-बुक सोसाइटी, मुजफ्फरपुर का मिशन प्रेस, कलकत्ता बुक-ट्रैक्ट सोसाइटी और मिशन प्रेस, इलाहाबाद इस युग की प्रमुख प्रकाशन-संस्थाएँ थीं, जिन्होंने सन् १८५४ ई० तक हिन्दी में विभिन्न विषयों की पुस्तकें प्रकाशित कीं। इन संस्थाओं में से अधिकतर के पास अपने प्रेस थे। जिन संस्थाओं के पास अपना प्रेस नहीं था, वे अपनी पुस्तकें कलकत्ता के बैप्टिस्ट मिशन प्रेस और इलाहाबाद के मिशन प्रेस से छपाती थीं। इनमें से अनेक संस्थाओं ने विभिन्न विद्यालयों की भी स्थापना की थी, जिनमें इनकी पुस्तकें पढ़ाई जाती थीं। चौवन वर्षों तक मिशनरियों की प्रकाशन-संस्थाओं ने ही हिन्दी-प्रकाशन का प्रतिनिधित्व किया है, इसलिए इस काल को हमने '**मिशन-युग**' माना है।

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि इस युग में यद्यपि ईसाई मिशनों की प्रकाशन-संस्थाओं की प्रधानता थी, तथापि कुछ भारतीयों और कुछ सरकारी प्रकाशन-संस्थाओं ने भी इस दिशा में कार्य किया। संस्कृत यन्त्रालय, केदार प्रभाकर प्रेस, सारसुधानिधि यन्त्रालय, क्षीरोदय सागर यन्त्र, गणपति कृष्णाजी प्रेस, हरिप्रकाश यन्त्रालय, सुधाकर यन्त्रालय, मतवा बनारस अखबार आदि भारतीयों की निजी प्रकाशन-संस्थाएँ थीं। फोर्ट विलियम कॉलेज और इलाहाबाद का गवर्नमेण्ट प्रेस—दोनों सरकारी संस्थाएँ थीं। इन सबका कार्य उल्लेखनीय है।

ईसाई मिशनरियों के पास टाइप-प्रेस थे। उनकी पुस्तकों का मुद्रण साफ और आकर्षक होता था। पुस्तकों के मुखपृष्ठ बेलबूटे देकर चित्ताकर्षक बनाये जाते थे। भारतीयों के पास लीथो प्रेस थे। उनके प्रकाशन भी मुद्रण की दृष्टि से साफ और आकर्षक होते थे। लीथो पर छपनेवाली पुस्तकों के आरम्भिक पृष्ठ पर लेखक का नाम छपता था। अन्तिम पृष्ठ पर पुष्पिका दी जाती थी, जिसमें पुस्तक-लेखक, मुद्रक और प्रकाशक के नामों के अतिरिक्त प्रकाशन-तिथि भी अंकित रहती थी।

१. श्रीरामपुर-मिशनरी : हुगली, सन् १८०० ई०

श्रीरामपुर प्रोटेस्टेण्ट मिशनरी का प्रादुर्भाव ११ नवम्बर, १७९५ ई० को कलकत्ता के निकट मदनावती में हो गया था। प्रायः पाँच वर्षों बाद १६ जनवरी, १८०० ई० को यह मिशन कलकत्ता से सोलह मील दूर स्थित श्रीरामपुर नामक स्थान में आ गया। उसके संस्थापकों में भाषाशास्त्री विलियम केरी, शिक्षाविद् जोशुआ मार्शमैन और मुद्रक विलियम वार्ड थे।

विलियम केरी ने ४७ पौण्ड में कलकत्ता में एक प्रेस खरीदकर मदनावती में स्थापित किया। वही श्रीरामपुर आया और वहीं से इसमें हिन्दी-पुस्तकें छपने लगीं। विलियम केरी ने बाइबिल का बँगला के अतिरिक्त हिन्दी में भी पहला अनुवाद किया। विलियम वार्ड प्रशिक्षित मुद्रक था। विलियम वार्ड का सहयोग केरी के लिए मुद्रण-प्रकाशन की दृष्टि से, वरदान प्रमाणित हुआ। केरी तथा मार्शमैन शिक्षण एवं लेखन-कार्य करते थे और वार्ड उनकी रचनाओं को मुद्रित कर प्रकाश में लाता था। इस प्रेस से सन् १८०१ ई० में बँगला-टाइप में बँगला-बाइबिल का मुद्रण-प्रकाशन हुआ।

उस प्रेस के कार्यों तथा विलियम वार्ड के अध्यवसाय का विवरण देते हुए 'मिशनरी-त्रयी' के जीवनी-लेखक मार्शमैन ने वॉर्ड का सन् १८११ ई० का एक पत्र इस प्रकार उद्धृत किया है :

"As you enter, you see your cousin, in a small room reading or writing, and looking over the office, which is more than 170 ft. long. There you find, Indians translating the scriptures into the different tongues or correcting proof-sheets. You observe, laid out in cases, types in Arabic, Persian, Nagari, Telugu, Punjabi, Bengali, Marathi, Chinese, Oriya, Burmese, Kanarease, Greek, Hebrew, and English. Hindus, Musalmans and Christian Indians are busy—composing, correcting...distributing. Beyond the office are the varied type-casters, besides a group of men making ink, and in spacious open walled round place, our paper mill, for we manufacture our own paper."[१]

श्रीरामपुर-मिशन की मुद्रण-संस्था में सन् १८१३ ई० तक छह मुद्रण-यन्त्र हो गये। श्रीरामपुर-मिशन ने प्रकाशन का काम बाइबिल से आरम्भ किया। उसका प्रमुख कार्य बाइबिल का भारतीय भाषाओं में अनुवाद तथा प्रकाशन था।

बँगला-बाइबिल का मुद्रण सन् १८०१ ई० में हुआ। सन् १८२२ ई० तक वहाँ से लगभग पैंतीस भाषाओं में बाइबिल के मुद्रण और प्रकाशन हुए।

बाइबिल के अनुवाद, मुद्रण और प्रकाशन का प्रयास सन् १६८८ ई० में तमिल-भाषा में किया गया। जेगेन्बाल्ग ने तमिल में बाइबिल का सन् १७७५ ई० में अनुवाद किया, किन्तु यह श्रम प्रकाशन के अभाव में विफल रहा। इस कार्य को श्रीरामपुर की प्रोटेस्टैण्ट मिशनरी ने किया। इस मिशन ने सन् १८११ ई० में कैथी तथा देवनागरी-लिपि में न्यू-टेस्टामेण्ट मुद्रित किया, पर ये दोनों पुस्तकें अधूरी ही छप पाईं। इसके बाद 'धर्म की पोथी' नाम से पाँच भागों में धार्मिक गद्य-ग्रन्थ का मुद्रण शुरू हुआ। इस ग्रन्थ के पाँचों भाग सन् १८११ ई० के मध्य छपे। श्रीरामपुर-मिशन के संस्थापक एक-एक करके सन् १८३७ ई० तक चल बसे। विलियम वार्ड की मृत्यु ७ मार्च, १८२३ ई० को; विलियम केरी की जून, १८३४ ई० को और मार्शमैन की ३ दिसम्बर, १८३७ ई० को हो गई। मार्शमैन के निधन

१. द केरी एक्जीबिशन ऑफ अर्ली प्रिण्टिंग ऐण्ड फाइन प्रिण्टिंग, पृ० ८

के साथ ही मिशन का प्रकाशन-कार्य बन्द हो गया। इस मिशन ने गद्य में धार्मिक ग्रन्थों को छापकर हिन्दी-गद्य के विकास में योग दिया। इसके अतिरिक्त इसने पुस्तक-प्रकाशन की दिशा में कार्य करने की प्रेरणा अन्य लोगों को भी दी।

विलियम केरी ने देवनागरी में जिस गद्य का व्यवहार किया, वह निश्चित रूप से गिलक्राइस्ट की हिन्दुस्तानी से भिन्न था। केरी, खड़ी बोली हिन्दी के संस्कृतनिष्ठ रूप को उचित समझते थे तथा अपनी रचनाओं में उन्होंने उसी का व्यवहार किया है। इस मिशन से कुल दो हजार खण्ड-ग्रन्थों के प्रकाशन किये गये, जिनका मूल्य अस्सी हजार पौण्ड आँका गया है।

२. फोर्टविलियम कॉलेज (सन् १८००—१८५४ ई०)

यद्यपि उन्नीसवीं सदी के आरम्भिक ५८ वर्षों में सबसे अधिक प्रकाशन-कार्य ईसाई मिशनरियों ने किया, तथापि कलकत्ता के फोर्टविलियम कॉलेज के हिन्दी-प्रकाशनों का विशेष महत्त्व माना जाता है; क्योंकि इसके पूर्व की अथवा समकालिक अन्य प्रकाशन-संस्थाएँ धार्मिक थीं, पर 'कॉलेज' एक शैक्षणिक संस्था के रूप में था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के नये कर्मचारियों को देशी भाषाओं का ज्ञान कराने के लिए मार्क्विस वेलेज़ली एक ऐसी संस्था का गठन करना चाहता था, जहाँ उन्हें प्रशिक्षित किया जा सके। उसने इस उद्देश्य से २४ दिसम्बर, १७९८ ई० को कलकत्ता में 'ओरियण्टल सेमिनरी' की स्थापना की। जॉन बार्थविक गिलक्राइस्ट उस संस्था के प्रथम प्राचार्य हुए। सेमिनरी का अध्यापन-कार्य कलकत्ता के राइटर्स बिल्डिंग्स के कमरा-नम्बर ११ में होता था। गिलक्राइस्ट शिक्षार्थियों को हिन्दुस्तानी और फारसी पढ़ाते थे। परीक्षा-कमिटी ने सेमिनरी के प्रशिक्षणार्थियों की ९ जनवरी, १८०० ई० को परीक्षा ली और उसका विवरण कौंसिल को भेज दिया। कमिटी ने सेमिनरी और जॉन गिलक्राइस्ट के कार्यों की प्रशंसा की। गवर्नर जेनरल ने भी उनकी प्रशंसा में लिखा :

"हिन्दुस्तानी के महत्त्वपूर्ण व्याकरण और कोश का निर्माण करने से हिन्दुस्तान की सर्व-प्रचलित भाषा का ज्ञान प्राप्त करने में विद्यार्थियों को जो सुविधा हुई है, उसके लिए हम गिलक्राइस्ट महोदय की अत्यन्त सराहना करते हैं। उन्होंने जिस उत्साह, योग्यता और परिश्रम के साथ कम्पनी-कर्मचारियों (जूनियर सिविल सर्वेण्ट्स) को हिन्दुस्तानी और फारसी भाषाओं की शिक्षा देने में अपने कर्त्तव्य का पालन किया है, उसके लिए वे प्रशंसा के पात्र हैं।"[१]

वेलेज़ली को इस सेमिनरी की स्थापना से ही सन्तोष नहीं हुआ। वे चाहते थे कि एक ऐसे कॉलेज की स्थापना की जाय, जहाँ कुशल प्रशासक, न्यायाधीश और राजनीतिज्ञ तैयार हो सकें। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए फोर्टविलियम कॉलेज की स्थापना २४ नवम्बर, १८०० ई० को हुई। जॉन गिलक्राइस्ट उस संस्था के हिन्दुस्तानी भाषा के अध्यक्ष और कॉलेज के प्राचार्य बनाये गये। हिन्दी के साथ उर्दू और फारसी की भी कक्षाएँ चलने लगीं। उस संस्था को १० अप्रैल, १८०१ ई० में चार्टर्ड किया गया और

---

१. फोर्टविलियम कॉलेज, पृ० १०

ओरियण्टल सेमिनरी को उसमें मिला दिया गया। गिलक्राइस्ट को सेमिनरी में अध्यापन करते समय पुस्तकों का अभाव महसूस हुआ, इसलिए उन्होंने अपेक्षित पुस्तकों की स्वयं रचना की और कॉलेज में भाषा-मुंशियों को नियुक्त कर उनसे पुस्तकें लिखवाईं। पुस्तकों के प्रकाशन के लिए उन्होंने प्रेस की आवश्यकता का अनुभव किया। अबतक वहाँ तैयार की गई पुस्तकें दूसरे प्रेसों से मुद्रित कराई जाती थीं। फ्रांसिस ग्लैडविन ने कॉलेज को एक प्रेस उपहार में दिया था। जॉन गिलक्राइस्ट ने हिन्दुस्तानी भाषा की पुस्तकों के मुद्रण के लिए इस प्रेस की कौंसिल से माँग की। उन्होंने गवर्नर को लिखा था :

"As the types and printing materials which Mr. Gladwin presented to the college, are probably the best now to be procured, I request you will state to the College Council, my wish to take charge of, and employ them for the good my department here, in the works I am about to publish in the Hindustani language. I promise to return the whole when demanded, and to make good any deficiencies that may happen while in my custody; at the same time, I rely on the consideration and liberality of the Council, to give me timely notice of their intentions to use the types in the college, that I may provide myself in due reason, with others to accomplish the literary works, to which I alluded above."[१]

गिलक्राइस्ट के उक्त आवेदन पर कॉलेज-कौंसिल के सदस्यों ने ३० जनवरी, १८०२ ई० को विचार कर उन्हें प्रेस देने तथा मुद्रण-कार्य की अनुमति प्रदान की थी :

"Agreed that Mr. Gilchrist be allowed the use (under the conditions expressed in his letters) of the Printing Press and other materials presented lately to the college by Mr. Francis Gladwin."[२]

गिलक्राइस्ट ने इस प्रेस का नाम '**हिन्दुस्तानी प्रेस**' रखा और अब कॉलेज की पुस्तकें इसी में छपने लगीं। यह प्रेस ७१, काशीटोला स्ट्रीट, कलकत्ता में स्थापित हुआ। इसमें छपी कुछ महत्त्वपूर्ण हिन्दी-पुस्तकों का विवरण आगे दिया जाता है :

'**नकलियाति हिन्दी**', जिसमें ३९, ४०, ५१ तथा ६८ पृष्ठ थे। इसको उर्दू, फारसी तथा नागरी-लिपि में मुद्रित-प्रकाशित किया। इस पुस्तक का दूसरा संस्करण भी इसी प्रेस से सन् १८०६ ई० में हुआ था। लल्लूजी लाल कवि का प्रसिद्ध ग्रन्थ '**प्रेमसागर**' भी सन् १८०३ ई० में इसी मुद्रणालय से छपा था। इस ग्रन्थ में कुल १७१ पृष्ठ थे। पुस्तक अधूरी मुद्रित की गई थी। इस पुस्तक से ज्ञात होता है कि हिन्दुस्तानी में मुद्रक का कार्य मुँशी मुहम्मद अहसन किया करते थे।

इस प्रेस से सन् १८०४ ई० में जॉन गिलक्राइस्ट का '**हिन्दी रोमन आर्थो-एपिग्राफिकल अल्टीमेटम**' नामक ग्रन्थ छपा। इसके आरम्भ के २३ पृष्ठों में अँगरेजी-भूमिका तथा २४ से

१. हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न हिन्दी-लिटरेचर, पृ० ११७
२. वही, पृ० ११८

८४ पृष्ठ में 'शकुन्तला-नाटक' की कहानी रोमन-लिपि में दी हुई है। इसकी रचना फोर्ट-विलियम कॉलेज के विद्यार्थियों के लिए हुई थी।

विलियम हण्टर के **'द न्यू टेस्टामेण्ट'** का मुद्रण इस प्रेस से सन् १८०५ ई० में हुआ। पुस्तक नागरी-लिपि में है। देवनागरी-लिपि में मुद्रित बाइबिलों में यह पहली ज्ञात बाइबिल है। इसकी पृष्ठ-संख्या ४८० है। यह कलकत्ता की एशियाटिक सोसाइटी के पुस्तकालय में उपलब्ध है।

मोतीराम कवीश्वर की ब्रजभाषा-पुस्तक **'माधोनल कामकन्दला'** का फोर्टविलियम कॉलेज के भाषा-मुंशी मजहरअली खाँ 'विला' ने हिन्दुस्तानी में अनुवाद किया। पुस्तक २० पृष्ठों की है। कवीश्वरजी की दूसरी ब्रजभाषा-पुस्तक **'सिंहासनबत्तीसी'** का संयुक्त रूप में मिर्जा काज़िमअली 'जवाँ' तथा लल्लूजी 'लाल' ने हिन्दुस्तानी भाषा में अनुवाद किया। यह २५२ पृष्ठों की पुस्तक थी। इसका दूसरा संस्करण सन् १८१६ ई० में हुआ। कॉलेज के मुंशी मजहरअली खाँ 'विला' तथा लल्लूलाल कवि द्वारा हिन्दुस्तानी में अनूदित सूरत मिश्र-रचित **'बैतालपचीसी'** यहाँ से सन् १८०५ ई० में मुद्रित हुई। इसमें १७९ पृष्ठ थे। इसका दूसरा संस्करण सन् १८०९ ई० में हुआ। इस प्रेस से सन् १८०८ ई० में **'अल्फाज-ए-फारसी ओ हिन्दी'** छापी गई, जो २१६ पृष्ठों की थी।

लल्लूजी 'लाल' ने **हितोपदेश** का हिन्दुस्तानी में **'राजनीति'** नाम से जो अनुवाद किया, वह यहाँ से सन् १८०९ ई० में छपा। इस पुस्तक का सम्पादित संस्करण विलियम प्राइस ने सन् १८२७ ई० में कलकत्ता से ही मुद्रित कराया था। विलियम प्राइस के संकलन **'एवोकेबुलरी : खड़ी बोली एण्ड हिन्दी'** का इस प्रेस से सन् १८१४ ई० में मुद्रण किया गया, जिसमें १४२ पृष्ठ थे। इसमें उन्हीं शब्दों का संग्रह है, जो 'प्रेमसागर' में प्रयुक्त हैं। इस प्रेस से पुनः 'न्यू टेस्टामेण्ट' का मुद्रण सन् १८१७ ई० में किया गया, जिसमें ८३० पृष्ठ थे। इस प्रेस से रैमजे एण्ड्रयूज फार्ब्ज कृत **रोगान्तक सार** नामक पुस्तक का सन् १८२१ ई० में मुद्रण-प्रकाशन हुआ, जो २०२ पृष्ठों की है।

अबतक इस प्रेस से मुद्रित नागरी-लिपि के बारह ग्रन्थ मिले हैं, जिनमें से अधिकतर पुस्तकें फोर्टविलियम कॉलेज के लिए छापी गई थीं।

३. संस्कृत-प्रेस (सन् १८०६-७ ई०)

हिन्दी के साहित्यिक ग्रन्थों को प्रकाशित करने का श्रेय कलकत्ता के संस्कृत-प्रेस को है। इस प्रेस ने हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत और बँगला की भी पुस्तकें छापीं। इसके संस्थापक मिर्जापुर-निवासी बाबूराम नामक व्यक्ति थे।[1] यह प्रेस कलकत्ता के खिदिरपुर मुहल्ले में था। लगभग सन् १८१५ ई० में इस प्रेस के संचालक और स्वामी लल्लूजी लाल कवि हो गये। बाबूराम संस्कृत जानते थे तथा प्रसिद्ध अँगरेज संस्कृतज्ञ कोलब्रुक की प्रेरणा से उन्होंने संस्कृत-ग्रन्थ छापना आरम्भ किया। इस प्रेस के विषय में फोर्टविलियम कॉलेज के सातवें विवरण (सन् १८०८ ई०) में लिखा है :

---

१. पत्र और पत्रकार, पृ० ११६

"एक छापाखाना एक विद्वान् हिन्दू द्वारा अच्छे सुधारे हुए कई आकार के नागरी-टाइपों से सुसज्जित रूप में संस्कृत की पुस्तकें छापने के लिए स्थापित हुआ है........कॉलेज ने इस प्रेस को सर्वोत्तम संस्कृत-कोश और संस्कृत-व्याकरण छापने के लिए प्रोत्साहित किया है। आशा की जाती है कि हिन्दुओं में **संस्कृत-प्रेस** द्वारा मुद्रण-कला के समारम्भ से बहुसंख्यक और पुरानी सभ्यता की जाति में शिक्षा की वृद्धि होगी, इससे बचे हुए साहित्य और विज्ञान का **रक्षण** भी होगा।"[1]

बाबूराम से इस प्रेस का स्वामित्व लल्लूजी को कब प्राप्त हुआ, इसका उल्लेख नहीं मिलता। किन्तु, यह प्रेस कलकत्ता के खिदिरपुर मुहल्ले से पटलडाँगा मुहल्ले में सन् १८१९ ई० में स्थानान्तरित हो गया था। इस प्रेस के लिए लल्लूजी ने **'निज यन्त्र'**, **'निज छापाखाने'** तथा **'लल्लूजी के छापेखाने'** लिखा है। इसका वास्तविक नाम **'संस्कृत-प्रेस'** या **'संस्कृत यन्त्र'** था।

यह प्रेस लल्लूजी के कलकत्ता-प्रवास-काल तक वहीं चलता रहा। कहा जाता है कि लल्लूजी जब सन् १८२४ ई० में आगरा लौटे तब वे अपने साथ इसे भी लेते गये।

'संस्कृत-प्रेस' हिन्दी-जगत् की प्रथम ऐसी मुद्रण-प्रकाशन संस्था थी, जिसने तुलसीदास, बिहारी, नरोत्तमदास, ब्रजवासीदास प्रभृति कवियों की रचनाओं को जनसामान्य के समक्ष उपस्थित किया। आधुनिक हिन्दी का गद्य-ग्रन्थ **'प्रेमसागर'** सम्पूर्ण रूप में पहले-पहल वहीं से मुद्रित और प्रकाशित हुआ। यह टाइप-प्रेस था, जिसके पास विभिन्न प्रकार के हिन्दी-टाइप थे। लल्लूजी प्रथम ऐसे भारतीय थे, जिनका अपना प्रेस था और जिन्होंने उसके माध्यम से लगभग सोलह वर्षों तक हिन्दी-साहित्य के अनेक ग्रन्थों को मुद्रित और प्रकाशित कर हिन्दी की अमूल्य सेवा की।

इस प्रेस से सर्वप्रथम सन् १८०७ ई० में तुलसीदास की **'कृष्णगीतावली'** (२५ पृ०) और **'रामसगुनावली'** (३७ पृ०) प्रकाशित हुईं। सन् १८१० ई० में लल्लूजी लाल का **'प्रेमसागर'** (४२९ पृ०) मुद्रित हुआ। इसी वर्ष **'बिहारी-सतसई'** के मुद्रण का उल्लेख मिलता है। इसी वर्ष वली मुहम्मद वजीर की **'अशआर मियां नजीर'** का प्रकाशन हुआ।

पण्डित सदल मिश्र द्वारा सम्पादित **रामचरितमानस** 'रामायण' (५०० पृ०) नाम से सन् १८११ ई० (१८६७ वि०) में मुद्रित हुआ। इसी प्रेस से २८ अगस्त १८१४ ई० को **मतिराम-कृत 'रसराज'** छपा।

यहाँ से लल्लूजी लाल की **'अथ अंगरेजी हिन्दी पारसी बोली लिख्यते'** पुस्तक मुद्रित हुई। यह हिन्दी का पहला शब्दकोश है, जिसमें हिन्दी के ३६०० शब्दों के फारसी और अँगरेजी पर्याय दिये गये हैं। लल्लूजी लाल कवि का प्रसिद्ध पाठ्य-संग्रह **'सभाविलास'** (३८ पृ०) यहीं से मुद्रित और प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में रहीम, तुलसी, वृन्द, खुसरो प्रभृति की

१, (अ) हिन्दी के आदिमुद्रित ग्रन्थ, पृ० २५
(ब) वही, परिशिष्ट, पृ० १२
(स) पत्र और पत्रकार, पृ० ११६

रचनाएँ संकलित हैं। इसका प्रथम संस्करण सन् १८१५ ई० में मुद्रित हुआ तथा सन् १८१५ ई० से सन् १८७७ ई० के मध्य इसके बीस संस्करण हुए।

लल्लूजी लाल द्वारा सम्पादित 'व्रजविलास' इस प्रेस से सन् १८१७ ई० के लगभग मुद्रित हुआ। उसी वर्ष 'माधव-विलास' (७० पृ०) भी छपा। पुस्तक के अन्त में संस्कृत-प्रेस से प्रकाशित पुस्तकों की सूचना इस प्रकार दी गई है :

"जा काहू कौं छापे की पोथी लैवे की अभिलाषा होय माधव विलास, श्री व्रजविलास, सिंहासन बत्तीसी, नजीर के शैर, वृन्द सतसई, सभाविलास, श्री तुलसीकृत रामायण, विनय-पत्रिका, प्रेमसागर, राजनीति, अँगरेजी बोली भाषा कायदा, लतायफ हिन्दी, सर्फ उर्दू, ताकौं कलकत्ता में द्वै ठौर मिलि है। एक ठंठनिया बाजार में श्री लल्लूजी के यहाँ अरु दूजे बड़े बाजार में श्री बाबू मोतीचन्द गोपालदास की कोठी में हरदेव सेठ के यहाँ इति।"[1]

४. कलकत्ता स्कूल-बुक सोसाइटी (सन् १८१७ – ३४ ई०)

इस प्रकाशन-संस्थान की स्थापना पहली जुलाई सन् १८१७ ई० को कलकत्ता में हुई थी। यह संस्था जनसामान्य में शिक्षा के प्रसार और उसका स्तर ऊँचा उठाने के लिए प्रयत्न-शील थी। इसका मुख्य उद्देश्य था—स्कूलों के लिए पाठ्यपुस्तकों की रचना एवं प्रकाशन। इसने ईसाई धर्म के प्रचार-साहित्य से अपने को अलग रखने का प्रयास किया।

इस संस्था के संचालन के लिए चौबीस व्यक्तियों की प्रबन्ध-समिति थी, जिसका प्रतिवर्ष निर्वाचन हुआ करता था। चौबीस व्यक्तियों की प्रबन्ध-समिति में सोलह यूरोपीय और आठ भारतीय सदस्य होते थे। प्रबन्ध-समिति के प्रथम वर्ष के सदस्यों में सर इ० एच० ईस्ट, आर० रॉक, जे० एच० हैरिंगटन, डब्ल्यू० बी० बेली, डाक्टर विलियम केरी, रेवरेण्ड जे० पारसॉन, रेवरेण्ड टी० थॉमसन, कैप्टन जे० डब्ल्यू० टायलर, ए० लॉकेट, थामस रॉयबॉक, डब्ल्यू० एच० मैकनाथेन, इ० एस० मांदग्यू, जेम्स रॉबिन्सन, एन० वैली, इ० मैकिनतॉश (कोषाध्यक्ष), लेफ्टिनेण्ट एफ० इरविन (सचिव), मौलवी उमिनाल्लाह, मौलवी कुरुम हुसेन, मृत्युंजय विआलुनियर और तारिणीचरण मित्र थे।

प्रबन्ध-समिति के अन्तर्गत तीन उपसमितियाँ थीं, जिनमें प्रथम उपसमिति अँगरेजी-भाषा की पाठ्यपुस्तक-निर्माण-समिति थी। दूसरी उपसमिति अरबी, फारसी और हिन्दुस्तानी भाषा की पाठ्यपुस्तकों के लिए थी। तीसरी उपसमिति संस्कृत-भाषा की पाठ्यपुस्तक-निर्माण के लिए थी। इस संस्था की सदस्यता के लिए समिति ने बाद में यह निश्चय किया कि किसी भी राष्ट्रीयता के व्यक्ति को, जो इस संस्था के कोष में एक निश्चित रकम देगा, इसकी सदस्यता प्रदान की जायगी। उसे वार्षिक बैठक में मतदान का भी अधिकार प्राप्त था। प्रथम वर्ष की प्रबन्ध-समिति के अध्यक्ष डब्ल्यू० बी० बेली तथा सचिव लेफ्टिनेण्ट इरविन और तारिणीचरण मित्र निर्वाचित हुए थे। प्रबन्ध-समिति में दो सचिव होते थे, जिनमें एक भारतीय होता था। दोनों सचिव पदेन प्रबन्ध-समिति के सदस्य होते थे।

१, द डेवलपमेण्ट ऑफ हिन्दी प्रोज-लिटरेचर इन द अर्ली नाइण्टीन्थ सेंचरी, पृ० १२८

इस संस्था ने पाठशालाओं एवं स्कूलों के लिए हिन्दी में पुस्तकों के लेखन तथा प्रकाशन का काम शुरू किया। इसके पास निजी मुद्रणालय नहीं था। पुस्तकें कलकत्ता के मिशन-प्रेस में मुद्रित होती थीं। संस्था की प्रकाशित पुस्तकें उत्तर-पश्चिम प्रान्त, बनारस और आगरा तक के स्कूलों में पढ़ाई जाती थीं।

इस संस्था द्वारा प्रकाशित पुस्तकों में 'नीति-कथा', पाठशाला में बैठवाने की रीति, भूगोल-वृत्तान्त, उपदेशकथा, ऐड्म साहब का हिन्दी-व्याकरण (१८२७ ई०) और हिन्दी-कोश (१८२९ ई०), दूसरा संस्करण (१८३९ ई०), हिन्दी में कथाएँ (१८३२ ई०), शिष्यबोधक सिंहासन बत्तीसी (१८४२ ई०), मैथ्यू थॉमसन ऐडम-कृत 'हिन्दी-भाषा का व्याकरण' (१८४६ ई०), (ए हिन्दी-ग्रामर) (१८५३ ई०), रामायण सातकाण्ड और पदार्थ विद्यासार प्रमुख थीं। ये सभी पाठ्यपुस्तकें थीं, जिनका अँगरेजी से हिन्दी में अनुवाद किया गया था। मौलिक ग्रन्थों का अभाव था। सभी ग्रन्थों के लेखक अँगरेज थे।

५. बैप्टिस्ट मिशन-प्रेस, कलकत्ता (सन् १८१८ ई०)

यह मुद्रणालय बैप्टिस्ट मिशन का था। इसकी स्थापना कलकत्ता में सन् १८१८ ई० में हुई थी। इस मुद्रणालय का मुख्य कार्य मिशन-स्कूलों के लिए भारतीय भाषाओं में तैयार किये गये ग्रन्थों को मुद्रित-प्रकाशित करना था। इस प्रेस ने अपने निजी प्रकाशनों के अतिरिक्त अन्य मिशनरी संस्थाओं के लिए भी स्कूली पुस्तकों का मुद्रण किया था। कलकत्ता बुक-सोसाइटी के लिए नीतिकथा, स्त्री-शिक्षा-विधायक और हिन्दी-शब्दकोश यहीं से छपे।

६. केदार प्रभाकर छापाखाना (सन् १८१९ ई०)

पण्डित रामप्रसाद तिवारी नामक किसी पुस्तक-व्यवसायी ने काशी के सोनारपुरा मुहल्ले में 'केदार प्रभाकर' नामक लीथो छापाखाने की स्थापना की थी। वे पुस्तक छापते भी थे तथा उसके प्रकाशक भी थे। बनारस में चाँदनी चौक में (वर्त्तमान चौक थाना के पीछे) किताबों की उनकी अपनी दूकान भी थी। इस प्रेस द्वारा सन् १८१९ ई० में मुद्रित ग्रन्थों का पता चला है, पर इसकी स्थापना की निश्चित तिथि अज्ञात है। सम्भव है, सन् १८१९ ई० में ही इसकी स्थापना हुई हो।

इस प्रकाशन-संस्था का विशेष महत्त्व इसलिए है कि यहाँ से संवत् १९४१ वि० में पहले-पहल तुलसी-साहित्य का शुद्ध संस्करण प्रकाशित हुआ। यहाँ से प्रकाशित 'रामचरित-मानस' की पुष्पिका में पुस्तक-प्रकाशन-तिथि का उल्लेख इस प्रकार है :

'श्री काशी विश्वनाथपुरी में केदार प्रभाकर छापाखाना में रामायण तुलसीकृत सातोकाण्ड मय तस्वीर छापी गयी सो मुहल्ला सोनारपुरा में गोपाल चौबे के छापाखाना में छापी—लिखा दुर्गा मिश्र वो छापनेवाले का नाम बेचू काडीगर। पोथी जिसको लेना होय सो चाननी चौक में बिहारी चौबे की दुकान पर मिलैगी। संवत् १८१९ मिति पूस सुदी ११ चन्द्रवार।'[1]

इसी प्रेस से संवत् १९५१ विक्रमी में, १९४१ वि० वाले संस्करण का पुनर्मुद्रण हुआ। इस संस्करणवाले मानस के प्रथम पृष्ठ पर छपी निम्नलिखित सूचनाओं से ज्ञात होता है

---

१. मानस-अनुशीलन : शंभुनारायण चौबे, पृ० ४

कि इस प्रकाशन-संस्था के संस्थापक सोनारपुरा-निवासी रामप्रसाद तिवारी थे।

"राम ·रित मानस श्रीरामकृपा तें गोस्वामी तुलसीदास कृत मानस रामायण को' श्री पंडित रामगुलाम मिरजापुर-निवासी ने १७१४ संवत् की लखी पुस्तक से लिखा उस पर से लाला छक्कनलाल मिरजापुरवासी ने लिखा और श्री काशीजी में छोटी पियरी पर भागवत दास क्षत्री के पास १७२१ के संवत् की लिखी पुस्तक और दो पोथी १७६२ के संवत् की लिखी मिली। इन सबों को सोधकर मुहल्ला दीनानाथ के गोला में बाबू विश्वेश्वर प्रसाद के यहाँ छपा रहा सो कहीं-कहीं पाठ में भ्रम हो गया था सो उसको फिर से भगवतदास क्षत्री ने सोधकर दुरुस्त किया सो श्रीकाशीजी महल्ला सोनारपुरा में रामप्रसाद तिवारी के केदार प्रभाकर छापेखाने में शुद्धतापूर्वक छापा गया। जिसको लेना होय सो चाननी चौक में रामप्रसाद तिवारी के दूकान पर मिलेगा अथवा मुन्नीलाल बुकसेलर के पास मिलेगा। मिति पूस सुदी ८ संवत् १९५१।"[1]

अबतक 'मानस' की प्राप्त मुद्रित प्रतियों में प्राचीनतम प्रति इसी केदार प्रभाकर छापाखानावाली प्रति है, जिसकी मुद्रण-तिथि संवत् १८१९ है। इस प्रकार यह प्रति सन् **१७६२ ई०** की मुद्रित प्रति कही जायगी, जबकि वास्तविकता यह है कि मुद्रण की लीथो-पद्धति एवं टाइप-प्रेस का जन्म भारत में सन् **१७६२ ई०** तक नहीं हुआ था। अतः यह संवत् नहीं, वरन् सन् है। सन् **१८१९ ई०** में इस लीथो प्रेस से गोस्वामीजी की **दोहावली** छपी। इसी वर्ष लल्लूजी लाल के '**सभाविलास**' का भी एक संस्करण यहाँ से निकला।

७. मद्रास स्कूल-बुक सोसाइटी (सन् १८२० ई०)

मद्रास के फोर्ट सेण्टजॉर्ज नामक स्थान पर १४ अप्रैल, १८२० ई० को इस संस्था की स्थापना हुई थी। कहा जाता है कि इस संस्था से इस क्षेत्र की भाषा के अतिरिक्त हिन्दी की भी पुस्तकें छपी थीं, पर इसके द्वारा हिन्दी में प्रकाशित पुस्तकें मेरे देखने में नहीं आईं।

८. बम्बई स्कूल-बुक सोसाइटी (सन् १८२० ई०)

इस मिशनरी प्रकाशन-संस्था की स्थापना १० अगस्त, १८२० ई० को बम्बई में हुई थी। इसने बम्बई के स्कूलों के लिए हिन्दी-भाषा में विभिन्न विषयों की पुस्तकें प्रकाशित की थीं। इस संस्था से छपी पुस्तकें मुझे देखने को नहीं मिलीं।

९. सारसुधानिधि यन्त्रालय, कलकत्ता (सन् १८२९ ई०)

लाहौर-निवासी पण्डित योगध्यान मिश्र संस्कृत का अध्ययन करने काशी आये थे। उन्होंने काशी में ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन किया। वे जीविका की खोज में कलकत्ता चले गये। वहाँ वे संस्कृत-कॉलेज में ज्योतिष के अध्यापक नियुक्त हुए। कलकत्ता में उन्होंने सन् १८२९ ई० में **सारसुधानिधि यन्त्र** नामक लीथो प्रेस की स्थापना की। इस प्रेस के विषय में तत्कालीन एक बँगला-पत्र में, ८ दिसम्बर, १८३२ ई० को इस प्रकार विज्ञापन छपा था :

---

१. मानस-अनुशीलन : शम्भुनारायण चौबे, पृ० १३

"सबको जनाया जाता है कि मुकाम कलकत्ता के बड़ा बाजार में पंचाननतला में श्री गोविन्दचन्द्र धर के नये मकान के पश्चिम श्रीयुत लालाबाबू खत्री के बाड़े के १५ नम्बर मकान में श्रीयुत योगध्यान मिश्र ने 'सारसुधानिधि' नाम से एक प्रेस खोला है। उसमें उत्तम नागरी और उत्तम बँगला अक्षरों में पुस्तकें छपेंगी। सम्प्रति, ज्योति : शास्त्र के अन्तर्गत बीजगणित की छपाई नागर अक्षरों में आरम्भ हुई है और इस ऑफिस में अच्छे बँगला और नागरी और फारसी अक्षर (टाइप) बिक्री के लिए तैयार हैं। इति १८२६ साल २७ नवम्बर। श्री योगध्यान मिश्र।"[1]

उपर्युक्त विज्ञापन से यह प्रमाणित होता है कि 'सारसुधानिधि' यन्त्रालय की स्थापना सन् १८२६ ई० के नवम्बर में हो चुकी थी। पण्डित योगध्यान ने फोर्ट विलियम कॉलेज के अधिकारी को लल्लूजी-कृत 'प्रेमसागर' के मुद्रण-प्रकाशन के लिए आवेदन किया था। उन्होंने लिखा था :

स्वस्ति श्रीयुत फोर्ट विलियम कालिज के नायक सकल गुणनिधान भगवान कप्तान श्री मार्सल साहब के निकट मुजदीन की प्रार्थना।

मैंने सुना कि कालिज में प्रेमसागर की अल्पता है। इस कारण मैं छपवाने की इच्छा करता हूँ और मेरे यहाँ छापे का यन्त्र और उत्तम अक्षर नये (१) ढाले प्रस्तुत हैं। इसलिए मैं चाहता हूँ कि जो मुझे आपकी आज्ञा होय तो मैं वही पुस्तक उत्तम विलायती कागज अच्छी स्याही से आपकी अनुमति के अनुसार छपवा दूं। परन्तु वह चारपेजी फरमे से अनुमान २६० दो सौ साठ पृष्ठ होगी, जो ६) छः रुपयों के लेखे २०० दो सौ पुस्तक आप लेवे तो छापे के व्यय का निर्वाह हो सके। इति किमधिकं॥ ता० १ जुलाई संवत् १८४१।

—श्री योगध्यान मिश्र[2]

मिश्रजी के निवेदन पर फोर्ट विलियम कॉलेज के अधिकारियों ने उन्हें लल्लूजी लाल-कृत '**प्रेमसागर**' का हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित करने की अनुमति दे दी। उन्होंने '**प्रेमसागर**' को सम्पादित कर सन् १८४२ ई० में '**सारसुधानिधि**' यन्त्रालय में मुद्रित किया। वह संस्करण २४८ पृष्ठों का था तथा पुस्तक के अन्त में १४२ पृष्ठों का खड़ीबोली-अँगरेजी-कोश भी दिया गया था। इस पुस्तक के अतिरिक्त यहाँ से मुद्रित किसी अन्य पुस्तक की सूचना उपलब्ध नहीं है। बड़ाबाजार में पंचाननतला कहाँ था, इसका भी अब कोई पता नहीं चलता।

पण्डित योगध्यान सारस्वत ब्राह्मण थे। उनके पुत्र पण्डित सदानन्द मिश्र पत्रकार थे। उन्होंने सारसुधानिधि यन्त्रालय से '**सारसुधानिधि**' नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन १३ जुलाई, १८७९ ई० में शुरू किया था।

'**सारसुधानिधि**' पत्र का प्रकाशन पण्डित सदानन्द मिश्र, दुर्गाप्रसाद मिश्र, पण्डित गोविन्द नारायण मिश्र और पण्डित शम्भुनाथ मिश्र के साझे में हुआ था। उसके सम्पादक

---

१. समाचारपत्रों का इतिहास, पृ० १६४

२. प्रेमी-अभिनन्दन-ग्रन्थ, पृ० ११९

पं० सदानन्द, संयुक्त सम्पादक पं० दुर्गाप्रसाद, सहायक सम्पादक पं० गोविन्द नारायण मिश्र और व्यवस्थापक पं० शम्भुनाथ थे। दुर्गाप्रसाद को छोड़कर शेष तीनों साझेदार लाहौरी सारस्वत ब्राह्मण थे।[१]

'सारसुधानिधि' उन्नीसवीं शती के आठवें दशक का प्रभावशाली पत्र था। लगभग बारह वर्षों तक हिन्दी-हिन्दू-हिन्दुस्तान की सेवा कर, यह पत्र सन् १८९० ई० में अस्तंगत हो गया। पण्डित सदानन्द का भी, पत्र बन्द होने के एक साल के अन्दर ही, देहान्त हो गया।

पण्डित सदानन्द का उक्त प्रेस बड़ाबाजार के सूतापट्टी में ६५ नम्बर के मकान में था। यहाँ से हिन्दी की कई पुस्तकें छपीं।

१०. आगरा स्कूल-बुक सोसाइटी (सन् १८३३ ई०)

उत्तर-भारत में स्कूलों के लिए पाठ्यपुस्तकों के मुद्रण-प्रकाशन के लिए बैप्टिस्ट मिशन के अधिकारियों ने आगरा में सन् १८३३ ई० में, **'आगरा स्कूल-बुक सोसाइटी'** नाम की प्रकाशन-संस्था कायम की। संस्था के प्रधान श्रीग्रीनवे थे, जिनकी देखरेख में प्रकाशन का कार्य होता था। उक्त संस्था अधिकतर उत्तर-भारत के स्कूलों को पुस्तकें वितरित करती थी। संस्था के पास निजी प्रेस नहीं था। उसके समस्त प्रकाशनों का मुद्रण प्रारम्भ में कलकत्ता के बैप्टिस्ट मिशन-प्रेस से होता था। कलकत्ता के मिशन-प्रेस से मुद्रित **'भूगोल-सार'** (सन् १८३५ ई०) उपलब्ध है। उक्त संस्था ने सन् १८३६-३७ ई० के लगभग निजी प्रेस कायम कर लिया। अब उसके प्रकाशन ग्रीनवे की देखरेख में **'आगरा स्कूल-बुक सोसाइटी'** के छापेखाने में छपने लगे। बाद में उक्त प्रेस **'आगरा प्रेस'** के नाम से भी पुस्तकें छापने लगा। आगरा प्रेस ने मुख्यतः हिन्दुस्तानी भाषा तथा देवनागरी-लिपि में पुस्तकों का प्रकाशन किया। यहाँ से छपी पुस्तकें अब उत्तर-भारत के स्कूलों के अलावा बँगाल के स्कूलों में भी चलने लगीं।

यहाँ से प्रकाशित पुस्तकें मुख्यतः अँगरेजी में तैयार की गई पुस्तकों के हिन्दी-अनुवाद हुआ करती थीं। इस संस्था की **'कथासार'** नामक पुस्तक जॉन क्लार्क मार्शमैन की 'ब्रीफ सर्वे ऑफ एनसिएण्ट हिस्ट्री' का पं० रतनलाल-कृत हिन्दी-अनुवाद थी। पुस्तक दिसम्बर, १८३६ ई० में आगरा से बहुत ही सुन्दर टाइप में मुद्रित हुई थी। उससे उपलब्ध सूचनाओं से ज्ञात होता है कि सोसाइटी की पाठ्य-पुस्तक-लेखन की पद्धति बड़ी वैज्ञानिक थी। हिन्दी के जानकार भारतीय पण्डित अँगरेजी-पुस्तक का हिन्दी-अनुवाद करते थे तथा हिन्दी-अधिकारी उसकी भाषा तथा अनुवाद की जाँच करने के बाद मुद्रण के लिए प्रस्तुत करते थे। इस प्रसंग में **'कथासार'** नामक पुस्तक में प्रकाशित निम्नलिखित सूचना द्रष्टव्य है :

पण्डित रतनलाल ने आगरा स्कूल बुक सोसाइटी के लिए मार्शमैन साहब के प्राचीन इतिहास का हिन्दी भाषा में उलथा कर कथासार नाम धरा और पादरी मोर साहब ने उस पुस्तक की पुन: परीक्षा की। दिसम्बर सन् ईसवी १८३६, मार्गशिर संवत् १८९६ यह पुस्तक आगरे में आगरा स्कूल बुक सोसाइटी के छापेखाने में छपी।

---

१. समाचारपत्रों का इतिहास, पृ० १६६

इस संस्था की अन्य प्रकाशित पुस्तकें हैं—ज्योतिविद्या का संक्षेप वर्णन (१८४० ई०), ज्ञानप्रकाश (१८४० ई०), भूगोलसार (१८४१ ई०), गुणकारी उपदेश (१८४१ ई०), पत्रमालिकासीहोर से बम्बई तक का यात्रा-र्णन : वपंडित रत्नेश्वरकृत (१८४१ ई०) और स्त्री-शिक्षा (१८४७ ई०)। हिन्दी-गद्य के विकास की दृष्टि से इन पुस्तकों का महत्त्व है। बाद में इस प्रेस का नाम 'मिशन प्रेस, आगरा' हो गया।

११. क्षीरोदय-सागर यन्त्र, कलकत्ता (सन् १८३४ ई०)

इस संस्था की स्थापना के निश्चित काल की जानकारी नहीं है। किन्तु, इस संस्था से मुद्रित ग्रन्थों से जो सूचनाएँ मिलती हैं, उनसे यह ज्ञात होता है कि किसी रामधन भगत ने कलकत्ता में लीथो प्रेस की स्थापना 'क्षीरोदय-सागर यन्त्र' के नाम से की थी। प्रेस से मुद्रित उपलब्ध ग्रन्थ इस प्रकार हैं : सबसे प्राचीन ग्रन्थ लल्लूजी लाल का 'प्रेमसागर' है, जो पहले-पहल सम्पूर्ण रूप में यहाँ से सन् १८३४ ई० में छपा। ऐसा लगता है कि सन् १८३४ ई० के आसपास उस प्रेस की स्थापना हुई थी। सन् १८३७ ई० में यहाँ से व्रजवासी दास के 'व्रजविलास' और सुन्दर कवीश्वर की 'सिंहासन बत्तीसी' (१८३७ ई०) तथा 'सप्तकाण्ड रामायण' का सन् १८५२ ई० में प्रकाशन हुआ। 'सप्तकाण्ड रामायण' में मुद्रित सूचनाओं से ऐसा लगता है कि रामधन भगत के छोटे भाई रामदयाल भगत इस प्रकाशन-संस्था का संचालन करते थे। हिन्दी के आकर-ग्रन्थों के प्रकाशन में इस प्रकाशन-संस्था ने अच्छा योगदान किया था।

१२. मिशन प्रेस, लुधियाना (सन् १८३६ ई०)

अमेरिकन प्रेस्बिटेरियन मिशन सोसाइटी के दो सदस्य जे० सी० लोरी और डब्ल्यू रीड भारतीयों के बीच धर्म-प्रचार के लिए सन् १८३४ ई० में कलकत्ता आये। उन्हें पंजाब में प्रचार-कार्य करने और अपना प्रधान कार्यालय लुधियाना में रखने की सलाह दी गई। जब वहाँ लोरी ५ नवम्बर, १८३४ ई० को बीमार पड़े तब उनकी सहायता के लिए दिसम्बर, १८३५ ई० में जेम्स विलसन और जॉन न्यूटन भारत आये। इन लोगों ने लुधियाना में सन् १८३६ ई० में मिशनरी स्कूल तथा पुस्तक-प्रकाशन के लिए प्रेस की स्थापना की। उन्होंने सन् १८३७ ई० में एक चर्च भी बनवाया।

पंजाब में हिन्दी-प्रचार की दिशा में इस प्रकाशन-संस्था ने अत्यधिक कार्य किया था। जॉन न्यूटन ने **'धर्मसार'** (चार भागों में), **'रामपरीक्षा'**, **'प्रथम पाप का वर्णन'**, **'मुक्ति-अर्थी की प्रार्थना'**, 'रेल का टिकट' (पद्य-रचना) और **'एडोल्फ-रूडोल्फ का जल-प्रलय का वृत्तान्त'** तथा **'दीन यूसुफ का वृत्तान्त'** की रचना की थी। उपर्युक्त सभी कृतियाँ टाइप-मुद्रण में सन् १८६५ ई० से सन् १८७० ई० के मध्य प्रकाशित हुईं। यद्यपि इस संस्था की स्थापना सन् १८३६ ई० में हुई, तथापि सन् १८६५ ई० से पूर्व इसके प्रकाशन देखने में नहीं आये।

१३. ऑरफन प्रेस, मिर्जापुर (सन् १८३८ ई०)

सन् १८३८ ई० में मिशनरियों ने मिर्जापुर में अनाथालय तथा मिशन-स्कूल कायम

किये। मिशन-स्कूल के लिए पुस्तकों के प्रकाशनार्थ सन् १८३८ ई० के आसपास प्रेस कायम किया गया था, लेकिन यहाँ से सन् १८३८ ई० से सन् १८५० ई० के बीच मुद्रित पुस्तकें मुझे देखने को नहीं मिलीं।

यहाँ से मुद्रित उपलब्ध ग्रन्थों की संख्या सात है, जिनके नाम हैं: **हितोपदेश** (१८५१ ई०), **वेदान्तमत-विचार** (१८५४ ई०), फूलों का हार (१८५९ ई०), **मनोरंजक वृत्तान्त** (१८६० ई०), विद्वान्-संग्रह (१८६० ई०), भूचरित-दर्पण (१८६१ ई०), जन्तु-वर्णन (१८६४ ई०) और **काशीनीति-प्रकाश** (१८६७ ई०)।

यहाँ की पुस्तकों की विशेषता यह थी कि वे बहुत सुन्दर अक्षरों में टाइप-मुद्रण में छपी थीं। उनकी भाषा सरल और बोधगम्य थी। उपर्युक्त सभी पुस्तकें अँगरेजी-ग्रन्थों के अनुवाद थीं।

प्रिण्ट-लाइन में कभी '**आॅरफन प्रेस**, मिर्जापुर से मुद्रित' तथा कभी '**अनाथों के छापखाने में** छापा गया' रहता था। मिशन-स्कूलों के लिए पाठ्यपुस्तकों के निर्माण की दिशा में **आॅरफन प्रेस** की कृतियाँ अपना विशेष स्थान रखती हैं।

१४. मिशन प्रेस, इलाहाबाद (१८३८ ई०)

प्रेस्बिटेरियन मिशन के प्रचारक अधिकारियों ने इलाहाबाद में सन् १८३८ ई० में मिशन-प्रेस की स्थापना की। इस मुद्रणालय का मुख्य उद्देश्य अपने तथा अन्य मिशनों के लिए ग्रन्थों का मुद्रण था। इसने उत्तर-भारत के अनेक मिशनों के ग्रन्थ मुद्रित किये। सन् १८३८–५२ ई० तक इस प्रेस का संचालन पादरी जोसेफ वारेन ने किया था।[१] इसके बाद भी प्रेस चलता रहा। सन् सत्तावन के गदर में मिशन-प्रेस बन्द हो गया।

१५. गणपति कृष्णजी प्रेस, बम्बई (१८४० ई०)

मराठी और गुजराती के पुस्तक-प्रकाशन-क्षेत्र में इस प्रेस का अन्यतम योग है। बम्बई-निवासी मराठी-भाषी गणपति कृष्णजी इसके संस्थापक थे। वे पहले अमेरिकन मिशन प्रेस में प्रेसमैन का काम करते थे। वहीं उन्होंने प्रेस-सम्बन्धी जानकारी प्राप्त की। प्रेस का कार्य करते हुए हिन्दू धर्म-ग्रन्थों के स्वतन्त्र मुद्रण और प्रकाशन की बात सोचने लगे। अन्ततः सन १८४० ई० में उनका स्वप्न साकार हुआ और बम्बई में उन्होंने उक्त लीथो प्रेस कायम किया।

उनके प्रेस की विशिष्टता यह थी कि उन्होंने प्रेस-मशीन का निर्माण स्वयं किया था। प्रेस लकड़ी का था। स्याही भी उन्होंने स्वयं विशेष ढंग से तैयार की। बाद में उन्होंने लोहे का प्रेस बनवाया और टाइप भी ढलवाये। सन् १८४१ ई० में उन्होंने इस प्रेस से मराठी पञ्चाङ्ग प्रकाशित किया। इस प्रेस से मुद्रित पुस्तकें पर्याप्त आकर्षक होती थीं।

उन्होंने आगे चलकर हिन्दी-ग्रन्थों का भी प्रकाशन किया। इस क्षेत्र में उन्होंने सूरत कवीश्वर की '**बैतालपचीसी**' (१८५९ ई०) तथा सुन्दरदास-कृत '**सुन्दर शृंगार**' (१८६४ ई०) **और 'ज्ञान-समुद्र'** (१८५६ ई०) प्रकाशित किये।

---

१. हिन्दी के आदिमुद्रित ग्रन्थ : प्रस्ताविकी, पृ० ४४

१६. सिकन्दरा ऑरफन प्रेस, आगरा (सन् १८४० ई०)

आगरा से छह मील दूर सिकन्दरा में आगरा स्कूल-बुक सोसाइटी के प्रधान ग्रीनवे के निर्देशन में सन् १८४० ई० में उक्त मुद्रणालय की स्थापना हुई। आगरा स्कूल-बुक सोसाइटी के प्रथम विवरण से ज्ञात होता है कि "ग्रीनवे के निरीक्षण में अनाथालय के निर्माण के सिलसिले में सन् १८४० ई० के अन्तिम दिनों में यह स्थापित किया गया। सन् १८४४ ई० में मिस्टर हार्नली प्रेस के निरीक्षक हुए। उस समय इस प्रेस में तेरह प्रिण्टर्स (मशीनमैन), पाँच कम्पोजिटर और तीन जिल्दसाज थे। सन् १८४६ ई० में यह प्रेस पूर्ण क्षमता से चालू था। इसके संचालक लौण्डेन के निरीक्षण में छह टाइप और छह लीथो प्रेस थे। ये सब लीथो प्रेस इसी अनाथालय में बने। इक्कीस विवाहित अनाथ पाँच से दस रुपये के वेतन पर नियुक्त थे। इसके अतिरिक्त गवर्नमेण्ट अपना प्रायः सब टेबुलर कार्य प्रेस को ठेके पर देती थी। सरकारी गजट भी यहाँ से छपता था।"[१]

इस प्रेस से मुद्रित कृतियों की संख्या बड़ी है, परन्तु मेरे सामने उस प्रकाशन की तीन ही कृतियाँ आईं। पहली है, पण्डित वंशीधर की **'छन्दोदीपिका'** (सन् १८५४ ई०), जो छात्रों की सुविधा के लिए पद्यबद्ध रूप में बनाई गई थी। दूसरी रचना पं० शीतलाप्रसाद त्रिपाठी-कृत **'सिद्धान्त-संग्रह'** (सन् १८५५ ई०) नामक दर्शन-ग्रन्थ है और तीसरी पुस्तक बालकृष्ण शास्त्री की **'भूगोल-विद्या'** (सन् १८५६ ई०) है। तीसरी रचना अँगरेजी-पुस्तक का हिन्दी-अनुवाद है।

यह प्रेस **'अनाथों का छापखाना, आगरा'**[१] के नाम से भी ग्रन्थ मुद्रित करता था।

१७. गवर्नमेण्ट प्रेस, आगरा (सन् १८४० ई०)

अँगरेजी सरकार ने सरकारी कामकाज के लिए सन् १८४० ई० में आगरा में उक्त सरकारी प्रेस कायम किया। इस प्रेस से सरकारी स्कूलों के विद्यार्थियों के लिए किताबें भी छपती थीं। लगभग १० वर्षों तक यह प्रेस आगरा में रहा, किन्तु गदर के कुछ पहले इसे इलाहाबाद स्थानान्तरित कर दिया गया। वहाँ से सरकारी कागजों की छपाई के साथ ही पाठ्य ग्रन्थों का प्रकाशन भी होता रहा।

राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द', वंशीधर तथा मिशनरी युग के अनेक लेखकों की पुस्तकें यहाँ से प्रकाशित हुईं।

१८. बनारस-अखबार छापाखाना (सन् १८४५ ई०)

काशी के दूधविनायक मुहल्ले के निवासी महाराष्ट्रीय गोविन्द रघुनाथ धत्ते ने सन् १८४५ ई० के लगभग **'बनारस-अखबार छापाखाना'** नामक लीथो प्रेस स्थापित किया था। इस प्रेस से **'बनारस-अखबार'** नामक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित होता था।

'बनारस-अखबार' को राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' का संरक्षण प्राप्त था। हिन्दी के अधिकतर विद्वानों का यह कथन कि 'बनारस-अखबार' राजा शिवप्रसाद का था और प्रेस भी

१. हिन्दी के आदिमुद्रित ग्रन्थ : प्रस्ताविकी, पृ० ४३

उन्हीं का था, मेरे मत से ठीक नहीं। राजा साहब शिक्षा-विभाग के उच्चाधिकारी थे और उनका अवध-प्रान्त में बहुत प्रभाव था। इसी कारण धत्ते ने उनका संरक्षण प्राप्त कर अपने प्रकाशन-व्यवसाय की अभ्युन्नति के लिए अपने अखबार में उनका नाम दिया था। राजा साहब इस अखबार के संरक्षक या सहायक-मात्र थे, स्वामी नहीं।

बनारस-अखबार प्रेस से **'बनारस-अखबार'** के अतिरिक्त हिन्दी और संस्कृत की पुस्तकें भी प्रकाशित होती थीं। धत्तेजी ने लगभग दस वर्षों तक अखवार चलाया। अखबार के साथ-साथ वे अपना पुस्तक-प्रकाशन-व्यवसाय भी चलाते थे। इस प्रेस की प्रकाशित कृतियों में 'हातिमताई' का मीरमुंशी लक्ष्मीदास-कृत अनुवाद (सन् १८५१ ई०), 'युक्ति-रामायण' की धनीराम की टीका (सन् १८५२ ई०), और 'हितोपदेश' का हिन्दी-अनुवाद (सन् १८५४ ई०) प्रमुख हैं। इनमें 'हातिमताई' की ५५०० प्रतियाँ छापी गई थीं। धनीराम-वाली 'टीका युक्ति-रामायण' में प्रकाशित निम्नलिखित सूचना से स्पष्ट है कि यह प्रेस गोविन्द रघुनाथ धत्ते का था :

"ईश्वरीनारायण सिंह की आज्ञा से गोविन्द रघुनाथ धत्ते ने अपने बनारस-अखबार छापाखाने में रामलाल मुतसद्दी से लिखाकर छपवाया।" इस प्रेस से सन् १८५४ ई० में संस्कृत का 'काव्य-प्रकाश' मुद्रित हुआ था। उसमें प्रकाशित निम्नांकित सूचना से ज्ञात होता है कि यह प्रेस दूधविनायक मुहल्ले में था। **"ये ग्रन्थ गोविन्द रघुनाथ धत्ते के शहर बनारस महल्ले दूधविनायक बनारस-अखबार के छापाखाने में छपवाया।"**

१९. मिशन प्रेस, मुजफ्फरपुर (सन् १८४६ ई०)

बैप्टिस्ट मिशन के अधिकारियों ने उत्तर-बिहार के अंचलों में ईसाई धर्म के प्रचार तथा विद्यालयों के लिए पुस्तक-प्रकाशन के निमित्त मिशन प्रेस की स्थापना सन् १८४६ ई० में की। बिहार में मुद्रणालय की स्थापना का सम्भवतः यह प्रथम प्रयास था।

२०. हरिप्रकाश प्रेस, काशी (सन् १८४७ ई०)

इस प्रेस की स्थापना के सम्बन्ध में कोई सूचना सुलभ नहीं है। इस प्रेस की मुद्रित 'वाल्मीकीय रामायण-भाषा' (सन् १८४७ ई०) दो जिल्दों में मिलती है। बाद में सन् १८७० ई० से बीसवीं शती के दूसरे-तीसरे दशक तक इस प्रेस से हिन्दी-साहित्य के अनेक ग्रन्थ मुद्रित हुए। यहाँ से भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की लिखित और सम्पादित कृतियों में 'नित्य-कुसुमाकरोद्यान', 'पुरुषोत्तममास-विधान', 'काशी के छायाचित्र', 'रसबरसात', 'चन्द्रप्रभा और पूर्ण प्रकाश', 'भारत जननी' और 'राधासुधाशतक' तथा राधाकृष्णदास-लिखित नाटक 'दुखिनी बाला' का मुद्रण हुआ था। यह प्रेस नेपाली खपरा मुहल्ले में था तथा इसके स्वामी बाबू अमीर सिंह थे। अमीर सिंह भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के मित्रों में थे। उनका नागरी-प्रचारिणी सभा से भी सम्बन्ध था।

२१. सुधाकर यन्त्रालय, बनारस (सन् १८५० ई०)

यह लीथो प्रेस था। इसके संस्थापक देवीप्रसाद गौड़ थे। यहाँ से अनेक साहित्यिक ग्रन्थ प्रकाशित हुए। यह प्रेस सन् १८५१ ई० से हिन्दी-ग्रन्थों का प्रकाशन कर रहा था। यहाँ से

मुद्रित निम्नांकित पुस्तकें उपलब्ध हुई हैं : '**उपासना-सर्वस्व**' सन् १८५१ ई० में, बाबा-दीनदयाल गिरि के '**अनुरागबाग**' (सन् १८५६ ई०), **अन्योक्तिकल्पद्रुम** (सन् १८५७ ई०); राजा शिवप्रसाद का '**हिन्दुस्तान के पुराने राजाओं का हाल**' तथा काष्ठजिह्वा स्वामीकृत '**गया-बिन्दु**', '**मथुरा-बिन्दु**', '**अश्विनीकुमार-बिन्दु**' और '**हनुमद्-बिन्दु**'।

यहीं से हिन्दी-प्रदेश का पहला पत्र '**सुधाकर**' सन् १८५० ई० से तारामोहन मैत्र के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ। यन्त्रालय के नाम पर पत्र का नाम '**सुधाकर**' रखा गया था। प्रेस के आदिमुद्रक रामनारायण तिवारी थे। बाद में रत्नेश्वर त्रिपाठी का नाम मुद्रक के रूप में छपता था।

२२. गणेश छापाखाना, बनारस (सन् १८५० ई०)

तुलसी-साहित्य के प्रकाशन की दिशा में गणेश छापाखाना का अंशदान रहा है। यहाँ से तुलसीदास-कृत रामचरितमानस, कवित्त रामायण (सन् १८५० ई०), विनयपत्रिका (सन् १८५० ई०), और नन्ददास-कृत अनेकार्थमंजरी (सन् १८६० ई०) आदि ग्रन्थ मुद्रित-प्रकाशित हुए थे।

यहाँ से मुद्रित-प्रकाशित रामचरितमानस की संवत् १९२६ ई० वाली प्रति में मुद्रित सूचनाओं से इस प्रेस के संस्थापक तथा प्रेस के स्थान के विषय में जो जानकारी होती है, वह इस प्रकार है :

"श्री काशीजी में मुहल्ला घुघराजा सामा की गली श्रीयुत बाबू हरषचन्द जी के बाड़े में दुर्गाप्रसाद कटारे के गणेश यन्त्रालय में तुलसीकृत रामायण श्री बाबा रघुनाथ दास जी की संवत् से सांची में अति परिश्रम ते सोधि के छापा गया लिखा गया। लिखा देवी प्रसाद तिवारी और सीताराम मिश्र छापने वाला जिसको लेना होय उसे कुंजगली के पश्चिम फाटक पर दुर्गाप्रसाद के दूकान में मिलेगा। संवत् १९२६ मि० पौष शुक्ल ५ शुक्रवार।"[१]

इससे स्पष्ट है कि इस प्रेस के संस्थापक दुर्गाप्रसाद कटारे थे। यह लीथो प्रेस था। हाथ के बने कागज पर पुस्तकें छापी जाती थीं। यह प्रेस बाँस फाटक के समीप मौजूदा घुघरानी गली में स्थित था।

२३. रिकार्डर समाचार प्रेस, बनारस (सन् १८५३ ई०)

यह लीथो प्रेस बनारस के राजादरवाजा मुहल्ले में था। यहाँ से 'रामचरितमानस' की टीका '**मानस-दीपिका**' सन् १८५३ ई० में प्रकाशित हुई थी। सम्भवतः सन् १८५३ ई० के आसपास ही इस प्रेस की स्थापना हुई थी। इसके सम्बन्ध में 'मानस-दीपिका' में जो सूचनाएँ उपलब्ध हैं, वे इस प्रकार हैं :

"मानस-दीपिका नामक रामायण की टीका श्री रघुनाथदास वैष्णवकरके विरचित। बाबू साहिब प्रसिद्ध नारायण सिंह बहादुर के आज्ञानुसार भाषा बोली में छापी गई। काशी-पुरी, राजाबाजार की नई टकसाल घर में रिकार्डर समाचार पत्र के छापाखाने में बास साहिब के द्वारा से छापी गई सन् १८५३ ई०।"[२]

---

१. मानस-अनुशीलन, पृ० १७६

२. हिन्दी के आदिमुद्रित ग्रन्थ, पृ० ३३८

इस सूचना से अनुमान होता है कि यह किसी ईसाई का प्रेस था। 'मानस-दीपिका' के अतिरिक्त यहाँ से मुद्रित कोई दूसरी पुस्तक देखने को नहीं मिली।

२४. सुधावर्षण यन्त्रालय, कलकत्ता (सन् १८५४ ई०)

पण्डित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी का अनुमान है कि इस प्रेस के मालिक बाबू महेन्द्रनाथ सेन थे। इसी प्रेस से सन् १८५४ ई० में हिन्दी का पहला दैनिक समाचार **'सुधावर्षण'** श्यामसुन्दर सेन के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ। ऐसा लगता है कि महेन्द्रनाथ सेन और श्यामसुन्दर सेन दोनों भाई थे। यह पत्र लगभग सन् १८६८ ई० तक प्रकाशित होता रहा। इसके माध्यम से हिन्दी की अच्छी सेवा हुई है। यह कलकत्ता के बड़ीबाजार मुहल्ले में स्थित था। इसी प्रेस से सन् १८६३ ई० में श्यामसुन्दर सेन ने 'रामचरितमानस' की पोथी प्रकाशित कराई थी।[१] यहाँ से प्रकाशित पुस्तक का पता नहीं चला है।

२५. दिवाकर छापाखाना, बनारस (सन् १८५५ ई०)

भदैनी मुहल्ले में इस लीथो प्रेस की स्थापना सन् **१८५५** ई० के आसपास हुई थी। इसके संस्थापक और व्यवस्थापक शिवचरण थे। इसने सन् १८५५ ई० में **'रामचरितमानस'** का सचित्र संस्करण प्रकाशित किया था। इसकी अन्य कृतियों में **'शुकबहत्तरी'** (**सन् १८५६ ई०**), **'पोथी काशी यात्रा'** (सन् १८५६ ई०), **'गीतावली'** (सन् १८६२ ई०) **प्रमुख हैं।**

२६. नवलकिशोर-युग (सन् १८५८—१८८० ई०)

संस्थागत हिन्दी-पुस्तक-प्रकाशन का नेतृत्व सन् १८५८ से १८८० ई० के बीच नवलकिशोर प्रेस ने किया था। इस प्रकाशन-संस्था ने हिन्दी-साहित्य की विभिन्न विधाओं को उजागर किया और हिन्दी-साहित्य को न केवल भारत में, अपितु विदेशों में भी पहुँचाने का गौरव प्राप्त किया। राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' के सहयोग से नवलकिशोर प्रेस ने हिन्दी-भाषी क्षेत्रों के विद्यालयों के लिए पाठ्य पुस्तकें प्रकाशित की थीं, जिनसे हिन्दी के प्रसार में मदद मिली। हिन्दी की प्राचीन तथा समकालीन रचनाओं के प्रकाशन के क्षेत्र में उसने व्यापक रूप से काम किया। अगर हम सन् १८५८ ई० और सन् १८८० ई० के बीच हिन्दी-प्रकाशनों की उपलब्धि का सर्वेक्षण करें तो स्पष्ट होगा कि नवलकिशोर प्रेस हिन्दी की विभिन्न विधाओं पर अधिकाधिक पुस्तकें प्रकाशित करनेवाला अकेला संस्थान था। इससे सिद्ध होता है कि हिन्दी-प्रकाशन के अड़तीस वर्षों की अवधि में उसने नेतृत्व प्रदान किया था। इसलिए इस काल को हमने 'नवलकिशोर'-युग माना है।

२७. मुंशी नवलकिशोर भार्गव

नवलकिशोर प्रेस के संस्थापक मुंशी नवलकिशोर भार्गव थे। उनके प्रपितामह इन्द्र सिंह भार्गव ने मराठा-सेना का सेनापति के रूप में संचालन किया था। पितामह बालमुकुन्द भार्गव मुगल बादशाह शाहआलम के कोषपाल थे। उनके पिता यमुनाप्रसाद भार्गव अलीगढ़ के सासनी ग्राम के प्रतिष्ठित जमींदार थे। ऐसे अभिजात कुल में नवलकिशोर का,

---

१. हिन्दी के आदिमुद्रित ग्रन्थ, पृ० ७५

उनके ननिहाल मथुरा जिले के रीढा ग्राम में, ३ जनवरी, १८३६ ई० को जन्म हुआ था।

शिक्षा :

नवलकिशोर छह वर्ष की उम्र तक अपने ननिहाल में रहे। उसके बाद अपने पिता के पास सासनी चले आये। यहाँ उन्हें घर पर पण्डितों से प्रारम्भिक शिक्षा दिलवाई गई। दस वर्ष की उम्र तक घर पर ही शिक्षा ग्रहण करते रहे। सन् १८४५ ई० में उच्च आधुनिक शिक्षा के लिए 'आगरा कॉलेज' में उनका नाम लिखाया गया। कॉलेज में अध्ययन के क्रम में उन्होंने हिन्दी, अँगरेजी, संस्कृत, अरबी, फारसी और उर्दू का अध्ययन किया। अध्ययन के साथ ही लेखन-प्रवृत्ति का प्रस्फुटन भी उनमें उसी उम्र में हो चुका था। वे आगरा के प्रसिद्ध '**सफीर अखबार**' में लेख लिखने लगे।

उन्हीं दिनों लाहौर से प्रकाशित उर्दू के सुप्रसिद्ध पत्र '**कोहेनूर अखबार**' के संस्थापक और सम्पादक मुंशी हरसुखराय प्रेस तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में यशस्वी हो रहे थे। नवलकिशोर को उनके सान्निध्य-लाभ का सुअवसर मिला। उन्हीं की प्रेरणा से सन् १८५१ ई० में प्रेस तथा सम्पादन-कला की शिक्षा के लिए वे लाहौर चले गये। वे वहाँ '**कोहेनूर अखबार**' में प्रेस की छपाई तथा पत्रकारिता का प्रशिक्षण प्राप्त करने लगे। मुन्शी हरसुखराय उनकी योग्यता से प्रभावित थे। अतः उन्होंने पन्द्रह रुपये मासिक वेतन पर उनको अपने प्रेस का प्रबन्धक नियुक्त किया। वहाँ प्रबन्ध के साथ ही कम्पोज करना, प्रूफ उठाना, मैटर बाँधना, मेक-अप करना, करेक्शन करना, फर्मा कसना, मशीन चलाना और छापना, स्याही तैयार करना, टाइप ढालना, मशीन की मरम्मत, पुस्तक के फर्मों की भँजाई, बँधाई और प्रेस-सम्बन्धी अन्य जितनी भी बातें सीखने की थीं, उन्होंने सीख लीं। प्रेस का संचालन उन्होंने इतने व्यवस्थित ढंग से किया कि प्रेस निरन्तर उन्नति करता गया। इससे प्रसन्न होकर हरसुखराय ने युवक नवलकिशोर को मुन्शी की संज्ञा दे दी। नवलकिशोर, 'मुन्शी नवलकिशोर' हो गये। लगभग आठ वर्षों तक '**कोहेनूर अखबार**' में काम करने के बाद उन्होंने सन् १८५८ ई० में लखनऊ में नवलकिशोर प्रेस की स्थापना की।

अखबारनवीसी :

नवलकिशोर प्रेस की स्थापना के साथ मुन्शी नवलकिशोर ने २६ नवम्बर, १८५८ ई० से '**अवध अखबार**' का प्रकाशन शुरू किया। यह साप्ताहिक उर्दू पत्र था। बाद में यह दैनिक के रूप में प्रकाशित होने लगा। इस पत्र ने लगभग ९३ वर्षों तक उर्दू-भाषा-भाषियों की सेवा की। मुन्शी नवलकिशोर स्वयं इस पत्र का सम्पादन करते थे। पत्र का प्रकाशन सन् १८५१ ई० में बन्द हो गया।

इस पत्र को जनता का वास्तविक पत्र बनाने के लिए तथा पत्रकारिता के आदर्श एवं स्वस्थ परम्परा को कायम रखने के लिए उन्होंने जन-जीवन के प्रत्येक समाचार को अपने अखबार में स्थान देने की चेष्टा की थी। बड़े-बड़े नगरों में संवाददाता नियुक्त किये गये थे। जनता को अपनी भावना प्रकट करने के लिए भी इस अखबार में एक स्तम्भ सुलभ था।

इसमें समकालीन उर्दू-लेखकों के लेखों, कहानियों और उपन्यासों के धारावाहिक प्रकाशन की व्यवस्था थी। पण्डित रतननाथ 'सरशार' का सुप्रसिद्ध उपन्यास **'फिसाना आजाद'** धारावाहिक रूप से इसी पत्र में प्रकाशित हुआ था। उर्दू के अन्यतम साहित्यकार **मिर्जा गालिब** भी इस पत्र के स्तम्भ-लेखकों में थे।

मुद्रण-प्रकाशन :

मुन्शी नवलकिशोर का छापाखाना उन्नीसवीं शती के छठे दशक में उत्तर-भारत का सबसे बड़ा मुद्रण और प्रकाशन-केन्द्र था। वह उर्दू-हिन्दी के ग्रन्थों का श्रेष्ठ प्रकाशक माना जाता था। प्रेस में बारह सौ कर्मचारी कार्य करते थे। उस समय प्रेस-संसार में इसकी गणना दूसरे नम्बर पर थी। उस समय दुनिया का सर्वश्रेष्ठ प्रेस पेरिस का 'अल्पाइन प्रेस' था। मुद्रण-प्रकाशन के विकास-क्रम में इस प्रेस की इलाहाबाद, कानपुर, लाहौर और पटियाला में शाखाएँ खोली गईं। प्रत्येक शाखा से ग्रन्थों का मुद्रण और प्रकाशन होता था। इस प्रेस ने अपने जीवन-काल में लगभग पाँच हजार ग्रन्थों का प्रकाशन किया, जिनमें २,६१२ ग्रन्थों का प्रकाशन लखनऊ से हुआ। बड़े ग्रन्थों के संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद भी प्रस्तुत किये गये। महाभारत का हिन्दी-गद्यानुवाद ७,२८४ पृष्ठों में था।

नवलकिशोर प्रेस के ग्रन्थों की माँग विदेशों में भी थी। पुस्तकों की बढ़ती माँग के कारण कागज की समस्या जटिल होती गई। फलतः **'अपर इण्डिया कूपर पेपर मिल्स कम्पनी लिमिटेड'** नाम से कागज का कारखाना खोला गया। इससे अपने ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए मुन्शी नवलकिशोर को कागज की सुविधा प्राप्त हो गई।

पहले बताया जा चुका है कि दुनिया के प्रायः हर प्रेस ने सर्वप्रथम धार्मिक ग्रन्थ का ही प्रकाशन किया है। इस प्रेस से भी धार्मिक ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ। कहा जाता है कि धार्मिक ग्रन्थों की कम्पोजिंग तथा छपाई प्रारम्भ करने के पहले कम्पोजीटर तथा मशीनमैन स्नान करके पवित्र होने के बाद ही अपना काम शुरू करते थे। इसी ढंग की बात 'निर्णयसागर प्रेस' के संस्थापक जावजी के बारे में भी कही जाती है। वे संस्कृत के धार्मिक ग्रन्थों की छपाई के लिए गाय के घी से निर्मित स्याही का उपयोग करते थे।

इस प्रेस को समकालीन प्रसिद्ध लेखकों और विद्वानों की कृतियाँ प्रकाशित करने का सौभाग्य रहा है। मिर्जा गालिब की 'कुल्लियात नज्म-ए गालिब' का प्रकाशन नवलकिशोर प्रेस से ही हुआ था। पण्डित रतननाथ 'सरशार' की रचनाएँ भी यहीं से प्रकाशित हुईं।

सामाजिक जीवन :

मुन्शी नवलकिशोर को मुद्रण-प्रकाशन-उद्योग के माध्यम से यथेष्ट यश मिला और सामाजिक जीवन में प्रतिष्ठा भी प्राप्त हुई। वे इलाहाबाद कॉलेज के फेलो और लखनऊ में सर्वप्रथम स्थापित नगरपालिका के सदस्य मनोनीत हुए। उन्होंने आगरा कॉलेज, अलीगढ़ विश्वविद्यालय, ट्रेनिंग कॉलेज, लखनऊ और जुबिली कॉलेज, लखनऊ को दान देकर शिक्षा के प्रचार-प्रसार में सहायता की। उनकी सेवाओं से प्रभावित होकर सन् १८७७ ई० में सरकार ने उन्हें 'कैसर-ए-हिन्द' तथा बाद में सी० आई० ई० की उपाधि से अलंकृत किया।

१९ फरवरी, १८९५ ई० को लखनऊ में उनका देहावसान हुआ। मुन्शी नवलकिशोर की सेवाएँ मुद्रण और प्रकाशन के इतिहास का एक उज्ज्वल अध्याय है।

नवलकिशोर प्रेस का योगदान :

नवलकिशोर प्रेस की स्थापना सन् १८५८ ई० में लखनऊ के रकाबगंज मुहल्ले में हुई थी। यह लीथो प्रेस के रूप में स्थापित हुआ था, पर कुछ ही वर्षों के बाद इसे हजरतगंज स्थानान्तरित कर दिया गया और उसी समय से यह अक्षर-मुद्रण प्रेस हो गया। यह प्रेस केवल व्यावसायिक उद्योग का ही माध्यम नहीं था, अपितु साहित्यिक संस्था था, जिसके लिए प्रेस माध्यम था तथा साहित्य का विकास मूल उद्देश्य। इस दृष्टि से इस संस्था ने जो कार्य किया, बीसवीं सदी की किसी दूसरी प्रकाशन-संस्था ने हिन्दी के लिए उतना नहीं किया। महाकवि **मिर्जा गालिब** ने नवलकिशोर प्रेस की सेवाओं की सराहना करते हुए कहा था :

"हाय ! लखनऊ के छापेखाने ने जिसका दीवान छापा, उसको जमीन से आसमान पर चढ़ा दिया, हुस्ने-खत से अलफाज को चमका दिया।"

हिन्दी-प्रकाशन के इतिहास में इस संस्था ने अकेले जितना काम किया है उतना भारतीय भाषाओं की किसी भी प्रकाशन-संस्था ने अबतक नहीं किया।

यह कहा जा चुका है कि नवलकिशोर प्रेस का आरम्भ सन् १८५८ ई० में लीथो प्रेस के रूप में हुआ था। धीरे-धीरे यह मुद्राक्षर-मुद्रणालय (टाइप-प्रेस) के रूप में बदल गया। इस प्रेस के मुद्रण और प्रकाशन का अपना विशेष ढंग था, जो उसे अन्य प्रकाशन-संस्थाओं से अलग करता था। इसकी पुस्तकें मुख्यतया लीथो के मोटे-बड़े टाइप में, हरे तथा पीले और कभी-कभी सफेद कागज के आवरण-पृष्ठ से सज्जित की जाती थीं। कागज कमजोर होता था और आवरण-पृष्ठ का कागज बहुत ही पतला। यहाँ से छपी पुस्तकों में मुद्रण-विषयक यह दोष मुख्य रूप से आरम्भ से मौजूद रहा है कि शब्दों को इतना अधिक सटाकर कम्पोज किया जाता था कि पाठकों को पढ़ने में परेशानी होती थी। पुस्तकें मुख्यतया रॉयल आकार की होती थीं। वैसे विभिन्न आकारों में पुस्तकें मुद्रित की गई हैं। मुद्रणाक्षरों की पुस्तकों में अधिक छपाई-सफाई रही है।

इस प्रेस ने विभिन्न विधाओं के हिन्दी के प्राचीन ग्रन्थों के प्रकाशन के साथ ही जो सबसे बड़ी कमी की पूर्त्ति की, वह है पाठ्य पुस्तकों का प्रकाशन तथा हिन्दी-भाषी प्रदेश के विद्यालयों में उनका प्रचार और प्रसार। हिन्दी के प्राचीन ग्रन्थों एवं साहित्यिक रीतिग्रन्थों का प्रकाशन भी इसी संस्था से हुआ। हिन्दी-साहित्य के इतिहास-लेखन की परम्परा के आदिसूत्र 'कविवृत्त-संग्रह' का प्रकाशन नवलकिशोर प्रेस ने ही किया था। 'कविवृत्त-संग्रह' के अतिरिक्त कवियों का संक्षिप्त परिचय संग्रहों के रूप में प्रकाशित करने का प्रयास किया गया। हिन्दी-साहित्य की लेखन-परम्परा में मातादीन शुक्ल का 'कवित्तरत्नाकर', पण्डित बन्दीदीन दीक्षित का 'भाषाकाव्य-संग्रह' और प्रसिद्ध साहित्येतिहास 'शिवसिंह-सरोज' सन् १८७८ ई० में प्रकाशित हुए। 'सरोज' के आठ संस्करण इस प्रेस से सन् १९१३ ई० तक मुद्रित और प्रकाशित हुए। इसी क्रम में 'हफीजुल्ला खाँ का '**हजारा**', '**नवीन संग्रह**', '**षट्ऋतु काव्य-संग्रह**'

और परमानन्द 'सुहाने' के **'नखशिख-हजारा'** के प्रकाशन उल्लेख योग्य हैं। अपने समय में इन ग्रन्थों ने प्रसिद्धि पाई।

कोश तथा व्याकरण की दिशा में मुन्शी मँगनीलाल का **'मंगलकोश'** और रघुनाथ दास का **'रामायण-शब्दार्थ-कोष'** प्रकाशित हुए। पादरी इथरिंगटन का **'भाषा-भास्कर'** और राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' का **'हिन्दी-व्याकरण'** सन् १८७५ ई० में प्रकाशित हुए। ये व्याकरण उस समय के हिन्दी-पाठकों के लिए धर्म-ग्रन्थ के समान मान्य थे। इन व्याकरणों के कोई दस संस्करण प्रकाशित हुए।

हिन्दी के आकर-ग्रन्थों में तुलसीदास की **तुलसी-सतसई, कवितावली, रामाज्ञाप्रश्न, वैराग्य-संदीपिनी, विनयपत्रिका, छप्पयरामायण, कुण्डलिया रामायण, बरवैरामायण, जानकी-मंगल, पार्वती-मंगल, विनयपत्रिका, छन्दावली रामायण**; सूरदास-कृत **'सूरसागर'**, **वाल्मीकीय रामायण की भाषा-टीका**, जायसी का **पद्मावत**, केशवदास की **रामचन्द्रिका सटीक, कविप्रिया सटीक, रसिकप्रिया सटीक,** रामचरणदास की **मानस-टीका**, **चाणक्य-नीति-दर्पण**, काशीनरेश-कृत **चित्रचन्द्रिका**, **बिहारी सतसई** की कृष्णकवि की **टीका** (जिसके ग्यारह संस्करण हुए), सूरदास के **दृष्टिकूट** की सरदार कवि की टीका, काशी-राजदरबार के रघुनाथ कवि-कृत **रसिक मोहन**, भिखारीदास-कृत **छन्दार्णव पिंगल**, रसलीन कवि का **रस-प्रबोध,** चिन्तामणि-कृत **कविकुल-कल्पतरु, गिरिधरदास की कुण्डलियाँ**, बोधा कवि का **विरह-वारीश**, **माधवानल-कामकन्दला** और नाभादास-कृत **भक्तमाल इसी संस्था ने** प्रकाशित किये। इनमें अनेक ग्रन्थों के लगभग एक दर्जन बार संस्करण प्रकाशित हुए।

नाट्य-साहित्य के क्षेत्र में भी नवलकिशोर प्रेस की देन कम उल्लेखनीय नहीं है। हिन्दी का पहला नाटक रीवाँ-नरेश विश्वनाथ सिंह-कृत **'आनन्द रघुनन्दन' नाटक का सर्व-प्रथम प्रकाशन काशी के 'बनारस लाइट-प्रेस'** से **सन् १८६८ ई० में हुआ था**। इस नाटक के पुनर्मुद्रण एवं प्रकाशन का **दूसरा** प्रयास **नवलकिशोर प्रेस से** सन् **१८८१ ई० में** हुआ। यहाँ से इसके अनेक संस्करण प्रकाशित हुए। साथ ही **प्रबोध-चन्द्रोदय**, कालिदास का **शकुन्तला-नाटक**, शेक्सपियर के **'कॉमेडी ऑफ एरर्स'** का **'प्रेमजाल'** नाम से हिन्दी-अनुवाद प्रस्तुत किये गये। किशोरीलाल गुप्त की **मयंक-मंजरी** का प्रकाशन भी हुआ। इसी प्रकार हिन्दी-साहित्य के साहित्यिक वैभव को श्रीसम्पन्न करने में इस संस्था का अंशदान कम उलेखनीय नहीं है।

नवलकिशोर प्रेस ने हिन्दी-ग्रन्थों के सम्पादन के लिए तथा उसके प्रामाणिक संस्करण की दृष्टि से पण्डित महेशदत्त, बन्दीदीन दीक्षित, रामरत्न वाजपेयी और बैजनाथ कुरमी जैसे सुयोग्य व्यक्तियों को प्रश्रय प्रदान कर उनकी सेवाओं से हिन्दी के उत्थान में सहयोग प्राप्त किया।

पाठ्यपुस्तकों के प्रकाशन :

हिन्दीभाषी प्रदेशों के विद्यालय अधिकतर ईसाई मिशनरियों द्वारा संस्थापित थे, जिनके लिए मिशनरियाँ स्वयं पाठ्यपुस्तकों की रचना और प्रकाशन करती थीं। जिन स्कूलों का संचालन भारतीय जनता करती थी, उन विद्यालयों में भी मिशनरियों द्वारा प्रकाशित

पुस्तकें चलती थीं। राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' का शिक्षा-विभाग में प्रवेश, हिन्दी-प्रदेश के लिए शुभ घटना थी। वे फरवरी, १८५६ ई० में बनारस-मण्डल के स्कूलों के संयुक्त स्कूल-इन्सपेक्टर नियुक्त हुए। बनारस-मण्डल के तत्कालीन कमिश्नर हेनरी कार टुकर की उनपर अत्यधिक कृपा थी। टुकर महोदय स्कूलों के लिए पाठ्यपुस्तकें अँगरेजी में लिखते थे और उनका हिन्दी-अनुवाद राजासाहब करते थे। स्कूली पाठ्यपुस्तकों के मुद्रण और प्रकाशन सरकारी प्रेस, इलाहाबाद से होते थे। मुन्शी नवलकिशोर ने इस एकाधिकार को समाप्त किया और उन्होंने स्वयं स्कूली पुस्तकों, विशेषतः राजासाहब की पुस्तकों, का प्रकाशन आरम्भ किया। राजासाहब का **'गुटका'**, **भूगोल-हस्तामलक, मानवधर्मसार, राजा भोज का सपना, वीरसिंह का वृत्तान्त, आजमगढ़-रीडर** प्रभृति पाठ्यपुस्तकों के न जाने कितने संस्करण छापे गये तथा उत्तरप्रदेश, बिहार और बंगाल तक उनकी किताबें चलती थीं। इतना ही नहीं, अन्य लेखकों से भी हिन्दी के अतिरिक्त गणित, समाजशास्त्र, भूगोल और इतिहास विषयों पर किताबें लिखाकर उन्होंने प्रकाशित कीं और हिन्दी-प्रदेश की पाठ्यपुस्तकों की समस्या का संक्षिप्त समाधान प्रस्तुत किया।

मेडिकल हॉल-प्रेस, बनारस (सन् १८५८ ई०)

काशी के सम्मानित ईसाई नागरिक डाक्टर इ० जे० लाजरस ने काशी में प्रकाशन-उद्योग के रूप में **मेडिकल हॉल-प्रेस** तथा बाद में **लाजरस प्रेस** नाम के दो मुद्रणालयों की स्थापना की। इन दोनों मुद्रणालयों ने अपने हिन्दी-प्रकाशनों के माध्यम से हिन्दी के भाण्डार को परिपुष्ट किया। **मेडिकल हॉल-प्रेस** का स्वामित्व आरम्भ में ही प्रसन्न-कुमार चौधरी के हाथों सौंपा गया। अतः **'मेडिकल हॉल-प्रेस'** चौधरी साहब का हो गया। यह प्रेस दशाश्वमेध मुहल्ले में स्थित था।

इस प्रेस से प्रकाशित पुस्तकों की संख्या अत्यधिक है। राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' की **'वामामनरंजन'** सन् १८५९ ई० में मुद्रित-प्रकाशित हुई थी। राजासाहब का **'हिन्दी-सेलेक्शन'** सन् १८६७ ई० में सुन्दर और बड़े टाइप में मुद्रित-प्रकाशित किया गया था। यह सेलेक्शन बाद में हिन्दी-प्रदेशों की प्रमुख पाठ्यपुस्तक के रूप में समादृत हुआ।

नूरुल-इल्म-छापाखाना, आगरा (सन् १८५९ ई०)

इस मुद्रण-प्रकाशन-संस्था की स्थापना के सम्बन्ध में कोई निश्चित तिथि ज्ञात नहीं है। इस प्रेस का सबसे प्राचीन प्रकाशन पण्डित रामकृष्ण-कृत 'स्त्री-शिक्षा' नामक पुस्तक है, जिससे ज्ञात होता है कि इस मुद्रणालय की स्थापना सन् १८५९ ई० के आसपास हुई होगी। तत्कालीन पाठ्यग्रन्थों का प्रकाशन इस मुद्रणालय से हुआ। यहाँ से मुद्रित-प्रकाशित ग्रन्थों में वंशीधर का **'भोज-प्रबन्धसार'** (सन् १८६४ ई०), मुहम्मद नजीर अली की **'भारत-वृत्तावली'** (सन् १८६८ ई०) और वंशीधर की प्रसिद्ध **'चर्चावली'** (सन् १८६१ ई०) विशेष उल्लेख्य हैं।

(४) मुंबई-उल्-उलूम प्रेस, मथुरा (सन् १८६० ई०)

लाला कन्हैयालाल भार्गव ने लगभग सन् १८६० ई० में मथुरा में '**मुंबई उल्-उलम**' नामक लीथो प्रेस की स्थापना की थी।[1] कन्हैयालाल तथा वंशीधर दोनों भाई थे। दोनों मिलकर इस प्रेस का संचालन करते थे। इस प्रेस का नाम सन् १८७० ई० के बाद 'विद्योदय प्रेस' हो गया। इस प्रेस की स्थापना मथुरा की रामदास-मण्डी के मकान न० ६६ में हुई थी। यही प्रेस बाद में 'मथुरा-प्रेस' और 'विद्योदय प्रेस' के नाम से भी मुद्रण-प्रकाशन करता था। सन् १८८४ ई० तक इसे कार्यरत रहने का प्रमाण मिलता है।

इस मुद्रण-प्रकाशन-संस्था ने **सूरसागर** (सन् १८६० ई०), **सूर के दृष्टिकूट** (सन १८६४ ई०), नाभादास का **भक्तमाल** (सन् १८६७ ई०), **नन्दोत्सव के पद** (सन् १८६६ ई०), **वेदान्त-संग्रह** (सन् १८६९ ई०) **और द्वादशाक्षरी रामदास** (सन १८८४ ई०) **जैसे** साहित्यिक ग्रन्थ प्रकाशित किये थे।

बनारस लाइट प्रेस (सन् १८६० ई०)

उन्नीसवीं सदी के छठे दशक में हिन्दी के आकर-ग्रन्थ, नाटक तथा हिन्दी-साहित्य की अन्य विभिन्न विधाओं पर ग्रन्थों के प्रकाशन की दिशा में **बनारस लाइट प्रेस** ने संस्था का कार्य किया है। इस प्रेस की स्थापना पण्डित गोपीनाथ पाठक ने की थी। वे स्वयं इसके मुद्रक भी थे। यह मुद्रणालय दशाश्वमेध घाट के निकट किसी स्थान पर स्थित था। यह लीथो प्रेस था।

हिन्दी के साहित्यिक ग्रन्थों का पाठ शुद्ध एवं सम्पादन प्रामाणिक हो, इस दिशा में उन्होंने अपने प्रेस में दो साहित्यसेवी बाबू अविनाशीलाल और मुंशी हरवंशलाल की सेवा प्राप्त की थी। साहित्यकार-द्वय ग्रन्थों का सम्पादन करते थे। किन ग्रन्थों का प्रकाशन किया जाय, इसके निर्णय में भी वे अपने सत्परामर्श से पाठकजी को लाभान्वित करते थे।

यद्यपि यह लीथो प्रेस था, तथापि वे कुछ टाइप भी रखते थे। मुखपृष्ठ टाइप से छपता था। कभी-कभी मुखपृष्ठ को आकर्षक बनाने के लिए वे लाल स्याही का उपयोग करते थे। मुखपृष्ठ की छपाई अच्छी होती थी। यद्यपि पुस्तकों का मुद्रण लीथो-पद्धति से होता था, तथापि टाइप-पद्धति से जो छपाई होती थी, उससे इसकी छपाई आकर्षक नहीं होती थी। इस मुद्रणालय से लगभग दो सौ से अधिक ग्रन्थों के प्रकाशन हुए। प्रारम्भ में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की अनेक रचनाओं के मुद्रण-प्रकाशन इसी प्रेस से हुए थे। इस प्रेस से सबसे प्राचीन ग्रन्थ, सन् १८६२ ई० में सूरदास के सौ दृष्टिकूटों का संग्रह, '**सूरशतक**' नाम से बालकृष्ण दास की टीका के साथ मुद्रित और प्रकाशित हुआ था।

इस प्रकाशन-संस्था से मुद्रित-प्रकाशित पुस्तकों में **कवित्त-रामायण** (सन् १८६४ ई०), **पिंगल-भाषा** (सन् १८६४ ई०), **सूरसागर-सार** (सन् १८६४ ई०), नेवाज कवि का **शकुन्तला नाटक** (सन् १८६४ ई०), **पद्माकर** कवि का **जगद्विनोद** (सन् १८६५ ई०), रघुनाथ कवि का **रसिकमोहन** (सन् १८६५ ई०), काष्ठजिह्वा स्वामी की **रामसुधा** (सन् १८६५ ई०), **अनेकार्थ नाममाला** (सन् १८६५ ई०), **कविप्रिया** की **सरदार कविकृत** टीका (सन् १८६५ ई०), बाबा दीनदयाल गिरि का **अरानुगबाग** और **अन्योक्ति-**

१. हिन्दी के आदिमुद्रित ग्रन्थ, भूमिका, पृ० २५

कल्पद्रुम, नानक कवि का **नानक-विनय** (सन् १८६९ ई०), **गीतावली की हरिप्रसादी टीका** (सन् १८६९ ई०), **रामायण-परिचर्चा**, **अयोध्याकाण्ड** (सन् १८६४ ई०), रसलीन कवि का **रसप्रबोध** (सन् १८६९ ई०), **रसिकप्रिया की सरदार कविकृत टीका** (सन् १८६७ ई०), देव कवि का **अष्टयाम** (सन् १८६७ ई०), **दयानन्द सरस्वती का शास्त्रार्थ** (सन् १८६९ ई०) और **अद्‌भुत रामायण** (सन् १८६७ ई०) प्रमुख थीं। **गणित-कौमुदी** नामक पुस्तक की दस हजार प्रतियाँ सन् १८६८ ई० में मुद्रित-प्रकाशित हुई थीं। हिन्दी-साहित्य के लगभग सभी प्राचीन काव्य-ग्रन्थों और समकालीन लेखकों के ग्रन्थों का प्रकाशन करनेवाली यह एकमात्र संस्था थी।

वाराणसी-संस्कृत-यन्त्रालय (सन् १८६० ई०)

हिन्दी-प्रकाशन के दूसरे युग की प्रकाशन-संस्थाओं में हिन्दी के साहित्यकारों ने स्वयं भाग लेना आरम्भ किया। साहित्य-रचना के साथ ही उसके प्रकाशन की व्यवस्था भी अपने हाथ में ली। ऐसी प्रकाशन-संस्थाओं में वाराणसी-संस्कृत-यन्त्रालय के संस्थापक-व्यवस्थापक पण्डित मन्नालाल शर्मा 'द्विज' की सेवा उल्लेखनीय है।

पण्डित मन्नालाल शर्मा 'द्विज' भारतेन्दु-युग के साहित्यकार तथा भारतेन्दु-गोष्ठी के सक्रिय सदस्य थे। वे कवि थे। उन्होंने हिन्दी-ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए अपने त्रिपुराभैरवी मुहल्ला-स्थित निवास-स्थान पर लीथो प्रेस **वाराणसी-संस्कृत-यन्त्रालय** की सन् **१८६० ई०** के लगभग स्थापना की थी। इस प्रेस से सन् १८६६ ई० में प्रकाशित **'हास्यार्णव नाटक'** से इस प्रेस के सम्बन्ध में जो जानकारी मिलती है, वह इस प्रकार है :

"पण्डित मन्नालाल ने वाराणसी संस्कृत यन्त्रालय में छापी जिस किसी को लेना होय सो बनारस त्रिपुरा भैरवी महाल में बाला जी के छत्ते के पास वाराणसी संस्कृत यन्त्रालय में मिलेगी।"

इस प्रकाशन की कृतियों की उल्लेखनीय विशेषता यह थी कि सभी ग्रन्थ रॉयल आकार और मोटे सुन्दर अक्षरों में लीथो से छापे जाते थे। इस प्रकाशन की प्रमुख कृतियों की सूची इस प्रकार है :

युगलकिशोर, हास्यार्णव नाटक, पद्‌माभरण, सुन्दरीतिलक, सुन्दरीसर्वस्व, श्रृंगार सरोज, रसतरंग, उपवन-रहस्य, सेनापति का षट्‌ऋतु-वर्णन आदि।

जंगबहादुर यन्त्रालय, बलरामपुर (सन् १८६६ ई०)

इस प्रकाशन-संस्था की स्थापना की सुनिश्चित अवधि ज्ञात नहीं है, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि सन् १८६६ ई० में इसकी स्थापना हुई होगी। यह बलरामपुर-नरेश का निजी प्रेस था। इस प्रेस की स्थापना चाहे जिस व्यक्तिगत या व्यावसायिक दृष्टि से हुई हो, लेकिन हिन्दी के साहित्यिक ग्रन्थों के प्रकाशन की दिशा में इसकी सेवा का महत्त्व है।

बलरामपुर राजदरबार था। यहाँ कवि और साहित्यकारों को राज्याश्रय प्राप्त होता था, उनकी रचनाओं का मूल्यांकन होता था और कृतियों का प्रकाशन भी। बलरामपुर-दरबार के कवि गोकुल प्रसाद 'बृज' के **चित्रकलाधर** (सन् १८६६ ई०), **पंचदेव-पंचक** (सन् १८६७ ई०) और **दिग्विजयभूषण** नामक ग्रन्थ (सन् १८६८ ई०) यहीं से

प्रकाशित हुए। यहाँ से प्रकाशित अन्य ग्रन्थों के भी विवरण मिलते हैं। यह लीथो प्रेस था।

चन्द्रप्रभा प्रेस, काशी (सन् १८६६ ई०)

इस प्रकाशन-संस्था की स्थापना के सम्बन्ध में प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। यह मुद्रण तथा प्रकाशन दोनों कार्य करता था। आरम्भ में यह लीथो प्रेस था, बाद में टाइप-मुद्रण प्रेस हो गया। इस प्रेस से प्रकाशित ग्रन्थों के अवलोकन से ऐसा ज्ञात होता है कि इस प्रेस की स्थापना सन् १८६६ ई० के आसपास हुई होगी। इसने सन् १८९० ई० तक हिन्दी-ग्रन्थों के प्रकाशन के क्षेत्र में काम किया।

यहाँ से प्रकाशित ग्रन्थों में पण्डित अम्बिकादत्त व्यास के **क्षेत्र-कौशल** (सन् १८८४ ई०), **महाताश कौतुक पचासा, ईश्वरेच्छा** (सन् १८९८ ई०), **साहित्य-नवनीत** (सन् १८९९ ई०) ग्रन्थ प्रमुख हैं। भारतेन्दु की '**अन्धेर नगरी**' के पाँचवें संस्करण का प्रकाशन (सन् १८८२ ई० में) यहीं से हुआ था। इस प्रेस की सबसे पुरानी कृतियों में **खटमल बाईसी** है, जिसका प्रकाशन सन् १८६६ ई० में हुआ था।

लाजरस प्रेस, काशी (सन् १८६७ ई०)

काशी के लब्धप्रतिष्ठ नागरिक डॉ० इ० जे० लाजरस ने, जो ईसाई थे, उन्नीसवीं शती के छठे दशक में बनारस के दशाश्वमेध मुहल्ले में 'लाजरस प्रेस' की स्थापना की थी। हिन्दी तथा संस्कृत-ग्रन्थों के प्रकाशन के क्षेत्र में इस शती के उत्तरार्द्ध में काम करनेवाली प्रकाशन-संस्थाओं में लाजरस प्रेस अग्रगण्य था।

इस प्रेस का सबसे प्राचीन प्रकाशन **जॉर्ज बन्नियन** की यात्रा '**स्वप्नोदय**' नामक ग्रन्थ है, जिसका प्रकाशन सन् १८६७ ई० में हुआ था। यह टाइप-प्रेस था। सन् १९०९ ई० तक यह प्रकाशन के क्षेत्र में कार्यरत रहा। बाद में यह प्रेस दशाश्वमेध से उठकर नदेसर चला गया। प्रेस पर कर्ज का भार अधिक था। अन्त में यह प्रेस नीलाम हो गया। इसकी सारी सामग्री तथा प्रकाशन कचौड़ी गली (बनारस) के प्रसिद्ध संस्कृत-ग्रन्थ-प्रकाशक मास्टर खिलाड़ीलाल ने खरीद लिये।

निर्णयसागर प्रेस (सन् १८६९ ई०)

भारतीय मुद्रणालय तथा प्रकाशन के इतिहास में निर्णयसागर प्रेस की सेवाएँ सर्वाधिक स्पृहणीय हैं। भारतीय मुद्रणालय को अधुनातन नयनाभिराम देवनागरी मुद्राक्षरों के निर्माण की दिशा में इस प्रेस का अन्यतम योगदान है। भारतीय प्रकाशन-जगत् में संस्कृत और हिन्दी-ग्रन्थों के उत्तम मुद्रण-प्रकाशन द्वारा यह प्रेस यशस्वी हुआ। निर्णयसागर प्रेस की स्थापना भारतीय मुद्रणालयों के लिए ऐतिहासिक घटना है।

जावजी दादाजी चौधरी नामक युवक अमेरिकन मिशनरी के छापेखाने में दो रुपये मासिक पर नौकरी करता था। इस मिशन प्रेस में टाइप घिसने का काम करते हुए टाइप काटने और ढालने की कला उसने अपनी कुशाग्र बुद्धि से सीख ली। तदनन्तर उसका वेतन सात रुपये महीना हो गया। कुछ दिनों बाद, उसने दस रुपये मासिक पर '**टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रेस**' में नौकरी कर ली। फिर इसे भी छोड़कर बम्बई के इन्दुप्रकाश मुद्रणालय

में तेरह रुपये मासिक पर और अन्त में वहीं के ओरिएण्टल प्रेस में तीस रुपये महीने पर उसने नौकरी कर ली। इतने दिनों में वह टाइप-निर्माण के शिल्प में पारंगत हो गया। कुछ ही दिनों के बाद उसने बम्बई की कोलभाट गली में मुद्राक्षर-निर्माणशाला की आधारशिला रखी। उसने देवनागरी, गुजराती, मराठी और अँगरेजी के सुन्दर और आकर्षक मुद्राक्षर बनाने शुरू कर दिये। मुद्राक्षर-निर्माण में जावजी बेजोड़ सिद्ध हुए।

जिन दिनों जावजी टाइप-निर्माण के क्षेत्र में यशस्वी हो रहे थे, उन्हीं दिनों बम्बई के वेदज्ञ शास्त्री विट्ठल सखाराम अग्निहोत्री प्रतिवर्ष लीथो प्रेस से पंचांग छपाकर प्रकाशन किया करते थे। उन्हें भी जावजी के मुद्राक्षरों के सौन्दर्य ने अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। उन्होंने जावजी से निवेदन किया : **'यदि आप मेरा पंचांग सुन्दर सीसकाक्षरों में छाप दें तो मैं आपको मुद्रण के लिए ५०० रु० अग्रिम देने को तैयार हूँ।'**[१] जावजी ने कहा : 'पंचांग का काम बहुत अटपटा होता है। यदि वह ठीक प्रकार हस्तगत हो जाय तो ठीक है। मैं उसके लिए टाइप तैयार करूँगा। उसके द्वारा एक नमूने का पृष्ठ छापकर आपको दिखाऊँगा। वह आपको पसन्द आ जायगा, तो सहर्ष पंचांग छापने का आयोजन करूँगा।'[२]

जावजी ने पंचांग के लिए नये टाइप ढाले। पंचांग का एक पृष्ठ नमूने के रूप में छापकर शास्त्रीजी को दिखाया, जिसे देखकर शास्त्रीजी बहुत प्रसन्न हुए। इसी पंचांग को छापने के लिए उन्होंने सन् १८६९ ई० में प्रेस खरीदने का 'निर्णय' किया। इस कारण, उन्होंने अपने प्रेस का नाम **'निर्णयसागर'** रखा। सन् १८६९ ई० में **निर्णयसागर प्रेस** से पंचांग मुद्रित होने लगा। उन्होंने अपने प्रेस का व्यवस्थापक अपने मित्र रामचन्द्र अमृतराव भोरे को नियुक्त किया।

'निर्णयसागर' प्रेस की स्थापना के पाँच वर्ष बाद प्रकाशन की ओर जावजी का ध्यान गया। उन्होंने प्रेस के माध्यम से हिन्दी और मराठी के साथ-साथ संस्कृत-साहित्य की विशेष रूप से सेवा की। प्राचीन हस्तलेखों को विद्वान् सम्पादकों से सम्पादित कराकर सुन्दर बम्बइया मुद्राक्षर में उन्होंने मुद्रित और प्रकाशित किया। देवनागरी-मुद्राक्षरों में सुडौल, सुन्दर, कलात्मक और आकर्षक मुद्रण के लिए निर्णयसागर प्रेस न केवल भारत में, अपितु विदेशों में भी ख्यात हुआ। शुद्ध मुद्रण के लिए विद्वान् प्रूफ-संशोधकों से प्रूफ-संशोधन कराया जाता था। अशुद्ध छप जाने पर फार्म-के-फार्म नष्ट कर पुनर्मुद्रण होता था। निर्णयसागर प्रेस के प्रकाशनों के सम्बन्ध में यह उक्ति थी :

वेदशास्त्रपुराणेतिहासकाव्यान्यनेकशः ।
योग्यमूल्येन दास्यन्ते ग्रन्था निर्णयसागरे ॥

यह अक्षरशः सत्य है।

श्रीवेंकटेश्वर स्टीम छापाखाना, बम्बई (सन् १८७१ ई०)

मुद्रण-प्रकाशन के नवलकिशोर-युग की विश्वविश्रुत भारतीय प्रकाशन-संस्थाओं में

१, मासिक 'सरस्वती', जुलाई, १९७१; पृ० ३८
२. वही

श्रीवेंकटेश्वर छापाखाना अन्यतम है। हिन्दी-साहित्य की विभिन्न विधाओं पर भारी संख्या में पुस्तक-प्रकाशन तथा उसका समुचित प्रसार कर इस संस्था ने अनोखा कार्य किया है।

बीकानेर जिले (अब जयपुर) के चुरू-निवासी गंगाविष्णु और खेमराज नामक दो युवक जीविका की खोज में घर से पदयात्रा करते हुए, लगभग पाँच सौ मील दूर रतलाम पहुँचे। यहाँ अपने को निराश्रित पाकर नरसिंह-मन्दिर में रहने लगे। दलाली से उन्हें जो आय होती थी, उससे वे गुजारा करते तथा नरसिंह भगवान् की उपासना करते। मन्दिर का महन्थ उनकी आस्तिक प्रवृत्ति से प्रसन्न था। महन्थ स्वयं तिरुपति वेंकटेश्वर का उपासक था। दोनों भाइयों की भक्ति से प्रभावित होकर उसने उन दोनों भाइयों से कहा : "श्रीवेंकटेश्वर भगवान् का आदेश है कि तुम दोनों दक्षिण की ओर जाकर पुस्तकों का व्यवसाय करो। सफलता मिलेगी।"[1] उन्हीं के आदेश पर दोनों भाइयों ने बम्बई में पुस्तकों की खरीद-बिक्री शुरू की। बम्बई से किताबें खरीदकर वे पटना तथा सोनपुर मेले में बेचते थे। एक बार उन्होंने एक व्यापारी से सौ रुपये लेकर सोनपुर मेले में पाँच सौ रुपये की पुस्तकें बेचीं। इसमें उन्हें चार सौ रुपये की आय हुई। इसी मुनाफे में उन्होंने बम्बई के मोतीबाजार में दो रुपये महीने किराये पर एक कमरा लिया। कमरे में उन्होंने सन् १८७१ ई० में श्रीवेंकटेश्वर प्रेस की नींव डाली। यह लीथो प्रेस था। रतलाम के महन्थजी ने श्रीवेंकटेश्वर भगवान् की प्रेरणा से मुद्रण-प्रकाशन के लिए उत्साहित किया था। इसलिए उस प्रेस का नाम '**श्रीवेंकटेश्वर प्रेस**' रखा गया। इस लीथो प्रेस का चित्रण करते हुए लिखा गया है :

"सौ बरस पहले के इस प्रेस के उपकरण ही क्या थे—हाथ से चलनेवाला एक हैण्ड-प्रेस और थोड़े टाइप। बड़े भाई गंगाविष्णुजी कम्पोज करते थे और छोटे भाई खेमराज हैण्डप्रेस में कागज रखकर हैण्डल दबाते थे। छपाई का यही तरीका था। गंगाविष्णुजी को मामूली अक्षर-ज्ञान था, इसलिए अक्षरों के संयोजन का काम उनके जिम्मे था। मगर उसके आगे का सब काम खेमराजजी करते थे। इस प्रेस से सबसे पहले विष्णुसहस्रनाम तथा 'हनुमान-चालीसा' छपी थी। उन्हें बेचने का काम भी खेमराजजी के जिम्मे था।"[2]

बम्बई के खेतवाड़ी में सन् १८८० ई० में दोनों भाइयों ने प्रेस के लिए जमीन खरीदी और प्रेस का अपना भवन बनाया। सन् १८८० ई० में इसी भवन में श्रीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस ने टाइप-प्रिंटिंग प्रेस का रूप ग्रहण किया।

हिन्दी-मुद्रण-प्रकाशन के क्षेत्र में इस प्रेस का विशेष योगदान रहा है। इस संस्था से हिन्दी और संस्कृत के लगभग तीन हजार ग्रन्थ मुद्रित और प्रकाशित हुए। इस मुद्रणालय से मुद्रित ग्रन्थों की यह विशेषता थी कि बम्बइया मोटे टाइप में बढ़िया कागज पर सुन्दर छपाई होती थी। साथ ही यह दोष भी था कि यहाँ से प्रकाशित ग्रन्थों में मुद्रण-सम्बन्धी अशुद्धियों की भरमार रहती थी।

---

१. 'नवनीत' मासिक, पथ-प्रवर्त्तक, नवम्बर, १९७१ ई०; पृ० ९३-९४
२. वही, पृ० ९४

'बिहारबन्धु' यन्त्रालय, पटना (सन् १८७४ ई०)

बिहार में मुद्रणालय का आरम्भ बहुत विलम्ब से हुआ। सन् १८४६ ई० से पूर्व बिहार में कहीं भी मुद्रणालय की नींव नहीं पड़ी। यहाँ के विद्यालयों के लिए कलकत्ता, लखनऊ, बम्बई और बनारस से छपी पुस्तकें आती थीं। मुजफ्फरपुर में ईसाई मिशनरी ने प्रेस की स्थापना की थी, जहाँ से स्कूली पुस्तकों तथा ट्रैक्टों के मुद्रण-प्रकाशन होते थे। शाहाबाद जिले के सहसराम के शाह कबीरुद्दीन अहमद ने सन् १८५० ई० में लीथो प्रेस कायम किया था।[१] इस प्रेस का नाम 'मुथाब कोवेरा' था। इस प्रेस से ख्वाजा मीरे दर्द की कहावतों की तीन सौ प्रतियाँ सन् १८५२ ई० में लीथो से छपी थीं।[२] प्रेस के अभाव में सन् १८५६ ई० तक बिहार में किसी भी पत्र-पत्रिका का प्रकाशन नहीं हुआ।

सन् १८५७ ई० में पटना में दो मुद्रणालयों का उल्लेख मिलता है, जो अपने व्यक्तिगत कार्यों के लिए खोले गये थे।[३] सहसराम के शाह कबीरुद्दीन अहमद के लीथो प्रेस में सरकारी काम भी होते थे। उन्नीसवीं सदी के छठे दशक में मुद्रणालयों का विकास होने लगा।[४] फिर भी सन् १८७४ ई० तक बिहार में टाइप-मुद्रणालय स्थापित नहीं हुआ। बिहार में सर्वप्रथम, मिशनरियों को छोड़कर, जिनका अपना टाइप-प्रेस मुजफ्फरपुर में कार्यरत था, पटना में 'बिहारबन्धु प्रेस' की स्थापना सन् १८७६ ई० में हुई।

बिहारबन्धु प्रेस के स्वत्वाधिकारी पण्डित मदनमोहन भट्ट और पण्डित केशवराम भट्ट थे। दोनों सहोदर भाई थे और बिहार के बिहारशरीफ (अब नालन्दा जिले का मुख्यालय) में महाराष्ट्र से आकर बस गये थे। पण्डित मदनमोहन भट्ट ने सर्वप्रथम 'बिहारबन्धु' साप्ताहिक हिन्दी-पत्र का सन् १८७२ ई० में कलकत्ता से प्रकाशन आरम्भ किया। इनके पास निजी प्रेस नहीं था, इसलिए 'बिहारबन्धु' का मुद्रण सन् १८७९ ई० तक कलकत्ता के माणिकतल्ला स्ट्रीट-स्थित श्रीपूरणप्रकाश प्रेस से होता था।[५] लगभग दो वर्षों तक यह पत्र कलकत्ता से ही प्रकाशित होता रहा। अहिन्दीभाषियों द्वारा प्रूफ देखे जाने के कारण उक्त पत्र में अशुद्धियाँ अधिक रहती थीं। फलतः सन् १८७४ ई० में 'बिहारबन्धु' का प्रकाशन पटना से आरम्भ किया गया।

सन् १८७४ ई० में 'बिहारबन्धु' के लिए कलकत्ता से प्रेस खरीदकर पटना लाया गया। वर्त्तमान पटना कॉलेज-भवन के पूरबी हिस्से पर एक छोटा-सा कच्चा खपरैल मकान था। उसी में 'बिहारबन्धु' छापाखाना तथा कार्यालय दोनों थे। इस स्थान पर जब सन् १९०२ ई० में वर्त्तमान पटना कॉलेज-भवन की नींव रखी गई तब इसका कार्यालय तथा प्रेस—दोनों वहाँ से उठकर कुनकुन सिंह लेन में चले गये। सन् १९१३ ई० में

---

१. 'अर्ली प्रिण्टिंग प्रेसेज ऐण्ड न्यूजपेपर्स इन बिहार' : जर्नल ऑफ बिहार रिसर्च-सोसाइटी, जनवरी-दिसम्बर, १९६४; पृ० ९८—१०४

२. वही

३. वही

४. राजेन्द्र-अभिनन्दन-ग्रन्थ, पृ० ३५२—६४

५. वही

कर्ज-भार के कारण इस प्रेस की समस्त सामग्री नीलाम हो गई। इस प्रकार 'बिहारबन्धु' प्रेस का अस्तित्व सन् १९१३ ई० में समाप्त हो गया।

'बिहारबन्धु' के कलकत्ता से पटना आगमन के साथ ही इस प्रेस ने पुस्तकों का प्रकाशन प्रारम्भ किया। कलकत्ता में इसने 'भोजन-विचार' पुस्तक प्रकाशित की थी। उस समय 'बिहारबन्धु' का कार्यालय ७, तुलापट्टी नामक मुहल्ले में था। पटना से प्रकाशन आरम्भ होने पर पण्डित केशवराम भट्ट का **हिन्दी-व्याकरण, विद्या की नींव, सज्जाद सम्बुल** और **शमशाद सौसन** नाटक प्रकाशित हुए।

बिहार में इस समय कोई दूसरा हिन्दी-प्रकाशक नहीं था। इसलिए इस अवधि में **'बिहारबन्धु'** ने प्रकाशन के क्षेत्र में दिशा-निर्देशक का कार्य किया। उसकी सेवाएँ विस्मृत नहीं की जा सकतीं।

'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' यन्त्रालय, काशी (सन् १८७४ ई०)

आधुनिक खड़ीबोली-साहित्य के निर्माता भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने अपने चौखम्बा निवास में अपने पिता की तथा अपनी पुस्तकों के प्रकाशन के लिए सन् १८७४ ई० में लीथो प्रेस की स्थापना की थी। इस प्रेस से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की अपनी एक भी कृति मुद्रित और प्रकाशित नहीं हुई, किन्तु उन्होंने अपने पिता बाबू गोपालचन्द्र गिरिधरदास का 'जरासन्ध-वध' महाकाव्य (पूर्वार्द्ध) मुद्रित किया था। उस ग्रन्थ से इस मुद्रणालय के सम्बन्ध में निम्नलिखित जानकारी मिलती है :

"उनके प्रिय पुत्र हरिश्चन्द्र ने अपने घर के श्रीठाकुरजी के बाग में हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका नाम पाषाण यन्त्र में मुद्रित किया, संवत् १९३१।"

इस पुस्तक के अतिरिक्त इस प्रेस का कोई दूसरा प्रकाशन देखने को नहीं मिला। जिस शिला पर यह पुस्तक मुद्रित की गई थी, वह आज भी भारतेन्दु-परिवार में सुरक्षित है।

सदादर्श प्रेस, दिल्ली (सन् १८७६ ई०)

उन्नीसवीं सदी के यशस्वी उपन्यासकार और नाटककार लाला श्रीनिवासदास ने दिल्ली में 'सदादर्श' नामक प्रेस की सन् १८७६ ई० में स्थापना की थी। इस प्रेस से लालाजी 'सदादर्श' नामक पत्रिका निकालते थे। इसी प्रेस से लालाजी के 'रणधीर-प्रेममोहिनी' आदि उपन्यास मुद्रित और प्रकाशित हुए।

भारतमित्र प्रेस, कलकत्ता (सन् १८७९ ई०)

हिन्दी-पत्रकारिता की उन्नीसवीं शती के दूसरे दौर में पण्डित छोटूलाल मिश्र तथा पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र ने १७ मई, १८७८ ई० को 'भारतमित्र' नामक अखबार का प्रकाशन कलकत्ता से किया था। यह पाक्षिक पत्र था। इस अखबार का निजी प्रेस नहीं था। इसलिए मुद्रण दूसरे प्रेस में होता था। लगभग एक वर्ष तक इस पत्र के नियमित प्रकाशन के पश्चात् मई, १८७९ ई० में इस पत्र के लिए प्रेस खरीदा गया और प्रेस का नाम **भारतमित्र प्रेस** रखा गया। इस प्रेस से ८ मई, १८७९ ई० से **'भारतमित्र'** मुद्रित और प्रकाशित होने लगा।

'भारतमित्र' के पास निजी प्रेस हो जाने पर पुस्तक-प्रकाशन की ओर भी उनका ध्यान गया। इस प्रकाशन की विशेषता यह थी कि यहाँ की पुस्तकें आकर्षक कलकतिया मुद्राक्षरों एवं बादामी रंग के हल्के कागज के आवरणों में मुद्रित-प्रकाशित होती थीं। इसके प्रमुख प्रकाशनों में बालमुकुन्द गुप्त का 'शिवशम्भु का चिट्ठा' और 'हिन्दी-भाषा' आदि प्रमुख हैं।

खड्गविलास-युग
(सन् १८८०—१८९९ ई०)

हिन्दी-प्रकाशन का तीसरा युग 'खड्गविलास-युग' है। खड्गविलास प्रेस के संस्थापक महाराजकुमार रामदीन सिंह ने अपने इस प्रेस के माध्यम से तत्कालीन विद्वानों से लेकर जन-सामान्य तक हिन्दी-साहित्य को पहुँचाने की दिशा में बेजोड़ काम किया था। इस प्रेस की स्थापना से पूर्व हिन्दी-भाषी प्रदेशों में नवलकिशोर प्रेस ग्रन्थ-प्रकाशन के क्षेत्र महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा था। साहित्यिक ग्रन्थों के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी-प्रदेशों के विद्यालयों के लिए पाठ्यपुस्तकों की रचना कराकर उनका प्रकाशन कर रहा था। किन्तु, खड्गविलास प्रेस बिहार तथा बंगाल-प्रदेश में हिन्दी-पाठ्यपुस्तकों के प्रणयन-प्रकाशन की दिशा में अकेली प्रकाशन-संस्था था। इसने आधुनिक हिन्दी, खड़ीबोली-गद्य और कविता के प्रकाशन का कार्य उसी प्रकार किया, जिस प्रकार कोई साहित्यिक संस्था करती है। अपनी समकालीन प्रकाशन-संस्थाओं की अपेक्षा अकेले अधिक कार्य कर इसने अपने युग का प्रतिनिधित्व किया। यद्यपि महाराजकुमार रामदीन सिंह का निधन सन् १९०३ ई० में हुआ, तथापि उनके प्रेस ने पूर्ववत् उत्साह के साथ सन् १९३६ ई० तक प्रकाशन के क्षेत्र में काम कर हिन्दी-साहित्य को उजागर किया है। इस युग को मैंने 'खड्गविलास-युग' माना है।

१. 'उचित वक्ता' यन्त्रालय, कलकत्ता (सन् १८८१ ई०)

भारतेन्दु-युग के यशस्वी पत्रकार पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र कलकत्ता के बड़ाबाजार मुहल्ले के ६५, सूतापट्टी में 'उचित वक्ता' साप्ताहिक पत्र का सम्पादन-प्रकाशन करते थे। आरम्भ में यह पत्र सरस्वती यन्त्र से छपकर बड़ाबाजार, कलकत्ता-स्थित सूतापट्टी, नं० ६५ से प्रति शनिवार को प्रकाशित होता था। एक साल बाद उसका अपना प्रेस हो गया। प्रेस और कार्यालय दोनों सूतापट्टी में थे। मिश्रजी ने प्रेस का नामकरण भी 'उचित वक्ता' किया।

मिश्रजी पत्र-प्रकाशन के साथ-साथ पुस्तक-प्रकाशन का भी कार्य करते थे। यद्यपि इस मुद्रणालय से बहुत अधिक पुस्तकें मुद्रित-प्रकाशित नहीं हुईं, तथापि इस प्रेस ने भारतेन्दु-युग के साहित्यकारों की कृतियों को प्रकाश में लाने में सहयोग किया।

इस प्रेस से मुद्रित-प्रकाशित ग्रन्थों में लाला श्रीनिवासदास की **'रणधीर-प्रेममोहिनी'** का तीसरा संस्करण (सन् १८८३ ई०), और पण्डित प्रतापनारायण मिश्र-कृत बँगला-पुस्तकों के हिन्दी-अनुवाद स्वास्थ्य-विद्या (सन् १८९४ ई०) और **बोधोदय** (सन् १८९४ ई०) **उल्लेखनीय हैं।** इनके अतिरिक्त इसने अनेक पाठ्यपुस्तकों का भी प्रकाशन किया।

२. व्यास-यन्त्रालय, भागलपुर (सन् १८८३ ई०)

भारतेन्दु-युग के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यिक एवं भारतेन्दु-मण्डल के मेधावी सदस्य पण्डित अम्बिकादत्त व्यास ने अपनी कृतियों तथा साहित्यिक प्रकाशन के लिए सन् १८८३ ई० में भागलपुर में 'व्यास-यन्त्रालय' नाम से हिन्दी-मुद्रणालय की स्थापना की थी। यह अक्षर-मुद्रणालय था। इस प्रेस से व्यासजी की ही कृतियाँ मुख्यतः प्रकाशित हुई थीं। यह प्रेस बाद में वाराणसी स्थानान्तरित हो गया।

३. आनन्द-कादम्बिनी प्रेस, मिर्जापुर (सन् १८८३ ई०)

भारतेन्दु-मण्डल के प्रतिभा-सम्पन्न साहित्यिक चौधरी बदरीनारायण उपाध्याय 'प्रेमघन' ने सन् १८८३ ई० में मिर्जापुर से 'आनन्द-कादम्बिनी' नामक साहित्यिक मासिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया था। कई वर्षों तक यह पत्रिका मिर्जापुर से प्रकाशित होती रही। बाद में इसका नाम 'नागरी-नीरद' हो गया। 'आनन्द-कादम्बिनी' पत्रिका के नाम पर उन्होंने प्रेस का नाम आनन्द-कादम्बिनी प्रेस रखा था। इस प्रेस से प्रेमघन-साहित्य के अतिरिक्त अन्य साहित्यकारों की कृतियों का भी प्रकाशन हुआ था।

४. नारायण प्रेस, मुजफ्फरपुर (सन् १८८४) ई०

मुजफ्फरपुर के प्रसिद्ध रईस बाबू नारायणप्रसाद महथा ने साहित्यिक ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए शिला-यन्त्रालय की सन् १८८४ ई० के आसपास 'नारायण प्रेस' के नाम से स्थापना की थी। बाद में यह प्रेस अक्षर-मुद्रण का भी काम करने लगा था, यद्यपि आरम्भ में शिलायन्त्र से पुस्तकों की अच्छी छपाई होती थी।

इस प्रेस से खड़ीबोली-आन्दोलन के अग्रदूत बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री की **खड़ीबोली का पद्य, पहला भाग** (सन् १८८७ ई०); **खड़ीबोली का पद्य, दूसरा भाग** (सन् १८८९ ई०); **मौलवी साहब का साहित्य** (सन् १८८७ ई०); **मौलवी-स्टाइल की हिन्दी का छन्द-भेद** (सन् १८८७ ई०) और भारतेन्दु-मण्डल के प्रतिभाशाली सदस्य पण्डित अम्बिकादत्त व्यास की **'सुकवि सतसई'** (सन् १८८७ ई०), **'कलियुग और घी'** (सन् १८८६ ई०), **'पुष्पवर्षा'** (सन् १८८६ ई०) तथा उनकी अन्य रचनाओं के अतिरिक्त उनकी मासिक पत्रिका **'पीयूष-प्रवाह'** भी इसी प्रकाशन-संस्था से मुद्रित-प्रकाशित होती थी। इस संस्था ने अच्छी संख्या में हिन्दी-साहित्य की रचनाओं का प्रकाशन कर हिन्दी-साहित्य-भाण्डार को पूर्ण करने की दिशा में प्रयत्न किया था।

५. भारतभ्राता प्रेस, रीवाँ (सन् १८८४ ई०)

रीवाँ-नरेश लाल बलदेव सिंह ने **'भारतभ्राता-यन्त्रालय'** नाम से १ अप्रैल, १८८७ ई० में रीवाँ में प्रेस की स्थापना की थी। इस प्रेस से **'भारतभ्राता'** साप्ताहिक पत्र प्रकाशित होता था। रीवाँ-नरेश की कई महत्त्वपूर्ण साहित्यिक पुस्तकों का प्रकाशन यहाँ से हुआ था।

६. भारत-जीवन यन्त्रालय, काशी (सन् १८८४ ई०)

भारतेन्दु-मण्डल के सदस्य और रसिक साहित्यकार रामकृष्ण वर्मा ने भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की प्रेरणा से पत्रकारिता के माध्यम से हिन्दी-सेवा के लिए **'भारत-जीवन'** साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन ३ मार्च, १८८४ ई० को आरम्भ किया था। कहा जाता है कि इस पत्र

का नामकरण भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ही 'भारत-जीवन' किया था। इस पत्र के नाम पर ही उन्होंने निजी प्रेस का नाम 'भारत-जीवन यन्त्रालय' रखा था। यन्त्रालय की स्थापना (सन् १८८४ ई०) काशी में हुई थी। उन्नीसवीं शती के हिन्दी-प्रकाशन के रामदीन-युग की यह यशस्वी साहित्यिक प्रकाशन-संस्था थी।

इस संस्था से ३ मार्च, १८८४ ई० को 'भारत-जीवन' साप्ताहिक का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इसके प्रधान सम्पादक रामकृष्ण वर्मा थे, जो इस पत्र तथा यन्त्रालय के स्वामी भी थे। पत्र के सम्पादन के लिए उन्होंने सहायक सम्पादक भी रखा था, जो वास्तव में इस पत्र के सम्पादक कहे जा सकते हैं। सहायक सम्पादकों में कार्त्तिकप्रसाद खत्री, हरिकृष्ण जौहर, गंगाप्रसाद गुप्त, रामचन्द्र वर्मा और कृष्णदेव प्रसाद गौड़ 'बेढ़ब बनारसी' थे। यह पत्र लगभग तीस वर्षों तक हिन्दी की अनवरत सेवा करता रहा। यह सन् १९२२ ई० में दैनिक के रूप में निकलने लगा। उस समय इसके सम्पादक थे शब्दब्रह्म-मर्मज्ञ रामचन्द्र वर्मा। यह पत्र आगे न चल सका। काशी का यह प्रथम दैनिक पत्र था।

'भारत-जीवन' हिन्दी का साहित्यिक पत्र था। समकालीन साहित्यकारों की रचनाओं, साहित्यिक गतिविधियों की सूचना, साहित्यिक लेख, यात्रा-विवरण, बँगला-उपन्यासों का खड़ीबोली हिन्दी में अनुवाद तथा सामान्य समाचारों का प्रकाशन इस पत्र में होता था। यद्यपि इसमें राजनीतिक एवं सामाजिक युगबोध का अभाव था, तथापि साहित्यिक धरातल पर इस पत्र की सेवा की प्रशंसा की जायगी। इसमें युगबोध के प्रति जो अभाव था, उसी को ध्यान में रखकर भारतेन्दु-युग के तेजस्वी पत्रकार बालमुकुन्द गुप्त ने इस पत्र की, अपने 'संवाद-पत्रों का इतिहास' में तीखी आलोचना की है। तीस वर्षों तक हिन्दी की अनवरत सेवा कर यह पत्र सन् १९२३ ई० में अस्तंगत हो गया।

इस प्रकाशन-संस्था से पत्र-प्रकाशन के साथ ही पुस्तकों के प्रकाशन भी होते थे। दर-असल भारत-जीवन यन्त्रालय की प्रतिष्ठा उसके 'भारत-जीवन' पत्र के प्रकाशन के कारण नहीं, बल्कि उसके द्वारा प्रकाशित ग्रन्थों के कारण हुई।

'भारत-जीवन यन्त्रालय' के प्रकाशनों का अपना वैशिष्ट्य था। इसके विशिष्ट प्रकाशनों में रीतिकालीन ग्रन्थों का प्रकाशन; सरल कविताओं का संकलन, जो मूलतः रीतिकालीन काव्यधारा की रचनाएँ रही हैं; गजल, ठुमरी, लावनी का संग्रह-प्रकाशन, सामान्य जन तक उनके स्वस्थ साहित्यिक मनोरंजन के लिए खड़ीबोली हिन्दी में बँगला-उपन्यासों का अनुवाद-प्रकाशन और संस्कृत के प्राचीन नीतिग्रन्थों तथा 'कथासरित्सागर' के अनुवाद का प्रकाशन प्रमुख थे।

इस संस्था ने हजारों की संख्या में हिन्दी-ग्रन्थों का प्रकाशन किया। इन मुद्रित ग्रन्थों की विशेषता यह थी की ये डबल-डिमाई आकार में मोटे टाइप में मुद्रित-प्रकाशित होते थे। पुस्तक का आवरण-पृष्ठ हल्के लाल तथा हरे रंगों में, बढ़िया कागज पर मुद्रित किया जाता था। कभी-कभी पीले रंग का भी आवरण-पृष्ठ होता था। ग्रन्थों की छपाई-सफाई पर विशेष ध्यान दिया जाता था। ग्रन्थों का मुद्रण, टाइप तथा लीथो—दोनों ही पद्धतियों से होता था, पर मुख्यतया यह टाइप-प्रेस था।

प्राचीन ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए यह आवश्यक है कि उनका सम्पादन किया जाय तथा उनके पाठ पर ध्यान रखा जाय। इस दृष्टि से यह संस्था अधिक सजग एवं सतर्क थी। भारतेन्दु-युग के रसिक कवि तथा साहित्यकार बिहार-निवासी पण्डित नकछेदी तिवारी 'अजान' इस संस्था के प्रकाशनों के सम्पादक थे। यहाँ से प्रकाशित प्राचीन ग्रन्थों का सम्पादन पण्डित नकछेदी तिवारी ने ही किया था। साथ ही उन्होंने 'भड़ौआ-संग्रह' तथा 'मनोज-मंजरी' नाम से चार भागों में रीतिकालीन हिन्दी-कविताओं का संकलन भी किया था, जिनका प्रकाशन इसी संस्था ने किया।

हिन्दी में कथा-साहित्य का आगमन मुख्यतया संस्कृत तथा बँगला-भाषा के कथा-साहित्य के अनुवाद से हुआ है। इस दिशा में अनुवाद-कार्य में स्वयं रामकृष्ण वर्मा का योगदान उल्लेखनीय है। वर्माजी स्वयं संस्कृतज्ञ तथा बँगला-भाषा के सुविज्ञ थे। उन्होंने संस्कृत के 'कथासरित्सागर' का अनुवाद तथा बँगला-भाषा से 'ठगवृत्तान्तमाला', 'चित्तौर-चातकी', 'पुलिस-वृत्तान्तमाला' और संस्कृत से बैतालपचीसी, सिंहासनबत्तीसी तथा उर्दू से 'अमला वृत्तान्तमाला' का अनुवाद कर हिन्दी-कथा-साहित्य को समृद्ध किया।

हिन्दी-गद्य-साहित्य को कथा-साहित्य के माध्यम से श्रीसम्पन्न करने की दिशा में अँगरेजी से शेक्सपियर के 'ओथेलो', 'वेनिस का सौदागर' जैसे ग्रन्थों के भी हिन्दी में अनुवाद प्रस्तुत हुए। किशोरीलाल गोस्वामी, प्रतापनारायण मिश्र, विजयानन्द त्रिपाठी, हरिकृष्ण जौहर प्रभृति साहित्यकारों ने बँगला और अँगरेजी से हिन्दी में अनुवाद प्रस्तुत किया, जिसका प्रकाशन इस संस्था ने किया। हिन्दी-भाषा में उसके मौलिक कथा-साहित्य के प्रकाशन में हनुमन्त सिंह-कृत 'चन्द्रकला', किशोरीलाल गोस्वामी के 'प्रणयिनी-परिणय', जैनेन्द्रकिशोर की 'कमलिनी' तथा देवीप्रसाद शर्मा की 'सुन्दर सरोजिनी' प्रमुख हैं। 'सुन्दर सरोजिनी' को कुछ विद्वानों ने आंचलिक उपन्यास बताया है। ठाकुर जगमोहन सिंह के 'श्यामा-स्वप्न' का प्रकाशन भी इस संस्था ने किया था।

पहले बताया जा चुका है कि यह प्रेस मुख्यतया रीतिकालीन साहित्यिक कृतियों के प्रामाणिक संस्करणों के प्रकाशन की दिशा में अकेला प्रेस था। ऐसे ग्रन्थों में मुबारक अली की 'अलकशतक' और 'तिलशतक', ग्वाल कवि की 'यमुना-लहरी' और 'षटऋतु-वर्णन', पजनेश कवि का 'पजनेश-प्रकाश', बिहारीलाल की सतसई की प्रसिद्ध 'हरिप्रकाशटीका', रामसहाय की 'शृंगार-सतसई', गोविन्द गिल्लाभाई की 'राधा मुखषोडशी', बलभद्र का 'शिखनख', पद्माकर कवि का 'पद्माभरण', रामरसायन और जगद्विनोद; रसनिधि का 'रतन हजारा', भिखारीदास का 'काव्य-निर्णय', मतिराम का 'ललित-ललाम', 'रसराज' और 'मतिराम सतसई', भानुकवि का 'छन्द-प्रभाकर', देवकवि का 'भवानी-विलास', 'भावविलास' और 'अष्टयाम'; गोकुलनाथ की 'चैतचन्द्रिका', तोषकवि की 'सुधानिधि', दूलह का 'कविकुल-कण्ठाभरण', रहीम का 'बरवैनायिका-भेद' और 'नखशिख', सैयद गुलाम नबी रसलीन के 'रस-प्रबोध' तथा 'अंगदर्पण'; बलवीर कवि का 'बिरहा नायिका-भेद', पद्माकर के पौत्र गदाधर कवि की 'छन्दोमंजरी' का प्रकाशन उल्लेखनीय है। ये सभी रीतिग्रन्थ हैं।

मौलिक काव्य-ग्रन्थों के प्रकाशन के क्षेत्र में पं० प्रतापनारायण मिश्र की 'मन की लहर', 'गिरिधरदास की कुंडलियाँ', भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की 'प्रेममाधुरी', जगमोहन सिंह की

'**श्यामलता**' और '**श्यामा सरोजिनी**,' रघुनाथ कवि का '**रघुनाथ-शतक**', तेगअली की काशिका-बोली की प्रतिनिधि रचना '**बदमाश-दर्पण**' और रसखान का '**सुजान रसखान**' हिन्दी-काव्य-साहित्य की उत्कृष्ट रचनाएँ हैं।

नाट्य-साहित्य की समृद्धि के क्षेत्र में इस संस्था का योगदान उल्लेखनीय है। भारतेन्दु-युग के रंगमंच के सफल नाटककार पण्डित देवकीनन्दन त्रिपाठी का '**जय नारसिंह की**', भारतेन्दुजी का '**वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवति**', '**अन्धेर-नगरी**' और '**भारत-जननी**'; प्रतापनारायण मिश्र का '**कलिकौतुक रूपक**', कमलाचरण मिश्र का '**अद्भुत नाटक**' विशेष उल्लेखनीय हैं।

अतः हिन्दी-साहित्य की विभिन्न विधाओं की रचनाओं के प्रकाशन तथा उन्हें बुद्धिजीवियों एवं सामान्य जनता तक पहुँचाने में इस प्रेस ने साहित्यिक संस्था जैसे उत्तरदायित्व का वहन कर वेठन में बन्द साहित्य को उद्घाटित किया।

७. नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी (सन् १८९३ ई०)

काशी के क्वीन्स कॉलेजिएट स्कूल की पांचवी कक्षा के कतिपय उत्साही छात्रों ने 'वाद-विवाद-समिति' की स्थापना की दृष्टि से, जिसका एक उद्देश्य नागरी-प्रचार भी था, १० मार्च, १८९३ ई० को 'नागरी-प्रचारिणी सभा' को जन्म दिया। इस सभा की प्रथम बैठक ९ जुलाई, १८९३ ई० को तथा दूसरी बैठक १६ जुलाई, १८९३ ई० को हुई, जिनमें इसके सम्बन्ध में विचार हुआ। १६ जुलाई, १८९३ ई० को इस सभा का 'स्थापना-दिवस' मनाया गया। इसके संस्थापक श्रीगोपाल प्रसाद माने गये हैं। इसके प्रधानमन्त्री श्री श्यामसुन्दर दास चुने गये थे।

इस संस्था का मूलभूत उद्देश्य हिन्दी-भाषा-साहित्य तथा देवनागरी-लिपि का प्रचार-प्रसार था। यह विशुद्ध साहित्यिक संस्था है। इसने कचहरियों में हिन्दी की प्रतिष्ठा तथा खड़ीबोली हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए निरन्तर कार्य किया है। इसके पास आरम्भ में अपना प्रेस नहीं था। फिर भी इस संस्था के प्रमुख कार्यकर्त्ता श्रीराधाकृष्ण दास के प्रस्ताव पर हिन्दी के पत्र-सम्पादकों, ग्रन्थकारों और लेखकों के जीवन-चरित्र के प्रकाशन की योजना स्वीकृत हुई। श्रीराधाकृष्ण दास-कृत **हिन्दी-भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास तथा बिहारीलाल की जीवनी** का प्रकाशन हुआ। इन पुस्तकों का प्रकाशन काशी के **चन्द्रप्रभा प्रेस** से हुआ था। सभा ने धीरे-धीरे प्रकाशन तथा हिन्दी-भाषा और साहित्य के विकास में भारी योगदान किया। आज भी यह संस्था इस दिशा में सक्रिय है।

तीसरा अध्याय

खड्गविलास प्रेस का उद्भव और विकास

खड्गविलास प्रेस उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के अन्तिम दो दशकों में आधुनिक हिन्दी-साहित्य के प्रकाशन की अकेली प्रकाशन-संस्था रहा है। इसकी स्थापना हिन्दी-प्रकाशन-जगत् की स्मरणीय घटना है। इसकी स्थापना तीन विभिन्न स्थानों के समवयस्क साहित्यिक अभिरुचि-सम्पन्न युवकों की समन्वित दृष्टि का सुफल था। जिन तीन युवकों के वैचारिक-मन्थन से इस प्रेस का जन्म हुआ, उनके नाम हैं रामदीन सिंह, रामचरित्र सिंह और साहबप्रसाद सिंह। व्यापारिक लाभ की दृष्टि इसकी स्थापना के मूल में नहीं रही। यथार्थतः इसके पीछे भावना यह थी कि हिन्दी-भाषा के माध्यम से आधुनिक साहित्य के प्रकाशन द्वारा हिन्दी-साहित्य को समृद्ध किया जाय। इस कारण, इस प्रेस का आरम्भिक स्वरूप प्रकाशन-प्रेस जैसा था और इसका उत्तरोत्तर विकसित रूप हिन्दी की साहित्यिक संस्था जैसा। साहित्य का संवर्द्धन इसका मुख्य उद्देश्य था।

इस प्रकाशन-संस्थान के संस्थापक एवं निर्माता रामदीन सिंह पटना नगर से लगभग आठ मील दक्षिण तारणपुर ग्राम में अपने मामा के घर रहकर अध्ययन कर रहे थे। उनके मामा हितनारायण सिंह देशभक्त कवि थे, इसलिए उनके निकटतम सम्पर्क में रहने से रामदीन सिंह में साहित्य के प्रति उत्कट अनुराग पैदा हुआ। उसी ग्राम के निवासी बाबू झब्बू सिंह लिपि-अध्ययन-कला के सुविज्ञ थे। वे लिपियों की छाप उतारना जानते थे। उनके पुत्र रामचरित्र सिंह महाराजकुमार रामदीन सिंह के सहपाठी थे और दोनों में साहित्य-साधना की लगन थी। इसी से रामदीन सिंह को झब्बू सिंह का सामीप्य सुलभ था। उनके सत्संग से महाराज कुमार रामदीन सिंह के मन में मुद्रण-कला के प्रति तीव्र आकर्षण और उत्कट अभिलाषा जागरित हुई।

रामदीन सिंह के मातामह, रामचरण सिंह के साले साहबप्रसाद सिंह मुजफ्फरपुर जिले के बरुआ-रूपस ग्राम के निवासी थे। वे तारणपुर प्रायः आया करते थे। यहाँ बाबू झब्बू सिंह के साहचर्य का लाभ मिलता था। उनमें साहित्यिक रुचि थी। इसी कारण वे तारणपुर आते और कुछ दिनों तक रुक जाते।

रामदीन सिंह के सहपाठी रामचरित्र सिंह को अपने पिता से संस्कार-स्वरूप साहित्यिक प्रतिभा विरासत में मिली थी। उन्होंने अध्ययन के साथ लेखन शुरू किया। उनके लेख पत्र-पत्रिकाओं में छपते थे। बाबू झब्बू सिंह के दरवाजे पर प्रतिदिन सायंकाल रामचरितमानस का पाठ होता था। रामदीन सिंह, रामचरित्र सिंह और साहबप्रसाद सिंह उस गोष्ठी के जिज्ञासु श्रोता थे।

इन तीन मननशील साहित्यानुरागियों को जब मुद्रण-कला की जानकारी बाबू झब्बू सिंह से मिली, तब उन सबमें प्रकाशन-कार्य के विषय में उत्कण्ठा जागरित हुई। प्रेस-स्थापना

की आकांक्षा जोर पकड़ने लगी। लेकिन, तीनों मित्र इस क्षेत्र में अनभिज्ञ थे। इस बीच रामदीन सिंह ने सारन जिले के नयागाँव के एक स्कूल में शिक्षण-कार्य शुरू कर दिया।

साहबप्रसाद सिंह मुक्त चिन्तनशील साक्षर युवक थे। घर पर उनकी रुचि के अनुकूल कोई काम नहीं था। रामदीन सिंह प्रेस-स्थापना में सहयोगी रूप में साहबप्रसाद की उपयोगिता का एहसास कर रहे थे। इसलिए उन्होंने उनको प्रेस-कार्य का प्रशिक्षण प्राप्त करने की सलाह दी। फलस्वरूप साहबप्रसाद सिंह ने सन् १८७८ ई० में बिहार के सुप्रसिद्ध प्रथम साप्ताहिक 'बिहार-बन्धु' के प्रेस में नौकरी कर ली। पहले उन्होंने कम्पोजीटरी सीखना शुरू किया। साथ ही प्रेस-सम्बन्धी अन्यान्य विषयों का अनुभव प्राप्त किया। उन दिनों हिन्दी के प्राख्यात लेखक संस्कृत के विद्वान् और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के स्नेही पण्डित दामोदर शास्त्री 'बिहार-बन्धु' प्रेस में सहायक सम्पादक और व्यस्थापक थे। वे प्रेस-कला के मर्मज्ञ थे। उनसे साहबप्रसाद सिंह ने व्यस्थापन और सम्पादन-कला सीखी।

रामदीन सिंह जिन दिनों नयागाँव के स्कूल में शिक्षण-कार्य कर रहे थे, उन दिनों बिहार में हिन्दी-आन्दोलन की अधिक चर्चा थी। स्कूल में कार्य करते समय पाठ्यपुस्तकों का अभाव उनको खटक रहा था। उन्होंने स्कूल की नौकरी छोड़ दी। उधर साहबप्रसाद सिंह भी 'बिहार-बन्धु' प्रेस की नौकरी छोड़कर घर चले आये। तीनों मित्रों ने प्रेस-स्थापन की समस्या पर विचार करके इसे कार्यरूप में परिणत करने का संकल्प किया।

प्रेस-स्थापना की दिशा में अर्थ का प्रश्न सामने आया। बाबूसाहब ने अपनी इच्छा अपने मामा रामचरण सिंह के सामने प्रकट की। वे अपने नाना के बड़े स्नेही भागिनेय थे। नाना ने भागिनेय को पाँच हजार रुपये प्रेस के लिए दे दिये। उनके नाना को रामदीन सिंह के युवक-सुलभ उत्साह से ऐसा लगा कि रुपये नष्ट हो जायेंगे और प्रेस भी नहीं खुलेगा। फिर भी उन्होंने अपने भागिनेय के उत्साह को ठण्डा कर देना ठीक नहीं समझा।

प्रेस की स्थापना

आधुनिक हिन्दी का पहला प्रेस **'खड्गविलास प्रेस'** का प्रतिष्ठापन सन् १८८० ई० में हुआ। पटना शहर के बाँकीपुर मुहल्ले के चौहट्टा-स्थित खपरैल मकान में ट्रेडिल मशीन लगाकर कम्पोजिंग चालू की गई। प्रेस के प्रथम प्रबन्धक साहबप्रसाद सिंह नियुक्त किये गये।

बाबूसाहब क्षत्रिय थे। क्षत्रियों के सम्भ्रान्त कुल में उनका जन्म हुआ था। उन्नीसवीं सदी का युग सामन्तवादी युग था। क्षत्रियों के आमोद-प्रमोद का मुख्य साधन 'खड्ग' था। यह उनका रक्तजनित संस्कार रहा है। इसलिए उन्होंने अपने प्रेस का नाम **'खड्गविलास'** रखा। उन्नीसवीं सदी में 'प्रेस' शब्द के लिए 'छापाखाना' और 'यन्त्रालय' शब्द प्रायः व्यवहृत होते थे। बाबूसाहब ने प्रेस के बजाय 'छापाखाना' शब्द का इस्तेमाल किया, यद्यपि उसका मोनोग्राम अँगरेजी में है, जिसमें 'के० व्ही० प्रेस' अंकित है।

इस प्रेस के नामकरण में दो दृष्टियाँ संश्लिष्ट हैं। पहली का उल्लेख ऊपर किया गया है और दूसरी, उनके परमप्रिय मित्र लालखड्गबहादुर मल्ल के नाम को भी इस प्रेस

से जोड़ना अभीष्ट था। लालसाहब क्षत्रिय-भावना के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने बाबूसाहब को प्रेस-संस्थापन में सहयोग दिया था। इसलिए बाबूसाहब ने इस प्रेस का नाम 'खड्गविलास प्रेस' रखा।

इस प्रेस की स्थापना के सन्दर्भ में यह कहना कि "बाँकीपुर का खड्गविलास प्रेस भूदेव बाबू ने स्थापित किया था और पहले इसका नाम 'बुधोदय प्रेस' था और जब बाबूरामदीन सिंह को भूदेवबाबू ने यह प्रेस दे डाला, तबसे यह सिंहजी की सम्पत्ति हो गई, सर्वथा भ्रान्त और असंगत बात है।"[1]

प्रेस-स्थापना के बाद रामदीन सिंह ने 'क्षत्रिय-पत्रिका' नामक मासिक हिन्दी-पत्रिका का प्रकाशन किया। इसकी प्रतियाँ देश के प्रमुख राजे-रजवाड़ों को भेजी गईं। जयपुर-नरेश इस पत्रिका के प्रकाशन से प्रसन्न हुए। उन्होंने इसके लिए तीन हजार रुपये भेजे। इससे प्रेस की आर्थिक स्थिति को बल मिला। इससे उसकी प्रगति में तेजी आई। कुछ ही समय में इस प्रेस का निजी भवन वर्त्तमान बी० एन० कॉलेज के सामनेवाली गली में बनकर तैयार हो गया। प्रेस वहीं स्थानान्तरित हो गया।

प्रेस की व्यवस्था और संचालन

ज्ञातव्य है कि इस प्रेस की व्यवस्था के लिए रामदीन सिंह ने साहबप्रसाद सिंह को प्रबन्धक नियुक्त किया था। रामदीन सिंह साहित्य-पारखी थे। प्राचीन ग्रन्थ और साहित्यकारों की खोज की धुन हमेशा उनपर सवार थी। वे अलभ्य रचनाओं के प्रकाशन के लिए तत्पर रहते थे। प्रेस के संचालन का पूरा उत्तरदायित्व साहबप्रसाद सिंह पर था।

प्रेस की अर्थ-व्यवस्था को सुधारने के लिए उनको कोषाध्यक्ष की आवश्यकता पड़ी। रामदीन सिंह ने तारणपुर-निवासी पृथ्वीनाथ सिंह को इस कार्य में नियोजित किया। उन्होंने लगभग पच्चीस वर्षों तक अर्थ-व्यवस्था का संचालन किया।

प्रेस का निजी भवन बन जाने पर उसके विस्तार की ओर भी ध्यान दिया गया। प्रारम्भ में प्रेस के पास कम्पोजिंग और ट्रेडिल मशीन-मात्र थी। इससे पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन, पुस्तकों के मुद्रण और जॉब-वर्क करने में परेशानी होती थी। अतः प्रकाशन की सुविधा के लिए फ्लैट मशीन आवश्यक हो गई।

साहबप्रसाद सिंह फ्लैट मशीन खरीदने कलकत्ता गये। वहाँ से उन्होंने लन्दन की निर्मित सुप्रसिद्ध 'विक्टोरिया फ्लैट मशीन' प्रेस के लिए खरीदी। कालान्तर में प्रेस के पास आठ फ्लैट मशीनें, आठ ट्रेडिल, मशीनें तथा प्रूफ उठाने की कई मशीनें खरीदी गईं। प्रेस के निचले कक्ष में फ्लैट मशीन बैठाई गई। निचले कक्ष के प्रवेश-द्वार के पास व्यवस्थापक-कक्ष बना। भवन की ऊपरी मंजिल में 'कम्पोजिंग, अतिथिशाला और पुस्तकालय थे।

---

१. (अ) हिन्दी-हितैषी स्वर्गीय भूदेव मुखोपाध्याय : सरस्वती, १९१२, पृ० ४२९
(ब) काँगरेस-अभिज्ञान-ग्रन्थ, पृ० ५६

इस प्रेस की मशीनों की सबसे उल्लेखनीय बात यह थी कि वे सभी आधुनिक स्तर की एवं लन्दन-निर्मित थीं।

कम्पोजिंग और प्रिण्टिंग के कार्य

रामदीन सिंह आस्तिक विचार के व्यक्ति थे। हिन्दूधर्म में उनकी दृढ़ आस्था थी। इसलिए उन्होंने प्रेस-भवन में 'तुलसी-चउरा' का निर्माण कराया था। प्रातः चार बजे प्रेस के कर्मचारियों को बिस्तर छोड़ देना पड़ता था। बाबूसाहब स्वयं प्रातः उठकर गंगा-स्नान करते थे। प्रातः सामूहिक प्रार्थना होती। उसमें प्रेस-कर्मचारी भी सम्मिलित होते थे। प्रार्थना के बाद कर्मचारियों को चार-चार कचौड़ियों और गरम जलेबियों का जलपान मिलता था। तदनन्तर प्रेस का कार्य होता था।

बाबूसाहब की मान्यता थी कि पुस्तक-कला सारस्वत साधना का जीवन्त स्वरूप है, इसलिए उसका संस्पर्श पवित्र शरीर और एकाग्र चित्त से किया जाना चाहिए। उन्होंने ऐसी व्यवस्था की कि स्नान-ध्यान के बाद प्रेस का काम किया जाय।

इस प्रेस में कर्मचारियों की संख्या लगभग सौ थी। प्रूफ-संशोधन साहबप्रसाद सिंह, चण्डीप्रसाद सिंह, प्रेमन पाण्डेय और रामप्रसाद सिंह करते थे। ये लोग प्रेस में ही रहते थे। इन लोगों के अलावा और भी प्रूफ-संशोधक थे।

दफ्तरीखाना

प्रेस के मामले में बिहार पिछड़ा रहा है। यहाँ प्रेस की स्थापना विलम्ब से हुई। दूसरी बात यह थी कि प्रेस के लिए प्रशिक्षित व्यक्तियों की बहुत कमी थी। खड्गविलास प्रेस की निचली मंजिल के प्रवेश-द्वार की बाईं ओर दफ्तरीखाना था। प्रेस से प्रकाशित पुस्तकें अधिकतर पतली होती थीं, इस कारण उनकी सिलाई की जाती थी। बाद में स्टिचिंग-मशीन आई, जिससे सिलाई के स्थान पर स्टिच किया जाने लगा।

फर्मों की भँजाई के लिए अधिक आदमियों की जरूरत पड़ती है, लेकिन इसके लिए आदमी नहीं मिलते थे। कहा जाता है कि पूर्णिमा और अमावास्या के अवसर पर तारणपुर से जो लोग गंगा-स्नान करने पटना आते थे, वे इस कार्य में सहयोग करते थे। महीनों का काम एक-दो दिनों में पूरा हो जाता था। बाद में इस प्रेस के दफ्तरीखाना को आधुनिक मशीनों और कारीगरों से सुसज्जित किया गया। अतः पुस्तकों की हर प्रकार की जिल्दबन्दी होने लगी।

अतिथि-कक्ष

प्रेस की ऊपरी मंजिल पर अतिथि-कक्ष था। प्रदेश या प्रदेश से बाहर के साहित्यकार जब पटना आते, तब सामान्यतः खड्गविलास प्रेस के मान्य अतिथि होते। प्रेस का निजी भोजनालय था, जहाँ भारतीय ढंग के भोजन का प्रबन्ध रहता था।

इस संस्थान के अतिथि-भवन में ठहरनेवाले जिन साहित्य-सेवियों के सम्मान में गोष्ठियाँ हुईं, उनके नाम हैं—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, लाल खड्गबहादुर मल्ल, पण्डित

प्रतापनारायण मिश्र, पण्डित बालराम स्वामी उदासीन, बिहारीलाल चौबे, पण्डित अम्बिकादत्त व्यास, पण्डित शीतलाप्रसाद तिवारी, पण्डित सकलनारायण शर्मा, बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर', बाबू रामकृष्ण वर्मा 'बलवीर', पण्डित दामोदर शास्त्री, जी० ए० ग्रियर्सन, टेकारी-निवासी जवाहिर मल और बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय प्रमुख थे। बिहारी सतसई के विद्वान् आलोचक जगन्नाथदास मई, १८९१ ई० में पटना गये थे। वे उक्त प्रेस के अतिथि थे। उनके सम्मान में काव्य-गोष्ठी हुई थी, जिसमें रत्नाकर जी ने निम्नलिखित कवित्त, जो उनकी सुप्रसिद्ध रचना है, सुनाया था :

मोर के पखैयन को मुकुट छबीलो छोरि,
क्रीट मनिमण्डित धराय करिहो कहा।
कहै 'रतनाकर' त्यों माखन सनेही बिन
खटरस व्यंजन चबाय करिहो कहा।
गोपी ग्वालन-बालन को झोंकि बिरहानल में
करि सुरवृन्द को सहाय करिहो कहा।
साँचों नाम गोविन्द गोपाल को बिहाय हाय
ठाकुर त्रिलोक के कहाय करिहो कहा॥

यथार्थतः खड्गविलास प्रेस साहित्य-रसिकों का ऐसा तीर्थस्थल था, जहाँ उन्नीसवीं सदी के लब्धकीर्त्ति विद्वानों और साहित्यकारों का प्रायः आगमन होता रहता था।

प्रेस के विकास के प्रथम इक्कीस वर्ष (सन् १८८०-१९०३ ई०)

खड्गविलास प्रेस का प्रारम्भिक इक्कीस वर्षों तक संचालन-सूत्र रामदीन सिंह के अधीन था। साहबप्रसाद सिंह उनके विचारों और प्रयत्नों को मूर्त्तिमान करने में सहयोगी थे। प्रेस प्रारम्भ से आधुनिक साहित्य के प्रकाशन और बिहार-बंगाल के लिए हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों की समस्या के समाधान का प्रयत्न करता था। आधुनिक हिन्दी के उद्भावक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके समकालीन सहयोगी साहित्यकारों को इस प्रेस का बल सुलभ हुआ। उनकी रचनाएँ यहाँ से प्रकाशित होने लगीं।

इस प्रेस ने भारतेन्दु की समस्त कृतियों का संकलन **'भारतेन्दु-ग्रन्थावली'** के नाम से छह खण्डों में प्रकाशित किया। हिन्दी-जगत् में सम्भवतः यह पहला अवसर था जबकि किसी हिन्दी-साहित्यकार की कृतियों की ग्रन्थावली प्रकाशित की गई हो। भारतेन्दु-मण्डल के सक्रिय सदस्यों में पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, पण्डित अम्बिकादत्त व्यास, लाला श्रीनिवासदास, पण्डित शीतलाप्रसाद त्रिपाठी, पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', लालखड्गबहादुर मल्ल प्रभृति समकालीन साहित्यकारों की रचनाएँ प्रकाशित की गईं। इन सबकी रचनाएँ विशुद्ध साहित्यिक हैं। इनके प्रकाशन से रामदीन सिंह को आर्थिक लाभ नहीं हुआ, लेकिन इसकी चिन्ता भी उनको नहीं थी। आधुनिक साहित्य का प्रसार उनके प्रकाशन का जीवन्त लक्ष्य था। इस लक्ष्य के प्रति निष्ठा का सबल प्रमाण खड्गविलास प्रेस के दफ्तरीखाने का गोदाम है, जहाँ आज भी भारतेन्दु तथा उनके समकालीन साहित्यकारों की हजारों प्रतियाँ, जो बिक न सकीं, पड़ी हैं।

पुस्तकों का आकार-प्रकार और एकरूपता

इस प्रेस से प्रकाशित पुस्तकों की उल्लेख्य विशेषता थी—उनके आकार में एकरूपता। अधिकतर प्रकाशन 'रॉयल साइज' में हैं। यह आकार आकर्षक है। साहित्यिक पुस्तकों का मुद्रण रॉयल में और पाठ्यपुस्तकों का भिन्न-भिन्न आकारों में होता था। मुद्रण-कला की दृष्टि से इस संस्था से मुद्रित ग्रन्थ नयनाभिराम होते थे तथा टाइपों का चुनाव अत्यन्त विवेकपूर्ण और सहज सुपाठ्य होता था। यहाँ की छपी पुस्तकों की विशेषता यह थी कि मुद्रण-सम्बन्धी दोष प्रायः नहीं रहा करते थे। पुस्तकों के शुद्ध मुद्रण की दृष्टि से इस प्रस की तुलना विदेश की किसी ख्यात प्रकाशन-संस्था से की जा सकती है।

वर्त्तनी

हिन्दी में वर्त्तनी की एकरूपता का अभाव है। हिन्दी-विद्वानों का एक वर्ग हिन्दी को संस्कृत की कन्या मानता है, इसलिए संयुक्ताक्षर वर्णों में पंचमाक्षर का प्रयोग करता है। वे 'गयी' और 'चाहिये' व्यंजन से लिखते हैं। दूसरा वर्ग हिन्दी को स्वतन्त्र सत्ता प्रदान करना चाहता है, इसलिए वह संयुक्ताक्षर में पंचमाक्षर के लिए 'बिन्दी' का व्यवहार करता है। क्रियापद के 'गई', 'लीजिए' 'पीजिए' प्रभृति शब्दों को स्वरान्त लिखते हैं। इस प्रकार वर्त्तनी की एकरूपता का विवाद यथावत् कायम है।

रामदीन सिंह ने अपने प्रेस से प्रकाशित ग्रन्थों की वर्त्तनी में एकरूपता लाने का प्रयास किया था। हिन्दी-वर्त्तनी के सन्दर्भ में उनका अपना दृष्टिकोण था। वे हिन्दी को संस्कृत की कन्या मानते थे, पर साथ ही इसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व की महत्ता भी स्वीकार करते थे। इसलिए संयुक्त वर्णों में पंचमाक्षर के बदले बिन्दी का प्रयोग करते थे। क्रियापद का जो उच्चारण करते थे, वही लिखते थे। उदाहरण के लिए 'गयी' के स्थान पर 'गई' और 'चाहिये' के स्थान पर 'चाहिए' आदि। इस दृष्टि से वे भारतेन्दु के विचारों के सन्निकट थे। खड्गविलास प्रेस से छपी पुस्तकों में वर्त्तनी की एकरूपता का पूरा ध्यान रखा गया है।

खड्गविलास प्रेस का साहित्य-संग्रहालय

रामदीन सिंह पुस्तक-प्रेमी थे। इसलिए वे साहित्य-संग्रहकर्त्ता थे। उन्हें पुस्तकें, प्राणों से बढ़कर प्रिय थीं। यथार्थतः वे साहित्य-पारखी थे। सुप्रसिद्ध निबन्धकार और पत्रकार बालमुकुन्द गुप्त ने उनके सम्बन्ध में लिखा है :

"बाबूसाहब हमारे बहुत परिचित थे। कलकत्ते में जब आते थे, तो हमारे यहाँ आने की कृपा करते थे।[१] ....कलकत्ते में जब आते थे, सैकड़ों पुस्तकें बटोरके ले जाते थे। पुस्तकें खरीदने में उनको रेल का खर्चा घट जाने तक का ख्याल नहीं रहता था।"[२]

संग्रह-वृत्ति से उद्बुद्ध होकर उन्होंने प्रेस-भवन की दूसरी मंजिल के हॉल में ग्रन्थालय

---

१. बालमुकुन्द गुप्त-ग्रन्थावली, प्रथम भाग, पृ० ३२

२. वही, पृ० ३१

बनाया। सम्भवतः उन्होंने उस पुस्तकालय का नाम 'बाल-सम्मिलन-पुस्तकालय' रखा था। पुस्तकालय-कक्ष की बारह आलमारियों में हिन्दी, अँगरेजी, संस्कृत, बँगला और उर्दू की पुस्तकों का मूल्यवान् संग्रह है। इसी पुस्तकालय को भारतेन्दुजी ने पटना में देखा था। उन्होंने सारी रात ग्रन्थों को उलटने-पुलटने में बिता दी। संग्रहालय देखकर वे विस्मित थे।

इस पुस्तकालय में हिन्दी-पुस्तकों की संख्या सबसे अधिक है। इस समय पुस्तकों की संख्या लगभग पाँच हजार है। उन्नीसवीं सदी की हिन्दी की प्रायः दुर्लभ कृतियाँ मौजूद हैं। संग्रहालय की एक आलमारी में हिन्दी और संस्कृत की दुर्लभ पोथियाँ अपनी अन्तिम साँसें गिन रही हैं। अधिकतर पोथियाँ रामचरितमानस की हैं।

यह संग्रहालय वास्तव में उन्नीसवीं शताब्दी की पत्र-पत्रिकाओं का दुर्लभ भाण्डार है। इस संग्रहालय में आज भी काशी से प्रकाशित कविवचन-सुधा, हरिश्चन्द्र-मैगजीन, हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका, बाला-बोधिनी और 'नवोदित हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' की अनेक जिल्दें सुरक्षित हैं। उपर्युक्त सभी पत्रिकाओं के सम्पादक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र थे। यहीं से प्रकाशित 'काशी-पत्रिका' की, जिसके सम्पादक भारतेन्दु के मित्र बाबू बालेश्वर प्रसाद थे, कई जिल्दें सुरक्षित हैं। लाहौर से प्रकाशित होनेवाली पत्रिकाओं में 'ज्ञान-प्रदायिनी' और 'मित्र-विलास' की फाइलें भी यहाँ सुलभ हैं। उदयपुर और नाथद्वारा से प्रकाशित 'सज्जन-कीर्त्ति-सुधाकर' और 'मोहन-चन्द्रिका' की सजिल्द फाइलें हैं। वर्त्तमान समय में यही ऐसा संग्रहालय है, जहाँ हिन्दी का पहला दैनिक और कालाकाँकर से प्रकाशित 'हिन्दुस्थान' की दो जिल्दें सुलभ हैं। इस समाचार-पत्र के सम्पादक कालाकाँकर-नरेश राजा रामपाल-सिंहजी थे।

हिन्दी-पत्रकारिता की जन्मभूमि कलकत्ता से प्रकाशित होनेवाली पत्र-पत्रिकाओं की फाइलें आज भी सुरक्षित हैं। ऐसे पत्रों में 'सार-सुधानिधि', 'उचित वक्ता' और 'भारत-मित्र' प्रमुख हैं। रामदीन सिंह ने 'उचित वक्ता' के बन्द होने पर उसके पुनः प्रकाशन के लिए रुपये दिये थे। इन सुरक्षित जिल्दों की विशेषता यह है कि अच्छी जिल्दबन्दी के साथ प्रारम्भ के अंक से परिपूर्ण जिल्दें हैं।

बिहार-प्रदेश से प्रकाशित होनेवाली पत्रिकाओं में पटना नॉर्मल स्कूल के शिक्षक बदरी-नाथ द्वारा सम्पादित 'विद्या-विनोद' और बिहार के प्रथम साप्ताहिक पत्र 'बिहार-बन्धु' की फाइलें भी यहाँ हैं।

मिर्जापुर से प्रकाशित और बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' द्वारा सम्पादित 'नागरी-नीरद' और 'आनन्द-कादम्बिनी' की कुछ वर्षों की प्रतियाँ इस संग्रह में देखने को मिलती हैं।

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास द्वारा सम्पादित 'पीयूष-प्रवाह' और 'वैष्णव-पत्रिका' की प्रतियाँ भी यहाँ अवश्य रही होंगी, किन्तु मुझे देखने में नहीं आईं। यह पुस्तकालय अम्बिकादत्त व्यास के पटना-निवास में गोष्ठी का प्रधान केन्द्र था। इसलिए यहाँ के संग्रह में 'पीयूष-प्रवाह' और 'वैष्णव-पत्रिका' की फाइलों का होना स्वाभाविक है।

रामदीन सिंह के निधन के बाद प्रेस और प्रकाशन का संचालन उनके ज्येष्ठ पुत्र रामरणविजय बहादुर सिंह करने लगे। वे कवि, लेखक और सहृदय साहित्य-रसिक थे। उन्हें यह संग्रहालय बहुत प्रिय था। कहा जाता है, वे स्वयं इस पुस्तकालय की पुस्तकों की नित्य सफाई किया करते थे और यहाँ बैठकर अध्ययन करते थे।

रामरणविजय सिंह के बाद उनके उत्तराधिकारी और छोटे भाई श्रीशार्ङ्गधर सिंह इस संस्था का संचालन करने लगे। श्रीशार्ङ्गधर सिंह उच्चशिक्षा-प्राप्त विद्वान्, राजनीति-कुशल और विधि-मर्मज्ञ थे। राष्ट्रीय स्वाधीनता-संग्राम के ये सक्रिय सैनिक रहे। देश की राजनीति के संचालन में इनका योगदान रहा। इस कारण, प्रेस के संचालन में ये समय नहीं दे पाते थे। फिर भी इस पुस्तकालय को आजतक इन्होंने सुरक्षित रखा।

इस पुस्तकालय से लाभान्वित विद्वान् :

इस पुस्तकालय के दुर्लभ संग्रह से अनेक विद्वान् प्रभावित हुए थे। कहा जाता है कि पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' से बाबू रामदीन सिंह की जीवनी लिखने का अनुरोध किया गया था। इस सन्दर्भ में वे इस संग्रहालय से अनेक पत्र-पत्रिकाओं की जिल्दें, पुरानी पुस्तकें और रामदीन सिंह के मित्रों के पत्रों का दुर्लभ संग्रह एक बड़े बक्से में भरकर काशी ले गये थे, लेकिन न तो रामदीन सिंह जी की जीवनी लिखी गई और न पुस्तकें ही वापस हो सकीं। इससे यह पुस्तकालय किन्हीं अंशों में क्षतिग्रस्त अवश्य हुआ। इससे श्रीरामरणविजय सिंह और श्रीशार्ङ्गधर सिंह को गहरा धक्का लगा।

हिन्दी के प्रगतिशील आलोचक डॉक्टर रामविलास शर्मा अपनी 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की जीवनी' पुस्तक के लेखन के सिलसिले में इस पुस्तकालय में भारतेन्दु की दुर्लभ रचनाओं के अवलोकनार्थ गये थे। उन्हें यथेष्ट लेखन-सामग्री मिली। उन्होंने जिस समय संग्रहालय देखा था, उस समय वह अस्तव्यस्त स्थिति में था। फिर भी, उन्हें वांछित सामग्री के अवलोकन-परीक्षण की सुविधा मिली।

इस पुस्तकालय से लाभान्वित होनेवालों में हिन्दी के मूर्धन्य आलोचक और विद्वान् डॉक्टर केसरीनारायण शुक्ल भी हैं। इन्हें 'भारतेन्दु के निबन्ध' शीर्षक पुस्तक-प्रणयन के क्रम में भारतेन्दुजी की 'भक्तसर्वस्व' रचना कहीं अन्यत्र नहीं मिली, तो इन्हें भी इसी संग्राहलय की सहायता लेनी पड़ी। इन्हें 'भक्तसर्वस्व' की दुर्लभ प्रति यहाँ देखने को मिली थी।

इस ग्रन्थ के लेखन में इन पंक्तियों के लेखक को यह परम सौभाग्य प्राप्त रहा है कि तीन महीने तक निरन्तर इस पुस्तकालय के अवलोकन की सुविधा मिली। इस ग्रन्थ के लिए सामग्री-संकलन में इससे अप्रत्याशित सहायता प्राप्त हुई।

इस पुस्तकालय के अवलोकन के आधार पर मुझे यह कहने में संकोच नहीं कि किन्हीं अंशों में यह लन्दन की **इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी** के हिन्दी-संग्रह से कम नहीं है। इतने बड़े और महत्त्वपूर्ण पुस्तकालय की स्थापना खड्गविलास प्रेस की हिन्दी-सेवा का सबसे बड़ा प्रतीक है। केवल वणिक्-उत्साह से अनुप्रेरित होकर कोई अन्य प्रकाशक ऐसा नहीं कर सकता। यह तो हिन्दी के विकास के लिए निष्ठावान् चरित्र की अभिव्यक्ति है।

संग्रहालय का व्यवस्थित रूप और सुरक्षा :

यह संग्रहालय सन् १९५२ ई० में अत्यन्त अस्तव्यस्त हो गया था। अस्तव्यस्तता की स्थिति में इस संग्रहालय की पुस्तकें भी इधर-उधर हो गईं। इस संग्रहालय को व्यवस्थित करने में इस प्रेस के तत्कालीन प्रबन्धक ठाकुर यदुवंशनारायण सिंह ने बड़ी अभिरुचि के साथ काम किया और उसी का परिणाम है कि ये दुर्लभ कृतियाँ प्रेस-भवन के पुस्तकालय-कक्ष की बारह आलमारियों में सुरक्षित हैं।

रॉयल्टी की परम्परा और लेखकों को पुरस्कार :

उन्नीसवीं शताब्दी की सम्भवतः यह पहली प्रकाशन-संस्था थी, जिसने लेखकों को पुरस्कार और उनकी कृतियों पर अधिकतम रॉयल्टी देने का सत्प्रयास किया। इससे पहले के और समकालीन लेखक अपनी रचनाओं के प्रकाशन-मात्र से गद्गद हो जाते थे। रामदीन सिंह जी ने जिन लेखकों से लिखवाया, उनको समुचित पुरस्कार दिया। इसका सबसे बड़ा प्रमाण भारतेन्दु के पत्र हैं, जिनकी चर्चा ग्रन्थ के चौथे अध्याय में विस्तार के साथ की गई है।

पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का सुप्रसिद्ध काव्य 'प्रियप्रवास' और उनकी कई पुस्तकें इस संस्था से छपीं। इन पुस्तकों के लिए उचित रॉयल्टी और आर्थिक साम्मानिक प्रदान किया गया, लेकिन किन्हीं कारणों से हरिऔधजी ने बाद में इस संस्था से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। हरिऔधजी को जितना सम्मान इस संस्था ने दिया, उतना उन्हें किसी दूसरी संस्था से उनकी पुस्तकों के सन्दर्भ में नहीं मिला।[1]

विदेशी पत्रों में प्रकाशनों की चर्चा :

खड्गविलास प्रेस उन्नीसवीं सदी की एकमात्र प्रकाशन-संस्था था, जिसके हिन्दी-प्रकाशनों की समीक्षा लन्दन के विभिन्न अँगरेजी-पत्रों में होती थी। लन्दन की 'रॉयल एशियाटिक सोसाइटी जर्नल', 'लन्दन मैगजीन', 'इण्डिया मैगजीन', 'ओवरलैण्ड मेल' प्रभृति पत्रिकाओं में इस संस्था से प्रकाशित ग्रन्थों की हिन्दी-प्रेमी अँगरेज लेखकों ने समीक्षा की है। हिन्दी-प्रेमी अनेक अँगरेज विद्वान् यहाँ के प्रकाशनों के नियमित ग्राहक रहे हैं, जिनमें लन्दन के किंग्स-कॉलेज के भारतीय भाषा के विद्वान् प्राध्यापक जी० एफ० निकोल्सन प्रमुख थे। यहाँ की हिन्दी की प्रकाशित पुस्तकों से विदेशी पत्रों में हिन्दी का प्रचार लन्दन तक बढ़ा और हिन्दी की प्रतिष्ठा भी बढ़ी।

खड्गविलास प्रेस के विकास का दूसरा चरण
(सन् १९०३—१९३६ ई०)

खड्गविलास प्रेस के संचालन का दायित्व तेईस वर्षों तक श्रीरामदीन सिंह और श्रीसाहबप्रसाद सिंह पर था। उन दोनों सज्जनों के प्रभावशाली व्यक्तित्व से प्रेस का विकास

---

१. हरिऔध और उनका साहित्य, पृ० ११८—१२६

चरम सीमा तक हुआ। तेईस वर्षों में इस प्रेस ने हिन्दी-साहित्य-भाण्डार की श्रीवृद्धि की। उन दोनों सज्जनों के निधन के बाद प्रेस-संचालन का उत्तरदायित्व रामरणविजय सिंह पर आया। रामरणविजय सिंह की उम्र उस समय तेरह वर्ष की थी। इतनी छोटी उम्र में ही उन्हें प्रेस संचालन की जिम्मेदारी सँभालनी पड़ी।

साहबप्रसाद सिंह के कार्य-काल में मुजफ्फरपुर जिलान्तर्गत गंगेया-निवासी गोकर्ण सिंह प्रेस में काम करते थे। वे अनुभवी व्यक्ति थे। साहबप्रसाद सिंह के निधन के बाद गोकर्ण सिंह प्रेस के प्रबन्धक तथा साहबप्रसाद सिंह के बड़े भाई चण्डीप्रसाद सिंह प्रकाशक नियुक्त हुए। प्रेस-प्रकाशन का कार्य पूर्ववत् जारी रहा।

रामरणविजय सिंह का प्रेस-संचालन बहुत व्यवस्थित था। प्रकाशन-कार्य को उत्साह के साथ गतिशील बनाने के लिए वे प्रयत्नशील थे। इसमें गोकर्ण सिंह का सहयोग अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ। प्रेस के विकास के द्वितीय चरण में उन महत्त्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन हुआ, जिनको रामदीन सिंह पूरा नहीं कर सके थे। **'बाबू हरिश्चन्द्र की सचित्र जीवनी'**, खड़ीबोली के प्रथम महाकाव्य **'प्रियप्रवास'** और पण्डित प्रतापनारायण मिश्र के ग्रन्थों का प्रकाशन इस काल की महत्तम उपलब्धियाँ थीं।

आकर्षक और शुद्ध मुद्रण-प्रकाशन की दिशा में विशेष प्रयास किया गया। **'प्रियप्रवास'** के मुद्रण के लिए प्रेस के प्रबन्धक गोकर्ण सिंह कितने यत्नशील थे, इसका प्रमाण उनके निर्देशों से मिलता है।[1] हरिऔध-साहित्य की सुरुचिपूर्ण छपाई की गई। आकार में एक-रूपता कायम रखने का प्रयास किया गया।

पुस्तकों की छपाई की शुद्धता के लिए पटना-निवासी शिवप्रसाद पाण्डेय 'सुमति' का विशेष योग रहा है। वे इसी प्रेस में प्रूफ-संशोधक थे। साहित्यिक पुस्तकों के प्रकाशन में यह प्रेस तैंतीस वर्षों तक निरन्तर गतिशील रहा। इस अवधि में साहित्यिक पुस्तकों के साथ पाठ्यपुस्तकों के प्रकाशन के क्षेत्र में भी प्रगति हुई। सन् १९३६ ई० तक यह प्रेस बिहार का अकेला बड़ा प्रेस था, जिसके द्वारा प्रकाशित अधिकतर पाठ्यपुस्तकों का प्रचलन बिहार के विद्यालयों में था।

लीथो प्रेस की स्थापना :

सम्भवतः बिहार का यह पहला प्रेस रहा है, जहाँ हिन्दी, अँगरेजी, उर्दू, बँगला और कैथी लिपियों में छपाई की व्यवस्था थी। उर्दू की पुस्तकें छापने के लिए सन् १९१६ ई० में लीथो प्रेस स्थापित किया गया। सन् १९२० ई० में हैण्डमशीन के स्थान पर बड़ी मशीन बैठाई गई, जिसमें उर्दू का मुद्रण होने लगा। इस प्रेस ने बाहरी पुस्तकों के अलावा उर्दू की पुस्तकों का भी प्रकाशन किया। उन दिनों उर्दू की पाठ्यपुस्तकें बिहार के स्कूलों में प्रचलित थीं। उनका मुद्रण और कभी-कभी प्रकाशन भी इसी प्रेस से होता था।

टाइप-फाउण्ड्री की स्थापना :

छपाई का आधिक्य तथा टाइप की कमी दूर करने के लिए रामरणविजय सिंह ने मोनो-

---

१. देखें, इस पुस्तक की परिशिष्ट-सं० ३

टाइप-फाउण्ड्री लगाई। इससे आवश्यकतानुसार टाइप ढालने की समस्या हल हो गई। साथ ही पटना के अन्य छोटे-छोटे प्रेसों की टाइप की समस्या का भी समाधान हो गया। आज भी टाइप-फाउण्ड्री प्रेस-भवन में चालू हालत में है।

प्रेस के प्रबन्धक :

पहले उल्लेख हो चुका है कि इस संस्था की स्थापना के समय इसके संचालन का भार साहबप्रसाद सिंह पर था। उनका कार्यकाल इस संस्था का स्वर्ण-युग रहा। सन् १९०१ ई० में साहबप्रसाद सिंह की मृत्यु हो गई और संचालन की जिम्मेदारी गोकर्ण सिंह ने सँभाल ली। वे कुशल प्रवन्धक थे। उनकी व्यवस्था इतनी अच्छी थी कि साहबप्रसाद सिंह के प्रयाण के बाद प्रकाशन का स्तर गिरने नहीं पाया। पुस्तक-सम्पादन से प्रूफ-संशोधन तक वे स्वयं करते थे। मुद्रण की अन्तिम स्थिति आने तक उसका निरीक्षण और मुद्रण का अन्तिम आदेश वे स्वयं करते थे। सजावट, टाइप की एकरूपता, त्रुटिहीन मुद्रण—उनके कार्यकाल की विशेषताएँ थीं। गोकर्ण सिंह के देहान्त के बाद कुछ दिनों तक प्रेस की देखरेख पटना-निवासी साहित्यकार श्रीशिवप्रसाद पाण्डेय 'सुमति' ने की। उनके प्रबन्ध-काल में पुस्तकों का उत्कृष्ट मुद्रण हुआ और साहित्यिक पुस्तकों का प्रकाशन पूर्ववत् जारी रहा।

प्रेस-विकास का तीसरा चरण :

रामरणविजय सिंह की मृत्यु के बाद प्रेस के संचालन का भार श्रीशार्ङ्गधर सिंह पर आया। आप राजनीतिक कार्यों में इतने अधिक व्यस्त रहे कि प्रेस की देखरेख में यथेष्ट समय नहीं दे सके, फिर भी इसके विकास के लिए यत्नशील थे। इस प्रेस के साहित्यिक प्रकाशनों का अवसान रामरणविजय सिंह के जीवन के अन्तिम समय में हो चुका था। शार्ङ्गधर सिंह देश-सेवा में संलग्न थे, इसलिए साहित्यिक कार्यों का संचालन और प्रकाशन सम्भव नहीं था। इसी कारण, इस प्रेस में जॉब का काम अधिक होने लगा।

नवम्बर, १९३६ ई० में इस प्रेस को पटना हाईकोर्ट के 'कॉज-लिस्ट' के प्रकाशन तथा जॉब का काम मिला। सन् १९४४ ई० तक हाईकोर्ट की कॉज-लिस्ट इसी प्रेस से छपती रही। सन् १९४५ से १९४६ ई० के नवम्बर तक कॉज-लिस्ट का प्रकाशन 'लॉ प्रेस' से हुआ। इस अन्तराल में प्रेस पहले की तरह पाठ्यपुस्तकों का प्रकाशन करता रहा। पुनः कॉज-लिस्ट के प्रकाशन का काम मिला, और अब भी हाईकोर्ट की कॉज-लिस्ट के मुद्रण का काम वहाँ हो रहा है। यहाँ यह उल्लेख करना उचित होगा कि महात्मा गांधी के सत्याग्रह के दिनों में, जब शार्ङ्गधर बाबू जेल में थे, तब उनके अनुज परम स्नेही रामजी सिंह और मित्र श्रीकेदारनाथ चतुर्वेदी ने बड़ी जिम्मेदारी के साथ प्रेस का संचालन किया। इस प्रेस की गरिमा सुरक्षित रखने में उनका सहयोग प्रशंसनीय है।

रामदीन सिंह और उनके मण्डल के लेखक :

उन्नीसवीं सदी हिन्दी-साहित्य का पुनर्जागरण-काल है। इसके प्रथम दशक में वैज्ञानिक खोज के फलस्वरूप आधुनिक सभ्यता का उदय हो चुका था। साहित्य का प्रणयन और

प्रकाशन भी तेजी से होने लगा था। किन्तु, साहित्यिक जागरण का बोध भारतेन्दु-युग में अनुभूत होता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की प्रतिभा बहुमुखी थी और वे अनेक लक्ष्य-बिन्दुओं के साथ साहित्य-निर्माण के लिए बद्धपरिकर थे। उन्होंने अपने समकालीन लेखकों का नेतृत्व किया, उनके लेखन-कार्य को नई दिशा दी और उनको प्रोत्साहन प्रदान किया। इतना ही नहीं, उनकी रचनाएँ अपनी पत्रिकाओं में प्रकाशित कर हिन्दी-साहित्य के विकास के लिए उन्हें उद्बुद्ध किया। इस प्रकार उन्होंने अपने समसामयिक प्रबुद्ध लेखकों और कवियों को मण्डल का रूप दिया। उनके मण्डल के लेखकों ने हिन्दी के संवर्द्धन में उल्लेखनीय योगदान कर हिन्दी-साहित्य के भाण्डार को भरने का प्रयास किया। भारतेन्दु के समक्ष रचनाओं के प्रकाशन की समस्या थी, फिर वे लेखन-कार्य से कभी विमुख नहीं हुए और न अपने सहयोगी लेखकों को निराश ही होने दिया। भारतेन्दु के सुहृद्, उनके साहित्य के प्रशंसक और प्रकाशक खड्गविलास प्रेस के संचालक बाबू रामदीन सिंह स्वयं लेखक भी थे। उन दिनों हिन्दी के प्रचार के लिए वे तन-मन-धन से क्रियाशील थे। वे स्वयं साहित्य-लेखन-कार्य करते, किन्तु उससे अधिक अपने मित्रों एवं नवोदित लेखकों को साहित्य-प्रणयन के लिए प्रोत्साहित कर उनकी रचनाओं का प्रकाशन करते थे। इस प्रकार उन्होंने इसे एक ऐसे साहित्यिक-मण्डल का रूप दे रखा था, जिसे हम रामदीन-मण्डल की संज्ञा दे सकते हैं। उनके मण्डल के लेखकों का हिन्दी-भाषा और साहित्य के निर्माण में अपना विशिष्ट स्थान है।

उनके मण्डल के लेखकों ने साहित्य की विभिन्न विधाओं के विकास में योग दिया है। उस मण्डल के लेखकों में (१) रामदीन सिंह, (२) लालखड्गबहादुर मल्ल, (३) दामोदर शास्त्री सप्रे, (४) बाबा सुमेर सिंह साहबजादे, (५) रामचरित्र सिंह, (६) साहबप्रसाद सिंह और (७) शिवनन्दन सहाय थे।

महाराजकुमार रामदीन सिंह :

क्षत्रिय-राजवंशों में हयहय-वंशी राजपूत-राजकुल प्रतापी राजवंश हुआ है। यह वंश अपने शौर्य और पराक्रम के लिए प्रख्यात रहा है। इस वंश में जगद्विश्रुत महापुरुष ययाति थे। उनके पौत्र अर्जुन कार्त्तवीर्य अपनी वीरता के लिए 'हयहयपति' की उपाधि से सम्बोधित किये जाते थे। वे सम्राट् और चक्रवर्त्ती की उपाधि से अलंकृत थे। वे ही हयहय-वंश के संस्थापक माने जाते हैं। उन्होंने ही इस कुल का प्रवर्त्तन किया।[1] हयहय-वंश कालान्तर में हयोवंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। हयहयवंशी चन्द्रवंशी क्षत्रिय हैं और इनकी उपाधि सिंह है।

हयोवंश की पाँच शाखाएँ थीं—वीतिहोत्र, शार्यात, भोज, अवन्ति और तुण्डिकेर। इन पाँच शाखाओं का संघ **तालजंघ** कहलाता था। तालजंघीय शासकों ने उत्तर में गान्धार से कोशल तक के सभी प्रान्तों पर आधिपत्य स्थापित किया था। अयोध्या के सूर्यवंशी राजा बाहु को गद्दी से उतारकर, इस वंश ने अपना शासन स्थापित किया था। इस वंश के राजाओं ने गुजरात और दक्षिण में भी अपने राज्य का विस्तार किया। कहा

---

१. द डायनिस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दर्न इण्डिया, दूसरा खण्ड, पृ० ७३८

जाता है कि इस वंश का संस्थापक अर्जुन-जैसी वीरता और पराक्रम के कारण सहस्रजीत, हयहयपति और कार्त्तवीर्य की उपाधि से अलंकृत किया गया था। उसके शौर्य के सम्बन्ध में यह जनश्रुति है कि कार्त्तवीर्य अर्जुन ने परशुराम के पिता जमदग्नि को युद्ध में परास्त कर उनकी हत्या की थी। अतः यह वंश प्रतापी माना जाता रहा है।

अर्जुन कार्त्तवीर्य ने अपने राज्य की स्थापना के बाद मध्यप्रदेश के निमाड़ जिले के माहिष्मती स्थान पर, जो नर्मदा-तट पर अवस्थित था, अपनी राजधानी बनाई। मराठों के आक्रमण के पूर्व मध्यप्रदेश के बिलासपुर जिले का रत्नापुर इसी वंश के अधीन था। इस वंश के राजाओं ने छत्तीसगढ़ पर भी शासन किया था। इन राजाओं की वंशावली इस प्रकार है :

वंशवृक्ष
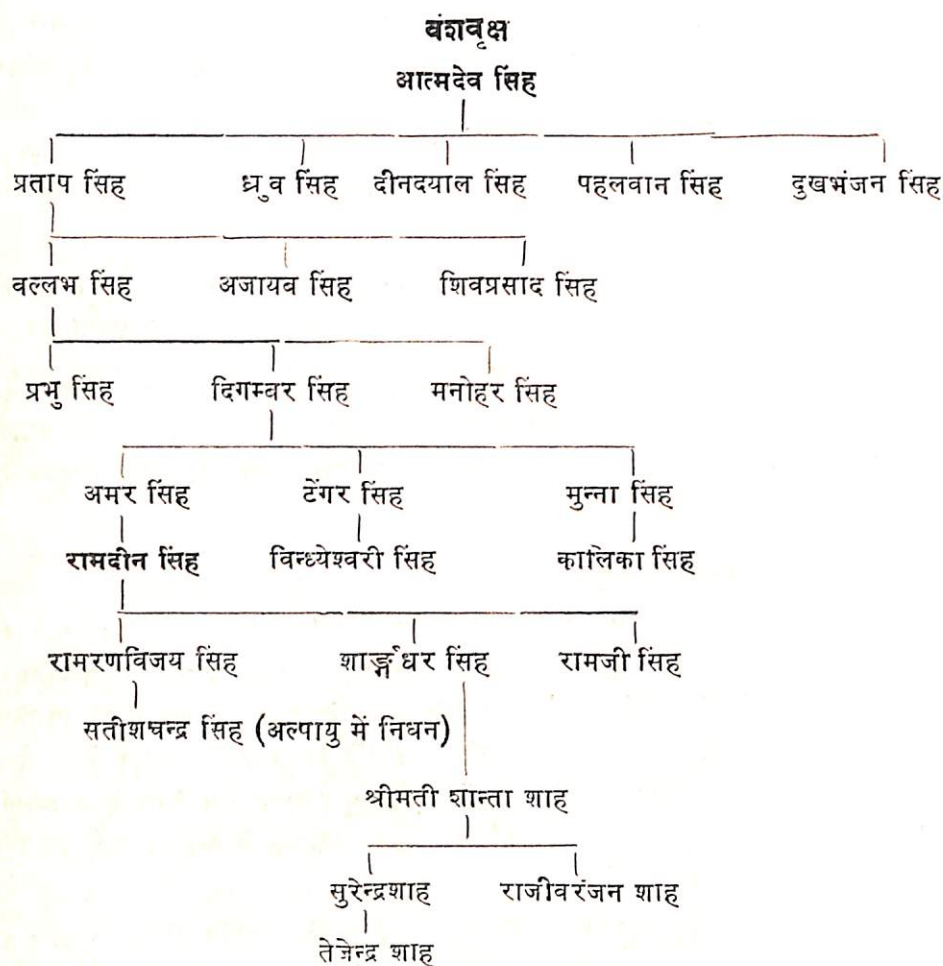
इस वंश में सन् ७५० ई० में राजा सूर्यदेव और ब्रह्मदेव नामक दो प्रतापी राजा हुए। वे दोनों सहोदर थे। राजा सूर्यदेव छत्तीसगढ़ पर और राजा ब्रह्मदेव रत्नापुर पर शासन करते थे।

राजा ब्रह्मदेव रत्नापुर से उत्तरप्रदेश के बलिया जनपद में चले आये। यहाँ उन्होंने रायपुर नामक गाँव बसाया और यहीं शासन करने लगे। उनकी नौवीं पीढ़ी निःसन्तान हो गई, इस कारण रत्नापुर के राजकुमार को सन् १३६० ई० में रायपुर की गद्दी पर आरूढ़

किया गया। इस राजवंश ने सन् १७४१ ई० तक यहाँ शासन किया। तदनन्तर इस राजवंश की राजसत्ता का अन्त हो गया। बाद में इनके वंशज जमीन्दार के रूप में प्रतिष्ठित हुए। इस वंश के लोग सम्मान की दृष्टि से महाराजकुमार कहलाते हैं।

राजा ब्रह्मदेव के वंशज बलिया जिले के रायपुर, दुर्जनपुर और दीघार नामक तीन गाँवों में फैल गये[1] और, आज भी इन तीन गाँवों में हयोवंशी राजपूत रहते हैं। बलिया जिले का रायपुर कालान्तर में **'रेपुरा'** नाम से विश्रुत हुआ। आज भी उसी नाम से वह गाँव जाना जाता है। इसी रेपुरा के प्रतापी हयोवंश में महाराजकुमार आत्मदेव सिंह हुए। वे प्रतिष्ठित जमीन्दार थे। उन्हीं की आठवीं पीढ़ी में महाराजकुमार अमर सिंह हुए। अमर सिंह अपने तीन भाइयों में सबसे बड़े थे। अमर सिंह का विवाह पटना जिले के तारणपुर ग्रामवासी जमीन्दार हितनारायण सिंह की कन्या उरेही देवी से हुआ। उन्हीं के इकलौते पुत्र रामदीन सिंह थे।

महाराजकुमार अमर सिंह और श्रीमती उरेही देवी की एकमात्र सन्तान रामदीन सिंह का जन्म उत्तरप्रदेश के बलिया जिले के रेपुरा ग्राम में पौषशुक्ल चतुर्दशी, रविवार, संवत् १९१२ विक्रमीय, तदनुसार २० जनवरी, १८५६ ई० को हुआ। उनकी राशि का नाम कोमल सिंह था।[2]

रामदीन सिंह का पालन-पोषण बड़े लाड़-प्यार से हुआ। आठ वर्ष तक उन्हें माता-पिता का स्नेह प्राप्त हुआ। जब वे आठ साल के थे, उनके पिता का निधन हो गया। उन्हें उत्तरदायित्वपूर्ण अभिभावकत्व का अभाव था। परिवार के अन्य लोगों का व्यवहार द्वेष-पूर्ण था। वे किंकर्त्तव्य-विमूढ़ की स्थिति में थे। उनकी इस स्थिति को देखकर उनके नाना हितनारायण सिंह उनको तथा उनकी माता उरेही देवी को अपने गाँव तारणपुर ले आये। उस समय रामदीन सिंह आठ वर्ष के थे।

शिक्षा :

रामदीन सिंह के नाना हितनारायण सिंह शिक्षित-सम्भ्रान्त व्यक्ति थे। वे कवि तथा साहित्यिक प्रतिभा से सम्पन्न थे।[3] वे अपने एकमात्र दौहित्र को सुशिक्षित करना चाहते

---

१. ये तीनों गाँव अपनी रईसी और फिजूलखर्ची के लिए मशहूर थे। बलिया-निवासी मुंशी कुंजविहारी लाल ने इस सम्बन्ध में यह उक्ति प्रचारित की थी :

रेपुरा, दुर्जनपुर, दीघार। यही खर्च से भइल उजार॥

२. (अ) रामदीन सिंह की जीवनी : जैनेन्द्र किशोर, पृ० ३

(ब) रामदीन सिंह की जीवनी : नरेन्द्रनारायण सिंह, पृ० ३

(स) बालमुकुन्द गुप्त : निबन्धावली, पृ० २९

३. बाबू हितनारायण सिंह राष्ट्रीय विचारधारा के समर्थ कवि थे। उनका यह दृष्टिकोण था :

बनी यहाँ की वस्तु जो ताकर करु सन्मान।
अपरदेश की वस्तु तें होय यहाँ अतिहान॥
कृषिकर्म, वाणिज्य पुनि, शिल्प अधिक उर आन।
महराठिन की रीति पर, सजग होहु मतिमान॥—बिहार की साहित्यिक प्रगति, पृ० ३

थे। उन्हें गाँव की पाठशाला उपयुक्त नहीं लगी, इसीलिए पटना सिटी के प्रसिद्ध वाजपेयी-विद्यालय (पण्डित प्रयागनारायण वाजपेयी के नाम पर स्थापित) में, जिसे वाजपेयी की पाठशाला भी कहते थे, उनका नाम लिखाया गया। तारणपुर से वह पाठशाला बारह मील की दूरी पर थी। बालक रामदीन प्रतिदिन पैदल उस विद्यालय में पढ़ने जाया करते थे। शाम तक वे घर लौट आते थे। इसी पाठशाला से उन्होंने मिड्ल-परीक्षा सन् १८७५ ई० में उत्तीर्ण की। उनके नाना का संरक्षण उनके लिए सौभाग्यप्रद सिद्ध हुआ। साथ ही उन्हें साहित्यिक परिवेश तथा संस्कार भी मिला। इससे अध्ययन की ओर उनकी अभिरुचि बढ़ी। उनके नाना नियमित रूप से **'रामचरितमानस'** पढ़ाते और उनसे मानस का पाठ कराते थे। इसका बाबूसाहब के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा।

इसी समय से उनमें अध्ययन तथा संग्रह की धुन सवार हुई। पढ़ने के लिए विद्यालय जाते समय वे रास्ते में 'वैतालपचीसी' तथा 'सिंहासनबत्तीसी' पढ़ा करते थे। समय का सदुपयोग करना वे जानते थे। जब कोई काम नहीं रहता था, तो पुस्तक पढ़ना शुरू कर देते थे।[1]

परिवेश :

बाबूसाहब को साहित्यिक और सांस्कृतिक परिवेश सुलभ था। उनके बालसखाओं में तारणपुर-निवासी रामचरित्र सिंह, दीनदयाल सिंह, रामचरण सिंह, पण्डित नन्द मिश्र और पण्डित उमानाथ मिश्र थे। ये साहित्यिक रुचि-सम्पन्न सुशिक्षित व्यक्ति थे। नन्द मिश्र और उमानाथ मिश्र संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे। ऐसे वातावरण में उनके मानसिक संघटन पर विशेष प्रभाव पड़ा। इस परिवेश में रामचरितमानस, वाल्मीकि-रामायण, और महाभारत की नित्य चर्चाएँ होती थीं। अतएव, उनके प्रारम्भिक क्रिया-कलाप को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि उनमें आरम्भ से ही साहित्यानुराग था, जिसका कालान्तर में विकास हुआ।

आकृति, प्रकृति और शील-स्वभाव :

रामदीन सिंह का व्यक्तित्व प्रभावोत्पादक था। वे कद में लम्बे, दुबले-पतले और छरहरे बदन के थे। उनकी आँखें बड़ी-बड़ी थीं। चेहरे से सौम्यता प्रकट होती थी। चुस्त पाजामा और चपकन उनकी वेश-भूषा थी। उनका जन्म प्रतिष्ठित जमीन्दार परिवार में हुआ था और वह परिवार ब्राह्मणभक्त था, इसलिए वे ब्राह्मणपूजक आस्तिक विचारधारा के थे। सनातनधर्म में उनकी आस्था थी। उनकी आस्तिकता का बड़ा प्रमाण यह है कि जब खड्गविलास प्रेस का अपना भवन तैयार हुआ, तब उस भवन में तुलसीचौरा का निर्माण किया गया। वे प्रतिदिन प्रातः गंगा-स्नान कर पूजा-पाठ करते थे। उन्होंने अपने प्रेस के कर्मचारियों को प्रातःकाल उठने के लिए नियम बनाया था। प्रेस के कर्मचारी स्नान और पूजा-पाठ के बाद प्रेस का काम शुरू करते थे।

---

१. ये बातें मेरे आदरणीय पितामह बाबू आनन्दीनारायण सिंह तथा बाबू सत्यनारायण सिंह ने बतलाई थीं। इन लोगों को बाबू रामदीन सिंह को देखने और उनके बारे में सुनने का अवसर मिला था।

रामदीन सिंह विनम्र स्वभाव के थे । उनका अधिक समय काव्य-शास्त्र-विनोद में बीतता था । 'रामचरितमानस' उनका प्रिय पाठ्य ग्रन्थ था । किसीसे निरर्थक बात करना उन्हें पसन्द न था । पुस्तक-संग्रह का उन्हें बेहद शौक था । उनके मित्र और 'भारत-मित्र'-सम्पादक बालमुकुन्द गुप्त ने लिखा है : "कलकत्ते में जब आते थे, सैकड़ों पुस्तकें बटोर ले जाते थे । पुस्तकें खरीदने में उनको रेल का खर्चा घट जाने तक का खयाल नहीं रहता था ।" यह था उनका पुस्तक-प्रेम ।

उनमें अपने कुल का गौरव और आत्माभिमान था । उनके मित्रों में राजपरिवार, जमीन्दार-परिवार और समाज के सामान्य व्यक्ति भी थे । सभी के साथ वे मित्रता का निर्वाह कुशलता से करते थे । उनमें तेजस्विता थी और व्यवहार मनोरम था । अपने सद्गुणों से प्रभावित कर किसी को अपने अनुकूल बना लेने की उनमें विलक्षण प्रतिभा थी ।

अध्यापन-कार्य :

शिक्षा में उनकी सहज रुचि थी । मिड्‌िल-परीक्षा पास करने पर वे छपरा जिले के नयागाँव के स्कूल में सहायक शिक्षक नियुक्त किये गये । उन्होंने दो-तीन वर्षों तक वहाँ अध्यापन किया । अध्यापन करते समय उन्हें गणित की अच्छी पुस्तक का अभाव महसूस हुआ । उन्होंने 'गणितबत्तीसी' की रचना की । इसका मुद्रण सन् १८७९ ई० में ब्रांच बोधोदय प्रेस में हुआ । यद्यपि उस पुस्तक की रचना बाबूसाहब ने स्वयं की थी, तथापि उन्होंने अपने मित्र साहबप्रसाद सिंह के नाम से प्रकाशित कराई । उसमें गणित के बत्तीस सूत्रों को पद्यबद्ध कर दुरूहता दूर की गई थी ।

वह नवचेतना का उन्मेष-काल था । हिन्दी का प्रचार राष्ट्रीय कार्य समझा जाता था । बाबूसाहब में युगबोध प्रबल रूप में स्फुरित था । उनमें हिन्दी के प्रति सहज स्नेह था । इसलिए हिन्दी-माध्यम से देश में नवचेतना का संचार करने का प्रबल उत्साह था । इसके लिए वे व्यग्र थे । ग्राम-पाठशाला का क्षेत्र संकुचित था । उनकी आकांक्षा की पूर्त्ति के लिए वृहत्तर क्षेत्र की अपेक्षा थी । फलतः उन्होंने अध्यापन छोड़ दिया और हिन्दी की सेवा में लग गये ।

अध्यापकीय जीवन में उन्हें पाठ्यपुस्तकों का भारी अभाव प्रतीत हुआ । उन दिनों विद्यालयों में हिन्दी के नाम पर उर्दू-फारसी-मिश्रित हिन्दी पढ़ाई जाती थी । पाठ्य-पुस्तक की कमी और हिन्दी के प्रति अनुचित उपेक्षा से प्रेरित बुद्धि ने उनके जीवन का नया मार्ग-दर्शन किया ।

सहृदय साहित्यकार :

बाबूसाहब सहृदय व्यक्ति थे । साहित्य-चर्चा उन्हें अत्यन्त प्रिय थी । साहित्यकारों के लिए उनका हृदय खुला था । साहित्यकारों की आर्थिक सहायता और साहित्य के लिए सैकड़ों रुपये खर्च कर देना उनके लिए मामूली बात थी । और, उनकी सहृदयता तथा साहित्यप्रियता का परिचय ब्रजनन्दन सहाय के निम्नलिखित संस्मरण से मिलता है :

"चौबेजी (पण्डित बिहारीलाल चौबे) और व्यासजी (पण्डित अम्बिकादत्त व्यास) प्रायः खड्गविलास प्रेस में जाते थे। शास्त्रीजी (पण्डित दामोदर शास्त्री) से उन दोनों की बातचीत प्रायः भाषा की शुद्धता पर होती थी। आजकल के साहित्यसेवी व्याकरण-संगत भाषा लिखने पर कम ध्यान देते हैं। पर, वे लोग शब्दशास्त्र के मन्थन और मनन में लगे रहते थे। जब वे लोग आपस में बहस करने लगते थे, तब बाबू रामदीन सिंह तुरत मिठाइयाँ मँगाकर उन लोगों के सामने परोस देते थे। महाराजकुमार (बाबू रामदीन सिंह) के समान विद्वानों का सम्मान करनेवाला गुणग्राही उस समय कोई न था। उन्होंने अनेक लेखकों और कवियों की लिखी पुस्तकें काफी रुपये देकर खरीद ली थीं। उनके मरने के बाद कई आलमारियाँ अप्रकाशित पाण्डुलिपियों से भरी थीं। किसी को उन्होंने निराश-विमुख नहीं किया। रोगी होने पर, कन्या के विवाह में, अभाव में कष्ट पाने पर एवं संकट पड़ने पर साहित्यसेवी लोग उन्हीं के पास पहुँच जाते थे और निश्चय ही सफल-मनोरथ होते थे। वैसा त्यागी और दानी होना कठिन है।"[१]

विवाह और सन्तान :

बाबू रामदीन सिंह की दो शादियाँ हुई थीं। पहली शादी तत्कालीन शाहाबाद (अब भोजपुर) जिले के बड़ाहिल ग्राम में हुई थी। उस पत्नी से उनको एक पुत्र रामरणविजय बहादुर सिंह थे। पहली पत्नी का निधन होने पर दूसरी शादी बलिया जिले के रेवती ग्राम में हुई। पत्नी का नाम इन्द्रपति देवी था। इस पत्नी से दो पुत्र और एक कन्या हुई। ज्येष्ठ पुत्र का नाम श्रीशार्ङ्गधर सिंह और कनिष्ठ का श्रीरामजी सिंह था। उनके तीनों ही पुत्र दिवंगत हो चुके हैं। श्रीशार्ङ्गधर सिंह के दौहित्र इन दिनों खड्गविलास प्रेस का कार्य-संचालन कर रहे हैं।

रामरणविजय सिंह :

रामदीन सिंह के ज्येष्ठ पुत्र रामरणविजय सिंह का जन्म पटना जिले के तारणपुर ग्राम में संवत् १९४७ वि० (सन् १८९० ई०) में हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा घर के साहित्यिक परिवेश में हुई। तदनन्तर उन्होंने पटना कॉलेजिएट स्कूल में अध्ययन किया। उसी स्कूल से उन्होंने सन् १९०३ ई० में एण्ट्रेन्स की परीक्षा उत्तीर्ण की। उसी वर्ष बाबू रामदीन सिंह का देहान्त हो गया। दो वर्षों तक उन्होंने अध्ययन जारी रखकर सन् १९०५ ई० में पटना विश्वविद्यालय से आइ० ए० की परीक्षा पास की।

रामरणविजय सिंह को उनके पिता प्यार से 'बबुआ' कहते थे। अतः वे बबुआजी के नाम से सम्बोधित किये जाते थे। उनका व्यक्तित्त्व बड़ा प्रभावशाली था। बाबूसाहब के निधन के बाद प्रेस और प्रकाशन के संचालन का भार उनपर आया। उन्होंने बड़ी होशियारी और उत्साह के साथ प्रेस का संचालन किया। इस प्रेस ने हिन्दी की जितनी अधिक सेवा भारतेन्दु-युग में की, उससे किसी भी अर्थ में कम द्विवेदी-युग में नहीं की।

---

२. वे दिन, वे लोग, पृ० २३

चित्र-सं० : ५

शार्ङ्गधर सिंह

वे जितनी अच्छी हिन्दी लिखते और बोलते थे, उतनी ही अच्छी अँगरेजी भी। वे भावुक कवि थे। उन्होंने अनेक अँगरेजी-कविताओं का हिन्दी-अनुवाद किया था। उन्होंने कई कविताएँ लिखीं, जिनका प्रकाशन 'सरस्वती' तथा अन्य समसामयिक पत्रिकाओं में हुआ।

रायबहादुर रामरणविजय सिंह ने अपने पिता की पुण्य-स्मृति में पटना-विश्वविद्यालय में 'रामदीन रीडरशिप' की स्थापना कराई, जिसके लिए धनराशि दी। उस धनराशि से हर तीसरे वर्ष विश्वविद्यालय के तत्त्वावधान में विद्वानों के व्याख्यान का आयोजन किया जाता है। इस क्रम में हरिऔधजी ने पहला व्याख्यान **'आधुनिक हिन्दी-साहित्य का विकास'** विषय पर किया था। वह व्याख्यान बाद में पुस्तक-रूप में छपा।

बबुआजी साहित्य-रसिक तो थे ही, अत्यन्त सामाजिक थे। वे प्रायः सामाजिक कार्यक्रमों में योगदान करते रहते थे। वे बिहार और उड़ीसा-व्यापार-मण्डल के सदस्य और बाद में अध्यक्ष हुए थे। बबुआजी शासन और जनता के बीच कड़ी बन गये थे। उनकी लोकप्रियता से प्रभावित होकर सन् १९२२ ई० में बिहार-सरकार ने उनको बिहार-कौंसिल का सदस्य मनोनीत किया। उसी वर्ष उन्हें 'रायबहादुर' की उपाधि मिली।

बबुआजी को विरासत में पिता का संस्कार मिला था। भारतेन्दु-युग के बाद द्विवेदी-युग में साहित्यिक गतिविधि को प्रेस में सक्रिय बनाये रखने के लिए वे सतत प्रयत्नशील रहते थे। इस दिशा में उन्होंने 'प्रताप-जयन्ती' का आयोजन किया और उनके सम्बन्ध में शोधपूर्ण भाषण किया। 'भारतेन्दु-ग्रन्थावली' की भाँति 'प्रतापनारायण-ग्रन्थावली' के प्रकाशन का प्रयास भी किया गया, किन्तु वह कई कारणों से सफल न हो सका।

उन दिनों बिहार के साहित्यकारों की साहित्यिक गतिविधि का एकमात्र केन्द्र 'बिहार-हिन्दी-साहित्य--सम्मेलन' था। रामरणविजय सिंह ने इस सम्मेलन के मुँगेर में हुए नवें अधिवेशन का सभापतित्व किया। उन्होंने अपने भाषण में हिन्दी की समस्याओं के समाधान के लिए कई रचनात्मक सुझाव प्रस्तुत किये थे।

बबुआजी उदर-रोग से पीड़ित हो सन् १९३६ ई० में बीमार पड़ गये। कलकत्ता के सुप्रसिद्ध डाक्टर विधानचन्द्र राय से चिकित्सा कराई गई, किन्तु उनका रोग ठीक न हो सका। दिसम्बर, १९३६ ई० में उनका शरीरान्त पटना में हुआ। उनके निधन के एक वर्ष पूर्व उनके एकमात्र पुत्र सतीशचन्द्र का निधन किशोरावस्था में ही हो गया था।

शार्ङ्गधर सिंह

बिहार के जिन साहित्य-सेवियों ने सारस्वत साधना से हिन्दी-भारती को समृद्ध किया है, उनमें श्रीशार्ङ्गधर सिंह का अपना स्थान है। इनका जन्म ६ फरवरी, १८९९ ई० को पटना में हुआ था। चौदह वर्ष की उम्र में पटना के राममोहन राय सेमिनरी स्कूल से इन्होंने एण्ट्रेन्स-परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् १९२० ई० में अँगरेजी-साहित्य में पटना-विश्व-विद्यालय से एम० ए० और उसके बाद बी० एल० की परीक्षाएँ पास कीं।

इनको साहित्य का संस्कार पिता से विरासत में मिला था। जिस वातावरण में इनका पालन-पोषण और शिक्षा हुई, उसमें महामहोपाध्याय पण्डित सकलनारायण शर्मा, पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', पण्डित चन्द्रशेखरधर शास्त्री आदि जैसे विद्वानों

एवं साहित्य-महारथियों का सान्निध्य इन्हें प्राप्त था। कदाचित् यही कारण है कि अँगरेजी-साहित्य के विद्यार्थी होते हुए भी संस्कृत और हिन्दी-भाषा तथा साहित्य का इन्हे आधिकारिक ज्ञान था।

कर्मक्षेत्र में इनका प्रवेश अधिवक्ता के रूप में हुआ। इन्होंने पटना हाईकोर्ट में वकालत शुरू की। उस समय स्वतन्त्रता-संग्राम की लहर तेजी पर थी। ये उस राजनीतिक वातावरण से अपने को असंपृक्त नहीं रख सके और गांधीजी के सविनय अवज्ञा-आन्दोलन में शामिल हो गये। कलकत्ता-विश्वविद्यालय के छात्र-जीवनकाल में 'बिहारी एसोसियेशन' ने इन्हें राजनीति की ओर प्रेरित किया। उसी समय ये एसोसियेशन के प्रधान मन्त्री हुए। इस संस्था का इतिहास गौरवपूर्ण रहा है।

आप सन् १९२० ई० में भारतीय काँगरेस से सम्बद्ध हुए। सन् १९३० ई० के नमक-सत्याग्रह-आन्दोलन में आपने भाग लिया और जेल गये। सन् १९३२ ई० में पटना में रामदयालु सिंह की गिरफ्तारी के बाद आपने बिहार-काँगरेस का मार्ग-दर्शन किया। उसी वर्ष बिहार प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन के गया-अधिवेशन में आप सभापति बनाये गये, परन्तु सम्मेलन आरम्भ होने से पूर्व ही गिरफ्तार कर लिये गये। आपको १८ महीने तक जेल की सजा भुगतनी पड़ी।

सन् १९३७ ई० में बिहार में काँगरेस की पहली सरकार बनी। उसमें आप शिक्षा, विकास और राजस्व-विभाग के संसदीय सचिव नियुक्त हुए। सन् १९३७ ई० से १९५१ ई० तक आप बिहार-विधानसभा के सदस्य रहे। आपने सन् १९५२ से १९६२ ई० तक दक्षिणी पटना-क्षेत्र का लोकसभा में प्रतिनिधित्व किया। आपका राजनीतिक जीवन निर्भय और निर्भ्रान्त रहा।

शिक्षा में आपकी विशेष अभिरुचि रही। आपकी सारस्वत प्रतिभा से प्रभावित होकर आपको सन् १९४९ ई० में पटना-विश्वविद्यालय का और सन् १९६२ ई० में राँची-विश्वविद्यालय का उपकुलपति नियुक्त किया गया। आपने सन् १९५० ई० में राष्ट्रमण्डलीय देशों के विश्वविद्यालयीय सम्मेलन में, जो न्यूजीलैण्ड में हुआ था, भारत का प्रतिनिधित्व किया था। आप बिहार-विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग के वर्षों तक उपाध्यक्ष थे। साहित्य और राजनीति का सम्यक् समन्वय आपके जीवन में था। आपने इन दोनों क्षेत्रों में निष्ठा से काम कर अपनी प्रोज्ज्वल मनीषा का परिचय दिया। खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित अनेक पुस्तकों का आपने सम्पादन किया। इस प्रेस से प्रकाशित होनेवाले साप्ताहिक पत्र 'शिक्षा' का वर्षों तक सम्पादन किया। शिक्षा के एक अंक में आपने बाबू श्यामसुन्दर दास के **'रूपक-रहस्य'** की समीक्षा की थी। उस समीक्षा में आपकी आलोचक-प्रतिभा और मौलिक चिन्तन की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है। आप बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रधान मन्त्री तथा कोषाध्यक्ष भी रहे। आपकी सारस्वत सेवा के लिए बिहार-सरकार के राजभाषा-विभाग और बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् ने सन् १९८१ ई० में सम्मानित कर आपको क्रमशः वरिष्ठ हिन्दी सेवी-सम्मा-पुरस्कार तथा वयोवृद्ध साहित्यिक-सम्मान-पुरस्कार प्रदान किये थे।

श्रीशार्ङ्गधर सिंह उदार और मिलनसार व्यक्ति थे। आप वचन के पक्के और कर्त्तव्य-परायण थे। आप जो कहते, वही करते भी थे। स्वाध्याय और मनन आपके मनोरंजन के

साधन थे। अँगरेजी-साहित्य की गतिविधियों आप से अपने ज्ञान को अद्यतन बनाये रखते थे। हिन्दी-साहित्य के प्रति आपकी सहज अभिरुचि थी। जब आप राँची-विश्वविद्यालय के वाइस-चान्सलर थे, तब आपने विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की जानेवाली उपाधियाँ हिन्दी में लिखवाकर दीं और दीक्षान्त-समारोह को भारतीय संस्कार का रूप दिया। वहाँ हिन्दी को प्रतिष्ठित करनेवाले आप प्रथम कुलपति थे। वस्तुतः श्रीशार्ङ्गधर सिंह योग्य पिता के योग्य पुत्र थे।

रामजी सिंह :

बाबू रामदीन सिंह के तीसरे पुत्र रामजी सिंह थे। उनका जन्म पटना में हुआ। उनकी शिक्षा भी पटना में ही हुई। वे एम्० ए० और बी० एल्० पास करके पटना में वकालत करते थे। साथ ही शार्ङ्गधर सिंह के व्यस्त राजनीतिक जीवन के कारण खड्गविलास प्रेस के संचालन में योगदान भी किया करते थे। उन्होंने कई पुस्तकों का संकलन-सम्पादन किया था। उनका निधन सन् १९६० ई० में पटना में हुआ।

रामदीन सिंह की अन्वेषण और सम्पादन-दृष्टि :

बाबू रामदीन सिंह मासिक 'क्षत्रिय-पत्रिका' का सम्पादन करते थे। उनके प्रेस से प्रकाशित होनेवाले ग्रन्थों में उनकी टिप्पणियाँ द्रष्टव्य हैं। वे खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित हर पुस्तक को पाठकों के समक्ष इस रूप में प्रस्तुत करना चाहते थे कि उस पुस्तक से पाठकों को अधिकतम प्रामाणिक जानकारी मिले।

बाबूसाहब ने ही हिन्दी-जगत् को सबसे पहले यह सूचना दी थी कि भारतेन्दु ने 'जानकीमंगल' नाटक के अभिनय में लक्ष्मण की भूमिका अदा की थी। यह जानकारी बँगला से हिन्दी में अनूदित और खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित पुस्तक 'चरिताष्टक' में दी गई थी। इसी प्रकार वे अपने यहाँ से प्रकाशित ग्रन्थों को अत्यन्त प्रामाणिक संस्करण बनाते थे। इससे उनकी गम्भीर अन्वेषिका बुद्धि का परिचय मिलता है। उनके जीवन-काल में प्रकाशित ५० प्रतिशत पुस्तकों में इस ढंग की टिप्पणियाँ दी गई हैं।

पत्रकारिता के लिए अदम्य उत्साह :

रामदीन सिंह की हिन्दी-पत्रकारिता के प्रति अत्यधिक अभिरुचि थी। उसके विकास के लिए आर्थिक सहयोग देने में वे तत्पर रहते थे। हिन्दी के जिस किसी पत्र की आर्थिक स्थिति प्रतिकूल होने से प्रकाशन बन्द होने की उन्हें सूचना मिलती, वे उसके प्रकाशन के लिए तुरत तैयार हो जाते थे। पं० प्रतापनारायण मिश्र का 'ब्राह्मण' जब बन्द हुआ, तब उसे प्रकाशित करने की जिम्मेदारी रामदीन सिंहजी ने उठा ली और वह खड्गविलास प्रेस से छपने लगा। इसी प्रकार कलकत्ता का 'उचित वक्ता' आर्थिक कारणों से बन्द हो गया था। उसके सम्पादक पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र बाबूसाहब के मित्र थे। बाबूसाहब को जब 'उचित वक्ता' का प्रकाशन बन्द होने की सूचना मिली तो वे ३० अप्रैल, १८९४ ई० को कलकत्ता गये। उन्होंने मिश्रजी को पत्र-प्रकाशन के लिए प्रोत्साहित किया। उनकी कलकत्ता-यात्रा का उद्देश्य 'उचित वक्ता' का प्रकाशन पुनः शुरू करना था। मिश्रजी को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा था :

"आप कुछ नहीं लिखते, आलसी हो गये हैं।" इसपर मिश्रजी ने अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए कहा :

"पत्र निकालने से पुनः हजारों का घाटा लगेगा।"

तब बाबूसाहब ने कहा :

"कुछ चिन्ता नहीं, आप निकालिए। पत्र निकलता रहेगा, तो इसके अनुरोध से आप बहुत-कुछ लिखते रहेंगे, अन्यथा आप अब बहुत कम लिखते हैं। आप-सरीखे सुलेखकों को आलस्य में कालक्षय नहीं करना चाहिए। रुपयों का जो कुछ घाटा होगा, उसके सब उपाय मैं करूँगा।"[१] उन्होंने 'उचित वक्ता' के प्रकाशन के लिए २०० रु० दिये। उनके प्रोत्साहन पर २६ मई, १८९४ ई० को पुनः कलकत्ता से 'उचित वक्ता' का प्रकाशन शुरू हुआ और बाबूसाहब ने आश्वासन दिया कि मैं कदापि बन्द नहीं होने दूँगा। यह था उनका हिन्दी-भाषा और साहित्य के विकास के लिए उत्साह।

रामदीन सिंह की हिन्दी-सेवा और सम्मान :

रामदीन सिंह ने हिन्दी के विकास के लिए 'मिशनरी उत्साह' से काम किया और हिन्दी-साहित्य को वेठन से निकालकर प्रकाश में लाने का श्लाघ्य श्रम किया। उन्होंने जिज्ञासु पाठकों की आकांक्षाओं की पूर्त्ति की और हिन्दी-साहित्य को नई दिशा देकर उसका मार्ग प्रशस्त किया।

रामदीन सिंह की हिन्दी-सेवा की सराहना हिन्दी की लब्धकीर्त्ति संस्था 'काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा' ने की थी और उन्हें सभा का सदस्य भी मनोनीत किया था। वे सभा की बैठकों में बराबर भाग लेते थे। सभा का प्रथम अधिवेशन सन् १८९४ ई० में हुआ था। उस अधिवेशन की विवरणिका में निम्नलिखित उल्लेख है :

"गत २४ मार्च को इस सभा का एक अधिवेशन हुआ था, जिसमें महाराजकुमार रामदीन सिंह और पं० रामशंकर व्यास तथा अन्य सभा-सदस्यगण उपस्थित थे। इस अधिवेशन में बाबू राधाकृष्ण दासजी ने नागरीदासजी का जीवन-चरित्र पढ़ा। इस पुस्तक को महाराजकुमार बाबू रामदीन सिंह ने निज यन्त्रालय में छापकर प्रकाशित किया है।"[२]

तत्कालीन हिन्दी-प्रकाशन-संस्थाओं के कार्यों की प्रशंसा में सभा की विवरणिका में लिखा गया है :

"हिन्दी-भाषा के ग्रन्थों को प्रकाश करने में लखनऊ के मुन्शी नवलकिशोर साहब 'भारत-जीवन' पत्र के सम्पादक बाबू रामकृष्ण वर्मा और बाँकीपुर खड्गविलास प्रेस के स्वामी महाराजकुमार बाबू रामदीन सिंह का उद्योग और साहस प्रशंसनीय है। इन महाशयों ने हिन्दी के हजारों ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं और करते जा रहे हैं। सभा आशा करती है कि ये महाशय यों ही अनाथिनी हिन्दी की ओर स्नेह-दृष्टि रखेंगे।"[3]

---

१. हिन्दी-पत्रकारिता, पृ० १७७-७८

२. काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा, प्रथम वार्षिक विवरण, पृ० ५

३. वही, पृ० ११

रामदीन सिंह ने अपने प्रकाशन की प्रतियाँ सभा के पुस्तकालय को प्रदान की थीं।

विश्वविख्यात भाषाशास्त्री जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन रामदीन सिंह के अनन्य मित्र थे। हिन्दी में 'रामचरितमानस' के प्रथम पाठ-शोध-संस्करण के सम्पादन-प्रकाशन में दोनों का पारस्परिक सहयोग अविस्मरणीय है। रामदीन सिंह की साहित्य-सेवा और हिन्दी-प्रेम पर ग्रियर्सन विमुग्ध थे। उन्होंने सन् १८९५ ई० में रामदीन सिंह को बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता की सदस्यता प्रदान कराई थी।[1]

कलकत्ता के 'हिन्दी-समाज' ने रामदीन सिंह की हिन्दी-सेवा से प्रभावित होकर उन्हें सम्मानित किया था। सन् १८९४ ई० में 'हिन्दी-समाज' की ओर से वे 'भाषोद्धारक' की उपाधि से अलंकृत किये गये थे।[2]

अन्तिम समय :

बाबूसाहब नित्य दस-बारह घण्टे काम करते थे। उनका मुख्य कार्य था—पुस्तकों का सम्पादन, उनके लिए टिप्पणियाँ लिखना, पुस्तकों के कलेवर और उनके शुद्ध प्रकाशन के लिए प्रयत्नशील रहना। उन्होंने कम उम्र में ही अधिकतम काम कर अपने को ज्ञानवृद्ध बना लिया था। अट्ठाईस वर्षों तक उन्होंने हिन्दी की सेवा की। सरस्वती के उपासक, हिन्दी के उन्नायक और समाज-सेवक पत्रकार रामदीन सिंह का, अल्पायु में ही ज्येष्ठ शुक्ल द्वितीया, बुधवार, संवत् १९६० वि० (१३ मई, १९०३ ई०) को पटना में शरीरान्त हुआ। हिन्दी-साहित्य और हिन्दी-भाषा के प्रचार, प्रसार और विकास में रामदीन सिंह का अविस्मरणीय योगदान है।

रचनाएँ :

रामदीन सिंह ने अपना आरम्भिक जीवन अध्यापक के रूप में शुरू किया था। इसलिए उन्हें पाठ्यपुस्तकों की बेहद कमी दिखाई पड़ी। इस कमी की पूर्ति में उन्होंने भगीरथ-प्रयास किया। उन्होंने अनेक लोगों की सहायता से पाठ्यपुस्तकों का निर्माण कराया और स्वयं पाठ्यपुस्तकें लिखीं। अतः उनकी कृतियों में पाठ्यपुस्तकों और सम्पादित पुस्तकों की संख्या अधिक है। उन्होंने मौलिक ग्रन्थ भी लिखे, जिनमें प्रमुख निम्नांकित हैं :

(१) बिहार-दर्पण, (२) क्षेत्रतत्त्व, (३) बालबोध, (४) हितोपदेश, (५) स्वास्थ्य-रक्षा, (६) समझ की सीढ़ी, (७) साहित्य-भूषण और (८) हिन्दी-साहित्य।

बिहार-दर्पण (सन् १८८३ ई०) :

रामदीन सिंह भारतेन्दु-युग के चरित-लेखकों में थे। उनकी मौलिक कृति और उस समय के चरित-साहित्य की प्रामाणिक रचना 'बिहार-दर्पण' है। इस पुस्तक का पहला

---

१. (अ) बंगाल एशियाटिक सोसाइटी की विवरणिका, अगस्त, १८९५ ई०, पृ० १४१
   (ब) वही, नवम्बर, १८९५ ई०

२. अमृतबाजार-पत्रिका, ११ सितम्बर, १८९५ ई०

संस्करण कदाचित् सन् १८८० या '८१ ई० में प्रकाशित हुआ। इसपर शोध के क्रम में मुझे उक्त पुस्तक का प्रथम संस्करण देखने को नहीं मिला। इसका दूसरा संस्करण सन् १८८३ ई० में प्रकाशित हुआ। इसमें ३१२ पृष्ठ हैं।

बिहार में हिन्दी के प्रतिष्ठापक और शिक्षा-निदेशक भूदेव मुखोपाध्याय ने बिहार के अनेक लेखकों से बिहार के महापुरुषों की जीवनी लिखने के लिए आग्रह कर उन्हें प्रोत्साहित किया था। इस कार्य को जब किसी ने पूरा नहीं किया, तब बाबू रामदीन सिंह इस दिशा में प्रयत्नशील हुए। इन्होंने बिहार के चौदह महापुरुषों की जीवनियाँ तैयार कीं। इस पुस्तक के प्रथम संस्करण में चौदह महापुरुषों की ही जीवनियाँ थीं। पुस्तक लोकप्रिय हुई। इसलिए इसका दूसरा संस्करण सन् १८८३ ई० में प्रकाशित किया गया। दूसरे संस्करण में दस और महापुरुषों की जीवनियाँ जोड़ दी गईं।

'बिहार-दर्पण' में जिन चौबीस महापुरुषों की जीवनियाँ दी गई हैं, उनके नाम हैं: (१) राजा नारायण मल्ल, (२) बाबू अचल साही, (३) बाबू विधाता सिंह, (४) दीवान झब्बूलाल, (५) बाबू शिवप्रकाश सिंह, (६) बाबू बनवारी लाल, (७) रामकृष्ण सिंह देव, (८) भक्तवर शंकरदास, (९) शम्भुशाह सेठ, (१०) पण्डित नाथ पाठक, (११) कविराज चन्दनराम, (१२) शंकरदत्त झा, (१३) ठाकुर कवि, (१४) गोपालशरण सिंह, (१५) महाराज पूर्णमल्ल सिंह, (१६) बाबू हितनारायण सिंह, (१७) बाबू अक्कल सिंह, शिवगुलाम शाह, (१९) मौलवी सहामत अली खाँ, (२०) सैयद शेरअली, (२१) सैयद शाह मुजीबुल्लाह, (२२) सैयद शाह अली हबीब, (२३) गुरु गोविन्द सिंह, (२४) बाबू विक्रमादित्य सिंह।

बिहार के इन महापुरुषों की जीवनियाँ बड़ी शोधपरक हैं। इस विषय पर अपने ढंग की यह अकेली पुस्तक है। हिन्दी में चरित-साहित्य का आरम्भ इस पुस्तक के लेखन-प्रकाशन से होता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इस पुस्तक पर अपनी सम्मति प्रकट करते हुए कहा था:

"बिहार-दर्पण हमने आद्यन्त देखा। यह अपने काल की हिन्दी-भाषा में पहली पुस्तक है। इससे जो अनेक उपकार-साधन होंगे उनमें दो मुख्य हैं, प्रथम तो यह कि इतिहास-रसिक जनों को इससे बड़ा लाभ पहुँचेगा। दूसरे, देशीय लोगों की कीर्त्ति की ओर अभिरुचि होगी। ऐसे ग्रन्थ देशी भाषा में जितने बनें, भाषा का कोष विशेष पुष्ट होता जाय। हमको आशा है कि कभी वह शुभ दिन भी आवेंगे जब हम पश्चिमोत्तर देश के विषय में ऐसा ग्रन्थ देखेंगे।"

यह कृति खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित ग्रन्थों में प्रमुख है।

क्षेत्रतत्त्व (सन् १८८१ ई०):

'क्षेत्रतत्त्व' गणित की पुस्तक है। इसका प्रथम संस्करण सन् १८८१ ई० में प्रकाशित हुआ। इसके संकलयिता और प्रकाशक श्रीरामदीन सिंह थे। यह पुस्तक 'ब्रांच बोधोदय प्रेस' में छापी गई थी। इस पुस्तक के प्रणयन के सन्दर्भ में रामदीन सिंह ने लिखा था:

ज्ञानी देवबानी बीच नागरी के आगर ही
नागर सुखसागर उजागर गुनो जहान।
जानत इंगरेजी अरु पारसी त्यों उरदूहू
अरबी जुबानहू के अजब जमे खजान।।
उज्ज्वल कलानिधान मूरति विराजमान
राज्यमान्य रामपरगासलाल जी महान।
तिन्ही की सम्मति अनुसार कीन्ह संकलित
क्षेत्रतत्त्व बाबू रामदीन सिंह जी सुजान।।
क्षेत्रतत्त्व यह ग्रन्थ, रामदीन जी ने रच्यो
क्षेत्रगणित को पन्थ, दरसावतु आसानि सनि।।

इस पुस्तक में खेत नापने और उसका क्षेत्रफल निकालने की सरल विधि दी गई है। त्रिभुज, चतुर्भुज आदि का क्षेत्रफल निकालने में इस पुस्तक में दी गई विधि से अत्यन्त सुविधा होगी। छोटे-छोटे सूत्रों द्वारा अनेक कठिन सवालों के हल निकालने की विधि भी दी गई है। रामदीन सिंह की गणित की कृतियों में यह सर्वोत्तम कृति प्रतीत होती है।

समझ की सीढ़ी, पहला भाग (सन् १८९७ ई०) :

यह पुस्तक लोअर प्राइमरी कक्षा के पाठ्यक्रम के अनुसार लिखी गई थी। मेरे सामने पुस्तक का तीसरा संस्करण रहा है। इसमें छोटे-छोटे गद्य-लेख संकलित हैं। यत्र-तत्र पद्य भी हैं, जिनमें नीति-विषयक बातें कही गई हैं। नीति-विषयक उपदेश में कहा है :

प्रातहि उठिके नित-नित, करिए प्रभु को ध्यान।
याते जग में होय सुख, अरु उपजे सत ज्ञान।।
काहू ते कड़ुवो बचन, कहौ न कबहूँ जान।
तुरत मनुज के हृदय में छेदत है जिमि बान।।

उनके गद्य-लेख का उदाहरण है :

"मछलियाँ अनेक प्रकार की होती हैं। गैंचा, रोहू, पोठवा, बोआरी, गरई, मांगुर, झिंगा, बामी आदि। मछलियाँ अन्य प्राणियों की भाँति साँस लेती हैं, पर उनको नाक नहीं होती, वे गलफर से साँस लेती हैं। उनको आँखें होती हैं, ईश्वर ने उनको ऐसी आँखें दी हैं कि पानी में ही सूझती हैं। कान देखने में नहीं आता, किन्तु उनको शब्द सुन पड़ता है। यह बात परीक्षा से सिद्ध होती है।"[1]

हिन्दी-साहित्य, प्रथम भाग (सन् १९०० ई०) :

यह कृति भी पाठ्यपुस्तक है। इसके भी कई संस्करण छप चुके थे। मेरे सामने इसका परिवर्द्धित संस्करण रहा है। इस पुस्तक में प्राचीन और समकालीन लेखकों तथा कवियों की ३२ गद्य-पद्य रचनाएँ संकलित हैं।

---

१. समझ की सीढ़ी (पहला भाग), पृ० ४६

ब्रजभाषा के युग में खड़ीबोली-कविता का संकलन कर बालकों को उससे परिचित कराना संकलयिता-सम्पादक की दूरदर्शिता का परिचायक है। यह संकलन प्राचीन और नवीन साहित्य का संगम है। इस संकलन में पण्डित अम्बिकादत्त व्यास की खड़ीबोली की एक रचना द्रष्टव्य है :

दांत तोड़-तोड़ तेरी दोहरी करेगा पीठ
अमल कमल ऐसी आंखें मुरझावेगा।
कानों की भी ताकत झबूट लेगा झोंक मार
गाल पिचकाके धर गर्दन हिलावेगा॥
अम्बादत्त मालिक को भूला क्यों भटकता है
कौन जाने कब तेरा काल मुँह बावेगा।
जोबन के मद में न भूलना कभी तू यार
रहना सचेत एक रोज चोर आवेगा॥

स्वास्थ्य-रक्षा (सन् १८९१ ई०) :

छोटानागपुर-डिवीजन के विद्यालयों के निरीक्षक राय राधिकाप्रसन्न मुखर्जी ने बंगला-भाषा में '**स्वास्थ्य-रक्षा**' नामक पुस्तक लिखी थी, जिसमें स्वास्थ्य-विज्ञान की प्रारम्भिक जानकारी दी गई है। इसी पुस्तक का, महाराजकुमार रामदीन सिंह ने हिन्दी-भाषी छात्रों के लिए हिन्दी में अनुवाद किया था। उन्होंने इस पुस्तक की भूमिका में लिखा था :

"खेद का विषय है कि हिन्दी में शारीरिक स्वास्थ्य-रक्षा के ग्रन्थ ऐसे नहीं हैं कि जिनसे सर्वसाधारण का उपकार हो। मेरी दृष्टि राय राधिकाप्रसन्न मुखोपाध्याय बहादुर-कृत '**स्वास्थ्य-रक्षा**' पर पड़ी और इसे इतनी उपयुक्त पाया कि रहा न गया, तुरन्त भारत-हितैषी ऑनरेबुल बाबू भूदेव मुखोपाध्याय, सी० आई० ई० द्वारा ग्रन्थकार महाशय से आज्ञा लेकर मैंने उसका अनुवाद कर डाला, जिसे स्वदेशवासियों के उपकार के लिए प्रकाशित करता हूँ और सज्जन महाशयों से प्रार्थना करता हूँ कि अनुवाद में जो त्रुटियाँ रह गई हों उन पर ध्यान न देकर उसके सारांश को ग्रहण करके मुझे कृत-कृत्य और लोगों को सुखी करें।"

इस पुस्तक में शरीर-विज्ञान की सचित्र परिचयात्मक जानकारी दी गई है। शरीर की सफाई, स्वच्छ वायु, सोने का समय, स्नान, भोजन आदि सभी विषयों की विधिवत् जानकारी छात्रों को दी गई है। यह पुस्तक पॉकेट-आकार के १७२ पृष्ठों की है। इसका हिन्दी-अनुवाद कर हिन्दी में स्वास्थ्य-विज्ञान-सम्बन्धी साहित्य के बहुत बड़े अभाव की पूर्त्ति की गई थी। यह पुस्तक इतनी लोकप्रिय हुई कि दो वर्षों के भीतर ही इसके दो संस्करण हुए।

२९ अप्रैल, १८९१ ई० को लौहार से प्रकाशित '**मित्रविलास**' के अंक में इस पुस्तक की समीक्षा प्रकाशित हुई थी। पुस्तक की समीक्षा करते हुए समीक्षक ने लिखा था :

"श्री मन्महाराजकुमार रामदीन सिंह महोदय ने बंगभाषा से हिन्दी भण्डार का भी एक बड़ा अभाव मोचन किया है। हम इस पुस्तक के प्रकाशन से हिन्दी का परम गौरव समझते और स्वयं भी गौरवान्वित होते हैं और उक्त बाबूसाहब को अनेक धन्यवाद प्रदान करते हैं। यह पुस्तक बड़ी स्वच्छता से उत्तम कागज पर छापी गई है। एक बड़ी बात इसमें यह है कि जगह-जगह मनुष्य के चित्र देकर स्वास्थ्य का सिद्धान्त खूब समझाया गया है।"

इस पुस्तक का दूसरा संस्करण सन् १८९३ ई० में हुआ था। वस्तुतः बँगला-भाषा से हिन्दी में इस पुस्तक का अनुवाद कर हिन्दी में स्वास्थ्य-सम्बन्धी पुस्तकों के बहुत बड़े अभाव की पूर्त्ति की गई थी। जहाँ मौलिक रचनाएँ सम्भव नहीं थीं, वैसी स्थिति में अन्य भाषा से अनुवाद कर हिन्दी में पुस्तक प्रस्तुत करना बहुत बड़ा कार्य था।

इस पुस्तक की भाषा सरल और बोधगम्य है। प्रारम्भिक कक्षाओं के छात्रों को ध्यान में रखकर पुस्तक का बँगला से अनुवाद किया गया था। अतः बच्चों के लिए पुस्तक की भाषा सहज बोधगम्य हो, इसका ध्यान रखा गया था। इस पुस्तक की भाषा की सहज बोधगम्यता की जानकारी निम्नलिखित उदाहरण से हो जायगी :

"'धान' के मुख्य तीन प्रकार हैं, जेठी, भदैही और अगहनी। जेठी धान को बोरो भी कहते हैं। वह चैत-बैसाख महीने में प्रायः ६० दिन में होता है। भदैही बरसात और अगहनी कार्तिक से लेकर पूस तक उत्पन्न होता है। बोरो तथा भदैही जहाँ पैदा होता है वह आस-ही-पास के प्रदेशों में रह जाता है। अगहनी धान छोटा, स्वादिष्ट और जल्दी पचता है। यही धान बहुत व्यवहार में आता है। अगहनी धान का चावल सबसे उत्तम होता है।"[1]

यह पुस्तक बिहार के विद्यालयों में पाठ्यपुस्तक के रूप में भी चलती थी। लेखक को यह पुस्तक देखने को नहीं मिली।

हितोपदेश (सन् १९०२ ई०) :

यह पाठ्यपुस्तक दो भागों में है। प्रस्तुत पुस्तक प्रथम भाग है। इसमें बालोपयोगी नीति-विषयक उपदेश हैं। इसमें १४४ ग्रन्थ हैं। यह सन् १९०२ ई० का संस्करण है। इसमें नीति-विषयक छोटी-छोटी कहानियाँ दी गई हैं। इस पुस्तक में संकलित गद्य का नमूना देखिए :

"पानी पीने के समय मुँह और गरदन को आकाश की ओर न उठावें और न इस तरह से पीवें कि गले की आवाज सुनाई दे और एक साथ भी न पीवें, पर ठहर-ठहरकर पीवें। बरतन को मुँह से लगाकर पीवें और ऊँचा रखकर न पीवें और पानी को मुँह में हिला के न पीवें।"

इन कहानियों के बीच-बीच में तुलसी की चौपाइयाँ सूक्तिरूप में दी गई हैं।

---

१. स्वास्थ्य-रक्षा, पृ० ४३

बालबोध (सन् १९०५ ई०) :

यह संकलन, दर्जा चार के लिए स्वीकृत गद्य-पद्य की पाठ्य-पुस्तक है। इसके दो-तीन संस्करण छप गये थे। अक्षरारम्भ और व्याकरण के सामान्य ज्ञान से छोटे बच्चों को परिचित कराने के लिए यह पुस्तक लिखी गई थी।

लाल खड्गबहादुर मल्ल

मझौली-नरेश लाल खड्गबहादुर मल्ल साहित्यकार थे। बाबू रामदीन सिंह से उनका बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था। रामदीन सिंह ने अपनी गहरी मैत्री के फलस्वरूप उनके नाम से पटना में अपने प्रेस का नाम 'खड्गविलास छापाखाना' रखा। लालसाहब वाग्विदग्ध कवि भी थे।

लालसाहब बिसेन क्षत्रिय थे। 'मल्ल' उनकी उपाधि थी। कहा जाता है कि सूर्यवंश के दो राजकुमारों—अंगद और चन्द्रकेतु—ने कारुपथ (बस्ती का पूरबी और गोरखपुर का पश्चिमी भाग) में माण्डलिक राज्य कायम किया था। कारुपथ में दोनों राजकुमारों ने अलग-अलग अंगदिया और चन्द्रकान्ता नाम की दो राजधानियाँ कायम कीं। कारुपथ का पूर्वी भाग 'मल्ल' नाम से अभिहित हुआ। सूर्यवंशावतंस मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र के अनुज लक्ष्मण के छोटे पुत्र चन्द्रकेतु थे। उनकी उपाधि 'मल्ल' थी। जिस भूमि में वे बसे, उसे मल्ल-राज्य कहा गया। वाल्मीकि-रामायण में लिखा है :

चन्द्रकेतोश्च मल्लस्य मल्लभूम्यां निवेशिता।
चन्द्रकान्तेति विख्याता दिव्या स्वर्गपुरी यथा॥[1]

मल्ल-राज्य में गोरखपुर-जनपद का अधिकांश उत्तर-पूर्वी भाग तथा बिहार के सारन और चम्पारन का पश्चिमी भाग सम्मिलित था। विक्रम के तीन सौ वर्ष पूर्व गोरखपुर में मल्ल तथा मौर्य दोनों का राज्य-क्षेत्र था। मौर्य-राज्य के उदय के साथ मौर्य लोग उसी में मिल गये। बाद में मल्ल-राज्य ने मौर्य-राजवंश की अधीनता स्वीकार कर अपने राज्य को जीवित रखा। मौर्यों ने बौद्धधर्म स्वीकार कर लिया। किन्तु, उनमें एक वंश ऐसा था, जिसने वैदिक धर्म का परित्याग नहीं किया। उसी मौर्यकुमार ने मल्ल-राजकुमारी से विवाह किया। इससे विश्वसेन नामक बालक का जन्म हुआ। यही विश्वसेन **'बिसेन-वंश'** का प्रवर्त्तक हुआ। इस विवाह-सम्बन्ध के फलस्वरूप मल्ल-राज्य के एक भाग में मझौली राज की स्थापना हुई।[2]

विश्वसेन इस राजवंश के आदिपुरुष थे। विश्वसेन ननिहाल में बहुत दिन रहे, इसलिए वे अपने को 'मल्ल' कहने लगे। इसी विश्वसेन से मझौली-राजवंश का उद्भव हुआ।

महाराज विश्वसेन ने मझौली [मध्यपल्ली > मध्यावली > मझौली] राज्य की स्थापना की। उसी समय मझौली-कोट की नींव पड़ी। सूर्यवंशी मल्लों से विश्वसेन का मूलतः

---

१. वाल्मीकि-रामायण, उत्तरकाण्ड, छन्द-संख्या १०२—९

२. गोरखपुर-जनपद और उसकी क्षत्रिय-जातियों का इतिहास, पृ० १, ५२, ५८, ७६, ७८, १४३, १४६ तथा २२८

चित्र-सं० : ६
लाल खड्गबहादुर मल्ल

सम्बन्ध था। उनकी मूल उपाधि सिंह थी, किन्तु मातृक सम्बन्ध के कारण गोरखपुर-मझौली के 'विसेन' अपने को 'मल्ल' कहने लगे। इसी वंश की ११५वीं पीढ़ी में खड्गबहादुर मल्ल का जन्म हुआ था।

मझौली-नरेश महाराज उदयनारायण मल्ल के पुत्र लाल खड्गबहादुर मल्ल का जन्म भाद्र-द्वादशी, मंगलवार, विक्रम-संवत् १९१० (सन् १८५३ ई०) में मझौली (बलिया-जनपद) में हुआ था। छह वर्ष की अवस्था में उनका अन्नप्राशन हुआ। पाँच वर्ष की उम्र में विन्ध्याचल में मुण्डन-संस्कार हुआ। परम्परा के अनुसार पाँच वर्ष की उम्र में कुलगुरु पण्डित महादेव मिश्र ने विशेष समारोह के साथ उनका अक्षरारम्भ कराया। आरम्भ में उन्हें संस्कृत के श्लोक कण्ठाग्र कराये गये। पण्डित जानकीप्रसाद शुक्ल से घर पर अँगरेजी और हिन्दी की शिक्षा मिली। फारसी-भाषा की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया गया। फलस्वरूप लालसाहब वसन्त-पंचमी से मौलवी मुहम्मद बासित से फारसी पढ़ने लगे। इस प्रकार उन्होंने घर पर अँगरेजी, हिन्दी, संस्कृत और फारसी की शिक्षा ग्रहण कर उच्च योग्यता प्राप्त कर ली। कुल-परम्परा के अनुसार उन्हें क्षात्रधर्म का प्रशिक्षण दिया गया, जिसमें घुड़सवारी और निशानेबाजी में उन्होंने प्रवीणता प्राप्त की।

लालसाहब का विवाह छोटी उम्र में हुआ। दस वर्ष की उम्र में सन् १८६३ ई० की माघ-शुक्ल षष्ठी को वैदिक रीति से यज्ञोपवीत-संस्कार हुआ। फाल्गुन के कृष्णपक्ष में मझौली से दियरा के लिए बरात चली और एक महीना बाद बरात लौटी। बरात बड़े धूम-धाम के साथ चली थी, जिसमें दो सौ हाथी थे। लगभग दो वर्ष बाद उनकी प्रथम धर्मपत्नी का सन् १८६७ ई० के चैत्र में देहान्त हो गया। उनकी दूसरी शादी मिर्जापुर जिले के विजयपुर के राजा राजेन्द्र बहादुर मल्ल सिंह की कन्या से हुई। दूसरी पत्नी से उन्हें एक पुत्र कौशलकिशोर मल्ल का जन्म हुआ, जो मझौली-राज के अन्तिम राजा थे।

लालसाहब में बचपन से साहित्य का संस्कार था। युवावस्था में साहित्य की प्रेरणा बाबू हरिश्चन्द्र से मिली। उन्होंने बचपन से देशाटन किया था। रिश्तेदार राजाओं के यहाँ उनका आना-जाना प्रायः होता था। इससे दरबारी साहित्यकारों का सान्निध्य-लाभ होता रहा। वे काशी अनेक बार आये। काशी आने पर बाबू हरिश्चन्द्र से अवश्य मिलते थे।

उन्होंने साहित्यिक रुझान से मझौली में 'वाग्वर्द्धिनी सभा' की स्थापना की थी। इसके सचिव पण्डित देवदत्त मिश्र थे, जिन्हें लालसाहब का राज्याश्रय प्राप्त था। मिश्रजी लेखक और संस्कृत के विद्वान् थे। उस सभा की समय-समय पर साहित्यिक गोष्ठियाँ होती थीं। एक बार इस 'सभा' के तत्त्वावधान में पण्डित अम्बिकादत्त व्यास का सनातन धर्म-विषयक बहुत ही अच्छा भाषण हुआ था।

लालसाहब अपने पिता राजा उदयनारायण मल्ल की मृत्यु के बाद राजकाज देखने लगे। अपने अन्य कार्यों से मुक्त होने पर लालसाहब काव्य-प्रणयन तथा नाट्य-

रचना करते थे। लालसाहब को अपने मामा, डुमराँव-महाराज राधाप्रसाद सिंह से भी साहित्यिक प्रेरणा मिली। उनके दरबार में पण्डित नकछेदी तिवारी, दीपनारायण सिंह, रामचरित्र कवि प्रभृति साहित्यकारों का जमघट रहता था। लालसाहब तथा महाराज राधाप्रसाद सिंह के प्रयास से भारतेन्दु के 'अन्धेरनगरी' नाटक का प्रथम अभिनय डुमराँव-दरबार में हुआ था।

पहले बताया जा चुका है कि बाबू रामदीन सिंह और लालसाहब में बड़ी घनिष्ठता थी। बाबूसाहब का जन्म बलिया जिले के रेपुरा गाँव के जमींदार-परिवार में होने से धीरे-धीरे लालसाहब से घनिष्ठता बढ़ती गई। लालसाहब की साहित्यिक अभिरुचि तथा साहित्य के प्रति बाबूसाहब की गहन आस्था ने एक-दूसरे को निकटतर ला दिया। लालसाहब सन् १८८४ ई० में कलकत्ता गये। वे लौटते हुए पटना उतरे और खड्गविलास प्रेस में गये। बाबू रामदीन सिंह जब भी बलिया जाते, लालसाहब से मिलने मझौली अवश्य आते। एक बार बाबू रामदीन सिंह, पण्डित दामोदर शास्त्री, बाबू दीनदयाल सिंह प्रभृति मझौली गये थे। लालसाहब ने काव्य-गोष्ठी आयोजित की। लालसाहब ने 'क्षत्रिय-पत्रिका' के लिए तथा प्रेस के विस्तार के लिए अच्छी धनराशि देने का विचार किया, परन्तु उनके आकस्मिक निधन से बात जहाँ-की-तहाँ रह गई।

छत्तीस वर्ष की अल्पायु में उन्होंने काव्य, नाटक और गद्य-रचनाओं के रूप में बीस ग्रन्थों की रचना की थी। उनकी नाट्य-रचना के प्रेरणा-स्रोत के रूप में बाबू हरिश्चन्द्र, पण्डित अम्बिकादत्त व्यास और बाबू रामदीन सिंह प्रमुख थे। लालसाहब की मृत्यु सोमवार (माघी अमावास्या), २१ जनवरी, १८९० ई० को प्रातःकाल ५ बजे मझौली में हुई।

रचनाएँ :

लालसाहब भारतेन्दु-युग के साहित्यकारों में थे। दुर्भाग्य की बात है कि हिन्दी के विद्वानों की दृष्टि उनकी रचनाओं की ओर अबतक नहीं जा सकी है और न उनकी कृतियों का मूल्यांकन हो सका है। वे मौलिक तथा मौजी साहित्यकार थे। उन्होंने स्वान्तः सुखाय काव्य-प्रणयन किया, नाटकों की रचना की तथा युग-चेतना से प्रभावित हो सामाजिक उत्थान के लिए समाज-सुधार पर भाषण किया। राजवंश के युवक होने के कारण अपनी महत्ता के लिए डायरी तथा अपने वंश का इतिहास लिखा।

उनकी समस्त कृतियों को काव्य, नाटक और गद्यलेख के अन्तर्गत विभाजित किया जा सकता है। यह उल्लेखनीय है कि लालसाहब की समस्त कृतियों का प्रकाशन खड्गविलास प्रेस से हुआ। लालसाहब इस प्रेस से प्रकाशित '**क्षत्रिय-पत्रिका**' के नियमित पाठक और लेखक थे। उनके अनेक लेखों का प्रकाशन इस पत्रिका में हुआ था, जिनका संकलन अपने-आपमें पुस्तकाकार हो सकता है। लालसाहब 'लाल' उपनाम से रचना करते थे। उनकी कृतियाँ निम्नलिखित हैं :

काव्य :

(१) पीयूषधारा (सन् १८८२ ई०), (२) सुधाबूंद (सन् १८८२ ई०), (३) रसिक-विनोद (सन् १८८५ ई०) (४) फाग-अनुराग (सन् १८८६ ई०), (५) लाल-विनोद और (६) पावस-प्रेम-प्रवाह।

नाटक :

(१) जोगिन-लीला (सन् १८८३ ई०), (२) महारास नाटक (सन् १८८५ ई०), (३) रतिकुसुमायुध नाटक (सन् १८८५ ई०), (४) भारत-आरत नाटक (सन् १८८५ ई०), (५) हरितालिका नाटक (सन् १८८७ ई०), (६) कल्पवृक्ष (सन् १८८८ ई०) और (७) भारत-ललना (सन् १८८८ ई०)।

गद्यलेख :

(१) दशमीचरित्र (सन् १८८४ ई०), (२) लेक्चर (सन् १८८६ ई०), (३) विश्वेनवंश-वाटिका (सन् १८८७ ई०), (४) बालोपदेश (सन् १८८७ ई०), (५) सद्धर्मनिरूपण (सन् १८९१ ई०), (६) डायरी (सन् १८९४ ई०)।

पीयूषधारा :

यह काव्य-पुस्तिका लालसाहब की ३८ ठुमरियों, ३६ खेमटों और ११ दादरों का, ३८ पृष्ठों का संकलन है, जिसका सन् १८८२ ई० में प्रकाशन हुआ था। उन्नीसवीं सदी आधुनिक साहित्य का उषा-वेला थी। रीतियुग के अन्तिम चरण का प्रभाव तथा सामन्तवादी मनोवृत्ति का प्रभाव था ही। इसलिए राजदरबारों तथा राजकुमारों की रचनाओं में राधाकृष्ण के माध्यम से मन की शृंगारिक वृत्तियों की अभिव्यक्ति स्वाभाविक थी। इस कृति में रागात्मक संवेगों की प्रधान रूप से अभिव्यक्ति हुई है। राधाकृष्ण को पुस्तक अर्पित करते हुए कवि ने कहा है—

उतै मुरली बनमाल लसै अरु कुण्डल क्रीट की शोभा अपार।
इतै मुकताहल हार हियें, मधुरे सुर नूपुर की झनकार।।
छकै रस दोऊ सनेह भरे नित लाल करैं व्रज माँहि बिहार।
सदा उर ऐसहिं आनि बसौ, वृषभानु सुता अरु नन्दकुमार।।
नवल लाल नव लाडिली, नव रस रास विलास।
करहु प्रीति युग दिवस निसि, मेरे हृदै निवास।।

इस ग्रन्थ का प्रणयन लालसाहब ने आषाढ़-कृष्ण ५, संवत् १९३१ वि० में किया था। यह साहित्यिक स्तर की पुस्तक नहीं है।

सुधाबूंद :

सात पृष्ठों में चालीस कजलियों का यह प्रणयन वैशाख-शुक्ल १२, संवत् १९३९ वि० में हुआ था। इसका प्रथम संस्करण बाँकीपुर से सन् १८८२ ई० में प्रकाशित हुआ। कजलियों की रचना और संकलन बाबू हरिश्चन्द्र ने किया था। लोकभाषा-साहित्य

में कजली का अपना स्थान है। लोकभाषा में ऐसी रचना अधिक हुई, फिर भी भारतेन्दु ने हिन्दी-भाषा में कजली लिखना आरम्भ किया था। कजली, सावन तथा भादों में प्रायः महिलाएँ गाती हैं। भाद्र-कृष्ण तीज को 'कजली-दिन' भी मनाया जाता है। मिर्जापुर और बनारस की कजली प्रसिद्ध है। लालसाहब ने भी इस दिशा में 'सुधाबूंद' की रचना कर कजली को साहित्य में समाविष्ट करने का प्रयास किया। उनकी कजली का नमूना देखिए :

चमकै रे बिजुरिया पिय बिन करकै मोरी छतिया रामा,
कल ना परैला दिन-रतिया रे हरी।
हमें बिसराय भये कुबरी कै सँघतिया रामा,
आखिर तो अहिरबा कै जतिया रे हरी॥
आयो नाहीं आवै पापी भेजै नाहीं पतिया रामा,
कैसे के बिताओं बरसतिया रे हरी॥

फाग-अनुराग :

बयालीस पृष्ठों के इस 'फाग-अनुराग' का सर्वप्रथम प्रकाशन सन् १८८२ ई० में हुआ, जिसमें लालसाहब-कृत होली, धमार आदि का संकलन है। इस संस्करण के मुखपृष्ठ पर '१२५ वसन्त-वहार, धमार और अनेक प्रकार की होलियों का संग्रह' लिखा गया है। वस्तुतः संख्या में १११ छन्द हैं। इस पुस्तक का दूसरा संस्करण सन् १८८६ ई० में, ४४ पृष्ठों में हुआ, जिसमें १११ छन्दों के अतिरिक्त २५ चैती गीतों का भी संकलन कर दिया गया।

होली तथा चैती लोकभाषा-साहित्य की निधियाँ हैं। भारतेन्दु-युग के साहित्यकारों और ब्रजभाषा-कवियों ने फाग-रचना द्वारा साहित्य-भाण्डार को भरने का प्रयास किया है। भारतेन्दु ने भी होली की रचना की थी। लालसाहब ने फाग-साहित्य की रचना कर हिन्दी-भाण्डार को अपने ढंग से कुछ दिया ही है। उन्होंने अपनी फाग-रचनाओं को संगीत की दृष्टि से राग-रागिनियों में आबद्ध करने के लिए उनका स्वरलिपि-संकेत भी दिया है। अतः संगीतज्ञों को इन्हें गाने में सुविधा होगी। इन रचनाओं की भाषा ब्रजभाषा ही कही जायगी। 'पीलू' में होली की रचना का एक उदाहरण देखिए :

ब्रज में मोहन बंसी बजावत।
गावत फाग रिझावत राधहि, नित-नित प्रीति बढ़ावत।
नन्द गाँवतें लाल राधिका, बरसाने में आवत॥
बन संकेत माँह दोऊ मिलि, नवरस फाग मचावत॥

फागुन का महीना मादक होता है। डफ पर थाप पड़ते ही दिन-भर की थकान दूर हो जाती है। हृदय हुलस उठता है। मन झूमकर गा उठता है :

मुख चूमन दे चूँदरवारी।
एक बार अङ्गियाँ परसन दै, बार-बार तोपै बलिहारी।
'लाल' गुलाल मलन दै गालन, लाखनहूँ दै ले गारी॥

इतना ही नहीं, वरन् कवि लाल कुल की रीति भी फागुन-भर त्यागने के लिए उद्विग्न हो जाते हैं :

फागुन भर लाज न कीजै री ।
लपटि लगाय अंक अधरामृत, प्यारी पीवन दीजै री ।
या ऋतु में कुलकानि छाँड़िकै, लाल सबै सुख लीजै री ॥

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि लाल कवि फाग-रचना में सफल रहे हैं ।

इस पुस्तक में २५ चैती गीतों का संकलन (दूसरे संस्करण में) किया गया है । होली की भाँति चैती मे भी रस होता है, वरन् होली से अधिक मादकता चैती में है । चैतीकी रचना में भी लाल साहब को सफलता मिली है । एक नायिका कहती है :

सैंया मिलन हम जाइब हो रामा ।
गहिहैं आय धाय जब बहियाँ, पहिलै बहुत लजाइब हो रामा ॥
ललचाइब सेजिया नहिं जाइब, बार-बार बल खाइब हो रामा ॥
पीछे भुज भरि भेंटि लाल कौं, सुख से अंक लगाइब हो रामा ॥

कवि जहाँ एक ओर अपनी इन रचनाओं में मानसिक संवेगों की शृंगारिक अभि-व्यक्ति करता है, वहीं वह कहीं-कहीं कबीर की तरह निर्गुण ब्रह्म की ओर अपना प्रेम प्रदर्शित करता है । शृंगारिक अभिव्यक्ति के माध्यम से अध्यात्म की भी बात कर लेता है :

काहे फिरति बौरानी हो रामा, सखी नैहर में ।
आइ गये तोरे गौने के दिनवाँ तबहु रहति अलसानी हो रामा ॥
माइ बाप उहाँ संग न जैहैं, काम ना अइहैं जवानी हो रामा ॥
खेलत-खात लाल दिन बीते, सो सब होइहैं कहानी हो रामा ॥

चैती-साहित्य की यह रस-प्रधान रचना है ।

रसिक-विनोद :

सामन्तवादी युग की मुख्य साहित्यिक प्रवृत्ति मनोरंजन के लिए मन की गहन शृंगारिक वृत्तियों का प्रकाशन था । दो-चार कवित्त और सवैयों से मन का रंजन हो जाता था । राधाकृष्ण के बहाने धर्म और साहित्य—दोनों का रीतिकालीन साहित्यकारों ने कल्याण किया । नायिका का शृंगार-वर्णन और भेद-उपभेदों का उद्घाटन मुख्य साहित्यिक कर्त्तव्य हो गया था । इस परम्परा का पालन भारतेन्दु-युग तक होता रहा है । लाल कवि का 'रसिक-विनोद' उसी परम्परा का साहित्य है, जिसमें नायक-नायिकाओं और षट्ऋतु से सम्बद्ध १०१ कवित्त-सवैयों का संग्रह है । इस कृति का प्रणयन ज्येष्ठ शुक्ल पञ्चमी, संवत् १९४२ वि० को तथा इसका प्रकाशन सन् १८८५ ई० में हुआ था । भारतेन्दुजी कवि के परमस्नेही थे, इस कारण भारतेन्दुजी के निधन के बाद इन्होंने 'हरिश्चन्द्र-संवत्' का उल्लेख प्रायोगिक रूप में शुरू किया था । इस पुस्तक की रचना-तिथि का उल्लेख करते हुए लिखा गया है :

अधिक ज्येष्ठ सित वेद तिथि, ग्रीषम वासर चन्द ।
चन्द सुकेवल जानिये, संवत् श्रीहरिचन्द ॥

यह ब्रजभाषा की रीतिबद्ध रचना है। कवि ने राधाकृष्ण की बन्दना के बाद नखशिख को लेकर नायिकाओं का वर्णन किया है। अन्त में ऋतु-बर्णन है। ऋतु-वर्णन में सावन का वर्णन अधिक मोहक बन पड़ा है :

सावन आयो न आये पिया सखियाँ लगीं राग-मलार सुनावन ॥
नाव न जानौ मटू वहि गाँव को छाये हमारे जहाँ मनभावन ॥
भावन लागीं घटा सबके जिय लालन मोहि लगे कलपावन ।
पावन लागे महादुख प्रान सुनैन लगे अँसुवा बरसावन ॥

कुल मिलाकर इसे अच्छी साहित्यिक कृति कहा जा सकता है।

लाल-विनोद (सन् १९०८ ई०) :

लाल खड्गबहादुर मल्ल के निधन के बाद उनकी यत्र-तत्र प्रकाशित फुटकर कविताओं का संकलन सन् १९०८ ई० में 'लाल-विनोद' के नाम से प्रकाशित हुआ था। इस ५० पृष्ठ की पुस्तक में उनकी एक सौ से अधिक प्रकीर्णक कवितओं का संकलन है, जिसमें ऋतु-वर्णन, होली, कवित्त-सवैया, दोहा, कजली और समस्या-पूर्त्तियों के साथ ही उर्दू के शेरों का भी संकलन है।

लाल साहब रसिक कवि थे। उन्होंने अनेक शृंगारिक रचनाएँ की हैं। उन्होंने कवित्त-सवैयों में विभिन्न नायिकाओं के विभिन्न चित्र प्रस्तुत किये हैं, जिनमें शृंगारिकता के साथ ही उसका साहित्यिक सौष्ठव भी दिखाई पड़ता है। मध्या के सुरतान्त का चित्र है :

प्रथम समागम समर जीति सुकुमारि,
भोर अलसानी ह्वै जम्हाति मुख मोरि-मोरि।
थकी सी जकी सी श्रम स्वेद सराबोर 'लाल',
अंगन अँगोछति सुआंगी बन्द छोरि-छोरि॥
आये ललनागन अनेक संग वारी तहाँ,
पूछति विहँसि रस बातें झकझोरि-झोरि।
लाजन गड़ी सी दीठि सो हैं ना करति प्यारी,
पदनख देखति तिनूका कर तोरि-तोरि॥[1]

इसी प्रकार एक रतिश्रान्ता नायिका का चित्र प्रस्तुत किया गया है, जिसमें उत्प्रेक्षा द्रष्टव्य है :

ठानी रति रंग-संग स्याम के अनंग भरी,
जोबन तरंग के उमंग मैं उझकि कै।

---

१. लाल-विनोद, पृ० १२

टूटि गई बेसर सुकेसरहू छूटि गई,
लूट गई निधि सी सजीली सोई थकिकै।।
गोरे-गोरे मुख पै बिखरि परी कारी लटैं,
श्रम स्वेद भीनी स्याम पाटी तैं सरकिकै ।।
मानों अरविन्द पै मलिन्द वृन्द झौरि-झौरि,
पीवत सचोप मकरन्द 'लाल' छकिकै ।।[1]

रीतिकालीन कवियों की रचनाओं में प्रेम और सौन्दर्य का जो कोमल चित्र मिलता है, उस परम्परा को भारतेन्दु-युग के अनेक ब्रजभाषा-कवियों ने अपनाया था। लाल साहब ने भी उस परम्परा को जीवित रखने का प्रयास किया था। सवैयों में सौन्दर्य और प्रेम के कोमल स्वरूप के चित्रण के साथ ही भाषा की मुहावरेदारी का भी चमत्कार होता था। उनके एक सवैये में भाषा की मुहावरेदारी के साथ नायिका का कोमल चित्र द्रष्टव्य है :

देखत ही रहैं आनन ओप
घरी-घरी 'लाल' लुगाई घरे की।
प्रीति की रीति निबाहति हैं
तऊ जानति हैं बतिया जियरे की ।।
छूटति ना छतिया सो लगी—
वह छोटी छबीली छँटाक भरे की ।।[2]

'छोटी छबीली छँटाक भरे' में अनुप्रास और भाषा की मुहावरेदारी का जो कमाल दिखाया गया है, उसे गागर में सागर ही कहा जायगा।

उन्होंने अपने परमप्रिय मित्र भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के निधन पर कवित्त में अपना शोकोद्गार प्रकट किया था, जो इस संकलन-पुस्तक में संगृहीत है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के निधन पर सारा हिन्दी-जगत् शोकाकुल हो गया था। उनके निधन से समकालीन हिन्दी की गतिविधियों को गहरा धक्का लगा था। लाल साहब ने उसे अपने शोकोद्गार में प्रस्तुत किया है :

कौन के भरोसे पै चलेंगे समाचार-पत्र,
कविता बिचारी हाय सुहाग कहाँ पावेगी।
कासिकादि रसिक समाजन मैं पुनि-पुनि,
रसना रसीली काकी रस बरसावेगी ।।
तेरे मुखचन्द की चकोरी हरिश्चन्द्र प्यारे,
कौन के सहारे दुखी जीवन बितावैगी।

१. लाल-विनोद, पृ० ८
२. वही, पृ० १५

साजि के सिंगार दरबार मैं प्रविसि हाय
कौन के सुवल हिन्दी नागरी कहावैगी ॥[1]

उनकी प्रकीर्णक कविताओं का यह संकलन हिन्दी-साहित्य की निधि है।

पावस-प्रेम-प्रवाह :

लाल कवि की सोलह पृष्ठों की इस पुस्तिका में ३८ विभिन्न छन्दों में झूलना, मलार, बारहमासा, सावनी आदि पावस-सम्बन्धी कविताएँ संकलित हैं। छन्दों में मुख्यतः विरह-वर्णन है। शृंगारिक भावनाओं के अतिरिक्त समकालीन भारत के सन्दर्भ में भी मलार छन्द में एक शब्दचित्र है :

नये घन भारत पै उनये।
कहाँ गई वह चैत चाँदनी, दिन अँधियार छए॥
अम्बवौर बहु सुमन सुगन्धित क्रम-क्रम हाय खए।
दिनकर किरिन मन्द सी दीखति, मधुपहु मौन लए॥
कूप तड़ाग नदी नद इक सौं, जलमय फूलि गए।
चमकन लगीं नई चपला चहुँ, दादुर बीर भए॥१५॥

दूसरा दृश्य विशुद्ध शृंगार-चित्र है :

सखि यह चातक घातक मेरो।
पी-पी रटत कटत है निसदिन, छिनक न लेत बसेरो।
एक बुन्द स्वाती जल कारन, करत अबहिं तै फेरो।
'लाल' बिना बिरहिन तन दाहत, नित-प्रति साँझ सबेरो ॥१२॥

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण सन् १८८२ ई० में मुद्रित हुआ था।

नाटक :

भारतेन्दु-युग हिन्दी-साहित्य के विधा-वैभिन्न्य के विकास का युग था। प्रमुख रूप से इस युग में हिन्दी-नाटकों की अधिक संख्या में रचना हुई। इस युग के साहित्यकारों को नाटक रचना की प्रेरणा भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र से मिल रही थी। लाल खड्गबहादुर मल्ल उनके घनिष्ठ मित्र और हितैषी थे। उनकी प्रेरणा से लाल साहब ने एक दशक में छह नाटकों की रचना की थी।

महारास नाटक (सन १८८५ ई०) :

महारास नाटक लाल साहब का पहला नाटक है। उन्होंने इसकी रचना १० नवम्बर, १८८४ ई० को की थी। इसका पहला संस्करण सन् १८८५ ई० खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित हुआ था। नाटककार ने इसे शृंगाररस का रूपक कहा है। इस रूपक की शृंगारिकता का परिचय इसके मुखपृष्ठ पर छपे निम्नलिखित सवैये से मिल जाता है :

---

१. लाल-विनोद, पृ० २०

दोऊ दुहूँ जिय माँहि बसैं अरु दोऊ दुहूँन को प्रान सौं चाहैं ।
दोऊ दुहूँ सँग केलि करैं नित दोऊ दुहूँ गलमेलि कै बाहैं ।।
दोऊ दुहूँ मुखचन्द्र चकोर ह्वै लाल दुहूँन को दोऊ सराहैं ।
दोऊ दुहूँन सों बातैं करैं पुनि दोऊ दुहूँन सों प्रीति निबाहैं ।।

चार अंकों के इस पौराणिक नाटक में ग्यारह दृश्य हैं। नाटक की कथावस्तु का आधार श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के २९—३३ अध्याय तक वर्णित श्रीकृष्ण के व्रजजीवन की रमन्तवादी घटना महारास है। हिन्दी-कवियों ने इस प्रसंग पर काव्य-प्रणयन तो किया ही है, भारतेन्दु-युग के नाटककारों ने इस प्रसंग पर नाटक लिखे हैं।[1] नाटक-रचना की प्राचीन परम्परा का अनुसरण कर इस नाटक में नाटक-प्रस्तावना का विधान है। निम्नांकित दोहे का पाठ करते हुए रंगमंच पर नान्दी के प्रवेश के साथ नाटक की शृंगारिकता की पुष्टि हो जाती है :

धनि माधव धनि राधिका, धनि-धनि ब्रज की बाल ।
धनि ब्रज धनि वृन्दाबिपिन, धनि गोकुल धनि लाल ।।

इस नाटक के अनुरूप दृश्य के लिए 'झांकी' शब्द का व्यवहार हुआ है, जो नाटक के वातावरण के अनुकूल है। चार अंकों के इस नाटक में पहले अंक में तीन झांकियाँ, दूसरे अंक में चार झाँकियाँ, तीसरे अंक में दो झाँकियाँ और चौथे अंक में दो झाँकियाँ हैं।

इस नाटक के पहले अंक की पहली झांकी में वृन्दावन के यमुना-तट पर श्रीकृष्ण का प्रवेश होता है। शरद् की ज्योत्स्ना से उनका मन अभिभूत हो रास के लिए उद्वेलित हो उठता है। वे गाते और बाँसुरी बजाते हैं तथा गोपियों को योगमाया के बल से पुकारते हैं। दूसरी झांकी में उनकी बाँसुरी की सुरीली तान सुनते ही गोपियाँ अपने-अपने घरों से वृन्दावन के लिए निकल पड़ती हैं, जहाँ उन्हें श्रीकृष्ण के दर्शन होते हैं। श्रीकृष्ण उन्हें लोक-परम्परा तथा कुलीनता का उपदेश देते हैं। उनके इस उपदेश से ऊबकर गोपियाँ कातरचित्त हो जाती हैं। तीसरी झाँकी में गोपियों के प्रेम पर मुग्ध हो श्रीकृष्ण रास रचाकर उन्हें प्रसन्न करते हैं।

दूसरे अंक की पहली झांकी में वृन्दावन के लता-कुंजों में गोपियाँ राधाकृष्ण को खोजती-फिरती हैं। उनके न मिलने से सभी दुःखी होती हैं। चन्द्रावली, विशाखा तथा अन्य सभी गोपियाँ उनके लिए अत्यन्त विकल हो उठती हैं। उनकी इस व्याकुलता को राधाकृष्ण लता की ओट में (दूसरी झांकी) देखते हैं। राधा के अहं को देख उन्हें भी छोड़ कृष्ण अन्तर्धान हो जाते हैं। कृष्ण के अन्तर्धान हो जाने पर राधा अत्यन्त व्यग्र हो उठती हैं। तीसरी झांकी में कृष्ण को ढूँढती हुई गोपियों की भेंट राधा से होती है। राधा की विरह-कातर स्थिति पर सभी दुःखी होती हैं। गोपियाँ वृन्दावन की रासलीला-भूमि पर (चौथी झांकी) रास रचाती हैं। फिर भी कृष्ण प्रकट नहीं होते। अन्त में सभी सखियाँ यमुना-तट की ओर चली जाती हैं।

---

१. भारतेन्दुकालीन नाटक-साहित्य, पृ० १४०

तीसरे अंक की पहली झाँकी में राधा, विशाखा, ललिता तथा अन्य सभी सखियाँ कृष्ण-वियोग में यमुना-तट पर बैठी विलाप करती हैं, अपना दुःख प्रकट करती हैं। कृष्ण की अभ्यर्थना करती अपने अहं के लिए अपने-आप को धिक्कारती हैं। अन्ततोगत्वा श्रीकृष्ण प्रकट होकर गोपियों को प्रसन्न करते हैं। गोपियाँ प्रसन्न हो (दूसरी झाँकी में) उनकी निष्ठुरता की चर्चा कर उनसे प्रेम तथा ज्ञान का उपदेश सुनती हैं तथा रास की तैयारी करती हैं।

चौथे अंक की पहली झाँकी में वृन्दावन की रास-स्थली पर गोपियाँ महारास करती हैं। गोपियाँ वाद्ययन्त्रों को बजाकर तथा श्रीकृष्ण बाँसुरी बजाकर महारास करते हैं। इसी झाँकी में राधा का कृष्ण से विवाह होता है। देव और मानव सभी प्रसन्न हो जाते हैं। इस अंक की दूसरी झाँकी में सभी गोपियाँ कृष्ण-सहित यमुना में जलक्रीड़ा करती हैं। श्रीकृष्ण सभी को नया वस्त्र देते हैं। आधीरात से अधिक समय बीत चुका है, अतः वे गोपियों को घर जाने के लिए कहते हैं। सभी को कृतार्थ करने का वचन देकर श्रीकृष्ण गोपियों को विदा करते हैं। इस प्रकार नाटक समाप्त होता है। यही इस नाटक की कथावस्तु है।

यद्यपि इस नाटक की कथावस्तु बहुत संक्षिप्त है तथापि वर्णन के द्वारा नाटक का विकास किया गया है। पूरा नाटक वातावरण-प्रधान है। प्रसंगानुसार अनेक पदों तथा छन्दों का समावेश कर दिया गया है, फिर भी यह नाटक मुख्यतया गद्य-प्रधान है। इसकी भाषा खड़ीबोली है। अभिव्यक्ति स्वाभाविक है। उदाहरण के लिए निम्नांकित उद्धरण को देखा जा सकता है। चन्द्रावली कहती हैं :

"हे प्राणपति, नहीं-नहीं, हे निष्ठुर ! अब इन बातों से कुछ लाभ नहीं, भला अब हम तुम्हारी यह सिखावन कब मानती हैं ? देखो ! हम तुम्हारी प्रीति में घर-द्वार, अपना-पराया सब छोड़कर यहाँ आई, अब जो तुम भी त्याग करते हो तो सीधे-सीधे यही क्यों नहीं कह देते कि तुमसब आत्मसंघात करके मर जाओ।"[1]

इस नाटक में नाट्यशास्त्र की परम्परा का ध्यान न कर आलिंगन, चुम्बन, मुख से मुख का जूठा पान खाना आदि का भी प्रदर्शन किया गया है। वस्तुतः इसपर काव्य की रास की परम्परा का प्रभाव अधिक है। इसलिए शृंगारिक अभिव्यक्तियों का विशेष रूप से वर्णन मिलता है।

रति-कुसुमायुध (सन् १८८५ ई०) :

लाल साहब की दूसरी नाट्यकृति 'रति-कुसुमायुध' नाटक है। इस पाँच दृश्यों के नाटक में पुरुष-पात्रों की संख्या छह तथा स्त्री-पात्रों की पाँच है। इस नाटक में नाट्य-प्रस्तावना का विधान नहीं है। आधुनिक नाटक की भाँति नाटक का आरम्भ बिना किसी पूर्व-सूचना के होता है। इस नाटक का भी कथानक अत्यन्त संक्षिप्त है। नाटक का कथानक इस प्रकार है :

---

१. महारास नाटक, पृ० ११

अनुरागनगर का राजकुमार कुसुमायुध अपने तीन मित्रों—मनोहर, मधुकर तथा विदूषक के साथ प्रेमपुर नगरी के जंगल में अपनी सेना-सहित शिकार करने जाता है। शिकार करते वह जंगल में अपनी सेना से भटककर दूर हो जाता है। उसी जंगल में प्रेमपुर की राजकुमारी रति से उसकी आकस्मिक भेंट होती है। वे एक-दूसरे के स्नेह-पाश में आबद्ध हो जाते हैं, जिसकी परिणति गन्धर्व-विवाह में होती है। बस, इतना ही इस नाटक का कथानक है।

भारत-आरत (सन् १८८५ ई०) :

ब्रिटिश गुलामी में उत्पीड़न के सन्दर्भ में सबसे पहले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'भारत-दुर्दशा' (सन् १८७६ ई०) नाटक लिखा। उसके सभी पात्र प्रतीकात्मक थे। उस नाटक की परम्परा में लाल खड्गबहादुर मल्ल ने 'भारत-आरत' (सन् १८८५ ई०), पण्डित अम्बिकादत्त व्यास ने 'भारत-सौभाग्य' (सन् १८८७ ई०), पण्डित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने 'भारत-सौभाग्य' (सन् १८८९ ई०), श्रीदुर्गादत्त ने 'वर्त्तमान दशा' (सन् १८९० ई०), श्रीगोपालराम गहमरी ने 'देशदशा' (सन् १८९२ ई०) और पण्डित जगतनारायण ने 'भारत-दुर्दिन' (सन् १८९५ ई०) का प्रणयन किया।

'भारत-आरत' का पहला संस्करण सन् १८८५ ई० में और दूसरा सन् १९०५ ई० में हुआ। यह एकांकी नाटक है, जिसमें चार दृश्य हैं। इसमें नाट्य-प्रस्तावना का विधान है। इसमें सरकारी तन्त्र की दुर्व्यवस्था की दशा दरसाई गई है। कथानक इस प्रकार है :

वीरपुर के जमीन्दार जोरावर सिंह, झण्डापुर शहर में बन्दोबस्त के सिलसिले में डिप्टी से मिलने जाते हैं। उन्हें रास्ते में पण्डितजी मिलते हैं, जो नौकरी के लिए उनके साथ शहर तक जाते हैं। उसी रास्ते में एक विद्यार्थी भी तमाशा देखने जाता है। कचहरी में डिप्टी-साहब कोदई सिंह की मूँछ उखाड़ने का आदेश देते हैं। चपरासी मूँछ उखाड़ता है। विद्यार्थी तथा पण्डित कचहरी थाने—कच (बाल) हरी (उखाड़ने) की स्थिति से तथा वहाँ के परिवेश पर क्षुब्ध हो जाते हैं। जमीन्दार, पण्डित और विद्यार्थी कचहरी में होनेवाले जलसे में दर्शक के रूप में बैठते हैं। कचहरी के कर्मचारी वेश्या-नृत्य कराते हैं। सभी शराब पीकर सरकार-विरोधी बातें करते हैं। कोतवाल सभी को पकड़ ले जाता है। विद्यार्थी और पण्डितजी भी पकड़े जाते हैं। पण्डितजी अपने भाग्य पर रोते हैं। कचहरी में पण्डितजी तथा विद्यार्थी छोड़ दिये जाते हैं। इस प्रकार नाटक समाप्त होता है।

नाटककार विद्यार्थी के माध्यम से अपनी बात कहता है। विद्यार्थी के चरित्र की उदात्तता यह है कि वह छात्र होते हुए भी सुबुद्ध और प्रौढ़ प्रतीत होता है।

नाटक में यथास्थान होली, कजली और उर्दू के शेर भी जोड़ दिये गये हैं। यह नाटक मुख्य रूप से गद्य-प्रधान है।

हरितालिका (सन् १८८७ ई०) :

'शिवपुराण' में पार्वती की शिवभक्ति का वर्णन है, जिसमें भाद्र-शुक्ल तीज को अचल सुहाग के लिए हरितालिका-व्रत का विधान किया गया है। इसी कथा के आधार पर इस

'हरितालिका' नाटक की रचना हुई है। इस नाटक का पहला संस्करण सन् १८८७ ई० में और दूसरा सन् १९०५ ई० में हुआ। चार दृश्यों के इस नाटक में छह पुरुष और चार स्त्री-पात्र हैं। नाट्य-प्रस्तावना में नटी नाटक खेलने की उद्घोषणा करती है। नाटक के कथानक का आशय निम्नांकित है :

राजा हिमवान् अपनी राजधानी हिमालय के राजप्रासाद में बैठे हैं। पार्वती की तपस्या से वे चिन्तित हैं। इस सम्बन्ध में वे अपने मन्त्री से बातें करते हैं। इसी बीच महर्षि नारद का आगमन होता है। वे सूचना देते हैं कि पार्वती का विवाह श्रीकृष्ण से करें। राजा इस परामर्श पर अपनी सहमति प्रकट करते हैं। पार्वती इसे सुनकर दुःखी होती हैं। वह जंगल में चली जाती हैं और शिव की आराधना करती हैं। शिव के दर्शन होते हैं। शिव वरदान देते हैं कि तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी। शिव अन्तर्धान हो जाते हैं। नाटक समाप्त हो जाता है।

लाल खड्गबहादुर मल्ल कवि थे। इस कारण उनकी कृतियों में कविरूप विशेष रूप से दिखाई पड़ता है। इस नाटक में भी उन्होंने अनेक स्थलों पर कविताओं का उपयोग किया है।

कल्पवृक्ष (सन् १८८८ ई०) :

लाल साहब की नाट्य-कृतियों में 'कल्पवृक्ष' सबसे बड़ी नाट्य-कृति है। इसका पहला संस्करण सन् १८८७ ई० में प्रकाशित हुआ। यह चार अंकों का नाटक है, जिसके पहले, दूसरे, तीसरे और चौथे अंकों में क्रमशः चार, एक, चार तथा तीन दृश्यों का विधान किया गया है। इसमें नाट्य-परम्परा के अनुकूल नाटक-प्रस्तावना का विधान है। इसमें २६ पुरुष तथा १५ स्त्री-पात्र हैं।

हरिवंशपुराण में ११७वें से १२८वें अध्याय तक श्रीकृष्ण-चरित्र का वर्णन है। वही कथा इस नाटक का आधार है।

श्रीकृष्ण ने यज्ञ किया, जिसमें नारद भी सम्मिलित हुए। नारद ने इस अवसर पर सुख-सौभाग्य-सूचक पारिजात-पुष्प श्रीकृष्ण को भेंट किया। श्रीकृष्ण ने प्रेमवश उस फूल को रुक्मिणी को भेंट किया। जब यह बात सत्यभामा को मालूम हुई तो उसने मान किया। कृष्ण ने उसके मान-भंग के लिए कल्पवृक्ष देने का वचन दिया। नारद से श्रीकृष्ण ने इन्द्र को सन्देश भेजा कि वे कल्पवृक्ष भेज दें। इन्द्र ने इसे लोक और धर्म के विरुद्ध जानकर कल्पवृक्ष नहीं दिया। अन्त में कृष्ण और इन्द्र में युद्ध होता है। श्रीकृष्ण ने कल्पवृक्ष लाकर सत्यभामा को दिया।

नाटक मुख्य रूप से गद्य-प्रधान है। फिर भी कई स्थलों पर पद, सवैया, दोहा आदि का समावेश है। नाट्यशास्त्र की परम्परा का पालन न कर श्रीकृष्ण और इन्द्र का युद्ध रंगमंच पर दिखाया गया है। संवाद की भाषा प्रवाहयुक्त है।

भारत-ललना (सन् १८८७ ई०) :

इस नाटक का पहला संस्करण सन् १८८७ ई० में और दूसरा सन् १९०६ ई० में हुआ। चार दृश्यों का यह प्रतीकात्मक नाटक है, जिसमें मानव की असद् एवं सद्वृत्तियों का मानवी-

करण किया गया है। आरम्भ में नाट्य-प्रस्तावना का संक्षिप्त विधान है। नाट्य-प्रस्तावना पर पारसी रंगमंच का प्रभाव दिखाई पड़ता है। सूत्रधार उर्दू शेर सुनाता मंच पर आता है, जिससे वातावरण का सर्जन करता है, नटी भी 'आज कलि कौतुक देखहु आली' के माध्यम से नाट्यरंगन-सम्बन्धी सूचना देती है।

कलियुग में कलिराज का साम्राज्य है। अपने राज्य में वह अपने दो मन्त्रियों—दुर्भाग्य और सौभाग्य में दुर्भाग्य को मानता है। वह कलिराज की असद्वृत्तियों को साकार करने में सफल होता है। उसके राज्य में सभी अपने धर्म का परित्याग कर बुरे मार्ग की ओर जा रहे हैं। सौभाग्य उस कार्य में बाधक होता है। अन्त में कलि के आदेश से सौभाग्य अपने साथियों-सहित सात समुन्द्र पार भेजा जाता है। इससे देश में घोर दुर्भाग्य छा जाता है। नाटक समाप्त होता है।

नाटककार ने भारत में फैली हुई अशिक्षा, द्वेष, अभिमान, छल-प्रपंच जैसी असद्-वृत्तियों तथा विद्या, उत्साह, धैर्य, सन्तोष जैसी सद्वृत्तियों का मानवीकरण कर रूपक में देशदशा का चित्रण किया है। नाटककार अपने उद्देश्य में सफल हुआ है।

जोगिन-लीला (सन् १८८३ ई०) :

चौदह पृष्ठों की पद्यबद्ध इस रास का पहला संस्करण सन् १८८३ ई० में हुआ। श्रीकृष्ण जोगिन के वेश में जंगल में राधिका की प्रतीक्षा करते हैं। दूती सखियों-सहित राधिका को बुलाती है। जोगिन अपना परिचय देती है कि वह बहुत दूर देश से आई है। राधा उसकी आराध्य हैं। देर तक सखियों से जोगिन बातें करती है। तदनन्तर सभी सखियाँ यमुना में स्नान करती हैं। जोगिन-वेषधारी कृष्ण जल-क्रीड़ा देखते हैं। स्नान के बाद सभी को फल खिलाते हैं। एकान्त में राधा के समक्ष अपना असली रूप प्रकट करते हैं। सखियाँ प्रसन्न होती हैं।

यह पुस्तक रास-पद्धति पर लिखी गई है। सखियों तथा जोगिन का संवाद पद्य में चलता है। नाटककार ने आरम्भ में मंगलाचरण तथा संक्षिप्त भूमिका पद्यबद्ध दी है :

मन में भयो विचार, लिखौ लाल लीला ललित।
पूरक रस शृंगार, अवलम्बित हो जाहि तें॥
एक समय ब्रजराज, बैठे वृन्दा बिपिन में।
जोगिन भेख बनाय, छल्यो सबै ब्रज गोपिकहिं॥
प्रेमिन आनन्द काज, राधा माधव प्रेम बस।
सो प्रसंग हौं आज, छन्दबद्ध बरनन करौं॥
बुद्धि, विद्या अति थोर, यातैं चूक न उर धरो।
छमहु अज्ञता मोर, रसिक बृन्द हरि नाम लहि॥

रचना अच्छी है।

गद्य-रचनाएँ

दशमी-चरित (सन् १८८४ ई०) :

यह पुस्तक सन् १८८४ ई० में खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित हुई थी। यह मुझे देखने को नहीं मिली।

लेक्चर (सन् १८८६ ई०) :

बाल-विवाह, तिलक-दहेज की प्रथा, तिलक के लेन-देन पर आपसी विवाद, ये सामाजिक बुराइयाँ हैं। हर सजग नागरिक इस बुराई से समाज को मुक्त रखना चाहता है। लालसाहब सामाजिक चेतना से उद्‌बुद्ध थे। तत्कालीन समाज-सुधारक नेता मुंशी प्यारेलाल का उन्होंने मझौली में २० अगस्त तथा २६ अगस्त, १८८६ ई० को भाषण कराने का आयोजन किया था। लालसाहब ने भी उस अवसर पर इस बुराई से बचने की सलाह दी थी। १४ पृष्ठों की इस पुस्तिका में उन्हीं के भाषण हैं। इसका प्रकाशन २० सितम्बर, १८८६ ई० को हुआ था।

विश्वेन-वंश-वाटिका (सन् १८८७ ई०) :

लालसाहब विशेन क्षत्रिय थे। उन्होंने अपने वंश की उत्पत्ति और विकास का इतिहास लिखा है। ९२ पृष्ठों की इस रचना का प्रकाशन सन् १८८६ ई० में हुआ। इस पुस्तक में विशेनवंशीय राजपूतों का (मल्ल राजपूतों का) मयूर भट्ट से खड्गबहादुर मल्ल तक तथा मझौली-राज्य की स्थापना का विवरण प्रस्तुत किया गया है। विशेन-वंश की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जो विवरण इस पुस्तक में दिया गया है, वह ऐतिहासिक तथ्य की कसौटी पर खरा नहीं उतरता, फिर भी मझौली-राज्य के सम्बन्ध में तथ्यपरक जानकारी मिलती है।

बालोपदेश (सन् १८८७ ई०) :

हिन्दू बालकों के लिए ऐसी पुस्तको की प्रायः न्यूनता पाई जाती है, जिनके पढ़ने से उनका मन अपने सनातन धर्म की ओर भी कुछ झुके; इसी दृष्टि से इस पुस्तक की रचना हुई है। इसमें बीस पाठ हैं। ईश्वर क्या है? धर्म क्या है? भारतीय संस्कृति क्या है? इन सभी बातों को सरल भाषा में समझाया गया है। इस पुस्तक में लालसाहब के गद्य का अच्छा उदाहरण मिलता है। उनका गद्य सरल, स्वच्छ एवं प्रवाहयुक्त है। भाषा संस्कृतनिष्ठ होते हुए भी अभिव्यक्ति सुबोध है। उनके गद्य का एक उदाहरण है :

"सच बोलना सीखो। सच्चा सबका प्यारा है। साँच को आँच नहीं। जो लोग सच बोलते हैं वह छोटे भी हों तो बड़े से बड़े समझे जाते हैं। राजा और पंच सब सच्चे को मानते हैं।"

बत्तीस पृष्ठों की इस पुस्तक का प्रकाशन सन् १८८७ ई० में खड्गविलास प्रेस से हुआ था।

सद्धर्म-निरूपण (सन् १८९१ ई०) :

इस पुस्तक की रचना आषाढ़-शुक्ल एकादशी संवत् १९४५ वि० में हुई। इसका प्रकाशन प्रथम बार सन् १८९१ ई० में हुआ। १५ पृष्ठों की इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य धर्म के सच्चे स्वरूप का निरूपण करना है। सच्चा धर्म वही है, जो मानवता, सौहार्द तथा सत्य का सन्देश देता है। इसी का इस पुस्तक में सरल भाषा में निरूपण किया गया है।

डायरी (सन् १९९४ ई०) :

खड्गबहादुर मल्ल की यह डायरी निजी दैनन्दिनी है। उनके निधन के चार वर्ष बाद सन् १८९४ ई० में इसका प्रकाशन हुआ। डायरी में लालसाहब के जन्म से मृत्यु के दस दिन पूर्व तक का उनका जीवन-वृत्त उपलब्ध होता है। उन्होंने दस वर्ष की अवस्था से डायरी लिखना शुरू किया था। जन्म से दस वर्ष की उम्र तक का विवरण उन्होंने अपने माता-पिता से सुनकर लिखा था। उनकी तबीयत १० जनवरी, १८९० ई० को खराब हुई और २१ जनवरी, १८९० ई० को उनका देहान्त हुआ। अतः ग्यारह दिन की दिनचर्या इस डायरी में नहीं है।

उन्नीसवीं सदी की यह अकेली कृति है, जिसमें एक साहित्यकार के जीवन का विवरण उसी के शब्दों में अंकित है। पुस्तक के अन्त में उनके दो स्नेही जनों द्वारा लिखित उनके जीवन-चरित के अंश, जो 'क्षत्रिय-पत्रिका' में प्रकाशित किये गये थे, जोड़ दिये गये हैं। इस पुस्तक का महत्त्व इसलिए है कि इसमें बाबू रामदीन सिंह ने यथास्थान बहुत-सी ऐसी टिप्पणियाँ दी हैं, जिनसे उनके अतिरिक्त उनके समकालीन साहित्यकारों, उनकी कृतियों तथा उस युग की साहित्यिक प्रवृत्तियों की झलक भी मिलती है। इसलिए हिन्दी-साहित्य की महत्त्वपूर्ण कृति के रूप में इसे रखा जा सकता है।

पण्डित दामोदर शास्त्री सप्रे करहाटकर

भारतेन्दु-युग के साहित्यकार, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के प्रिय मित्र बाबू रामदीन सिंह के स्नेही और 'बिहार-बन्धु' के सम्पादक पण्डित दामोदर शास्त्री सप्रे का जन्म महाराष्ट्र के सतारा जिले के करहाटक ग्राम में, आश्विन-शुक्ल, ललिता पञ्चमी, संवत् १९०५ वि० की अर्द्धरात्रि में हुआ था। पिता विष्णु सप्रे धर्मनिष्ठ और वेदज्ञ थे। इसलिए बालक दामोदर की प्रारम्भिक शिक्षा संस्कृत में हुई। पिता ने ऋग्वेद-संहिता पढ़ाना चाहा, पर रुचि न रहने तथा नटखट स्वभाव के कारण ये वेद नहीं पढ़ सके। इस प्रवृत्ति के कारण पिता ने बालक को पद्महस्ती गुरु के पास अध्ययन के लिए भेजा। गुरु के पास उसने लगभग सवा साल तक अध्ययन किया। समास-चक्र, रूपावली, अमरकोश तथा संस्कृत-साहित्य का उसने अध्ययन किया। इससे संस्कृत का आरम्भिक ज्ञान हो गया। साथ ही अभिरुचिवश अँगरेजी सीखी। बाद में कोल्हापुर और पंढरपुर में रहकर अध्ययन किया।

जब दामोदर शास्त्री सत्रह वर्ष के थे तभी उनके पिता ने काशी-वास के निमित्त करहाटक से सपत्नीक अगहन दूज, संवत् १९२२ वि० को प्रस्थान किया। साथ में युवक दामोदर भी थे। तीर्थाटन करते हुए वे सपरिवार काशी पहुँचे। उन्होंने अपने खानदानी निवास बनारस की हाथीगली के गोपालदास के मकान में निवास किया। काशी में दामोदर शास्त्री की अध्ययन की अभिरुचि बढ़ी। अध्ययन के लिए वे काशी के प्रसिद्ध वैयाकरण विद्वान् राजाराम शास्त्री कार्लिकर के पास गये। उनसे उन्होंने व्याकरण पढ़ा। कुछ दिनों बाद उन्होंने पण्डित राजाराम शास्त्री बोडसे से कौमुदी पूर्वार्द्ध सुबन्त तक तथा उरार्द्ध तिङन्त तक पढ़ी। दुर्गाघाट-निवासी पण्डित रामशास्त्री खरे से साहित्य का अध्ययन किया।

सतारा से काशी आने के लगभग तीन वर्ष बाद काशी में दामोदर शास्त्री के माता-पिता का देहान्त हो गया। इससे उनपर गृहस्थी का भार आ पड़ा। काशी में उनकी पहली पत्नी का निधन हुआ। दूसरा विवाह उन्होंने काशी में किया। परिवार का उत्तरदायित्व वहन करने के लिए उन्हें नौकरी की चिन्ता हुई। काशी के ख्यात विद्वान् पण्डित ढुंढ़िराज शास्त्री ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से उनका परिचय कराया। भारतेन्दु ने उन्हें 'सरस्वती-भवन पुस्तकालय' का पुस्तकाध्यक्ष बनाया। शास्त्रीजी ने उनके पुस्तकालय को सुव्यवस्थित किया। भारतेन्दु के लेखन-प्रकाशन में वे सहायक बने। उन्होंने भारतेन्दु के सान्निध्य से हिन्दी लिखना-पढ़ना, प्रेस-सम्बन्धी काम और प्रूफ देखना सीख लिया। उन्होंने लगभग डेढ़ वर्ष तक पुस्तकालय में काम किया। इस बीच उन्होंने जो कुछ भी सीखा, वह उनके जीवन-यापन में सहायक बना। भारतेन्दुजी भाई की तरह इन्हें मानते थे।

हिन्दी-रंगमंच और शास्त्रीजी :

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की नाट्यरंगन में गहरी रुचि थी। हिन्दी-रंगमंच की स्थापना के लिए वे प्रयत्नशील थे। दामोदर शास्त्री इस कार्य में उनके अत्यन्त सहायक सिद्ध हुए। भारतेन्दु के निर्देशन में उन्होंने काशी में नाटक-मण्डली स्थापित की। मण्डली ने 'वैदिकी हिंसा' तथा 'प्रह्लाद-चरित' का अभिनय किया। इस मण्डली की शोहरत पर प्रयाग से लोग नाटक देखने आये थे। इस मण्डली ने गोरखपुर तथा बस्ती में अभिनय प्रस्तुत किया। मण्डली ने तप्ता-संवरण, शाकुन्तल, किरातार्जुनीयम् और प्रह्लाद-चरित' तैयार कर रखा था। साथ ही अनेक प्रहसन भी तैयार रखे गये थे।[1] यह मण्डली काशी में सन् १८७४-७५ ई० में सक्रिय थी।

शास्त्रीजी नौकरी के सिलसिले में बिहार के बिहारशरीफ नामक स्थान पर सन् १८७६ ई० में चले गये। इस कारण काशी की नाटक-मण्डली टूट गई। बिहारशरीफ में रहते हुए ये साप्ताहिक 'बिहार-बन्धु' के संस्थापक पण्डित मदनमोहन भट्ट के सम्पर्क में आये। उन्होंने नाटक-मण्डली का गठन किया। मण्डली के सहयोगियों में पण्डित केशवराम भट्ट,

---

१. मैं वही हूँ, पृ० ४९

पं० साधोराम भट्ट, डुमराँव राज के मैनेजर बाबू शिवशरण लाल और आरा के वकील श्यामनन्दन प्रमुख सहायक थे।[१] इस मण्डली ने 'शमशाद-सौसन' नाटक का पटना में अभिनय किया था।

'बिहार-बन्धु' और शास्त्रीजी :

पण्डित दामोदर शास्त्री की कर्मभूमि बिहार थी। पहली पत्नी का निधन हो जाने पर उन्होंने दूसरा विवाह ब्रह्मावर्त्त में वैशाख-शुक्ल, संवत् १९३० वि० में किया। विवाह में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भी सम्मिलित होने ब्रह्मावर्त्त गये थे। विवाह के बाद शास्त्रीजी का खर्च बढ़ गया। भारतेन्दुजी के 'सरस्वती-भवन' से जो कुछ मिलता था, उससे काम चलना कठिन हो गया। इसलिए उन्होंने बिहारशरीफ में सरकारी स्कूल में संस्कृत-प्रधानाध्यापक-पद के लिए आवेदन किया। उनकी नियुक्ति बिहारशरीफ में हो गई। न चाहते हुए भी भारतेन्दुजी की निकटता छोड़कर उन्हें बिहार जाना पड़ा। वहाँ वे स्कूल में पढ़ाते तथा लेखन-कार्य भी करते थे। उन्हीं दिनों उन्होंने हिन्दी-व्याकरण लिखा। संयोग की बात थी कि वे जिस मकान में रहते थे, वह मकान बिहार के प्रथम साप्ताहिक पत्र 'बिहार-बन्धु' के संस्थापक-सम्पादक पण्डित मदनमोहन भट्ट का था। उनसे शास्त्रीजी का परिचय हुआ। शास्त्रीजी प्रेस की नौकरी के लिए उत्सुक थे। उन दिनों वे पूना और बम्बई के मराठी पत्रों के संवाददाता भी थे। इस कारण, प्रेस के काम में उनकी रुचि अधिक थी। शास्त्रीजी ने संस्कृत-प्रधानाध्यापक के पद पर सन् १८७५ ई० में कार्य शुरू किया था। लगभग डेढ़ वर्ष तक वहाँ काम करने के बाद दो महीने की छुट्टी लेकर वे 'बिहार-बन्धु' के व्यवस्थापक बनकर पटना चले गये। उन दिनों 'बिहार-बन्धु' का दफ्तर चौहट्टा में था। इस प्रेस से सटा हुआ 'बिहार-हेराल्ड' का दफ्तर था। लगभग दस महीने तक वे उस प्रेस में व्यवस्थापक थे। इस बीच 'बिहार-बन्धु' का विकास बहुत-कुछ हो चुका था। शास्त्रीजी का योगदान इसमें महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ। कहा जाता है कि एक दिन पण्डित केशवराम भट्ट और पण्डित गदाधर भट्ट ने अपने मालिकाना रुतबे में, किसी प्रसंग में, शास्त्रीजी को 'सुस्त' कह दिया। फलस्वरूप शास्त्रीजी 'बिहार-बन्धु' छोड़कर काशी लौट आये। भारतेन्दु को जब सारी बातें मालूम हुईं तब उन्होंने कहा —"इसीलिए कहता था—'चना चबेना गंगजल, जो देवे करतार, काशी कबहुँ न छोड़िए विश्वनाथ दरबार।"[२]

'बिहार-बन्धु' से त्यागपत्र देकर शास्त्रीजी कुछ दिन काशी में बैठे रहे। यहाँ से आगरा गये और टेलिग्राफी का प्रशिक्षण प्राप्त किया। जयपुर में तारबाबू का काम करने लगे। लगभग पाँच महीने काम करने के बाद उन्होंने नौकरी छोड़ दी। यह सन् १८७८ ई० की बात है। पुनः 'बिहार-बन्धु' से उनकी बुलाहट हुई। पटना जाकर उसकी व्यवस्था देखने लगे। इस बार उन्होंने 'बिहार-बन्धु' का सम्पादन किया। प्रेस की हालत

---

१. राजेन्द्र-अभिनन्दन-ग्रन्थ, पृ० ४४९

२. मै वही हूँ, पृ० ५६

अच्छी नहीं थी। उत्तरोत्तर वह ह्रासोन्मुख होता जा रहा था। सात-आठ महीने तक शास्त्रीजी ने देखभाल की। तदनन्तर त्यागपत्र देकर वे नाथद्वारा चले गये।

'विद्यार्थी' का सम्पादन-प्रकाशन :

शास्त्रीजी ने हिन्दी में भारतेन्दु के सहयोग से लिखना सीखा। उन्होंने कई हिन्दी-ग्रन्थों का प्रणयन किया। मूलतः वे संस्कृत के लेखक और मराठी के कवि थे। शास्त्रीजी जिन दिनों पटना के 'बिहार-बन्धु' कार्यालय में व्यवस्थापक थे, उन्हीं दिनों संवत् १९३३ वि० (सन् १८७६ ई०) के श्रावण में 'बिहार-बन्धु' प्रेस से संस्कृत मासिक पत्रिका 'विद्यार्थी' प्रकाशित हुई। पण्डित मदनमोहन भट्ट के परामर्श से पत्रिका का नाम 'विद्यार्थी' रखा गया था। इसका दूसरा अंक भाद्र मास में प्रकाशित हुआ। तीसरे अंक की प्रेस-सामग्री रखी रह गई। शास्त्रीजी त्यागपत्र देकर लौट आये। शास्त्रीजी जब दूसरी बार 'बिहर-बन्धु' के व्यवस्थापक तथा सम्पादक नियुक्त हुए तब सन् १८७८ ई० से पुनः उन्होंने तीसरे अंक से विद्यार्थी का प्रकाशन शुरू किया। उसके कुछ अंक प्रकाशित भी हुए। तदनन्तर वे इस्तीफा देकर नाथद्वारा चले गये। वहीं यह पत्र 'मोहन-चन्द्रिका' में सम्मिलित कर लिया गया।

'विद्यार्थी' रॉयल आकार के आठ पृष्ठों में छपता था। उसमें छात्रोपयोगी समाचार, लेख और कविताएँ रहती थीं। अधिकतर सामग्री शास्त्रीजी स्वयं लिखकर देते थे। 'विद्यार्थी' बिहार का पहला संस्कृत मासिक पत्र था।

रामदीन सिंह और शास्त्रीजी :

दामोदर शास्त्री जिन दिनों 'बिहार-बन्धु' में व्यवस्थापक-सम्पादक होकर पटना आये, उन्हीं दिनों बाबू रामदीन सिंह से उनका परिचय हुआ। सात-आठ महीने बाद पटना से लौटने के बाद वे सन् १८८० ई० में तीसरी बार पटना आये। तबतक 'बिहार-बन्धु' की आर्थिक स्थिति खराब हो चुकी थी। इसलिए वे खड्गविलास प्रेस में ठहरे। वहाँ ये लेखन-कार्य करते थे। रामदीन सिंह ने इनसे संस्कृत की 'राजतरंगिणी' का हिन्दी-अनुवाद कराया। इस सम्बन्ध में ब्रजनन्दन सहाय ने लिखा है :

"यही हाल पण्डित दामोदर शास्त्री का था। वे खड्गविलास प्रेस में ग्रन्थ-संशोधन आदि का काम करते थे। संस्कृत के वे अच्छे विद्वान् थे। पण्डितों से वे प्रायः संस्कृत में बतियाते थे। उनकी पत्नी कभी किसी परपुरुष के सामने होकर बात नहीं करती थीं। मराठी महिला होने के कारण परदा-प्रथा नहीं मानती थीं, पर सबके सामने मुँह मोड़कर बात करती थीं। थोड़ी संस्कृत वे भी जानती थीं। कभी-कभी मुझसे संस्कृत में ही कोई छोटा प्रश्न पूछती थीं। वे ऐसी बलवती थीं कि दो भरे गगरे दोनों हाथों में लेकर ऊँची सीढ़ियों पर खटाखट चढ़ जाती थीं। महाराष्ट्र-दम्पती को संस्कृत में परस्पर भाषण करते मैंने सुना था। शास्त्रीजी हिन्दी की शुद्धता पर विशेष ध्यान देते थे।"[1]

---

१. वे दिन वे लोग, पृ० २३

शास्त्रीजी पटना छोड़कर नाथद्वारा चले गये, किन्तु बाबू रामदीन सिंह को बराबर पत्र लिखते रहते थे। उनके प्रति उन्होंने कृतज्ञता भी प्रकट की थी।[1] शास्त्रीजी की अधिकतर पुस्तकें खड्गविलास प्रेस से छपी थीं।

शास्त्रीजी का कब, कहाँ निधन हुआ, इस सम्बन्ध में जानकारी नहीं मिली। पर ऐसा लगता है कि सन् १८९७ ई० के पूर्व उनका निधन हो चुका था।[2]

रामलीला-नाटक (सात काण्डों में) :

उनकी प्रस्तुत कृति 'रामलीला-नाटक' 'वाल्मीकि-रामायण' का हिन्दी-नाट्य-रूपान्तर है। उन्होंने रामायण के प्रत्येक काण्ड का अलग-अलग हिन्दी-नाट्य-रूपान्तर किया है। इनका प्रकाशन भी अलग-अलग हुआ। प्रारम्भ में यह नाटक 'क्षत्रिय-पत्रिका' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया गया। उसका पुस्तकाकार संस्करण भी प्रकाशित हुआ। पूरा नाटक बहुत बड़ा है और एक साथ अभिनीत नहीं हो सकता।

बालकाण्ड :

इसका प्रकाशन सन् १८८२ ई० में हुआ। इसमें ५९ पृष्ठ हैं। सम्भवतः यह प्रथम संस्करण है; क्योंकि संस्करण का इसमें उल्लेख नहीं किया गया है। रामलीला को नये ढंग से नाटक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। नटी कहती है कि 'पुरानी वस्तु नये ढंग से दिखाई जाय।' यह चार अंकों का नाटक है, जिसमें ग्यारह दृश्य हैं। संस्कृत में नान्दी-पाठ होता है। नाट्य-प्रस्तावना है। राजा दशरथ की राजसभा के दृश्य से नाटक आरम्भ होता है और धनुषयज्ञ तक की कथा का नाट्य-रूपान्तर इसमें दिया गया है। इस प्रकार रामलीला-बालकाण्ड समाप्त होता है।

अयोध्याकाण्ड :

रामलीला-नाटक का दूसरा खण्ड अयोध्याकाण्ड है, जो २०० पृष्ठों की पुस्तक है। इसका प्रथम संस्करण सन् १८८३ ई० में हुआ था। इसमें संस्कृत में नान्दी-पाठ है। नाट्य-प्रस्तावना नहीं है। पाँच अंकों का यह नाटक है। दशरथ-दरबार से अत्रिमुनि के आश्रम तक की कथा है। इस खण्ड में यथास्थान अनेक छन्द लिखे गये हैं।

अरण्यकाण्ड :

इस काण्ड में नाटककार ने चार पृष्ठों की भूमिका दी है, जो बाल, अयोध्या तथा अरण्यकाण्ड के सन्दर्भ में है। पाँच श्लोकों का नान्दी-पाठ है। इस खण्ड में नाट्य-प्रस्तावना नहीं है। इसमें १२० पृष्ठ और चार अंक हैं। वनगमन-प्रकरण में राम दण्डकारण्य पहुँचते हैं। पंचवटी से मारीच-वध तक की लीला इस खण्ड में समाप्त होती है। इस खण्ड में बाबू रामदीन सिंह ने अनेक स्थलों पर पाद-टिप्पणी देकर नाटक को प्रामाणिकता प्रदान की है। इसका प्रकाशन सन् १८८४ ई० में हुआ। इसमें संस्करण का

---

१. इस पुस्तक का परिशिष्ट देखें।

२. विद्याविनोद, तीसरा भाग, पृ० १६

उल्लेख नहीं है। ऐसा लगता है कि यह प्रथम संस्करण है। इस खण्ड की रचना काशी में हुई थी।

किष्किन्धाकाण्ड :

इस खण्ड का पहला संस्करण सन् १८८७ ई० में हुआ था, जिसमें १०६ पृष्ठ हैं। नाटकान्त में 'समय-विचार' शीर्षक एक छोटी भूमिका इस नाटक के सन्दर्भ में दी गई है, जो पाँच पृष्ठों में है। इस खण्ड का भी प्रणयन काशी में हुआ था।

नाटक के प्रारम्भ से पूर्व नाटककार राम तथा हनुमान की वन्दना करता है। यह खण्ड चार अंकों का है। राम का हनुमान और लक्ष्मण के साथ ऋष्यमूक पर्वत पर विराम है। हनुमान अपनी सेना के साथ तैयार हैं। नाटककार ने राम के मुख से यत्र-तत्र जो संवाद कहलाया है, वह संस्कृत भाषा में है। यह रामलीला की दृष्टि से उचित नहीं माना जाता; क्योंकि यह सामान्य दर्शक की समझ से बाहर की बात होगी।

युद्धकाण्ड :

यह खण्ड चार अंकों का है, जिसमें १५२ पृष्ठ हैं। इसका पहला संस्करण, सम्भवतः सन् १८८७ ई० में प्रकाशित हुआ था। यह भी चार अंकों का नाटक है। यह प्रस्रवणगिरि की कथा से नन्दीग्राम तक की कथा का नाट्य-रूपान्तर है। इस खण्ड में भी अनेक स्थलों पर संस्कृत-छन्द प्रयुक्त हुए हैं।

सुन्दरकाण्ड :

यह खण्ड ७८ पृष्ठों का है, जिसका पहला संस्करण सम्भवतः सन् १८८८ ई० में प्रकाशित हुआ था। इसमें राजगद्दी की कथा है। ७० पृष्ठों में नाटक है और अन्त में ८ पृष्ठों के भरतवाक्य के रूप में गद्यलेख हैं। इस प्रकार यह पूरा नाटक समाप्त होता है।

बालखेल वा ध्रुवचरित :

२४ पृष्ठों में यह पाँच अंकों का नाटक है। नाटक का आरम्भ नान्दी-पाठ के दो दोहों से होता है, जो इस प्रकार हैं :

ध्रुववाणी राणी अरू, ध्रुव को वाको कूल।
ध्रुव अदृष्ट अन्यन नहीं, देखो या अनुकूल॥
कैसे ? मित्र यही रहे, सब घर बालन खेल।
नीति भरो कविवर रचित, यह दामोदर केल॥

पहले अंक में राजा उत्तानपाद अपने पुत्र उत्तम को गोद में बैठाकर नीति-शिक्षा देते हैं। उसे अपने भाई ध्रुव के साथ खेलने के लिए कहते हैं। ध्रुव खेलने के लिए उत्तम को बुलाने आता है। राजा ध्रुव को अपनी बाईं जाँघ पर बिठाकर प्यार करता है। इसी बीच विमाता सुनीति ध्रुव को राजा की गोद से उतारकर फटकारती है। ध्रुव खिन्न-मन होकर अपनी माँ से पूरी बात बतलाता है। वह पिता की गोद से भी ऊँचा

स्थान प्राप्त करने के लिए जंगल में तपस्या करने चला जाता है। पिता उसके जंगल में जाने का निषेध करते हैं। उन्हें उचित ढंग से अपनी बात बताकर वह साधना-पथ पर अग्रसर हो जाता है। जंगल में नारद मिलते हैं। वे तपस्या की कठोरता की चर्चा कर घर जाने की सलाह देते हैं। ध्रुव अपने संकल्प पर अविचल रहता है। अन्त में शिव प्रकट होकर मनोरथ पूरा होने का वरदान देते हैं। नाटक की समाप्ति पर नाटककार भरतवाक्य के रूप में कहता है :

बालास्तु बालखेलेन तुष्टाः स्युर्नात्र संशयः।
विद्वांसोऽपि सदानेन सुहिता इति निश्चयः॥

इस नाटक की भाषा पर मराठी और संस्कृत का प्रभाव है। 'रानी' शब्द के लिए 'राणी', 'रसोईदारिन' शब्द के लिए 'पाककर्त्री' जैसे शब्द व्यवहृत हुए हैं। संवाद लम्बे हैं, जो रंगमंचीय दृष्टि से अनुकूल नहीं हैं। इस नाटक में कोई भूमिका नहीं है। संस्करण का भी उल्लेख नहीं है।

लखनऊ का इतिहास (सन् १८९७ ई०) :

यह पुस्तक रॉयल आकार के १८ पृष्ठों में है, जिसका पहला संस्करण सन् १८९७ ई० में प्रकाशित हुआ। इसकी कीमत दो आना है। इस पुस्तक में लखनऊ शहर का इतिहास बतलाया गया है। लेखक ने कहा है कि 'लक्ष्मणपुर' नामक पहले गाँव था। उसी का अपभ्रंश लखनऊ हो गया। इसमें सन् १८४७ ई० तक का इतिहास ७ पृष्ठों में दिया गया है। शेष पृष्ठों में लखनऊ के दर्शनीय स्थानों का परिचय है।

शास्त्री जी की मातृभाषा मराठी थी। काशी में उन्होंने संस्कृत-साहित्य पढ़ा। उनकी कर्मभूमि बिहार-प्रदेश थी। इन सभी कारणों से उनके गद्य पर 'बिहारीपन' का प्रभाव है। इसलिए उनके गद्य में 'लड़कावाला', 'पोपुत', 'वेश्वा' ? जैसे स्थानीय शब्द मिलते हैं।

चित्तौरगढ़ :

चौवालीस पृष्ठों की इस पुस्तक में मेवाड़ के राजाओं का सन् ५२४ ई० से १८८८ ई० तक का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया गया है। इस पुस्तक की भाषा अच्छी नहीं है। इसमें विराम-चिह्नों का भी प्रयोग नहीं है। पुस्तक की रचना जनवरी, १८९० ई० में हुई थी। यह सन् १८९१ ई० में पुस्तकाकार प्रकाशित हुई।

मेरी जन्मभूमि-यात्रा :

इस पुस्तक की रचना सन् १८८७ ई० में हुई थी। इसका पहला संस्करण सन् १८८८ ई० में प्रकाशित हुआ। ७६ पृष्ठों की इस पुस्तक में वसन्त-पञ्चमी, सं० १९३८ विक्रमी को नाथद्वारा से द्वारिका-दर्शन के लिए प्रस्थान से यात्रा-कथा आरम्भ होती है। द्वारिका होते हुए वे अपनी जन्मभूमि सतारा गये और वहाँ दो-तीन सप्ताह रहकर पुनः नाथद्वारा लौट आये। कथा बड़ी रोचक है। यात्रा-साहित्य के इतिहास में यह अभिनव प्रयास कहा जायगा।

मेरा छत्तीसवाँ वर्ष :

यह १८ पृष्ठों की पुस्तक है, जिसकी रचना सं० १९४१ वि० (१७ सितम्बर, १८८४ ई०) में हुई थी। इसमें अपने मित्रों से मिलने-जुलने तथा विभिन्न स्थानों का संक्षिप्त परिचय है।

मेरी दक्षिण-दिग्यात्रा :

इसका पहला संस्करण सन् १८८६ ई० में प्रकाशित हुआ था। इसमें १०८ पृष्ठ हैं। पहले संस्करण की ५०० प्रतियाँ छपी थीं। इसमें पुरी और रामेश्वरम् की यात्रा का विस्तार के साथ वर्णन किया गया था। यात्रा-साहित्य की यह उनकी दूसरी पुस्तक है।

मेरी पूर्व-दिग्यात्रा :

पचपन पृष्ठों की इस पुस्तक का पहला संस्करण सन् १८८५ ई० में प्रकाशित हुआ। शास्त्रीजी पटना छोड़कर नाथद्वारा चले गये थे। वहाँ 'मोहन-चन्द्रिका' का सम्पादन करने लगे थे। अपने पुराने मित्रों से मिलने तथा तीर्थाटन के उद्देश्य से फाल्गुन-कृष्ण रंगपञ्चमी, संवत् १९३९ वि० को वे नाथद्वारा से अपनी यात्रा आरम्भ कर मेवाड़, अजमेर, आगरा, इलाहाबाद, काशी और पटना होते हुए आषाढ़-शुक्ल ६, संवत् १९४० वि० को जगन्नाथजी पहुँचे। उन्होंने इस यात्रा का मनोरंजक वर्णन किया है।

इसी यात्रा-क्रम में वे रामनवमी, संवत् १९४० वि० को काशी पहुँचे और बाबू हरिश्चन्द्र के साथ ठहरे। एक सप्ताह वहाँ रहकर वे चैत्र-शुक्ल १५ को पटना गये। वहाँ उन्होंने 'बिहार-बन्धु' तथा 'खड्गविलास प्रेस' के बीच जो मतभेद था, उसे दूर किया। पटना में शास्त्रीजी बाबू रामदीन सिंह के अतिथि थे। वहाँ एक सप्ताह ठहरे। वहाँ से लौटकर कानपुर गये; जहाँ उन्होंने पं० प्रतापनारायण मिश्र से भेंट की। पुनः वे वहाँ से पटना होते हुए जगन्नाथपुरी चले गये। इस पुस्तक में उनके हिन्दी-गद्य का रूप मिलता है। उनके गद्य का नमूना नीचे दिया जा रहा है :

"मैं भी उन सबसे विदा होकर पुनः खड्गविलास में गया और उनकी प्रथम कही हुई बात को सच्ची मानकर वहीं पर स्नान, सन्ध्या और पूजन-अर्चन कर चुका। उनकी ही सलाह से मैं तारणपुर जो पुनःपुना नदी के किनारे, मीठापुर से तीन कोस है, रहने चला गया। अलबत्ते यहाँ मुझे बहुत अराम और आनन्द मिला। एक तो यह नहीं रहता था कि फलाने के यहाँ नहीं गये तो वह खफा होंगे। दूसरे गँवई गाँव में भक्ति और धर्म जितना रहता है, जालसाजी उतनी नहीं रहती, तीसरे 'निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते' वैसी मेरी हालत हो गई। तारणपुर में भी मैं कोई सात दिन पुनःपुना के किनारे रहा। यहाँ भी अरण्यकाण्ड का कितना एक भाग मैंने लिखा। तारणपुर में सब क्षत्रियों की ही बस्ती है। यहाँ बाबू रामचरण सिंह, जिनका कुछ रामदीन सिंह से भी सम्बन्ध है, उनमें भी मुझसे बराबर सहवास रहा। और प्रसिद्ध विद्वान बाबू रामचरित्र सिंह के पिता बाबू झबु सिंह।"[1]

---

१. मेरी पूर्व-दिग्यात्रा, पृ० १३-१४

चित्र-सं० : ७
बाबा सुमेर सिंह साहबज़ादे

पुस्तक के अन्त में उनके संस्कृत-श्लोकों का संग्रह है।

मैं वहीं हूँ (१८८६ ई०) :

यह पुस्तक हिन्दी-साहित्य के यात्रा-साहित्य की महत्त्वपूर्ण कृति होने के साथ ही पण्डित दामोदर शास्त्री की आत्मकथा भी है। इस पुस्तक में यात्रा का अत्यन्त रोचक वर्णन किया गया है।

इस पुस्तक में लेखक ने अपने जन्म की कहानी, प्रारम्भिक शिक्षा और अपनी जन्मभूमि का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया है। इसमें माता-पिता के साथ अपनी जन्मभूमि से काशी-यात्रा की कहानी कही गई है। उन्होंने काशी आने के बाद विद्याध्ययन किया। भारतेन्दु के निकट-सम्पर्क में आये। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पुस्तकालय में 'सरस्वती-भवन-भण्डार' के पुस्तकाध्यक्ष-पद पर कार्य किया। उनके साथ रहकर उन्होंने प्रूफ-शोधन-विधा सीखी। काशी में शौकिया नाटक-मण्डली की स्थापना की और अनेक नाटकों के मंचन किये।

इस प्रकार इस पुस्तक में शास्त्रीजी ने अपने जीवन-पक्ष पर विस्तार के साथ प्रकाश डाला है।

बाबा सुमेरसिंह 'साहबजादे'

भारतेन्दु-मण्डल के उपेक्षित साहित्यकार, बाबू रामदीन सिंह के मित्र तथा भल्लाखत्री सुमेरसिंह 'साहबजादे' का जन्म आजमगढ़ जिले के निजामाबाद में, भाद्रशुक्ला तृतीया, संवत् १९०४ वि०[1] (सन् १८४८ ई०) को हुआ था। सिक्खों के धर्मगुरु अमरदास के वे वंशज थे, इसलिए 'साहबजादे' कहे जाते थे। सिक्खों के धर्मगुरु होने से लोग उन्हें 'बाबा' भी कहते थे। उनके पिता बाबा साधुसिंह सिक्ख-धर्मावलम्बी थे। वे धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति तथा भजन-कीर्त्तन के प्रेमी थे। कहा जाता है कि उन्हें सिद्धि प्राप्त थी। खालसा-पन्थी उन्हें गुरुगोविन्द सिंह का अवतार मानते थे। ऐसे सन्त पिता के पुत्र बाबा सुमेरसिंह थे।

सुमेरसिंह जब पाँच वर्ष के थे तभी उनके पिता उन्हें अपने साथ पटना-यात्रा में ले गये। वहाँ सिक्खों के धर्मपीठ हरमन्दिर का बाबा साधुसिंह ने सपरिवार दर्शन किया। वहाँ पाँच वर्ष की आयु में स्वेच्छा से उनके पिता ने उन्हें अमृत छकाया। उसी दिन से वे सिक्ख-धर्मानुयायी हो गये। उनके धर्मगुरु उनके पिता ही थे। सिक्ख-धर्म में दीक्षित होकर वे पटना में रह गये।

बाबा साहब की आरम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। उनके विद्यागुरु पंजाबी साधु भाई गरीब सिंह थे। उन्होंने संवत् १९०७ वि० में गुरुमुखी से अक्षरारम्भ कराया। बाबा साहब ने 'गुरुग्रन्थ साहब' का पाठ संवत् १९०९ वि० में पूरा किया। भाई निहाल सिंह से संस्कृत-व्याकरण तथा न्याय की शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने ही बाबा को तबला-वादन में प्रशिक्षित किया था। काव्य की शिक्षा भाई सावण सिंह से ली। उन्होंने ही उन्हें संवत् १९१५ वि० में

---

१. सिक्ख गुरुओं की जीवनी, पृ० १६३

'रूपदीप' पिंगल पढ़ाया।[1] तदनन्तर वे कविता करने लगे। विद्यालयीय शिक्षा के विना ही उन्होंने फारसी, संस्कृत तथा व्रजभाषा में दक्षता प्राप्त कर ली।

बारह वर्ष की अवस्था में पटना जिले के इस्लामपुर के बाबू जयनारायण खत्री की दूसरी कन्या से संवत् १९१६ वि० में बाबा साहब का पहला विवाह हुआ। इस पत्नी से कोई सन्तान नहीं हुई। उन्होंने अपनी प्रथम पत्नी के आग्रह पर लाहौर-निवासी सोढ़ी प्रताप सिंह की कन्या से दूसरा विवाह किया। बाबा साहब स्वभाव से विरागी थे। देवाराधन उनका जीवन-लक्ष्य था। मानवता की सेवा, कर्त्तव्य और धर्म मानते थे। उन्हें सन्तान की लालसा उतनी नहीं थी जितनी सामान्य व्यक्ति को होती है। प्रसिद्ध कवि सेवक ने इनकी मनोभावनाओं का उद्घाटन इन शब्दों में किया है :

गुरु नानकदेव कृपानिधि को नित पूजन पाठ घनेरे रहैं।
हर रंग तरंग के रूप लखें कवि सेवक ह्वै कर चेरे रहैं॥
धन सिंह सुमेर सुसाहब की प्रभुता के सुरेसहु घेरे रहैं।
नरतीन की कौन चलावै कथा सुरतीन तें जे दृग फेरे रहैं॥

ऊपर बताया जा चुका है कि निजामाबाद उनकी मातृभूमि थी। पटना में उन्होंने सिक्ख-धर्म की दीक्षा ली, इसलिए उनका पटना से घनिष्ठ सम्बन्ध बना था। पिता के निधन के बाद ये सन् १८८३ ई० में पटना आ गये। इनकी धार्मिक आस्था से प्रभावित हो पंजाब के राजा महाराजाओं ने इन्हें सन् १८८३ ई० में सिक्खों के प्रख्यात तख्त पटना हरमन्दिर का धर्माध्यक्ष नियुक्त किया। इनके पहले हरमन्दिर की व्यवस्था श्रीकुँवर सुराजबहादुर, पं० जयनारायण वाजपेयी और राय ईश्वरीप्रसाद के अधीन थी। पाँच वर्षों तक इन प्रबन्धकों के साथ बाबासाहब मन्दिर की व्यवस्था की देखरेख करते रहे। तदनन्तर प्रबन्धकों के त्यागपत्र देने पर पटना के अँगरेज जिला-जज कर्कउड ने पंजाब के राजाओं की सम्मति से इन्हें सन् १८८८ ई० में हरमन्दिर का महन्त नियुक्त किया। तबसे ये स्थायी रूप से पटना रहने लगे।

बाबा सुमेर सिंह बचपन में जलोदर रोग से आक्रान्त हुए थे। इसी रोग से पुनः सन् १९०१ ई० में आक्रान्त हुए। ये पटना से बीमार होकर चिकित्सार्थ अमृतसर चले गये। वहाँ से १७ जुलाई, १९०१ ई० को पटना लौटे। पुनः १२ नवम्बर को ये अमृतसर गये। वहाँ इनकी तबीयत खराब होती चली गई। सन् १९०२ ई० के मार्च महीने में इनकी तबीयत अत्यधिक खराब हुई। ५ मार्च, १९०२ ई० को अपने सेवक रामसिंह बंगाली को 'श्रीमुखमणि साहब' का पाठ करने को कहा। उसने बाबा साहब को पाठ सुनाया। पाठ सुनते-सुनते आँखें अश्रुपूरित हो गईं। गुरुवार, ५ मार्च, १९०२ ई० (संवत् १९५८ वि०) को दिन के ढाई बजे, ५५ वर्ष की आयु में अपनी आँखें सर्वदा के लिए बन्द कर आप सतगुरु की ज्योति में विलीन हो गये।[2] आपके निधन के बाद आपके भतीजे बाबा विचित्र सिंह हरमन्दिर की गद्दी पर प्रतिष्ठित किये गये।

---

१. सिक्ख गुरुओं की जीवनी, पृ० १६५

२. उनकी निधन-तिथि के सम्बन्ध में शिवनन्दन सहाय ने हरिश्चन्द्र की जीवनी में फरवरी, १९०३ ई० लिखा है, जबकि उन्होंने सिक्ख गुरुओं की जीवनी में निधन-तिथि का उल्लेख ५ मार्च, १९०२ किया है। पहली तिथि गलत प्रतीत होती है।

व्यक्तित्व : एक अध्ययन :

बाबा सुमेर सिंह का व्यक्तित्व प्रभावशाली था। वे भारी शरीर और नाटे कद के थे। चेहरा भव्य और आकर्षक था। स्वर ऊँचा, पर मधुर था। उनके मुख से कविता बड़ी मीठी लगती थी।[१] धार्मिक अभिरुचि के और सिक्ख-धर्मावलम्वी होकर भी वे शृंगारिक कवि थे। काशी आने पर वे गोपाल-मन्दिर का दर्शन करते थे। मानवतावादी दृष्टिकोण उनके प्रत्येक कार्य में था। पटियाला-नरेश महेन्द्र सिंह के साथ संवत् १६१९ वि० में जब बाबा साहब पटियाला गये थे, तब मिहिर रियासत के राजा रघुवीर सिंह, दरभंगा-नरेश महाराजाधिराज रामेश्वरसिंह, अयोध्या-नरेश महाराज प्रताप सिंह, सूर्यपुरा के राजा राजराजेश्वरीप्रसाद सिंह और फरीदकोट के नरेश द्वारा उनकी धार्मिक तथा साहित्यिक प्रतिभा के लिए उनका समादर किया गया था। नेपाल के प्रधानमन्त्री राणा रणवीर सिंह एक बार उनके दर्शनार्थ पटना आये थे। जनवरी, १९०१ ई० में बंगाल में प्लेग फैला था। उस समय वहाँ के छोटे लाट साहब पटना-हरमन्दिर में पधारे थे। इन्होंने बाबा साहब से भेंट की थी। कलकत्ता लौटते समय अपनी टोपी उतारकर लाट साहब ने कहा था :

"महाराज, आशीर्वाद दीजिए, जिसमें प्रजा सुखी हो।"[२] काशी का कवि-समाज, काशी-कवि-मण्डल तथा कलकत्ता की लिटरेरी सोसाइटी ने बाबा को अपने समाज का सदस्य बनाकर सम्मान प्रदान किया था।

बाबासाहब हिन्दू-धर्म में गहरी रुचि रखते थे। पटना के बाँकीपुर मुहल्ले की सनातन धर्मसभा की बैठक में भाग लेते थे। वहाँ वे सनातन धर्म के सम्बन्ध में अपने विचार बड़ी उदारता के साथ प्रकट करते थे। इस प्रकार बाबा साहब का व्यक्तित्व सर्वतोमुखी, उदार और विशाल था।

बाबू रामदीन सिंह और सुमेर सिंह :

बाबा सुमेर सिंह बाबू रामदीन सिंह के घनिष्ठ और वरिष्ठ मित्र थे। बाबू साहब का प्रेस समकालीन साहित्यकारों तथा स्थानीय कवियों का मिलन-केन्द्र था। बाबा साहब प्रायः उनके प्रेस में आते थे। बाबू साहब उनका बहुत आदर करते थे। वहीं कविता-गोष्ठी होती थी। बाबू साहब ने 'रामचरितमानस' की महात्मा सन्तसिंहकृत 'भावप्रकाशिका टीका' प्रकाशित की थी। जिन दिनों उक्त ग्रन्थ छप रहा था, उसका प्रूफ बाबा सुमेर सिंह ही देखते थे। सीतामढ़ी-निवासी सन्त वैदेहीशरण प्रेस से प्रूफ लेकर उनके पास जाते थे। मानस के प्रति बाबा साहब की गहरी आस्था थी। मानस की गहराई तक वे पहुँचे हुए थे। कहा जाता है कि 'मानस' की उक्त टीका का प्रूफ देखते समय रामानुराग से अभिभूत होने पर बाबा साहब के नेत्रों से अश्रुपात होने लगता था और प्रूफ देखना छोड़कर वे मौन हो जाया करते थे।[३] वे काव्यशास्त्र के अध्येता थे। हिन्दी-प्रेमी जॉर्ज ग्रियर्सन साहब जब कभी किसी शंका

१. सिक्ख गुरुओं की जीवनी, पृ० १८१
२. वही, पृ० १७६-७७
३. वही, पृ० १७१

का समाधान कराना चाहते थे तो बाबू रामदीन सिंह के द्वारा वे बाबा साहब से ही कराते थे।

बाबा सुमेर सिंह ने पटना के बी० एन० कॉलेज के कुछ साहित्य-प्रेमी नवयुवकों के आग्रह पर 'पटना-कवि-समाज' की सन् १८९७ ई० में स्थापना की थी। इसके तत्वावधान में स्थानीय कवियों की गोष्ठी प्रायः खड्गविलास प्रेस के पुस्तकालय-कक्ष में होती थी। गोष्ठी की अध्यक्षता बाबा साहब करते और नवोदित कवि अपनी रचनाओं का पाठ करते थे। इसमें समस्या-पूर्त्ति भी की जाती थी। इस समाज की 'कवि-समाज-पत्रिका' का प्रकाशन खड्गविलास प्रेस से होता था, जिसमें समस्या-पूर्त्तियाँ रहती थीं। ब्रजनन्दन सहाय 'ब्रजवल्लभ' उसका सम्पादन करते थे।

बाबा साहब भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के घनिष्ठ मित्र थे। जब वे पटना से काशी आते तो रेशमकटरा-स्थित सिक्खों की बड़ी संगत में ठहरते थे। वहीं भारतेन्दुजी उनसे मिलने आते थे। वहाँ वे काव्य-गोष्ठी में भी भाग लेते थे। बाबा साहब के प्रमुख शिष्यों में पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' थे। 'हरिऔध' जी ने उनसे ही काव्यशास्त्र की शिक्षा ग्रहण की थी। आरा-निवासी पण्डित सकलनारायण शर्मा ने काव्यतीर्थ-परीक्षा के समय उनसे पिंगल का अध्ययन किया था। बाबा के शिष्यों में आजमगढ़-निवासी मार्कण्डेय प्रख्यात कवि थे।

रचनाएँ :

बाबा सुमेर सिंह ने कुल २६ पुस्तकों का प्रणयन किया, जिनमें अधिकतर पुस्तकें काव्य से सम्बद्ध थीं। उनकी अनेक कृतियाँ गुरुमुखी लिपि में छपी थीं। उनकी कृतियों के नाम इस प्रकार हैं :

(१) श्री गुरुपदप्रेम-प्रकाश पुरान (दस गुरुओं का जीवन-चरित), (२) नित्य-कीर्त्तन, (३) गुरुकीर्त्ति-कवितावली (३३० कवित्त), (४) वेदी वंशोत्तम सहस्रनाम, (५) सोढ़ी सहस्र-नाम, (६) खालसा पंचासिका, (७) सिंह सूर्योदय, (८) गुरुचरित-दर्पण, (९) बिहारी-सुमेर, (१०) बेदीवर दोहावली, (११) दारिद्रदुख-खण्डन दोहावली, (१२) सुमेर-भूषण, (१३) श्रवण-मरण, (१४) प्रेमप्रभाकर, (१५) प्रेमसुधाकर, (१६) सँदेसा, (१७) उलाहना, (१८) गुरुकुल प्रश्नोत्तरी, (१९) शब्दांक, (२०) जगत नैकरी, (२१) दुर्वासा-माहात्म्य, (२२) पुराणोप-क्रमणिका, (२३) गुरुभक्तमाल, (२४) रहत-दर्पण, (२५) विवेक-वारिधि और (२६) खालसा-शतक।[१]

इनमें से अब एक भी पुस्तक प्राप्य नहीं है। इन पुस्तकों में खालसा-पंचासिका, बिहारी-सुमेर और खालसा-शतक खड्गविलास प्रेस से छपी थीं।

१. खालसा-शतक चिन्तामणि :

यह पुस्तक संस्कृत में है और खड्गविलास प्रेस से छपी थी। यह मुझे देखने को नहीं मिली।

---

१. विद्याविनोद, तृतीय भाग, पृ० १८

२. नित्यकीर्त्तन :

मूल पुस्तक गुरुमुखी लिपि में लिखी गई थी। बाबू रामदीन सिंह अपने प्रेस से उसे प्रकाशित करने के लिए देवनागरी लिपि में उल्था करा रहे थे। उस पुस्तक का फुलस्केप आकार में १२० पृष्ठों तक देवनागरी में उल्था किया गया था। इसी बीच साहबजादा साहब और बाबू रामदीन सिंह का निधन हो गया। अतः मूल पुस्तक अनुवादक के पास ही रह गई। उसका कुछ पता नहीं चलता।[1]

इस पुस्तक में बाबा साहब-रचित भजन तथा कवित्त-सवैयों का संग्रह था। इसमें नायिका-भेद की भी चर्चा थी। नायिका-भेदों का उल्लेख कर उदाहरण उन भजनों से दिया गया था। कुछ छन्द इस प्रकार हैं :

माता पिता गोत नाता प्रिय तुम सम दूसर नाहीं।
तुम ही तारन-तरन दयानिधि हौ सभके घट माहीं॥
मतवारे मतवारे सारे जाने कहा कहानी।
घट-घट में परघट गुरु नानक ताको नाहि पिछानी॥
एक-एक देवालय भीतर इष्ट-सृष्ट ठहराई।
निन्दा चिन्ता मोहिं पराई हरि दीन्हों बिसराई॥
इष्ट आपनो सभमें हेरहु करता हरता जानी।
तौ सुमेर हरि आनन्द भोगहु करता राम पिछानी॥[2]

३. खालसा-पंचासिका :

इस पुस्तक का प्रकाशन खड्गविलास प्रेस से हुआ था, पर यह मुझे देखने में नहीं आई।

४. बिहारी-सुमेर :

बिहारी के दोहों पर सुमेर सिंह ने कुण्डलियाँ लिखी थीं। पण्डित अम्बिकादत्त व्यास के अनुसार उन्होंने कुल ३० दोहों पर कुण्डलियाँ लिखी थीं। उन्होंने उनकी ३० कुण्डलियाँ देखी थीं।[3] बाबू शिवनन्दन सहाय के अनुसार उन्होंने 'बिहारी-सतसई' के समस्त दोहों पर कुण्डलियाँ लिखी थीं।[4] इसका प्रकाशन खड्गविलास प्रेस से प्रारम्भ में हुआ था, जिसके दो फरमे ही छप सके। उनकी कुण्डलियाँ निम्नलिखित हैं :

मेरी भव-बाधा हरहु राधा नागरि सोय।
जा तन की झाँई परे स्याम हरित दुति होय॥
स्याम हरित दुति होय होय सभ कारज पूरौ।
पुरषारथ सहि स्वारथ चार पदारथ रूरौ॥

---

१. सिक्ख गुरुओं की जीवनी, पृ० १९८-९९

२. वही, पृ० १९९

३. बिहारी-विहार, भूमिका, पृ० ४९

४. सिक्ख गुरुओं की जीवनी, पृ० १९८

सतगुरुशरण अनन्य छूटि भय भ्रम की फेरी ।
मन मोहन मित सुमेरेस गति मति में मेरी ।।१।।

सीस मुकुट कटि काछनी कर मुरली उर माल ।
एहि बानिक मो मन बसहु सदा बिहारी लाल ।।
सदा बिहारी लाल करहु चरनन को चेरो ।
तुहि तज अनत न जाइ कतहुँ प्रियतम मन मेरो ।।
मेरो तेरो मिटै मिलै तस संगत ईस ।
बिहरहुँ ह्वै उनमत्त धारि ब्रज रज निज सीस ।।२।।

मोर मुकुट की चन्द्रकनि यौं राजत नँद-नन्द ।
मनु शशिसेखर की अकस किय सेखर साचन्द ।।
किय सेखर साचन्द छन्द रुचि काम बढ़ावत ।
नव नारिन हिय नेह नवल नागर उपजावत ।।
धावति धामहि धाम वामवर विरह सुखद की ।
पूँछति सुधि बौराय माय भरि मोर मुकुट की ।।३।।

मकराकृत गोपाल के कुण्डल सोहत कान ।
धँस्यो मनो हियदर समर ड्योढी लसत निसान ।।
ड्योढ़ी लसत निसान सान ताकी अति चोखी ।
अबला कोपिखतांहि होत जुन रतिरण रोखी ।।
चकित जकित चित थकति बकति नहि करमन हकरा ।
तकत इतै उत आइ तान रति जाल सुमकरा ।।४।।

मूल्यांकन :

बाबा सुमेर सिंह मूलतः कवि थे । उन्होंने गद्य नहीं लिखा । गद्यकृति के नाम पर उनका 'गुरुपद-नेम-प्रकाश,' जो दस सिक्ख गुरुओं की जीवनी है, एकमात्र रचना कही जा सकती है । अन्य सभी कृतियाँ पद्यबद्ध हैं । वे कविता में सुमेरेस, सुमरहरि और सुमेर सिंह लिखते थे ।

फुटकल कविताएँ :

सुमेर सिंह की फुटकल कविताएँ भारतेन्दु-युगीन पत्र-पत्रिकाओं में बिखरी पड़ी हैं । पटना-कवि-समाज की पत्रिका में भी उनकी कविताएँ छपी थीं, जिनका कोई संग्रह नहीं किया जा सका । उनकी कुछ कविताओं का संकलन पण्डित मन्नालाल द्विज और हनुमान कवि ने अपने 'सुन्दरी-तिलक' में, शिवसिंह 'सरोज' ने अपने 'सरोज' में, हफीजुल्ला खाँ ने अपने 'हजारा' और महाराजकुमार रामदीन सिंह ने भारतेन्दु-कथित 'सुन्दरी-तिलक' (खड्गविलास प्रेस-संस्करण) में किया था । 'सुन्दरी-तिलक' के खड्गविलास प्रेस-संस्करण में अधिक संख्या में उनकी कविताएँ संकलित की गई थीं ।

सुमेर सिंह सन्त पुरुष और भगवद्भक्ति में लीन रहनेवाले साहित्यिक व्यक्ति थे। इसलिए उनकी काव्य-धारा भक्ति-प्रधान रही है। उनकी कृतियों में अधिकांश भक्ति-भावनाओं को समर्पित हुई हैं। उनका एक भक्तिपूर्ण छन्द देखिए :

सदना कसाई कौन सुकृत कमाई नाथ
भालन के मनके सुफेरे गनिका ने कौन।
कौन तप साधना से सेबरी ने तुष्ट कियो,
सौचाचार कुबरी ने कियो कौन सुख भौन ॥
त्यौं 'हरिसुमेर' जाप जप्यो कौन अजामेल
जग को उबार्‌यो बार-बार कवि भाख्यो तौन।
एते तुम तारे सुनो साहब हमारे राम
मेरी बार बिरद बिसारे कौन गहि मौन ॥[1]

यह विशुद्ध वैष्णव भक्तकवि की रचना है, जो बड़े विनीत भाव से अपने प्रणम्य भगवान् को निवेदित करता है। उनकी 'नित्य-कीर्त्तन' पुस्तक में भी इसी ढंग की रचनाएँ मिलती हैं। अतः उन्हें भक्तकवि स्वीकार करने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

भारतेन्दु-युग रीति-परम्परा का अवसान-काल था। फिर भी रीति-साहित्य तथा रीति-परम्परा की कविताओं का प्रणयन होता चल रहा था। 'कवि-समाज' तथा 'कवि-मण्डल' में जितनी भी कविताएँ पढ़ी जाती थीं और जिन समस्याओं की पूर्त्ति की जाती थी, वे प्रायः रीति-परम्परा की ही कविताएँ होती थीं। बाबा सुमेर सिंह जहाँ एक ओर वैष्णव भक्तकवि के रूप में दिखाई पड़ते हैं, वहीं दूसरी ओर उन्होंने रीति-काव्य-धारा की रीतिबद्ध रचनाएँ भी की हैं। उनकी शृंगारिक कविताएँ उच्चकोटि की हैं। वे शृंगारिक भावों को अभिव्यक्ति देने में अलंकारों के आकर्षण में नहीं पड़ते, इसलिए उनकी रचनाएँ उच्चकोटि की हुई हैं। उन्होंने स्वकीया नायिका का चित्रण इस प्रकार किया है :

जानै न बोल कुबोल भटू, चित ठानै सदा पति प्रीति सुहाई।
केतो करैं उपचार सखी, सतराय न नाह पै भौंह चढ़ाई॥
क्यों नहिं होय 'सुमेरहरी' हरि के हिय आनन्द की अधिकाई।
जाहि बिलोकत ही पुर की तिय, सीखि गईं पति की सेवकाई॥

शीलवती नायिका का यह चित्रण है, जिसने अपने शील से गाँव की अन्य नायिकाओं को पतिसेवा में अनुरक्त होने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने इसी उच्च स्तर के एक अन्य मुक्तक की रचना की है, जिसमें परकीया नायिका का चित्रण है :

बातें बनावती क्यों इतनी, हमहूँ सो छप्यो नहि आज रहा है।
मोहन के बनमाल को दाग, दिखाइ रह्‌यो उर तेरे अहा है।
तू डरपै, करै सोहैं, सुमेरहरी सुन साँच को आँच कहा है।
अंक लगी तो कलक लग्यो, जो न अंक लगी तो कलक कहा है॥

१. हिन्दी-भाषा और साहित्य का विकास, पृ० ५२३

इस प्रकार उनकी अन्य मुक्तक रचनाओं में नायक-नायिकाओं का चित्रण किया गया है। उनकी व्रजभाषा स्वच्छ और प्रवाहमयी है। इन कविताओं के आधार पर उन्हें भारतेन्दु-युग का उत्कृष्ट कवि कहा जा सकता है।

रामचरित्र सिंह

रामचरित्र सिंह, रामदीन सिंह के सहपाठी, अभिन्न-हृदय मित्र और सलाहकार थे। खड्गविलास प्रेस की संस्थापना में जिन लोगों का बौद्धिक सहयोग था, उनमें आपका नाम उल्लेखनीय है। रामदीन सिंह का आपके प्रति अधिक सम्मान रहता था। प्रेस की स्थापना के बाद आप पुस्तक-सम्पादन तथा लेखन-कार्य में सहयोग प्रदान करते थे।

कहा जाता है, सूर्यवंशी क्षत्रिय-वंश में प्रतापी राजा शालिवाहन हुए। उस राजा ने अपने नाम पर शक-संवत् का प्रवर्त्तन किया। शालिवाहन में बाईस गुण थे। इसलिए उन्हें 'बाईस' की उपाधि मिली। यही बाईस बाद में 'बैस' हो गया। बैस-वंश में डालराय और बालराय दो प्रसिद्ध राजा हुए। डालराय ने डलमऊ में और बालराय ने 'बैसवाड़ा' में राज्य की स्थापना की। बालराय की ग्यारहवीं पीढ़ी में अभयचन्द नामक प्रतापी राजा सन् ११२० ई० में हुए। इसी वंश के भेलाई सिंह हुए। वे मुगल बादशाह के सेनापति थे। उन्होंने मुर्शिदाबाद पर विजय प्राप्त की थी। इससे प्रसन्न हो मुगल बादशाह ने भेलाई सिंह को वर्त्तमान पटना जिले की पुनपुन नदी के तटवर्त्ती कई हजार बीघा जमीन जागीर में दी थी। भेलाई सिंह पुनपुन नदी के किनारे बस गये। उनके बड़े लड़के तारासिंह ने अपने नाम से 'तारणपुर' गाँव बसाया। यह बैस ठाकुरों का गाँव है। तारासिंह के वंशज झब्बू सिंह थे। उन्हीं के कुल में रामचरित्र सिंह का जन्म हुआ था।

रामचरित्र सिंह का जन्म सन् १८५८ ई० की आश्विन-पूर्णिमा को हुआ था। उनके पिता झब्बू सिंह व्यवहार-कुशल व्यक्ति थे। रामचरित्र सिंह की प्रारम्भिक शिक्षा गाँव की पाठशाला में हुई। बाद में उन्होंने पटना की 'प्रयागनारायण वाजपेयी-पाठशाला' में नाम लिखवाया। वहाँ से उन्होंने मिडिल तक की शिक्षा प्राप्त की। झब्बू सिंह प्रगतिशील विचार के व्यवहार-कुशल व्यक्ति थे। वे नित्य अपने दरवाजे पर सायंकाल 'रामचरितमानस' की कथा कहते थे। साहित्य के प्रति अनुराग रामचरित्र सिंह को अपने पिता से प्राप्त हुआ। बचपन के उनके मित्रों में रामदीन सिंह और दीनदयाल सिंह प्रमुख थे। उन दिनों बाबू साहबप्रसाद सिंह रूपस गाँव से तारणपुर आकर रहा करते थे। उनमें भी साहित्य के प्रति गहरी अभिरुचि थी। इस प्रकार रामचरित्र सिंह के बचपन का परिवेश साहित्यिक था। इसीलिए विद्यालयीय अध्ययन छोड़ने के बाद वे साहित्य का अध्ययन-मनन करने लगे।

रामचरित्र सिंह अपने समकालीन पत्र 'बिहार-बन्धु' में लिखा करते थे। सन् १८८० ई० में उनकी 'नृपवंशावली' का प्रकाशन 'बिहार-बन्धु' में हुआ। खड्गविलास प्रेस की स्थापना होने पर वे इस प्रेस में सम्पादक और लेखक की हैसियत से काम करने लगे।

रामदीन सिंह की 'क्षत्रिय-पत्रिका' के वे नियमित लेखक थे। उनके अनेक लेख इस पत्रिका में छपे। लेखन के साथ वे अपना ज्ञान-वर्द्धन भी किया करते थे। उनके वैदुष्य से बिहार के

तत्कालीन शिक्षा-निरीक्षक और हिन्दी-हितैषी भूदेव मुखोपाध्याय अत्यधिक प्रभावित रहते थे।

कहा जाता है कि रामदीन सिंह एक बार भूदेव बाबू से मिलने गये। साथ में रामचरित्र सिंह भी थे। परिचय के अनन्तर इतिहास पर बातचीत होने लगी। इस सन्दर्भ में रामचरित्र सिंह द्वारा दी गई जानकारी पर शिक्षा-निरीक्षक मुग्ध हो गये।[1] उन्होंने 'लोक-गाथा' के सम्बन्ध में जब जिज्ञासा प्रकट की तब रामचरित्र सिंह ने विस्तार के साथ इसका परिचय दिया। भूदेव बाबू इस जानकारी से अत्यन्त प्रसन्न हुए।[2]

मैथिल-कोकिल विद्यापति सन् १८८२ ई० तक अत्यन्त विवादास्पद कवि थे। तिरहुत-निवासी उन्हें मैथिल कवि कहते थे और बंगवासी विद्वान् उन्हें बँगला के वैष्णव कवि के रूप में जानते थे। भूदेव बाबू ने रामचरित्र सिंह से विद्यापति के जीवन के सम्बन्ध में पूछा। उन्होंने ठोस आधार पर प्रमाणित किया कि विद्यापति मैथिल हैं। इसपर भूदेव बाबू ने उनसे विद्यापति पर पुस्तक लिखने का आग्रह किया।[3]

सन् १८८२ ई० के ज्येष्ठ मास में रामचरित्र सिंह का रामदीन सिंह से किसी बात पर मतभेद हो गया। इसलिए खड्गविलास प्रेस से कुछ खिन्न होकर वे काशी चले गये। काशी में कुछ सप्ताह रहने के बाद वे गया चले गये। प्रेस छोड़कर उनके चले जाने से रामदीन सिंह अत्यन्त दुःखी हुए। उन्होंने गया से उन्हें वापस बुलाने का प्रयत्न किया, किन्तु वे नहीं आये। सन् १८८२ ई० के श्रावण में गया में उनकी तबीयत खराब हुई। उन्होंने इसकी सूचना प्रेस को दी। रामदीन सिंह अविलम्ब गया गये। सन् १८८२ ई० के श्रावण में गया में रामचरित्र सिंह की जीवन-लीला का अन्त हो गया।

रचनाएँ :

(१) नृपवंशावली, (२) अमात्रिक छन्द-दीपिका, (३) देशी गणित क्षेत्र-चन्द्रिका, (४) चतुरविलास, (५) दृष्टान्त-विलास, (६) नीति-विलास, (७) लेखाप्रदीप, (८) मनोरंजन-विलास।

१. नृपवंशावली (सन् १८८० ई०) :

इस पुस्तक का प्रकाशन बिहारबन्धु प्रेस से सन् १८८० ई० में हुआ। यह चौबीस पृष्ठों की पुस्तिका है, जिसमें मतिराम कविकृत नृपवंशावली, अमात्रिक छन्द-दीपिका और गंगा-स्तवन के छन्दों का संकलन है।

'नृपवंशावली' मतिराम कवि की रचना है, जिसमें क्षत्रियवंशों का संक्षिप्त इतिहास छन्दोबद्ध है। छह अध्यायों के १८२ दोहों में विभिन्न क्षत्रिय-जातियों का संक्षिप्त इतिहास इसमें प्रस्तुत किया गया है।

---

१. परिशिष्ट १, संख्या १

२. वही

३. वही

अमात्रिक छन्द-दीपिका :

रामदीन सिंह के मनोरंजनार्थ अमात्रिक १५ छन्दों का संकलन है। अमात्रिक छन्दों की रचना उच्चारण की दृष्टि से विलक्षण और आकर्षक होती है, जिससे मनोरंजन भी होता है। अमात्रिक छन्द का एक उदाहरण है :

बघछल वसन दसन दमकत वर,
　　मरघट बसत लसत अजगर।
अकथ अमर अज अलख गरल भव,
　　मरदन मदन सघन परबत पर॥
नगन मगन मन अढर भसम धन,
　　मरद गरद तन बहन बरदकर।
जटधर कहत रहत न तनक डर,
　　दहत सकल अघ गहत चरन हर॥

यह किस कवि की रचना है, इसका उल्लेख नहीं किया गया है।

गंगा-स्तव :

यह संस्कृत-रचना है। इस रचना में बाईस अनुष्टुप् छन्दों में गंगास्तुति की गई है। यह रचना संस्कृत के रामनन्दन मयूर कवि की है। इसे भी मनोरंजनार्थ संकलित किया गया है।

२. हास-विलास (दो भागों में) : सन् १८८५--८७ ई० :

यह कृति उन्नीसवीं सदी की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हास्य-व्यंग्य-पूरित गद्य-लेखों का संकलन है। यह उदयपुर-नरेश महाराज सज्जन सिंह को समर्पित की गई थी। इसके दो भाग हैं। प्रथम भाग का दूसरा संस्करण सन् १८८७ ई० में, दूसरे भाग का पहला संस्करण सन् १८८५ ई० में प्रकाशित हुआ था। इस संकलन की भूमिका में कहा गया है कि 'इसमें हासरस की जो बातें लिखी गयी हैं वे सब कुछ हँसी की ही नहीं हैं, किन्तु चतुराई से भरी हैं। फिर भी इसकी बोली भी एक ढंग पर नहीं है। जैसी जहाँ पायी वैसी ही लिख दी, जिससे सबको सुभीता हो।'

तत्कालीन गद्य-रूपों के अध्ययन की दृष्टि से इस पुस्तक का महत्त्व है।

"हरीश्चन्द्र को लाहौर में एक मस्त मिला। उन्होंने पूछा कि आपका मजहब क्या है?" "मस्त बोला, मेरा तो कोई मजहब नहीं, पर मैं चार मजहब बिगाड़ चुका। जब हिन्दू थे मुसलमानिन से ब्याह किया तब हिन्दुओं का मजहब बिगड़ा। उसके मरने के पीछे सूअर खा लिया। तब मुसलमानी सत्यानाश हुई। फिर सिक्ख हुआ, और हुक्का पिया तब सिखपना मिटा और क्रिस्तानी मत लिया। अब थोड़े दिन से उसको भी अविश्वास से खराब करके चैन करता हूँ। मजहब चार बिगाड़े पर मैं ज्यों-का-त्यों हूँ।"[1]

---

१. हास-विलास, भाग २, पृ० २०

उनकी अन्य कृतियों में चतुरविलास, दृष्टान्त-विलास, मनोरंजन-विलास और नीति-विलास देखने को नहीं मिलीं। उन्होंने गणित-सम्बन्धी दो रचनाओं का प्रणयन किया था, जिनके नाम 'देशी गणित क्षेत्र-चन्द्रिका' और 'लेखा-प्रदीप' हैं। दोनों कृतियाँ अप्रकाशित रहीं।

साहबप्रसाद सिंह

खड्गविलास प्रेस की स्थापना और उसके संचालन में महाराज कुमार रामदीन सिंह के सक्रिय सहयोगियों में साहबप्रसाद सिंह प्रमुख थे। वे रामदीन सिंह के दाहिना हाथ थे। प्रेस के संचालन और प्रकाशन की व्यवस्था का समस्त उत्तरदायित्व साहबप्रसाद सिंह पर था। यही कारण है कि इस प्रेस के विकास और आधुनिक साहित्य के प्रकाशन में उनका अन्यतम अंशदान है।

साहबप्रसाद सिंह न केवल प्रेस और प्रकाशन का संचालन करते थे, वरन् साहित्यिक पुस्तकों का संकलन-सम्पादन भी करते थे। प्रेस में होनेवाली साहित्यिक गोष्ठियों में जमकर वे भाग भी लेते थे और उनका संचालन भी करते थे। वे रामदीन-मण्डल के ऐसे कृतिकारों में थे, जिन्होंने हिन्दी के प्रसार में यथेष्ट योगदान किया। वे मण्डल के विशिष्ट सदस्यों में थे।

साहबप्रसाद सिंह का जन्म मुजफ्फरपुर जिले के बड़आ-रूपस ग्राम में पँवार-वंशीय राजपूत-परिवार में संवत् १९११ वि० में हुआ था। उनके पिता शिवराम सिंह साहित्यिक रुचि-सम्पन्न व्यक्ति और रामचरितमानस के मर्मज्ञ थे। साहबप्रसाद सिंह अपने सात भाइयों में छठे थे। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में हुई। उन्होंने अँगरेजी का भी अध्ययन किया। पैतृक संस्कार के रूप में साहित्यिक अभिरुचि उन्हें विरासत-स्वरूप मिली।

उनकी बहन का विवाह पटना जिले के तारणपुर ग्रामवासी रामचरण सिंह से हुई थी। रामचरण सिंह रामदीन सिंह के मामा थे। इस कारण उन दोनों में मामा-भाँजे का सम्बन्ध था। रामदीन सिंह बचपन में तारणपुर में रहकर पढ़ते थे। साहबप्रसाद सिंह भी प्रायः तारणपुर आया करते और महीनों वहाँ रहते थे। फलतः रामदीन सिंह और साहब-प्रसाद सिंह एक-दूसरे के अत्यन्त निकट आ गये। दोनों की मैत्री अविच्छिन्न हो गई।

रामदीन सिंह जिन दिनों तारणपुर में अध्ययन कर रहे थे, वह उनके बचपन का समय था। तत्कालीन तारणपुर का परिवेश साहित्यिक था। उनके नाना हितनारायण सिंह राष्ट्रीय विचारधारा के कवि थे। उसी गाँव के निवासी झब्बू सिंह साहित्यिक अभिरुचि-सम्पन्न व्यक्ति थे। वे विभिन्न प्रकार के अक्षरों के पढ़ने के अभ्यस्त थे। अक्षरों की छाप उतारकर वे उनका अध्ययन करते थे। रामदीन सिंह के बाल-सखाओं में रामचरित्र सिंह और दीनदयाल सिंह प्रमुख थे। इन व्यक्तियों में साहित्य का संस्कार था। झब्बू सिंह के सामीप्य में इन लोगों ने भी अक्षरों की छाप लेने और पढ़ने का अभ्यास किया। साहब-प्रसाद सिंह को इस विधा में गहरी अभिरुचि हुई। इस पृष्ठभूमि में उन्होंने प्रेस-सम्बन्धी ज्ञातव्य बातों की जानकारी के लिए कहीं प्रेस में प्रशिक्षण लेने की सोची।

'बिहार-बन्धु' उस समय बिहार-प्रदेश का पुराना प्रेस था। यह प्रेस पटना के चौहट्टा मुहल्ले में था। इसके संस्थापक-सम्पादक पण्डित मदनमोहन भट्ट थे। इसी प्रेस में साहबप्रसाद सिंह ने नौकरी कर ली। इन्होंने पहले कम्पोजिंग सीखी। अनन्तर इन्होंने प्रेस की विविध बातों की जानकारी हासिल की। कुछ ही समय में प्रेस-सम्बन्धी सभी आवश्यक तथ्यों को इन्होंने जान लिया।

साहबप्रसाद सिंह की कार्य-क्षमता और प्रेस-सम्बन्धी जानकारी से प्रेस के संचालक पण्डित केशवराम भट्ट प्रभावित थे। उन दिनों कम्पोजीटर खोजने पर भी नहीं मिलते थे। इस प्रेस के सहायक संचालक पण्डित दामोदर शास्त्री थे। वे प्रेस छोड़कर उदयपुर चले गये। उन्होंने उदयपुर-नरेश महाराज सज्जन सिंह से, जिन्हें एक प्रेस-सम्बन्धी जानकार की जरूरत थी, साहबप्रसाद सिंह के गुणों की चर्चा की। उन्होंने साहबप्रसाद सिंह को पत्र लिखकर उदयपुर बुलाया। भट्टजी इससे चिन्तित हो उठे। उन्होंने साहबप्रसाद सिंह को उदयपुर जाने से रोकने के लिए प्रतिज्ञा-पत्र भरने को कहा। साहबप्रसाद सिंह ने इससे साफ इनकार किया। इन्होंने भट्टजी से कहा :

"हमसे प्रतिज्ञा-पत्र काहे को लिखवाइएगा, हम उदयपुर नहीं जाएँगे, परन्तु जबतक बाबू रामदीन सिंह का प्रेस संस्थापित नहीं होता है तबतक हम आपके यहाँ काम करते हैं। उनका प्रेस खुलने पर हम वहाँ अवश्य चले जाएँगे।"

उन्होंने न प्रतिज्ञा पत्र भरा, न जयपुर गये। खड्गविलास प्रेस की स्थापना होने पर साहबप्रसाद सिंह उसके प्रथम प्रबन्धक होकर प्रेस का संचालन करने लगे। साहबप्रसाद सिंह ने सन् १८८० ई० से १९०१ ई० तक (इक्कीस वर्षों तक) इस प्रकाशन-संस्थान का संचालन किया। इक्कीस वर्षों में खड्गविलास प्रेस न केवल बिहार के उत्तम प्रेसों में अग्रगण्य माना जाने लगा, बल्कि भारत के श्रेष्ठ प्रेसों में वह सर्वोपरि समझा जाने लगा। साहबप्रसाद सिंह की प्रतिभा, लगन, श्रम और आत्मीयता का यह जीवन्त स्वरूप था। वे प्रेस में ही बीमार पड़े और दो दिनों की बीमारी में २९ अगस्त, १९०१ ई० को उनका देहावसान पटना में हो गया।

साहबप्रसाद सिंह और रामदीन सिंह :

रामदीन सिंह और साहबप्रसाद सिंह दोनों एक-दूसरे के दूर के रिश्तेदार थे। दोनों की मैत्री सहोदर भाई से भी बढ़कर थी। साहबप्रसाद सिंह प्रेस के सब कुछ थे। रामदीन सिंह साहित्यकारों से सम्पर्क स्थापित कर पुरानी रचनाओं की खोज में व्यस्त रहते थे। इसलिए साहबप्रसाद सिंह के निधन से वे अत्यन्त विचलित हुए। वे 'शिवहर्ष' कवि के निम्नलिखित कवित्त को बार-बार चिन्तित भाव से पढ़ा करते थे :

गज दन्त सुण्ड बिन, सिंह पंजा नख बिन,
घोस बिना रबि जथा निसि ससिहीन है।
भुज ते रहित नर फणि यथा मणि बिन
जल बिना मीन ज्यों पतंग पक्षहीन है।

कहैं 'शिवहर्ष' ज्यों सुकंज बिना सरवर,
दीप बिना भौन यथा रहत मलीन है।
तैसो बिनु आप बाबू साहबप्रसाद सिंह
कारज करैगो का अकेलो रामदीन है ॥[1]

भावावेश में रामदीन सिंह निम्नलिखित सवैया पढ़ते थे :

रावरे लियें तो कछु सोच ना मनेजर जू आपनेई पुण्य आप सब सुख पावेंगे।
बढ़िकै यहाँ से सतकार मरजाद मान आदर के पात्र वहाँ देवता बनावेंगे।
किन्तु अफसोस याही खड्गविलास काज आपके समान कौन दूसरो चलावेंगे।
बाबू रामदीन सिंह जू के सब बातन में होइकै सहाय सारी चिन्तना हटावेंगे ॥[2]

वस्तुतः रामदीन सिंह को साहबप्रसाद सिंह की मृत्यु का गहरा धक्का लगा।

साहबप्रसाद सिंह के कोई पुत्र नहीं, इकलौती कन्या थी। रामदीन सिंह ने उनकी कन्या से अपने ज्येष्ठ पुत्र रामरणविजय सिंह का विवाह करने का वचन उन्हें दिया। उनके पुत्र की शादी के लिए अनेक धनी-मानी आये, लेकिन उन्होंने किसी के यहाँ शादी न की। उन्होंने अपने पुत्र की शादी साहबप्रसाद सिंह की कन्या से कर अपनी प्रगाढ़ मैत्री को और सुदृढ़ किया।

रचनाएँ :

साहबप्रसाद सिंह प्रेस के संचालन के साथ ही लेखन-कार्य भी करते थे। उनके लेखन से हिन्दी-भाषा और साहित्य दोनों उजागर हुए हैं।

वे मौलिक लेखक की अपेक्षा संकलयिता-सम्पादक अधिक थे। उनके द्वारा संकलित ग्रन्थ हिन्दी की श्रेष्ठ पाठ्य-पुस्तक रहे हैं। उनके संकलनों से हिन्दी-प्रदेश के स्कूलों में हिन्दी की प्रतिष्ठा में योग मिला है। अतः उनकी रचनाओं का हिन्दी-साहित्य के विकास के माध्यम-रूप में विशिष्ट स्थान है। उनकी निम्नलिखित १२ पुस्तकें देखने में आईं :

(१) भाषासार (दो भागों में), (२) गणित-बत्तीसी (चार भागों में), (३) गुरु गणित-शतक (दो भागों में), (४) भाषातत्त्व-बोध (दो भागों में), (५) स्त्री-शिक्षा (चार भागों में), (६) सुता-प्रबोध, (७) सज्जन-विलास, (८) सुन्दरकाण्ड रामायण, (९) मयंक-संग्रह (सात भाग), (१०) काव्य-कला, (११) पहाड़ा-प्रकाश (दो भागों में) और (१२) हिन्दी की पहली पोथी (दो भागों में)।

१. भाषासार (दो भागों में) :

साहबप्रसाद सिंह की कृतियों में यह सबसे महत्त्वपूर्ण कृति है। इसका सविस्तर परिचय इस शोध-प्रबन्ध के छठे अध्याय में दिया गया है।

---

१. साहबप्रसाद सिंह की जीवनी, पृ० २४

२. वही

२. गणित-बत्तीसी (सन् १८७९ ई०) :

यह गणित की पुस्तक है। इसका पहला संस्करण खड्गविलास प्रेस की स्थापना से पूर्व सन् १८७९ ई० में बिहार-बन्धु प्रेस से मुद्रित होकर प्रकाशित हुआ। रामदीन सिंह की प्रेरणा से यह पुस्तक साहबप्रसाद सिंह ने तैयार की थी। रामदीन सिंह उन दिनों सारन जिले के कसमर परगनान्तर्गत नयागाँव नामक स्थान में सहायक शिक्षक थे। उन्हें गणित की पाठ्य-पुस्तक का अभाव प्रतीत हुआ, इसलिए उन्होंने साहबप्रसाद सिंह को प्रेरित कर इस पुस्तक की रचना कराई।

इस लघु पुस्तिका में केवल १५ पृष्ठ हैं, किन्तु इसमें दैनिक जीवन के काम में आने-वाले गणित को सरल रूप में ३२ सूत्रों में पद्यबद्ध किया गया है। यह प्रयास गागर में सागर भरने जैसा है।

स्त्री-शिक्षा की पहली पुस्तक :

साहबप्रसाद सिंह ने अपने मित्र गंगाप्रसाद मिश्र और सारन जिले के शिक्षा-निरीक्षक मुंशी रामप्रकाश लाल से प्रोत्साहन पाकर इस पुस्तक की रचना स्त्री-समाज के लिए की। यह सन् १८८४ ई० में छपी। इसमें हिन्दी की वर्णमाला का ज्ञान दिया गया है। सामान्य ज्ञान की बातें भी हैं। अभ्यास के लिए १५ अभ्यास-पाठ दिये गये हैं। हिन्दी-ग्रन्थ के अध्ययन की दृष्टि से इसके अभ्यास-पाठों से उदाहरण लिये जा सकतें हैं।

"नित्य परिश्रम करने का अभ्यास करो। श्रम करने से शरीर चंगा और आरोग्य रहता है। फिर धन, विद्या आदि प्रत्येक वस्तु श्रम के द्वारा ही मिलती है। ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो बिना परिश्रम किये हाथ लग सके। जो तुम नित्य परिश्रम करने का अभ्यास करो तो उसमें बड़े लाभ हैं। खोटी संगत और कुविषयों से बचे रहोगी।"[१]

दूसरी पुस्तक :

यह स्त्री-शिक्षा की दूसरी पुस्तक है। इसमें महिला-विषयक अनेक गद्य-लेखों का संकलन किया गया है। इसमें अधिकतर सामग्री 'बाल-बोधिनी' मासिक पत्रिका से ली गई है। लज्जा, पतिव्रता, सास, ससुर, जिठानी, देवर, देवरानी आदि से किस ढंग का व्यवहार करना चाहिए, इसकी शिक्षा दी गई है। अपने को पारिवारिक जीवन का अभ्यस्त किस ढंग से करना चाहिए—इन सभी विषयों पर विशेष रूप से इस पुस्तक में विचार किया गया है।

भाषातत्त्व-बोध :

यह ७२ पृष्ठों की पाठ्य-पुस्तक है। ज्ञान-विषयक ५२ पाठ हैं, जिनमें छोटी-छोटी कहानियाँ संकलित की गई हैं। सभी कहानियाँ बालोपयोगी हैं। इसके पाठ का एक उदाहरण है :

---

१. स्त्री-शिक्षा की पहली पुस्तक, पृ० ४१

बनारस में एक चौबेजी ने किसी स्थान पर कितने एक विद्यार्थियों को हिलमिल-कर पढ़ते देख किसी पण्डित से प्रश्न किया :

झुकत-झुकत विद्यारथी कहा बदे कहा बार।
मैं तोहि पूछूँ हे सखे, याको कौन विचार॥

उत्तर दिया :

आगे समुद अगम्य है, अपने बैठ करार।
रतन लैन को झुकत है, झिझकत देख अपार॥[1]

सज्जन-विलास (प्रथम भाग) :

सन् १८८३ ई० में प्रकाशित इस पुस्तक में ७ विभिन्न उपयोगी लघु निबन्धों का संग्रह है। वे हैं : बुद्धि-विद्या, छापने की विद्या, कागज बनाने की रीति, प्राचीन काल में कागज था कि नहीं, घास का कागज, कागज की परतें जुदा करने की तरकीब और कोहिनूर हीरे का वृत्तान्त।

काव्यकला :

यह १५२ पृष्ठों की पुस्तक है। यह भारतेन्दु-युगीन कवियों की समस्या-पूर्त्तियों का संग्रह है। इस संग्रह में जिन कवियों की रचनाएँ हैं, उनके नाम हैं—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, साह कुन्दनलाल, हनुमान्, राधाचरण गोस्वामी, सेवक, मदनमोहन मालवीय, लक्ष्मण, सरयूप्रसाद मित्र, मन्नालाल, कमलापति, जानी, बिहारीलाल, जवाहरलाल, पण्डित सन्तोष सिंह, शोभनलाल, मार्कण्डे, मुंशी पोषनारायण लाल, मुंशी विन्ध्येश्वरीप्रसाद, लाडलीप्रसाद गोस्वामी, बलदेवदास, कृष्णलाल, बाबा सुमेर सिंह, सरदार कवि, नर्मदेश्वरप्रसाद सिंह, श्रीधर शाही, व्रजवल्लभदास सेठ, यज्ञदत्त तिवारी, लाला दयालदास खत्री, कविराज मुरारीलाल, अम्बादत्त, नाथकवि, रघुनाथ सिंह, दामोदर कवि, अम्बिकादत्त व्यास और लाल खड्गबहादुर मल्ल।

इस संग्रह में भारतेन्दु, अम्बिकादत्त व्यास और सुमेर सिंह की पूर्त्तियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। इस संग्रह में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का सवैया द्रष्टव्य है :

न्यौते नन्द गाँव आई नवल दुल्हैया बीच
मारग मैं नन्दलाल प्रेम चरचा करी।
हा हा खाइ नैनन नचाइ मुख पान माँग्यो
ह्वै के लोकनाथ चाही रूप की भीख चाकरी॥
'हरिचन्द' गर भुज डारि खोलि घूँघटहि
कण्ठ लाइ चूम्यौ मुख जदपि हहा करी।
लोक लाज भीनी रीझी रूप जाल प्रेम भरी
साँकरी गली में प्यारी हाँ करी न ना करी॥

---

१. भाषातत्त्व-बोध, पृ० १६

इस संकलन का प्रयास श्लाघ्य है। सुता-प्रबोध, सुन्दरकाण्ड रामायण, पहाड़ा-प्रकाश, हिन्दी की पहली पोथी और मयंक-संग्रह अपने शोध-कार्य के सिलसिले में कहीं देखने को नहीं मिले। इसलिए सुनी-सुनाई बातों को तथ्य मानकर उनपर अभिमत प्रकट करना उपयुक्त नहीं है।

गणित-बत्तीसी (चार भाग) : सन् १८८४ ई०

खड्गविलास प्रेस से इस पुस्तक का चार भागों में मुद्रण-प्रकाशन हुआ था। यह संस्करण कैथी-लिपि में मुद्रित था। पहले भाग में ६४ पृष्ठ, दूसरे में ३७ पृष्ठ, तीसरे में ५७ पृष्ठ और चौथे में ६१ पृष्ठ हैं। इस पुस्तक में गणित, देशी हिसाब और रेखा-गणित के प्रश्नों के लिए कुछ सूत्र पद्यबद्ध दिये गये हैं। सूत्रों को याद करने में सुविधा है।

शिवनन्दन सहाय

खड्गविलास प्रेस के साहित्यकारों में शिवनन्दन सहाय का नाम प्रमुख है। आधुनिक साहित्य के सन्दर्भ में और चरित-लेखन की दृष्टि से सहायजी सुरुचि-सम्पन्न साहित्यकार थे। खड्गविलास प्रेस से सुसम्बद्ध और रामदीन सिंह के स्नेहियों में इनका विशेष स्थान था।

शिवनन्दन सहाय का जन्म वर्त्तमान भोजपुर जिले के आरा नगर के समीपवर्त्ती अख्तियारपुर ग्राम में कायस्थ-परिवार में आश्विन-शुक्ला द्वितीया, सोमवार, संवत् १९१७ वि० को हुआ था। सहायजी का परिवार सुशिक्षित था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर हुई। उन्होंने मौलवी करामत अली से फारसी और उर्दू पढ़ी। तदनन्तर आधुनिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए आरा जिला स्कूल में पढ़ने लगे। वहीं से इन्होंने सन् १८८० ई० में मैट्रिक की परीक्षा पास की। तदनन्तर पटना-कचहरी में नौकरी कर ली। अनुवादक का काम करते थे। सन् १९१५ ई० में राजकीय सेवा से निवृत्त होकर आरा में रहने लगे। आरा में १० मई, १९३२ ई० को इनका निधन हुआ।

सहायजी आरा नागरी-प्रचारणी-सभा के संस्थापकों में थे। इसके पुस्तकालय को सुसज्जित करने और आरा में साहित्यिक वातावरण का निर्माण करने में इनका उल्लेखनीय योगदान था। 'आरा नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' के सम्पादन और लेख जुटाने में इनका अत्यधिक सहयोग था। इन्हीं के सत्प्रयास से सभा ने कई ग्रन्थ प्रकाशित किये। उन ग्रन्थों में कइयों के लेखक ये स्वयं थे।

खड्गविलास प्रेस और सहायजी :

खड्गविलास प्रेस के लेखकों में शिवनन्दन सहायजी का हिन्दी-साहित्य के विकास में विशेष योगदान है। ये भारतेन्दु-युग के निष्णात साहित्यकार थे। जिन दिनों ये पटना में नौकरी करते थे, खड्गविलास प्रेस में नित्य उठते-बैठते थे। इनका आवास भी प्रेस के पास ही था। प्रेस में आयोजित साहित्यिक गोष्ठियों में सक्रिय रूप से भाग लेते थे। प्रेस के प्रकाशनों के लेखन में भी इनका योगदान रहता था। इन्होंने भारतेन्दु

और उनके युग के अनेक साहित्यकारों को देखा था और उनकी साहित्यिक गतिविधियों से सुपरिचित थे।

रामदीन सिंह के अधिक समीपस्थ होने के कारण इन्होंने प्रेस-पुस्तकालय का अध्ययन किया। हिन्दी-ग्रन्थों के अध्ययन की इन्हें पूरी सुविधा थी। इसलिए भारतेन्दु-युगीन साहित्यिक उन्मेष का गम्भीरता से इन्होंने अध्ययन किया। भारतेन्दु के निधन के बाद रामदीन सिंह हरिश्चन्द्र की बृहद् जीवनी लिखवाने को व्यग्र थे। भारतेन्दु के मित्र रामशंकर शर्मा व्यास ने उनकी जीवनी लिखने को कहा था, किन्तु वे लिख नहीं पाये। रामदीन सिंह ने यह कार्यभार शिवनन्दन सहाय को सौंपा। कड़ी मेहनत और निष्ठा के साथ इन्होंने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का उत्कृष्ट जीवन-वृत्तान्त लिखा। सहायजी के लिए भारतेन्दु के सम्बन्ध में प्रचुर लेखन-सामग्री जुटाई गई। प्रेस का पुस्तकालय उनके लिए खुला था ही। दुःख है कि रामदीन सिंह के जीवनकाल में भारतेन्दु की उक्त जीवनी पूरी न हो सकी थी, जिसके लिए वे अधीर रहा करते थे।

रामदीन सिंह की मृत्यु के पश्चात् खड्गविलास प्रेस के उत्तराधिकारी रामरणविजय सिंह से सहायजी का पहले ही जैसा अच्छा सम्बन्ध था। उन्होंने भी सहायजी को साहित्यिकों की जीवनी लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। यही कारण है कि भारतेन्दु-युग के सर्वोत्कृष्ट चरित्र-लेखकों में शिवनन्दन सहाय की गणना होती है। उनकी कई कृतियों का प्रकाशन खड्गविलास प्रेस से हुआ। उनकी कुछ कृतियाँ आरा नागरी-प्रचारिणी सभा से भी छपी थीं। यहाँ उनकी उन रचनाओं का ही विवेचन अभीष्ट है, जिनका प्रकाशन खड्गविलास प्रेस से हुआ था।

रचनाएँ : जीवनी : (१) सचित्र हरिश्चन्द्र की जीवनी, (२) साहबप्रसाद सिंह की जीवनी, (३) गौरांग महाप्रभु की जीवनी।

नाटक : (१) सुदामा नाटक, (२) गोसंकट नाटक।

कविता : (१) कविता-कुसुम, (२) विचित्र संग्रह।

सचित्र हरिश्चन्द्र (सन् १९०५ ई०) :

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के महाप्रयाण के बाद प्रथम प्रामाणिक जीवन-चरित और उनकी कृतियों का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत करनेवाली यह पुस्तक है। हरिश्चन्द्र के जीवन और कृतित्व पर इतने विस्तार के साथ पहली बार विवेचन प्रस्तुत किया गया। इसका प्रथम संस्करण सन् १९०५ ई० में और दूसरा, सन् १९०७ ई० में प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में २८ अध्याय हैं। हरिश्चन्द्र के वंश का इतिहास, हरिश्चन्द्र की जीवनी, उनकी रचनाओं की समीक्षा, उनकी सम्पादित पत्र-पत्रिकाओं का समीक्षात्मक परिचय, उनकी मित्र-मण्डली का संक्षिप्त परिचय और भारतेन्दु के नाम विभिन्न लेखकों के पत्र इस ग्रन्थ की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं। जीवनी-लेखन-शैली का इसमें बहुत अच्छा उपयोग हुआ है।

साहबप्रसाद सिंह की जीवनी (सन् १९०७ ई०) :

साहबप्रसाद सिंह खड्गविलास प्रेस के संस्थापक-त्रयी में गणनीय और प्रेस के प्रबन्धक-संचालक थे। उनके इक्कीस वर्ष के कार्यकाल में प्रेस का सर्वाधिक विकास हुआ। उनका

सन् १९०१ ई० में शरीरान्त हुआ। उनके निधन से रामदीन सिंह को गहरी चोट लगी। साहबप्रसाद सिंह ने हिन्दी की प्रचारात्मक सेवा की थी, अतः ऐसे साहित्य-सेवी के जीवन-चरित का लिखा जाना आवश्यक था। शिवनन्दन सहाय का खड्गविलास प्रेस से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध था। साहबप्रसाद सिंह से इनकी घनिष्ठ मित्रता थी। इसलिए रामरणविजय सिंह ने शिवनन्दन सहाय से साहबप्रसाद सिंह की जीवनी लिखने का आग्रह किया। यह जीवनी भी रामदीन सिंह के निधन के चार वर्ष बाद सन् १९०७ ई० में प्रकाशित हुई।

यह ६८ पृष्ठों की पुस्तक है। उनकी जीवनी के सन्दर्भ में उनके मित्रों में जहाँ प्रतापनारायण मिश्र, बी० ए० ग्रियर्सन, भूदेव मुखोपाध्याय और दामोदर शास्त्री का उल्लेख हुआ है, वहाँ उनकी संक्षिप्त जीवनी प्रस्तुत की गई है। इस पुस्तक में उनकी रचनाओं का संक्षिप्त समीक्षात्मक परिचय भी दिया गया है। पुस्तक के अन्त में उनके शोक में लिखी गई समकालीन कवियों की रचनाओं का संकलन है। इस पुस्तक के अध्ययन से उनके जीवन-दर्शन और खड्गविलास प्रेस के उत्थान के लिए किये गये सत्प्रयत्नों की जानकारी मिलती है।

गौरांग महाप्रभु की जीवनी (सन् १९२७ ई०) :

जीवनी-लेखन के क्रम में शिवनन्दन सहाय की यह तीसरी और अन्तिम रचना है। इस कृति का प्रथम संस्करण सन् १९२७ ई० में प्रकाशित हुआ था। बंगाल के प्रख्यात वैष्णव भक्त चैतन्य महाप्रभु के जीवन के विविध पक्षों पर विस्तृत रूप से प्रकाश डालने-वाली सम्भवतः यह पहली प्रामाणिक पुस्तक है।

इस पुस्तक के प्रकाशन के पूर्व यह रचना लखनऊ से प्रकाशित **'माधुरी'**[1] और खड्ग-विलास प्रेस से प्रकाशित पत्रिका साप्ताहिक **'शिक्षा'**[2] में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक में चैतन्य महाप्रभु के जन्म से तिरोधान-काल तक की घटनाओं को रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इस कृति के ५०१ पृष्ठों में उनके जीवन के विविध पक्षों का सप्रमाण विवेचन किया गया है।

कुसुमकुंज (सन् १९२७ ई०) :

शिवनन्दन सहाय की यत्र-तत्र प्रकाशित फुटकल कविताओं का संकलन सन् १९२७ ई० में खड्गविलास प्रेस से 'कुसुमकुंज' के नाम से प्रकाशित हुआ था।

प्रकाशकीय वक्तव्य में प्रेस के संचालक बाबू शार्ङ्गधर सिंह ने लिखा है कि "शिव-नन्दन सहाय बिहार के वृद्ध हिन्दी-सेवक हैं। आपकी कीर्त्तियों को सुरक्षित रखना उचित जानकर उनमें से कतिपय कविताएँ अन्यत्र प्रकाशित कविताओं के साथ इस 'कुसुमकुंज' में संकलित की गई हैं। इस कुंज से विविध भाँति की सुगन्धियाँ निकल रही हैं, जो रस में विहार करनेवाले रसिकों को अवश्य आमोद-प्रदायिनी होंगी।

---

१. 'माधुरी', वर्ष २, खण्ड २, संख्या ४, पृ० ४४४-५७; ११ मई, १९२४ ई०

२. 'शिक्षा', खण्ड २९, संख्या १२; १८ जून, १९२५ ई०

इन कविता-कुसुमों को विकसित करनेवाले पुराने जमाने के आदमी हैं। किन्तु, ढंग सर्वथा पुराना नहीं है। कविताएँ आधुनिक छवि भी प्रदर्शित करती हैं। पर, भाषा ब्रज-भाषा और शैली पुरानी ही है।"[१]

इस संकलन में उनकी २७ कविताएँ संकलित की गयी हैं। इसमें उनकी अधिकतर कविताएँ ब्रजभाषा की हैं, जो राधा-कृष्ण के शृंगार-प्रेम एवं ऋतु-वर्णन आदि से सम्बन्धित हैं। कविता में वे 'शिव' नाम से लिखते थे।

उन्होंने अपनी कविता में विश्व-प्रसिद्ध सोनपुर मेले का एक चित्र प्रस्तुत किया है, जिसमें मेले की एक झांकी मिलती है :

चलहु चलहु मम मीत पियारे,
हरिहर - क्षेत्र सुहावन।
तीर्थ पुरातन कह सब गुरजन,
मनभावन अति पावन ॥
ग्राहहिं मारि गयन्द उबार्यौ,
ह्यां परसिद्ध सुगाथा।
दरसन तें काली अरु सिव के,
ह्वैहहु अवसि सनाथा ॥
इक दिसि कलकल नादिनी गंगा
धारा स्वच्छ बहावति।
प्रेमोन्मादिनी गंडकि धावति
सुरसरि अंक समावति ॥
घण्ट संख नफीरी बाजत,
हर-हर लोग उचारत।
अपर दिसा सों करिवर झूमत,
रहि रहिके चिक्कारत ॥
कहुँ हिहिनात समूह अस्व के
कहुँ गो बैल सुहावत।
तिमि गौरांग बहुत उद्यानहिं
बहु घुड़दौड़ मचावत ॥
चहुँ दिसि धूम भयानक घेरत
होत जबै निसिकाला।
लम्पट चोर फिरत निसुवासर
करत कुकर्म कराला ॥

१. कुसुमकुंज : वक्तव्य, पृ० १

करहु करहु जिन चिन्ता वाकी
लहु बरस सुख लाहा।
जय जय हरिहरनाथ कहु तुम
सिव कहे मानि सलाहा ।।

उनके इस काव्य-संकलन से उनकी भावयित्री प्रतिभा की जानकारी मिलती है।

गोसंकट नाटक :

यह नाटक मूलतः हिन्दी में लिखा गया है। इसके रचयिता पण्डित अम्बिकादत्त व्यास हैं। इसी पुस्तक का अँगरेजी-अनुवाद सहायजी ने किया था।

कविता-कुसुम और विचित्र संग्रह :

उपर्युक्त दोनों कृतियाँ अँगरेजी-कविताओं के हिन्दी-अनुवाद हैं। अध्ययन-क्रम में दोनों पुस्तकें सुलभ नहीं हो सकीं, अतः इनके सम्वन्ध में कोई अभिमत प्रकट करना ठीक नहीं।

सुदामा नाटक :

श्रीमद्भागवत की कथा के आधार पर हिन्दी में अनेक 'सुदामा-चरित' काव्य रचित हुए। उसी तथ्य के आधार पर उपर्युक्त नाटक लिखा गया और विषय भी वही है। यह तीन अंकों और नौ दृश्यों का नाटक है। नाटक की प्राचीन परिपाटी के अनुसार इसमें नाट्य-प्रस्तावना का विधान है। नाट्य-प्रस्तावना के माध्यम से नाटककार अपना प्रशंसात्मक परिचय प्रस्तुत करता है।

इस नाटक के नौ दृश्यों में सुदामा की द्वारिका-यात्रा, श्रीकृष्ण के दर्शन और श्रीकृष्ण द्वारा बहुरी लेकर उनकी दरिद्रता का निवारण तक की वस्तु गृहीत है। सुदामा अपनी नगरी में आकर भ्रमित हो जाते हैं। पुनः सारी बातें जानने के बाद वे सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं। इस नाटक में नाटककार का अपना कुछ भी नहीं प्रतीत होता। नाटक के पहले दृश्य में सुदामा और उनकी पत्नी का वार्त्तालाप पद्य में होता है। इससे नाटक बोझिल-सा हो गया है। निष्कर्ष यह कि यह नाटक सामान्य स्तर का है।

हिन्दी-पत्रकारिता और खड्गविलास प्रेस

हिन्दी-पत्रकारिता का उद्भव

उन्नीसवीं सदी हिन्दी-भाषा और साहित्य का नवजागरण-काल है। इसी समय विज्ञान की प्रगति और अँगरेजी शिक्षा के प्रचलन से भारत देश में आधुनिकता का प्रसार हुआ। पत्रकारिता आधुनिक जागरण और सभ्यता की देन है। पत्र-पत्रिकाएँ आधुनिक सभ्यता के अविभाज्य अंग हैं।

भारत में आधुनिकता का प्रवेश वंग-वातायन से हुआ। इसका प्रसार उत्तरोत्तर विभिन्न भागों में हुआ। वंगभूमि आधुनिकता के उदय की भूमि है और पत्रकारिता इस युग की उपलब्धि है, इसलिए वंगप्रदेश पत्रकारिता की जन्मभूमि है। वंगप्रदेश की राजधानी कलकत्ता में हिन्दी-पत्रकारिता का अभ्युदय हुआ और इसका विकास क्रमशः हिन्दी-भाषी प्रदेशों के विभिन्न अंचलों में हुआ। हिन्दी-भाषा का पहला पत्र कलकत्ता से ही प्रकाशित हुआ।

हिन्दी का पहला पत्र : उदन्तमार्त्तण्ड (सन् १८२६ ई०) :

हिन्दी-पत्रकारिता का जन्म-स्थान कलकत्ता वाणिज्य-व्यापार और उद्योग-धन्धे का प्रमुख केन्द्र रहा है। कानपुर-निवासी पण्डित जुगुलकिशोर सुकुल नौकरी की तलाश में कलकत्ता गये। उन्हें वहाँ की सदर दीवानी अदालत में नौकरी मिली और प्रोसीडिंग-रीडर के पद पर नियुक्त हुए। वे बाद में उसी अदालत में वकालत करने लगे। कलकत्ता के प्रवास-काल में उन्हें प्रबुद्ध वंगीय समाज के सम्पर्क में आने का अवसर मिला। वहाँ के आधुनिक परिवेश से उन्हें हिन्दी-भाषा में पत्र-प्रकाशन की प्रेरणा मिली। वहाँ उन दिनों बँगला और अँगरेजी में पत्रों के प्रकाशन हो रहे थे। इससे भी उन्हें प्रोत्साहन मिला। उन्होंने हिन्दी में पत्र-प्रकाशन के लिए बंगाल-सरकार के तत्कालीन मुख्य सचिव, सी० लुशिंगटन को ६ फरवरी, १८२६ ई० को हिन्दी-भाषा और देवनागरी लिपि में साप्ताहिक पत्र 'उदन्तमार्त्तण्ड' के प्रकाशन के लिए अनुमति की माँग करते हुए निम्नांकित आवेदन-पत्र लिखा :

To

C. Lushington Esqre.

Chief Secretary to Govt.

Sir,

Being desirous of publishing a weekly newspaper in the Hindee Language and Deonagree character, to be entitled the 'Oodantmartand' I beg leave to forward herewith the requisites affidavit verified solomn

declaration by myself and Munnoo Thakur before a Magistrate, and to submit the sanction and authority of Government for the same.

I am Sir,

Calcutta,
9th Farvery, 1826.

Your most obdt. & sincer. Servant
Joogulkishore Sookool.[1]

इस आवेदन-पत्र के साथ ही पण्डित जुगुलकिशोर सुकुल ने पत्र-प्रकाशन के लिए ६ फरवरी, १८२६ ई० को एक घोषणा-पत्र भी दाखिल किया :

Joogul Kishore Sookool of Colootolla in Calcutta Proceeding Reader to the Sadder Dewany......and Munnoo Thakur of Banstullah Gully in Calcutta printer, jointly and severally solemnly declare that the said Joogulkishore Sookool is interested to be the Publisher, and the said Munnoo Thakur to be the Printer of a certain Weekly Newspaper in the Hindee language and Devnagree Character to be called the Oodunt Martund or The Sun of Intelligence, and that no person or persons is or are employed or engaged or interested to be......or engaged in the printing and publishing of the said Newspaper save and except the said Joogulkishore Sookool and Munnoo Thakur and these Declarations from them say that the said Joogulkishore Sookool is the proprietor of the said Newspaper and that no person or persons is or are interested in it save and except the said Joogulkishore Sookool. And these Declarants further say that the said Joogulkishore Sookool is the Editor of the same Newspaper, and that no person or persons is or are engaged or employed or interested to be engaged in conducting the same, save and except the said Joogulkishore Sookool. And these Declarants hereby say, that the name of the said newspaper is interested the Oodunt Martand or the Sun of Intelligence, and that the said newspaper is interested to be printed and published at No. 37, in Amratullah Lane in Calcutta.

Solemnly declared here
on the 9th day of Farwary 1826
at the Calcutta Police Office.

Joogul Kishore
मुन्नू ठाकुर[2]

सुकुलजी के आवेदन-पत्र पर गवर्नर जेनरल की परिषद् में विचार किया गया। पण्डित जुगुलकिशोर सुकुल को पत्र-प्रकाशन की अनुमति देते हुए मुख्य सचिव, श्री सी० लुशिंगटन ने लिखा :

"J. K. Sookool having applied to the Right Honourable the Governor General in Council for a licence to print and publish in Calcutta, weekly newspaper in Hindee language and Deo Nagaree Character, entitled and called the 'Oodunt Martand' and having delivered to the

१. होम पब्लिक रिकार्ड-सं० ५७ : १६ फरवरी, १८२६ ई०
२. होम पब्लिक रिकार्ड-सं० ५८ : १६ फरवरी, १८२६ ई०

Chief Secretary to Government the requisite affidavit, subscribed and verified by a solemnly declaration by them, the said J. K. Sookool and Munnoo Thakur. The Governor-General in council does hereby authorise and empower the said Munnoo Thakur to print and publish in Calcutta at No. 37, Amratullah Lane being the house or place in the said Affidavit and not elsewhere, a newspaper to be called the 'Oodunt Martand' and not otherwise whereof the said Munnoo Thakur and no other person or persons is or are to be the printer and publisher and the said Joogul Kishore Sookool and no other person or persons are to be Proprietor.

By Order of

The Right Honourable the Governor-General in Council.
This 16th February, 1826.
C. Lushington, Chief Secretary to Government.[१]

पण्डित युगलकिशोर शुक्ल ने जिस उत्साह से हिन्दी-भाषी पाठकों को आधुनिक विचारों की जानकारी देने के लिए 'उदन्त मार्त्तण्ड' का प्रकाशन किया, वह मनोरथ नहीं पूरा हुआ। वह अधिक दिनों तक हिन्दी की सेवा नहीं कर सका। एक वर्ष सात माह की अवधि (३० मई, १८२६ ई०—४ दिसम्बर, १८२७ ई०) में उसके कुल ७६ अंक प्रकाशित हुए। आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। उसके प्रकाशन के आरम्भ से कठिनाइयाँ शुरू हो गयीं थीं। उस पत्र के सम्पादक ने सरकार से अनुरोध किया कि उसकी कुछ प्रतियाँ, ८ अंकों तक, डाक से मुफ्त भेजने की सुविधा दी जाय।

उन्होंने उपर्युक्त सुविधाओं के लिए सरकार को लिखा था :

To

H. Shakespeare Esqr.
Secretary to Government
Judicial Department.

Sir,

With due submission I most respectfully take the liberty to introduce upon your valuable time with this humble address, and to solicit that you will be pleased to lay it before His Excellency the Right Hon'ble the Governor General in Council for His Lordship's liberal consideration and sanction.

That having recently by permission of Government established and weekly newspaper in the Hindee language and Nagree Character called the 'Oodunt Martund'—for the purpose of conveying valuable and useful knowledge to my countrymen. I am desirous to circulate my paper as widely as possible and to the utmost extent of the British Dominion

१. होम पब्लिक कन्सल्टेशन, संख्या ५९, १६ फरवरी, १८२६ ई०

in the East, Recovering that the result of such a circulation will team with many advantages to the public and be beneficial to their interests. Impressed with this idea, I have most respectfully to solicit that the first eight numbers of my newspaper be allowed to be passed through the General Post Office, free of charge into the Mofassil where most of my countrymen reside, in order that they may be informed of the existence in Calcutta of such a Nagree Paper as the 'Oodunt Martund.'

I am well aware that the British Government has in many instances manifested considerable zeal in the cause of Literature in the East, and in the promotion of knowledge and virtue, and that its character is too noble and independent to express the growth of Literature under such conviction. I humbly trust that my solicitation will be complied with.

I further beg to state that I will scrupulously attend to the regulations of Government, regarding the better conduct of the papers in Calcutta, and that it will be my prime object to instil into the minds of my readers a reverence for the reigning power in India.

I have the honour to be,

Calcutta,
Sir,
Amarahtullah Lane,
Yours most obedient servant.
of Collootollah No. 37,
27th June, 1826.
Joogulkishore Sookul.[१]

पर सरकार ने शुक्लजी के आवेदन को अस्वीकृत कर दिया। केवल उन्हें एक अंक मात्र मुफ्त भेजने की अनुमति दी।

To

Joogul Kishore Sookul.

Your letter addressed to the Secretary to Government in the Judicial Deptt. having been laid before the Hon'ble I am directed to inform you that you cannot be permitted to circulate so many as eight numbers of your newspaper to the several stations in the interior free of Postage, but the P. Secy. will be authorised to permit the first or any single number of this publication to pass free of charge to the stations in **question.**[२]

C. C.

29 of June, 1826.

इस प्रकार १६ फरवरी, १८२६ ई० को हिन्दी का पहला समाचार-पत्र **'उदन्त मार्त्तण्ड'** के कलकत्ता से प्रकाशन के लिए पण्डित युगलकिशोर शुक्ल को अनुमति प्राप्त हो गई। उसके प्रकाशन से पूर्व उसके संचालक-सम्पादक पण्डित युगलकिशोर शुक्ल ने

१. होम डिपार्टमेण्ट पब्लिक कन्सल्टेशन 'सी', सं० ६४; २९ जून, १८२६ ई०
२. वही, सं० ६५, २९ जून, १८२६ ई०

अनुष्ठान-पत्र जारी किया। उस अनुष्ठान-पत्र को बँगला-पत्र 'समाचार-चन्द्रिका' ने प्रकाशित किया। अनुष्ठान-पत्र में कहा गया था—"अन्तर्वेद देशान्तर्गत कान्हपुर ग्राम-निवासी स्वदेश-जन-सुखाभिलाषी कान्यकुब्ज जातीय श्रीयुत युगलकिशोर शुक्ल ने, जाड्यरूपी तिमिर से आच्छादित हिन्दुस्थानी लोगों के विद्यारूपी मणि पर प्रकाश डालने 'उदन्तमार्तण्ड' का प्रकाशन करेंगे। इस उदन्तमार्तण्ड का मूल्य दो रुपये मासिक स्थिर हुआ है। जिन-जिन महाशयों को इस समाचार-पत्र को लेना वांछित हो, वे मुकाम आमड़ातला गली के ३७ नं० के मकान में आदमी भेजने से जान जायँगे।"[१]

'उदन्त मार्त्तण्ड' का प्रथम अंक मंगलवार, ३० मई, १८२६ ई० को (ज्येष्ठ बदी ९, १८८३ वि०) मार्त्तण्ड प्रेस से मुद्रित होकर मुन्नू ठाकुर द्वारा कोल्हूटोला के ३७, अमड़ा-तला गली से प्रकाशित हुआ। उसका आकार फुलस्केप था। हर मंगलवार को वह छपता था। मूल्य दो रुपये प्रतिमास और एक प्रति के आठ आने। उसके प्रथम अंक के ऊपर संस्कृत का निम्नलिखित श्लोक छपा था :

> दिवाकान्त कान्तिविना ध्वान्तमन्तं न चाप्नोति तद्वज्जगत्यज्ञलोकः।
> समाचारसेवामृते ज्ञप्तिमाप्तुं न शक्नोति तस्मै तस्मात्करोमीति यत्नः॥

सूर्य के प्रकाश के विना अन्धकार समाप्त नहीं होता, उसी प्रकार अपढ़ समाज भी संसार में समाचार (पत्र) की सेवा के विना ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। अतएव यह प्रयत्न कर रहा हूँ।

'उदन्त मार्त्तण्ड' में प्रकाशित संस्कृत-श्लोक के नीचे हिन्दी में निम्नलिखित दोहा छपता था :

> दिनकर-कर प्रगटत दिनहिँ यह प्रकाश अठयाम।
> ऐसो रबि अब उग्यो महि जेहि तेहि सुख को धाम॥
> उत कमलनि बिकसित करत, चढ़त चाव चित बाम।
> लेत नाम या पत्र को होत हर्ष अरु काम॥

उस पत्र के प्रत्येक अंक के अन्त में संस्कृत का निम्नलिखित श्लोक छपता था :

> युगलकिशोरः कथयति धीरः सविनयमेतत् सुकुलजवंशः।
> उदिते दिनकृति सति मार्त्तण्डे तद्वद्विलसति लोक उदन्ते॥

—अर्थात् शुक्लवंशीय विवेकी युगलकिशोर (विवेकी युगलकिशोर शुक्ल) विनम्रता से कहते हैं कि (जिस प्रकार) सूर्य के निकलने पर संसार सुशोभित (प्रफुल्लित) होता है, उसी प्रकार 'उदन्त मार्त्तण्ड' के निकलने पर भी होगा।

उपर्युक्त श्लोक के नीचे प्रत्येक अंक में निम्नलिखित विज्ञापन या सूचना छपती थी :

"यह उदन्त मार्तण्ड कलकत्ते के कोल्हूटोला के अमड़ातला की गली के ३७ अंक की हवेली के मार्तण्ड छापा में हर सतवारे मंगलवार को छापा होता है जिनको लेने का काम पड़े वे उस छापाघर में अपना नाम भेजने ही से उनके समीप भेजा जायगा। उसका

---

१. 'विशाल भारत', भाग ७, अंक २, पृ० १९३-१९४

मोल आठ आने अंक लगेगा। जिन्होंने सही की है जो उनके पास कागज न पहुँचे तो उस छापाखाने में कहला भेजने ही से तुर्त उनके यहाँ भेजा जायगा।"

उसके संचालक-सम्पादक पण्डित युगलकिशोर शुक्ल ने पत्र-प्रकाशन के उद्देश्य के सम्बन्ध में कहा है :

"यह उदन्त मार्तण्ड पहले-पहल हिन्दुस्तानियों के हित के हेत जो आजतक किसी ने नहीं चलाया पर अंग्रेजी और पारसी औ बंगले में जो समाचार का कागज छपता है उसका सुख उन बोलियों के जानने और पढ़ने वालों को ही होता है। इससे सत्य समाचार हिन्दुस्तानी लोग देखकर आप पढ़ ओ समझ लेंय और पराई अपेक्षा न करें ओ अपने भाषा की उपज ने छोड़े इसलिए बड़े दयावान करुणा और गुणनि के निधान सबके कल्याण के विषय गवर्नर जेनरल बहादुर की आयस से अैसा साहस में चित्त लगायके एक प्रकार से यह नया ठाट ठाटा।"

उस पत्र में बाजार-भाव, जहाज का समय, देश-विदेश के समाचार, समकालीन विभिन्न भाषाओं के पत्रों की समीक्षा और मनोरंजक समाचार छपते थे। पत्र के आषाढ़ बदी १, संवत् १८८३ विक्रमी के अंक में मनोरंजक समाचार इस प्रकार छपा था :

फारसी देश की खबर

"कहते हैं कि बादशाह गरदी के रौले में एक ठौर बहुतेरे आदमी मारे गए थे। एक दिन एक आदमी ने एक मुरदे की जोरु को उस जगह जाते देखा ओ ठंढी साँस लेके यह बोला कि परमेश्वर की इच्छा अैसी ही थी तेरा स्वामी संसार से उठ गया इसमें क्षमा के सेवाय कुछ उपाय नहीं है तू अपने जी को समझा। उसने उत्तर किया कि इसमें क्या सन्देह है कि जो होना था सो हो चुका मैं यह देखने आई हूँ कि घर की कुंजी उसकी खलीती में है या नहीं कुंजी न पाऊँ तो घर कैसे जाऊँ वह सुनकर एकटक लगा रहा।"

सरकारी अधिकारियों के स्थानान्तरण के भी समाचार छपते थे। स्थानान्तरण का एक समाचार इस प्रकार है :

"राजकाज में नियोग

२१ एप्रिल १८२६ साल।

मैस्टर उलबिजेक्सन साहिब सदर दिवानी ओने जामत अदालत के रजस्टर के दूसरे सहायक हुए।"

देश के समाचार के अन्तर्गत गवर्नर बहादुर की खबर छपी थी :

"१६ और १७ सेप्टेम्बर की पटने की चिट्ठियों से समाचार भुगतने कि पटने में गवर्नर के साथ सब नावें आगे पीछे पहुँची....१६ की हिन्दुस्तानियों का दरबार हुआ। उस दरबार में बिहार के ओर के गिनती के जमीदार ओ पटने के रहीस सरदार लोग सब गए थे और इतने सरदारों को खिलअतें हुईं। पहले टिकरीवाले महाराज मित्रजीत सिंह को और दूसरे तिरहूत वाले दरभंगा के महराज छत्र सिंह को ओ चम्पारन के

बेतिया वाले राजा अनन्दकिशोर सिंह को। और शाहाबाद के जमीदार बाबू कुमार सिंह को खिलअतें मिलीं। हम सभों के आनन्द का विषय है कि यद्यपि सवेरे के पहर गरमी हुआ करती थी पर लार्ड साहिब इतने ओ और कितने अनगिनती आदमियों से मिलते थे परन्तु यह किसी ने न लिखा कि भेंट भवाई से उकता उठे।''

इस प्रकार उस पत्र में जनता की जानकारी की खबरें छापी जाती थीं।

पण्डित युगलकिशोर शुक्ल ने जिस उत्साह से हिन्दीभाषी पाठकों को आधुनिक विचारों की जानकारी देने के लिए 'उदन्त मार्त्तण्ड' का प्रकाशन किया, वह मनोरथ नहीं पूरा हुआ। वह अधिक दिनों तक हिन्दी की सेवा नहीं कर सका। एक वर्ष सात माह की अवधि में (३० मई, १८२६ से ४ दिसम्बर, १८२७ ई०) उसके कुल ७९ अंक प्रकाशित हुए। आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं था। उसके प्रकाशन के आरम्भ से कठिनाइयाँ शुरू हो गई थीं। उस पत्र के सम्पादक ने सरकार से अनुरोध किया कि उसकी कुछ प्रतियाँ ८ अंकों तक डाक से मुफ्त भेजने की सुविधा दी जाय। सरकार ने केवल प्रथम अंक के ही कुछ अंक मुफ्त भेजने की सुविधा दी जबकि उर्दू-पत्रिका 'जामेजहाँनुमा' को अनेक अंकों तक मुफ्त प्रतियाँ भेजने की सुविधा दी गयी। ग्राहकों की कमी हमेशा रही। शुक्ल जी ने लिखा है :

''शूद्र सेवा, चाकरी आदि नीच काम करते हैं, उन्हें पढ़ाई-लिखाई से मतलब नहीं। कायस्थ फारसी, उर्दू पढ़ा करते हैं, और वैश्य मुण्ड अक्षर सीखकर बही-खाता करते हैं, खत्री बजाजी आदि करते हैं, पढ़ते-लिखते नहीं, और ब्राह्मणों ने तो कलियुगी ब्राह्मण बनकर पठन-पाठन को तिलांजली दे रखी है, फिर हिन्दी का समाचार पत्र कौन पढ़े और खरीदे ?''

'फलतः उदन्त मार्त्तण्ड' ४ दिसम्बर, १८२७ ई० को इश्तहारपत्र प्रकाशित कर सदा के लिए अस्तंगत हो गया। उस पत्र का पौष वदी १, मंगलवार, १८८४ वि० का अंक अन्तिम अंक था। इसी अंक में उसके प्रकाशन की बन्दी की सूचना सम्पादक ने दी। उन्होंने कितनी व्यथा के साथ परिस्थितियों से विवश हो यह पत्र बन्द किया था, इसका अनुमान निम्नलिखित सूचना से किया जा सकता है :

'उदन्त मार्त्तण्ड' की यात्रा

आज दिवस लौं उग चुक्यौ, मार्तण्ड उदन्त।
अस्ताचल को जात है दिनकर दिन अब अन्त॥
चल्यौ सूर्य निज सदन युगल अपनौ कर खैंचौ।
अवहू के निमोह मेट आगे को चौ-चौं॥
गुण रबि को परकाश कहौ किम होय जड़नि महँ।
जहाँ जड़नि को मान ग्लान ह्वै हैं वोही कहँ॥

जबतें या कलकत्ता नगरी में उदन्त मार्तण्ड को प्रकाश भयौ तब लै आज दिवस लौं काहू प्रकार ते ढाढस बाँध विद्या के बीज वैबै को हिन्दुस्तानिअन के जड़ता के खेत को बहुविध जोत्यौ पहिले तों अैसी कठोर भूमि काहे कौ जुतै ताहू पै काया कष्ट कर जैसो तैसो हर चलाय वा क्षेत्र में गांठ को व्यू बखेर बड़े जतन तें सींच फल लुन्यौ चाह्यौ ता समय लोभ रूपी टीडी परिवा खेत के फल-फूल पाती सिगरी चरि गई अब जो फिरि या नशे क्षेत्र को गोड़िये तो श्रम ही कौ फल फलेगौ ।

यहाँ मुरख कौ नाम ज्ञान चर्चा को बूझै ।
हँसी तु अपनी रोक जगत अँधियारोहि सूझै ।।
जड़ता-जर नशि चल्यौ गात को होयगो पतझर ।
काको अहै प्रतीत बहुरि चलिहैं सुख बैहर ।।"

इस प्रकार हिन्दी का प्रथम समाचार-पत्र 'उदन्त मार्त्तण्ड' हिन्दी-भाषियों की अनभिरुचि और अनुत्साह से डेढ़ वर्ष-पर्यन्त प्रकाशित हो अस्तंगत हो गया। वह जनता का पत्र था। उसने युगसत्य को प्रकाशित करने और हिन्दीभाषी जनता को प्रगतिशील दृष्टि देने का प्रयत्न किया था। इस पत्र के प्रकाशन से हिन्दी-पत्रकारिता के विकास मार्ग खुल गया।

'बनारस-अखबार' (सन् १८४५ ई०) :

उपर्युक्त दोनों हिन्दी-पत्रों का प्रकाशन अहिन्दीभाषी क्षेत्र से हुआ। हिन्दीभाषी प्रदेशों में काशी साहित्य-साधना की दृष्टि से प्रतिनिधि नगरी रही है। हिन्दी-प्रदेशों में हिन्दी-पत्रकारिता की शुरुआत काशी में हुई। बाबू राधाकृष्ण दास के अनुसार हिन्दी-क्षेत्र में हिन्दी का पहला पत्र 'बनारस-अखबार' जनवरी, १८४५ ई० में काशी से प्रकाशित हुआ था। वह साप्ताहिक पत्र था। महाराष्ट्रीय ब्राह्मण पण्डित गोविन्द रघुनाथ थत्ते उसके सम्पादक थे। पत्र का वार्षिक मूल्य बारह रुपये था। पत्र का आदर्श वाक्य था :

सुबनारस अखबार यह शिवप्रसाद आधार ।
बुधि विवेक जन निपुन को चित हित बारम्बार ।।
गिरजापत नगरी जहाँ गंग अमल जलधार ।
नेत शुभाशुभ मुकुर को लखो विचार-बिचार ।।

'बनारस-अखबार' काशी के दूध-विनायक मुहल्ला-स्थित **मतबा बनारस अखबार** नामक लीथो प्रेस से मुद्रित-प्रकाशित होता था। पत्र के सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक पण्डित गोविन्द रघुनाथ थत्ते थे।

हिन्दी के अनेक विद्वानों ने इस 'शिवप्रसाद आधार' के आधार पर उस पत्र के संचालक-प्रकाशक के रूप में राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' का नामोल्लेख किया है, जो सर्वथा भ्रान्त है। हिन्दी के प्रसिद्ध विदेशी विद्वान् गार्सां द तासी ने सन् १८४७ ई० में अपनी कृति 'हिन्दवी साहित्य का इतिहास' में स्पष्ट लिखा था—"**प्रसिद्ध पत्र बनारस अखबार शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित होता है जो हिन्दी और देवनागरी अक्षरों में लिखा**

जाता है। कहा जाता है कि नेपाल के राजा, जिनकी धर्मपत्नी बनारस रहती हैं, इसकी आर्थिक सहायता करते हैं। इस पत्र के प्रत्येक अंक में सम्पादक न्यायशास्त्र के संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद देते हैं।"

राजा शिवप्रसाद सरकारी सेवा में तो आ गये थे, पर तबतक सरकारी शिक्षा-विभाग में उनका प्रवेश नहीं हुआ था। वे हिन्दी में अभिरुचि रखते थे।

सरकार में रहने के कारण उनका प्रभाव भी बाहरी समाज तथा सरकारी कार्यालय में था। सरकार के फारसी-विभाग में कार्य करते हुए युद्ध के दौरान राजासाहब की सेवाओं से सरकार बहुत लाभान्वित हुई थी और उसी का प्रतिफल था कि राजासाहब सन् १८४७ ई० में शिमला में मीरमुंशी नियुक्त किये गये थे। ऐसे प्रभावशाली व्यक्ति के संरक्षण से 'बनारस-अखबार' का सम्पादक, जो पत्र का मालिक था, का लाभान्वित होना अत्यन्त स्वाभाविक था। इसीलिए थत्ते महोदय ने अपने 'बनारस-अखबार' के आदर्शवाक्य में 'शिवप्रसाद आधार' का उल्लेख किया था। यह सम्भव है कि राजासाहब कभी-कभी उस पत्र में लिखते रहे होंगे, यद्यपि इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। थत्ते साहब महाराष्ट्री थे, फिर भी उन्होंने हिन्दी में पत्र निकालने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया था। इस पत्र के सम्पादन, प्रकाशन या उसके स्वामित्व से राजा साहब का सम्बन्ध जोड़ना सर्वथा भ्रम फैलाना है।

इस अखबार की भाषा के उदाहरण-रूप में प्रकाशित समाचार का अंश, बाबू राधाकृष्ण दास के अनुसार यह है : "यहाँ जो नया पाठशाला कई साल से जनाब कप्तान किट साहेब बहादुर के इहतिमाम और धर्मात्माओं के मदद से बनता है उसका हाल कई दफा जाहिर हो चुका है अब वह मकान एक आलीशान बन्ने का निशान तैयार हर चहार तरफ से हो गया बल्कि इससे नकशे का बयान पहिले मुंदर्ज है सो परमेश्वर के दया से साहब बहादुर ने बड़ी तंदेही और मुस्तैदी से बहुत बेहतर और माकूल बनवाया है।" समकालीन काशी-नरेश के विद्यागुरु मुंशी शीतल सिंह ने 'बनारस-अखबार' की इस खिचड़ी भाषा पर, बाबू राधाकृष्ण दास के अनुसार, एक रुबाई बनायी थी, जो इस प्रकार है :

बनारस में इक जो बनारस गजट है।
इबारत सब उसकी अजब ऊटपट है।
मुहर्रिर विचारा तो है बासलीका।
वले क्या करै वह कि तहरीर मट है॥

इस रुबाई में जिस 'बनारस-गजट' का उल्लेख है, वह 'बनारस-अखबार' से भिन्न उर्दू का अखबार था। यह गजट भी पण्डित गोविन्द रघुनाथ थत्ते के सम्पादकत्व में 'मतबा बनारस अखबार' से मुद्रित-प्रकाशित होता था। गार्सीद तासी ने 'बनारस-अखबार' के सम्बन्ध में लिखते हुए आगे कहा है :

"उसी छापेखाने से गोविन्द रघुनाथ उर्दू में लिखा गया बनारस गजट भी प्रकाशित करते हैं, जो प्रत्येक सोमवार को दो कालमों में आठ पृष्ठों के कापीबुक के आकार के चौपेजी पृष्ठों में निकलता है। इन दोनों पत्रों में ईसाई धर्म-प्रचारकों के विरुद्ध हिन्दू-धर्म

का समर्थन और पादरियों द्वारा बनारस में स्थापित स्कूलों का विरोध करते हैं। छापे की दृष्टि से ये दोनों पत्र अच्छे निकलते हैं।''

अतः इन तथ्यों के छानबीन से यह प्रमाणित होता है कि 'बनारस-अखबार' की भाषा का जो नमूना बाबूसाहब ने प्रस्तुत किया है, वह वस्तुतः **बनारस-अखबार** की भाषा का रूप नहीं, वरन् **बनारस-गजट** की भाषा का रूप है। वह गजट विशुद्ध उर्दू का पत्र था। उस युग के सन्दर्भ में, एक मराठी-भाषी व्यक्ति के सम्पादन में प्रकाशित उर्दू-भाषा के पत्र की भाषा का उपर्युक्त रूप होना अस्वाभाविक एवं आश्चर्य की बात नहीं। इसलिए, यह प्रतीत होता है कि बाबूसाहब ने जो कुछ भी **बनारस-अखबार** के सम्बन्ध में लिखा है, वह उनकी सुनी-सुनाई ही बातें हैं। ऐसा लगता है, उन्हें उक्त अखबार का अंक देखने को नहीं मिला था। बाबूसाहब की तुलना में तासी का विवरण अधिक प्रामाणिक प्रतीत होता है। दूसरी बात यह कि 'बनारस-अखबार' के आदर्श वाक्य से उसकी भाषा के खिचड़ीपन का बोध नहीं होता।

बनारस-अखबार तथा **बनारस-गजट** का प्रकाशन कबतक होता रहा, इसके सम्बन्ध में कोई सूचना नहीं मिलती, पर यह पत्र आठ-नौ वर्षों से अधिक जीवित नहीं रहा होगा; क्योंकि थत्ते महोदय सन् १८५४ ई० से 'आफताब-ए-हिन्द' नामक उर्दू पत्र का सम्पादन करने लगे थे।

इसके बाद हिन्दी में पत्र-प्रकाशन की परम्परा चल निकली। हिन्दी के अनेक पत्र निकले। उन्नीसवीं सदी के पाँचवें दशक में हिन्दी का पहला दैनिक पत्र 'समाचार-सुधा-वर्षण' प्रकाशित हुआ।

'समाचार-सुधा-वर्षण' (सन् १८५४ ई०)

हिन्दी-पत्रकारिता का विकास क्रमशः आरम्भ हुआ। इसका प्रारम्भ साप्ताहिक पत्र में और इसके विकास का क्रम दैनिक पत्र 'समाचार-सुधा-वर्षण' में दिखाई पड़ता है। साप्ताहिक 'उदन्त मार्त्तण्ड' की भाँति हिन्दी का प्रथम दैनिक पत्र कलकत्ता से ही प्रकाशित हुआ। उसके सम्पादक श्यामसुन्दर सेन थे। उन्होंने उस पत्र के प्रकाशन के सम्बन्ध में निम्नलिखित सूचना प्रकाशित कराई थी :

''यिह समाचार-सुधा-वर्षण पत्रिका रविवार को छोड़कर हर रोज प्रकाश होती है इस पत्रिका लेने वाले लोग एक बरिस की सही पहिले लिख देंगे तो पत्रिका मिलेगी इसका दाम १ रुपया।''[1]

'समाचार-सुधा-वर्षण' हिन्दी और बँगला का संयुक्त पत्र था। पत्र के आरम्भिक दो पृष्ठ हिन्दी में और शेष दो पृष्ठ बँगला में छपते थे। उस अखबार में स्थानीय, देशी, व्यापारिक और चामत्कारिक समाचार छापे जाते थे। अखबार समाचार-प्रधान न होकर विचार-प्रधान था। वह सरकारी नीति का आलोचक भी था। ऐसे विषयों पर सम्पादकीय भी लिखा जाता था। साथ ही भारतीय मूल्यों को जीवित रखने में वह

---

१. हिन्दी-पत्रकारिता, पृ० ४७

अत्यन्त सजग था। आश्विन बदी २, संवत् १९१२ वि० के अंक में 'दिल्ली' शीर्षक उसकी टिप्पणी इसका ज्वलन्त प्रमाण है :

"दिल्ली शहर में एक हलालखोरिन ने हलाली की रोटी छोड़के हरामी के रोटी पर उतारू होकर कसबी का पेशा उठाय लिया और वह थी रूपवती इसलिये एक गोरे चमड़े वाला साहेब उस हलालखोरिन पर आशक होकर उसको अपने घर में डाल लिया बदनामियों का टोकरा सिर पर उठा के दिल लगाना जो है वो झक मारना और गू का खाना है।"[1]

इस प्रकार विगत २५-२६ वर्षों में हिन्दी-पत्रकारिता क्रमशः विकसित होकर सामने आई। 'समाचार-सुधा-वर्षण' की भाषा पर बँगला का प्रभाव तो है ही, किन्तु 'उदन्त मार्त्तण्ड' और 'वंगदूत' की तुलना में उसकी भाषा बोधगम्य और सम्पादकीय विचार में विकास की झलक मिलती है। तासी के अनुसार यह पत्र सन् १८७३ ई० तक प्रकाशित हुआ, किन्तु इसका कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता। सन् १८६८ ई० तक इसके प्रकाशन की प्रामाणिक सूचना उपलब्ध है।[2]

हिन्दी-पत्रकारिता के विकास-क्रम का जो संक्षिप्त सर्वेक्षण ऊपर प्रस्तुत किया गया, इससे स्पष्ट है कि हिन्दी-पत्रों का प्रकाशन आधुनिक विचारधारा और ज्ञान-विज्ञान की जानकारी देने के लिए किया गया था। हिन्दी-पत्रकारिता का सही और निश्चित स्वरूप इसलिए सामने नहीं आ सका कि इन सभी अखबारों के सम्पादक एवं प्रकाशक साहित्यिक अभिरुचि-सम्पन्न नहीं थे। पत्रकार के लिए अपेक्षित बहुश्रुतता और गम्भीर दृष्टि उन लोगों में न थी। इसीलिए 'कवि-वचन-सुधा' के प्रकाशन के पूर्व तक (सन् १८६७ ई०) हिन्दी-पत्रकारिता को सही दिशा नहीं मिल सकी। फिर भी सन् १८२६ ई० से सन् १८६७ ई० के बीच हिन्दी-पत्रकारिता का विकास जिस क्रम से हुआ, वह साधन और सुविधा की दृष्टि से सन्तोषजनक था।

'सुधाकर अखबार' (सन् १८५० ई०) :

'बनारस अखबार' के बाद हिन्दी में जो तीसरा साप्ताहिक अखबार निकला, वह था 'सुधाकर अखबार'। विद्वानों ने उसे हिन्दी का पहला पत्र माना है, जो शुद्ध हिन्दी में समाचार छापता था। किन्तु, यह तथ्य सही नहीं है। यह नागरीलिपि में लीथो में छपता था। इसके सम्पादक तारामोहन मैत्र थे। यह सन् १८५३ ई० से केवल हिन्दी में छपने लगा था। इसमें उर्दू में अधिकतर पाठ्य सामग्री होती थी। यह बनारस के राजा दरवाजा-स्थित सुधाकर प्रेस में छपता था। इसकी ५० प्रतियाँ हिन्दू जनता, २२ यूरोपियन और २ प्रति मुसलमान खरीदते थे।[3]

---

१. हिन्दी-पत्रकारिता, पृ० ५१
२. वही, पृ० ५९
३. हिस्ट्री ऑफ इण्डियन जर्नलिज्म, पृ० ५१

हिन्दी-पत्रकारिता के विकास-क्रम का दूसरा दौर

हिन्दी-पत्रकारिता के विकास-क्रम का दूसरा दौर सन् १८६७ ई० में प्रकाशित 'कविवचन-सुधा' से प्रारम्भ होता है। आरम्भ में 'कविवचन-सुधा' में प्राचीन कविता और इश्तहार छापे जाते थे। बाद में उसने जातीय स्वर, हिन्दी-भाषा का स्वरूप और हिन्दी-साहित्य की विभिन्न विधाओं के संवर्द्धन में योग दिया। पत्रकारिता के विकास को भी उसने नई दिशा दी।

बिहार में हिन्दी-पत्रकारिता के उद्भव के पूर्व देश में हिन्दी-पत्रकारिता की पूर्वपीठिका तैयार हो चुकी थी। राष्ट्रीय चेतना का संवर्द्धन हिन्दी-भाषा का प्रचार-प्रसार और उसके स्वरूप को निखार देना हिन्दी-पत्रकारिता का ध्येय बन गया था। बिहार में हिन्दी पत्रकारिता का जन्म सन् १८७२ ई० में हुआ। बिहार में हिन्दी-पत्रकारिता आधुनिक हिन्दी के विकास की कथा है, जिसका विवेचन हम आगे करेंगे।

बिहार में पत्रकारिता का उद्भव :

भारत में मुद्रण-कला का आगमन अठारहवीं सदी के अन्तिम दशक में हो चुका था। अक्षर-प्रेस की स्थापना के साथ अखबारनवीसी का द्वार खुल चुका था। देश के विभिन्न अंचलों में मुद्रण, प्रकाशन और पत्र-पत्रिकाओं का संचालन प्रारम्भ हो गया था। सन् १८५० ई० के पहले देश के प्रमुख नगरों में प्रेस की स्थापना हो चुकी थी। अक्षर-प्रेस के साथ लीथो प्रेस का प्रचलन तेजी के साथ बढ़ रहा था। किन्तु तबतक बिहार इस क्षेत्र में बहुत पिछड़ा था। सन् १८५० ई० के पूर्व तक बिहार के किसी भी स्थान में प्रेस की स्थापना नहीं हुई थी।

बिहार में सबसे पहले शाह कबीरउद्दीन अहमद ने सन् १८५० ई० में सहसराम में प्रिण्टिग प्रेस की स्थापना की। प्रेस का नाम 'मुताहकोबरा' था। उस प्रेस से उर्दू की किताबें प्रकाशित हुई,[1] किन्तु किसी पत्र-पत्रिका के प्रकाशन की सूचना नहीं मिलती। बिहार में अखबारनवीसी का प्रथम प्रयास विलियम टेलर का था, जिसने शिक्षा-सुधार-योजना के अन्तर्गत ३ सितम्बर, १८५६ ई० को उर्दू-साप्ताहिक 'अखबार-ए-बिहार' प्रकाशित कराया। सरकार से उस अखबार को ग्राहकों तक भेजने की मुफ्त व्यवस्था कराई गई। उक्त पत्र जिले के स्कूलों और सरकारी कार्यालयों में भेजा जाता था। पत्र का वार्षिक मूल्य नौ रुपया और प्रतिमास एक रुपया रखा गया था। यह पत्र सितम्बर, १८५७ ई० तक प्रकाशित होता रहा। विलियम टेलर का पटना के आयुक्त-पद से तबादला होने के तत्काल बाद वह अखबार बन्द हो गया।

अखबारनवीसी की दिशा में दूसरा प्रयास विद्यालय-उपनिरीक्षक मुंशी सूरजमल और पटना नॉर्मल स्कूल के अधीक्षक राय सोहनलाल ने किया था। उन दोनों के प्रयत्न से सन् १८६० ई० के आसपास 'अखबार-अखयार' पटना से प्रकाशित हुआ। उसका मूल्य दो

---

१. जर्नलिज्म इन बिहार, पृ० ४७

आना प्रति था। वह बिहार के सरकारी सहायता-प्राप्त स्कूलों में भेजा जाता था। वह सन् १८६६ ई० तक प्रकाशित हुआ। बिहार के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के विद्यालय-निरीक्षक एस० डब्ल्यू० फैलन ने अपनी रिपोर्ट में उसकी प्रशंसा की थी। अखबार का प्रचार-प्रसार अच्छा था।

बिहार में पत्रकारिता के क्षेत्र में तीसरा प्रयास 'अखबारे-अखयार' के सम्पादक सूरज-मल का था। उन्होंने जनवरी, १८६९ ई० में 'चश्म-ए-इल्म' का प्रकाशन किया। उस पत्र को सरकार खरीदकर वर्नाकुलर स्कूलों को देती थी। उर्दू-भाषा में प्राइमरी कक्षा के अध्यापकों और विद्यार्थियों के लिए वह उपयोगी पत्रिका थी और सन् १८७५ ई० तक प्रकाशित हुई। वह दस-बारह वर्षों का समय बिहार में उर्दू-अखबारनवीसी का युग था। बिहार में हिन्दी-पत्रकारिता का सन् १८७२ ई० तक जन्म नहीं हुआ था। बिहार में हिन्दी-पत्रकारिता के उद्भव में उर्दू-पत्रकारिता की भूमिका प्रेरणादायक रही है।

बिहार में हिन्दी-पत्रकारिता का उद्भव (सन् १८७४ ई०) :

बिहार में हिन्दी-पत्रकारिता का जन्म सन् १८७४ ई० के पूर्व तक नहीं हुआ था। कदाचित् हिन्दी-पत्रकारिता के इतिहास की यह मनोरंजक घटना है कि हिन्दी-प्रदेश में हिन्दी के पत्र-प्रकाशन में बिहार सबसे पिछड़ा रहा। इस प्रदेश में हिन्दी-पत्रकारिता के उद्भावक पण्डित मदनमोहन भट्ट थे। उन्होंने सन् १८७२ ई० में कलकत्ता से हिन्दी साप्ताहिक 'बिहा-रबन्धु' का प्रकाशन आरम्भ किया। वे ही इस पत्र के सम्पादक थे। भट्टजी महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। वे बाहर से आकर पटना जिले (वर्त्तमान नालन्दा जिला) के बिहार-शरीफ में बस गये थे। उन्होंने इस पत्र का सम्पादन-प्रकाशन कलकत्ता से आरम्भ किया। मैंने ऊपर संकेत किया है कि सन् १८५० ई० तक बिहार में कोई प्रेस न था। बाद में जिन प्रेसों की स्थापना हुई, वे उर्दू-प्रेस थे, इसलिए लीथो-प्रेस का प्रचलन अधिक था। इस पद्धति से हिन्दी-पत्र का प्रकाशन सम्भव न था। इसलिए भट्टजी ने 'बिहार-बन्धु' का प्रकाशन कलकत्ता में आरम्भ किया था।

'बिहार-बन्धु' का मुद्रण कलकत्ता के श्रीपूरन प्रकाश प्रेस, ७६, मानिकतल्ला स्ट्रीट से होता था। कलकत्ता में हिन्दी-प्रूफ-शोधकों की कमी थी। उन्हें हिन्दी का ठीक ज्ञान भी न था। इस कारण इस पत्रिका का मुद्रण निर्दोष नहीं हो पाता था। 'बिहार-बन्धु' के १४ जुलाई, १८७४ ई० के अंक में प्रकाशित निम्नलिखित सूचना से उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है :

"यह पटना का अखबार कलकत्ते में छपता बंगला जानने वाले इसका शोधन करने देश भाषा भी यहां की ठीक नहीं तो भाषा और व्याकरण की शुद्धि में हम लोग आप दूषित हैं तो किसका ऐब देख सकते हैं।"

उपर्युक्त परिस्थितियों में यह अखबार सन् १८७४ ई० में पटना चला आया। पटना के चौहट्टा में एक खपरैल मकान में इसका निजी प्रेस खोला गया। वहीं से इसका मुद्रण-

प्रकाशन होने लगा। यही बिहार का सबसे पहला पत्र था। इस पत्र के प्रकाशन के साथ ही बिहार में हिन्दी-पत्रकारिता का जन्म हुआ। 'बिहार-बन्धु' की स्थापना के सम्बन्ध में उसके संचालक-सम्पादक पण्डित केशवराम भट्ट ने लिखा था :

"इसके जन्म लेते समय प्रतिज्ञा की थी कि बिहार की कचहरियों में हिन्दी जारी करायेंगे, सो धन्य हैं ईश्वर, जिसने इसकी यह प्रतिज्ञा पूरी की। इसकी पहली संख्या में लिखा गया था कि इस दफे हिन्दी जारी कराना 'बिहार-बन्धु' का मुख्य उद्देश्य है, सो ईश्वर की कृपा से इसका मुख्य उद्देश्य अच्छी तरह पूरा हुआ...."।

वस्तुतः इस पत्रिका ने बिहार के स्कूलों और कचहरियों में हिन्दी के प्रचलन में उल्लेखनीय योगदान किया था। उन दिनों हिन्दी-लेखकों की भारी कमी थी। लेखन का अधिकतर कार्य सम्पादक को करना पड़ता था। 'बिहार-बन्धु' के लेखकों में मुंशी हसन अली, पण्डित मदनमोहन भट्ट, पण्डित बदरीनाथ भट्ट, पं० केशवराम भट्ट, त्रिलोकीचन्द्र, मुंशी देवी प्रसाद आदि प्रमुख थे।

'बिहार-बन्धु' का आकार रॉयल चौपेजी था। इसकी भाषा उर्दू-हिन्दी-मिश्रित थी। अखबार आधा फारसी और आधा देवनागरी लिपि में छपता था। पुस्तक-समीक्षा भी इसमें छपती थी। इसके आकार-प्रकार में कई बार परिवर्त्तन हुए। बीच-बीच में पत्र बन्द भी हुआ। इसी ढंग से यह पत्र सन् १९२२ ई० तक प्रकाशित होता रहा।

'बिहार-बन्धु' के सम्पादकों और व्यवस्थापकों की लम्बी सूची है। किसी अखबार के सम्पादक और व्यवस्थापक की इतनी लम्बी सूची शायद ही कहीं हो। इसके संस्थापक-सम्पादक पण्डित मदनमोहन भट्ट, मुंशी हसन अली, पण्डित केशवराम भट्ट, पण्डित दामोदर शास्त्री, बाबू महेशनारायण, पण्डित दामोदर शर्मा, पण्डित लक्ष्मीनाथ भट्ट, पण्डित शिवनन्दन त्रिपाठी, नन्दकुमारदेव शर्मा, पण्डित श्यामविहारी मिश्र, कमलाप्रसाद वर्मा, गोस्वामी गोवर्द्धनलाल, गोपालराम गहमरी और गिरिजाकुमार घोष थे। इस पत्रिका के मुद्रक-प्रकाशकों की संख्या भी लम्बी रही है। उनके नाम हैं—गोपालचन्द्र डे, राजेन्द्रनाथ मुखर्जी, यदुनाथ राय, अकलूलाल, केशवराम भट्ट, साधोराम भट्ट, माधवराम भट्ट, लक्ष्मीनाथ भट्ट आदि।

इस पत्र की आर्थिक स्थिति कभी अच्छी नहीं रही। सन् १८७४—९० ई० के बीच अर्थ-संकट के बावजूद हिन्दी-सेवा और राष्ट्रीय चेतना का उद्बोधन इसका ध्येय रहा। किन्तु, इसके सम्पादकों के परिवर्त्तन के साथ इसकी नीति में भी परिवर्त्तन हुआ। इससे इसका स्तर भी गिरा। इसकी आर्थिक स्थिति इतनी खराब हो गई कि एक दिन इसकी सारी सम्पत्ति नीलाम हो गई।

'बिहार-बन्धु' बिहार में खड़ीबोली हिन्दी के प्रचलन और हिन्दी-आन्दोलन को गतिशील करनेवाला अकेला पत्र था। इसके प्रयास से हिन्दी-सेवकों का मनोबल ऊँचा हुआ और वे अपने लक्ष्य की ओर पूर्वापेक्षा अधिक दृढ़ता के साथ आगे बढ़े। यह पत्र समाचार-प्रधान के बजाय विचार-प्रधान अधिक था।

'बिहार-बन्धु' की कोई विशेष भाषा-नीति नहीं थी। भट्ट-बन्धुओं की रुझान उर्दू की ओर अधिक थी, इसलिए इसकी भाषा उर्दू-फारसी-प्रधान थी। पण्डित केशवराम

भट्ट के सम्पादन-काल में इसकी भाषा खिचड़ी थी, इसलिए हिन्दी के सही स्वरूप का यह पत्र निदर्शन नहीं कर सका। हिन्दी-भाषा के विकास की दृष्टि से इसकी अपनी कोई स्थापना नहीं थी। इस दिशा में खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर से प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं का विशेष अंशदान है।

खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित पत्रिकाएँ हिन्दी के प्रचार के साथ भारतेन्दु की भाषा-नीति की समर्थक थीं। इन पत्र-पत्रिकाओं ने हिन्दी को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने में उल्लेखनीय योगदान किया। 'बिहार-बन्धु' के बाद बिहार की हिन्दी-पत्रकारिता का दिशा-निर्देश करने में खड्गविलास प्रेस की पत्रिकाएँ प्रमुख थीं।

खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित पत्र-पत्रिकाएँ :

खड्गविलास प्रेस हिन्दी की ऐसी साहित्यिक प्रकाशन-संस्था है, जिसने हिन्दी के संवर्द्धन, प्रचार और प्रसार के लिए आधे दर्जन से अधिक पत्रों का प्रकाशन कर हिन्दी-पत्रकारिता के इतिहास में अनुकरणीय मानदण्ड स्थापित किया। समकालीन साहित्यकारों ने जिन पत्रिकाओं का प्रकाशन किया था और आर्थिक कठिनाइयों के कारण उनके संचालन में वे विफल-मनोरथ सिद्ध हो रहे थे, उनको भी इस साहित्यिक संस्थान ने संरक्षण प्रदान किया। इस प्रकार हिन्दी-पत्रकारिता के विकास के लिए यह संस्था सतत सजग रही। पण्डित प्रतापनारायण मिश्र का 'ब्राह्मण' पत्र जब एक-दो वर्षों के बाद चलने में असमर्थ होने लगा, तब बाबूरामदीन सिंह ने उसे अपनी संस्था का संरक्षण प्रदान किया। मिश्रजी के जीवन-काल तथा उसके बाद कुछ दिनों तक 'ब्राह्मण' खड्गविलास प्रेस के संरक्षण में निकलता रहा।

पटना-कवि-समाज की जब स्थापना हुई, तब उसकी गोष्ठियाँ पटना के बी० एन० कॉलेज में होती थीं। कविगण समस्या-पूर्त्ति करते थे। उन्होंने जब अपनी संस्था की प्रतिनिधि-पत्रिका का प्रकाशन करना चाहा, तब आर्थिक विवशता के कारण प्रकाशन सम्भव न हो सका। बाबू रामदीन सिंह ने उस पत्रिका को अपने प्रेस का संरक्षण प्रदान किया। ब्रजनन्दन सहाय के सम्पादकत्व में उक्त पत्रिका इस प्रेस से छपकर प्रकाशित होने लगी।

इस संस्था ने निम्नलिखित पत्रों का प्रकाशन किया था :

१. क्षत्रिय-पत्रिका	मासिक	१८८१	सम्पादक : रामदीन सिंह
२. भाषा-प्रकाश	मासिक	१८८३	सम्पादक : साहबप्रसाद सिंह
३. श्रीहरिश्चन्द्र-कला	मासिक	१८८५	सम्पादक : रामदीन सिंह
४. द्विज पत्रिका	पाक्षिक	१८८६	सम्पादक : दीनदयाल सिंह
५. विद्या-विनोद	मासिक	१८६५	सम्पादक : चण्डीप्रसाद सिंह
६. ब्राह्मण	मासिक	१८६०	सम्पादक : प्रतापनारायण मिश्र
७. कविसमाज समस्या-पूर्त्ति	मासिक	२५ मार्च, १८६७	सम्पादक : ब्रजनन्दन सहाय
८. शिक्षा	साप्ताहिक	१८६७	सम्पादक : सकलनारायण शर्मा

'क्षत्रिय-पत्रिका' (सन् १८८१ ई०) :

खड्गविलास प्रेस की स्थापना के कुछ ही दिन बाद रामदीन सिंह ने मासिक 'क्षत्रिय-पत्रिका' के प्रकाशन का विचार प्रकट किया। उन्होंने १९ मई, १८८१ ई० को इस पत्रिका का घोषणा-पत्र दाखिल कराया था।[1] उसके उद्देश्य के सम्बन्ध में उन्होंने घोषणापत्र में लिखा था :

विकसित क्षत्रिय पत्रिका भारत सरवर माँह।
करहिं कृपा यापर सदा जौ क्षत्रिय नरनाह।।
तौ यह थोरहिं दिवस में सकै सकल दुख मेटि।
करै एकता प्रबल पुनि सब क्षत्रियन समेटि।।

'क्षत्रिय-पत्रिका' के प्रकाशन का उद्देश्य क्षत्रिय-समाज की बुराइयां दूर करना और उसकी समुन्नति का दिशा-बोध कराना था। इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए उन्होंने इस देश के राजे-रजवाड़ों से आर्थिक सहायता के लिए निवेदन किया था। पत्रिका के घोषणा-पत्र में कहा गया था कि 'डबल डिमाई आकार के ४० पृष्ठों में यह प्रतिमास छपेगी। इसका वार्षिक मूल्य छह रुपये, छह आने रखा गया था। पत्रिका में इतिहास, परिहास, आयुर्वेद, धर्मशास्त्र, राजनीतिशास्त्र का उल्था, बड़े लोगों के जीवन-चरित, विज्ञान, दर्शन, प्राचीन एवं नवीन ललितकाव्य, वीररस-काव्य, नाटक, नियुद्ध-शिक्षा, स्वास्थ्य-रक्षा, अन्यान्य शरीर-रक्षक विषय, भारतवर्षीय क्षत्रियों की वंशावली विस्तारपूर्वक छापी जायगी।'

'क्षत्रिय-पत्रिका' में पृष्ठांक मुद्रित ग्रन्थों के अनुसार छापने की घोषणा की गई थी। इससे सुविधा यह हुई कि ग्राहक वर्ष के अन्त में ग्रन्थों के पृष्ठांक मिलाकर अलग पुस्तक बना लेते थे।

पहला अंक :

'क्षत्रिय-पत्रिका' का पहला अंक गंगादशहरा, संवत् १९३८ वि० (सन् १८८१ ई०) को प्रकाशित हुआ था। मुख्यपृष्ठ पर इसका उद्देश्य-वाक्य इस प्रकार था :

विकसित क्षत्रिय पत्रिका भारत सरवर माह।
करहिं कृपा यापर सदा, जो क्षत्रिय नरनाह।।
तो यह थोरहिं दिवस में, सकै सकल दुख मेटि।
करे एकता प्रबल पुनि, सब क्षत्रियन समेटि।।
अब पढ़ि पाढ़ यह पत्रिका करि-करि हिय उत्साह।
बाढ़ो क्षत्रियगण बहुरि, निरखि उन्नती राह।।

पहले अंक में खड्गबहादुर मल्ल और दामोदर शास्त्री के लेख तथा क्षत्रियों के इतिहास के सम्बन्ध में लेख प्रकाशित हुए थे। मुद्रण-कला, स्वास्थ्य से सम्बन्धित होमियोपैथिक, एलोपैथिक और आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली से पाठकों को परिचित कराया गया था। एकता विषय पर स्वतन्त्र निबन्ध भी दिया गया था।

---

१. परिशिष्ट २

क्षत्रियपत्रिका।

विद्या वीर्यं वपुर्वंशा [illegible] दाक्षिक।
[illegible]
[illegible]
भूयात् "क्षत्रियपत्रिका" [illegible]

भाग १] ज्येष्ठ, गंगा दशमी, संवत् १९३८ | संख्या १

प्रसंगानुसार समुचित विषय, प्राचीन वा नूतन ग्रन्थ, अनुवाद, और नीति आदि से संभूषित होकर प्रति मास प्रकाशित होती है।

पटना।

खड्ग विलास, छापाखाना बांकीपुर।

अग्रिम वार्षिक मूल्य डाकव्यय [illegible]

चित्र-सं० : ८

'क्षत्रिय-पत्रिका' के प्रथम अंक का मुखपृष्ठ

'क्षत्रिय-पत्रिका' के लेखक :

यह पत्रिका अपने नाम से भले ही जाति-विशेष की बोधक हो, किन्तु यथार्थतः यह विशुद्ध साहित्यिक पत्रिका थी। पत्रिका के सम्पादक बाबू रामदीन सिंह थे, जो स्वयं क्षत्रिय-विचारधारा से अभिभूत थे, परन्तु उनकी दृष्टि साहित्यिक थी। समकालीन परिवेश में क्षत्रिय जमीन्दारों और राजाओं का प्रभाव था। बाबूसाहब का उन लोगों से घनिष्ठ सम्पर्क था। इसलिए उन्होंने आर्थिक सहयोग की प्राप्ति के लिए इसका ऐसा नाम और उद्देश्य क्षत्रिय-समाज का मंगल करना निश्चित किया था। 'क्षत्रिय-पत्रिका' कभी जातीय पत्रिका के रूप में प्रतिष्ठित नहीं हुई, और यह आधुनिक हिन्दी की प्रगति के लिए निरन्तर सचेष्ट रही।

'क्षत्रिय-पत्रिका' में जिन लेखकों ने अपना अंशदान किया, उनमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पण्डित दामोदर शास्त्री, लाल खड्गबहादुर मल्ल, रामचरित सिंह, साहबप्रसाद सिंह, पण्डित अम्बिकादत्त व्यास, बाबा सुमेर सिंह, राधाचरण गोस्वामी, गुरुचरण सिंह, रामशंकर व्यास शर्मा, बिहारीलाल चौबे, लन्दन के किंग्स कॉलेज के संस्कृत-अरबी-फारसी के अध्यापक जी० एफ० निकोल प्रमुख थे। मल्लसाहब इस पत्रिका के नियमित लेखक थे।

विषयवस्तु :

'क्षत्रिय-पत्रिका' में भारतेन्दु, खड्गबहादुर मल्ल, दामोदर शास्त्री और अम्बिकादत्त व्यास के निबन्ध धारावाहिक रूप में छपते थे। इसमें पुस्तक-समीक्षा, सम्पादक के नाम पत्र और समकालीन पत्रों की समीक्षा भी छपती थी। लगभग चार वर्षों के प्रकाशन के बाद इस पत्रिका में केवल विभिन्न पुस्तकों के धारावाहिक प्रकाशन होते थे। वैसे इस पत्रिका ने अपने प्रकाशन के आरम्भ में प्रसंगानुसार समुचित विषय, प्राचीन या नूतन ग्रन्थ, अनुवाद और नीति आदि से सम्भूषित होकर प्रतिमास प्रकाशित होने की उद्घोषणा की थी।

यह पत्रिका हर मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि को प्रकाशित होती थी। यह नियमित रूप से प्रकाशित नहीं हो पाती थी, इसलिए कभी-कभी तीन-चार अंकों का एक साथ संयुक्तांक निकलता था। इस पत्रिका का वार्षिक मूल्य विदेशों के लिए दस रुपये रखा गया था। एक प्रति का मूल्य छह आने था।

'क्षत्रिय-पत्रिका' के दूसरे वर्ष के प्रथम अंक से उद्देश्य-वाक्य संस्कृत में प्रकाशित होने लगा। एक संस्कृत-श्लोक भीतर के पृष्ठ पर भी प्रकाशित होता था। हिन्दी-उद्देश्य-वाक्य भीतर के पृष्ठ पर छापा जाता था। मुखपृष्ठ पर संस्कृत में इस प्रकार श्लोक छपा करता था :

विद्यावीर्यवपुर्वहा विषिवशाद्विद्विनोदात्मिका।
विख्याता विविधैर्विचारवचनैर्विश्वासवाहैरियं॥
विश्वेस्मिन् विपुले गभीरविषयैर्विद्वत्सुहृद्भिस्तथा।
भूयात्क्षत्रियपत्रिका भगवतः सर्वस्वसाहाय्यतः॥
विद्वद्वृन्दानन्दात्री विद्यानीतिविभूषिता।
शौर्यशिक्षाविधात्री स्यात्तुष्ट्यै क्षत्रियपत्रिका॥

'क्षत्रिय-पत्रिका' के ग्राहक :

बम्बई के विश्वविश्रुत प्रेस 'निर्णयसागर छापाखाना' की स्थापना पञ्चांग मुद्रित करने के लिए हुई थी। इसी प्रकार खड्गविलास प्रेस की स्थापना 'क्षत्रिय-पत्रिका' के प्रकाशन के लिए हुई थी। इस पत्रिका के प्रकाशन में मझौली-नरेश लालखड्गबहादुर मल्ल और उदयपुर-नरेश महाराज सज्जन सिंह का विशेष आर्थिक योगदान था। वे इस पत्रिका के स्थायी सदस्य थे। पत्रिका ने पहले वर्ष की समाप्ति तथा दूसरे वर्ष के दूसरे अंक में पाठकों के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन करते हुए लिखा था :

"मैं सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर को अन्तःकरण से धन्यवाद देता हूँ जिसके कृपा-कटाक्ष से क्षत्रिय-पत्रिका की प्रथम वर्ष की समाप्ति हुई और द्वितीय वर्ष प्रारम्भ होती है। प्रथम वर्ष में सबसे धन्यवाद के योग्य श्रीमन्महाराजाधिराज कुमार खड्गबहादुर मल्ल मझौली हैं, क्योंकि इन्हीं की कृपा से क्षत्रिय पत्रिका के लिए एक प्रेस खड्गविलास स्थापित्र हुआ और सब तरह से उसका भार भी उठा लिये तदनन्तर श्रीमन्महाराजाधिराज उदय प्रतापनारायण सिंह बहादुर (भिनगानरेश) हैं। क्योंकि यह सर्वदा पूछते थे कि क्षत्रिय-पत्रिका के लिए जो कुछ कहना हो कह डालिए जो मुझसे बनेगा कभी बाज न आऊँगा और १५६ रु० छः आने उन्होंने सहायता दी, और सबसे बढ़कर श्रीमन्महाराजाधिराज १०८ युत महाराजा सज्जनसिंह देव बहादुर उदयपुराधीश हैं क्योंकि इन्हीं के सहायता से इस साल की विपत्ति टरी है, और हर तरह से सहायता महाराणा साहब मुझे दिये हैं बल्कि ऐसी सहायता हुई कि मेरे शत्रुओं के मान-मर्दन भलीभाँति से हुआ है।"

इस पत्रिका के ग्राहक बहुत कम थे। जो भी ग्राहक थे, वे समय पर पैसा नहीं देते थे। ग्राहकों को अनेक बार चेतावनी दी गई, किन्तु इसका कुछ परिणाम नहीं निकला। इन विषम स्थितियों के कारण पत्रिका एक साल तक बन्द कर देनी पड़ी। यह छह वर्षों तक प्रकाशित होकर बन्द हो गई।

इस पत्रिका ने भारतेन्दु के निबन्धों और उनके समकालीन लेखकों की रचनाएँ छापीं। इसमें प्रकाशित अधिकतर रचनाएँ साहित्यिक-स्तर की थीं। इसी कारण इसके ग्राहक अत्यन्त सीमित थे। राजे-रजवाड़ों ने 'क्षत्रिय-पत्रिका' को भावनात्मक दृष्टि से खरीदा। इसमें सन्देह नहीं कि 'क्षत्रिय-पत्रिका' ने हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता को दिशा दी।

'भाषा-प्रकाश' (सन् १८८३ ई०) :

खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित होनेवाला यह दूसरा पत्र था। इसके प्रकाशन के पूर्व प्रकाशित विज्ञापन में कहा गया था कि यह पाक्षिक पत्र होगा। चार फार्म के इस पत्र का मूल्य दो आने रखा गया था। सन् १८८३ ई० की वैशाख, अक्षय तृतीया से इसके प्रकाशन की सूचना दी गई थी। इसके सम्पादक ने खड्गविलास प्रेस के प्रबन्धक साहब प्रसाद सिंह का नामोल्लेख किया गया था।

इस पत्र में जनसाधारण और प्राइमरी स्कूल के छात्रों के हित की दृष्टि से लेखों का चयन करने की घोषणा की गई थी। अधिकतर लेख भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा ही संगृहीत किये जाने की घोषणा की गई थी। इस पत्रिका का एक भी अंक मुझे देखने को नहीं मिला। छानबीन से ज्ञात हुआ कि यह 'क्षत्रिय-पत्रिका' की तरह विभिन्न विषयों को प्रकाशित करनेवाला मासिक था।

'श्रीहरिश्चन्द्र-कला' (सन् १८८५ ई०) :

खड्गविलास प्रेस के संस्थापक बाबू रामदीन सिंह का भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था। उनके निधन के बाद बाबूसाहब उनकी स्मृति में अपनी संस्था से प्रकाशित ग्रन्थों में हरिश्चन्द्र-संवत् का उल्लेख करने लगे। साथ ही उन्होंने उनकी स्मृति में 'श्रीहरिश्चन्द्र-कला' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। भारतेन्दु-युग के साहित्यकार गोपालराम गहमरी ने अपने संस्मरण में लिखा है :

"मैं पटना नार्मल स्कूल में पढ़ता ही था कि सन् १८८४ ई० में बाबू रामदीन सिंह ने भारतेन्दु की 'श्रीहरिश्चन्द्र-कला' का वृहदाकार प्रकाशन आरम्भ कर दिया था। उस कला की बधाई में बिहार के बड़े-बड़े कवियों ने अपनी काव्य-शक्ति का परिचय दिया था। मुंगेर के पण्डित कन्हाईलाल मिश्र, पटना कॉलेज के पण्डित छोटूराम त्रिपाठी, दरभंगा के पण्डित भुवनेश्वर मिश्र, भागलपुर के साहित्याचार्य पण्डित अम्बिकादत्त व्यास आदि बड़े-बड़े कवियों की बधाइयाँ मिली थीं। 'ये नई-उनई हरिश्चन्द्र कला' समस्या की पूर्त्ति में एक बड़ी पुस्तक तैयार हो गयी थी।"[1]

इस पत्रिका का पहला अंक कब प्रकाशित हुआ, इसकी जानकारी नहीं मिल सकी। किन्तु, यह पत्रिका लगभग पचास-इक्यावन वर्षों तक निरन्तर प्रकाशित होती रही। यह साहित्यिक पत्रिका थी। इसके माध्यम से भारतेन्दु की कृतियों का धारावाहिक प्रकाशन होने लग गया था।

इसके संस्थापक और सम्पादक बाबू रामदीन सिंह थे। उनके निधन के बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामरणविजय सिंह ने इसका सम्पादन किया। श्रीरामरणविजय सिंह के जीवन-काल में इसके सम्पादन का भार श्रीनरेन्द्रनारायण सिंह पर रखा गया। उन्होंने जीवन के अन्तिम काल तक इसका सम्पादन किया। यह सन् १९३७-३८ ई० में बन्द हो गई। मुझे इस पत्रिका के सभी अंक देखने को नहीं मिले।

इस पत्रिका का वार्षिक मूल्य छह रुपये था। यह रॉयल साइज में छपती थी। इसके मुखपृष्ठ पर सिद्धान्त-वाक्य के रूप में निम्नलिखित सवैया छपता था :

जगत उजागर औ नागर त्यौं नागरी को
गये कविराज सुनि कठिन हियो करो।
भारत को प्रेमी अरु नेमीहू बिलोकि ताहि
ताके जस-पुंजन को गानहू कियो करो।।

१. जयन्ती-स्मारक ग्रन्थ, पृ० ३९०

ताकी कवितान को वितान एक माँहि गाँथि
कीनो है प्रकास यापै नजर दियो करो।
चहकि चहूँ दिसतें रसिक चकोर गन
हरीचंदकला के पियूष को पियो करो।।

बुधको हिय वारिधि सो उलगै हुलसै अति प्रीतिहु की कमला।
अति कूरन की कलुषी कविताहु चलो मति ज्यों कुलटा अबला।।
चुप ठानो सबै तिमि चोर चलाकहु नाहि करैं किहुँ को जो भला।
रसखाने अमंद अनंद करो या नई उनई हरिचन्द कला।।

मैंने ऊपर कहा है कि हरिश्चन्द्र-साहित्य के धारावाहिक प्रकाशन को उजागर करनेवाली यह पत्रिका थी। बाद में अन्य साहित्यिक कृतियों के धारावाहिक प्रकाशन इसमें हुए। खड़ीबोली के प्रथम महाकाव्य 'प्रियप्रवास' का धारावाहिक प्रकाशन प्रथमतः चैत्र शुक्ल द्वितीया, संवत् १९७० वि० (सन् १९१३ ई०) से 'श्रीहरिश्चन्द्र-कला' में प्रारम्भ हुआ था। उसके सात अंकों तक इसका धारावाहिक प्रकाशन—अंक ७ : आश्विन शुक्ल, द्विज-संवत् १९७० वि०, सन् १९१३ ई०—तक होता रहा। तदनन्तर सन् १९१४ ई० में 'प्रियप्रवास' का प्रथम पुस्तकाकार संस्करण प्रकाशित हुआ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की स्मृति में खड्गविलास प्रेस से 'श्रीहरिश्चन्द्र-कला' पत्रिका का जब प्रकाशन हुआ तब समकालीन लेखकों ने अपनी विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएँ व्यक्त कीं। समकालीन पत्रों ने अपने विचार प्रकट किये। समकालीन पत्र 'पीयूष-प्रवाह' ने लिखा था :

हिन्दी कविता के सविता के जम पुंजन सौं
सरस सुजानन को पुलकित कीनो तैं।।
बाबू हरिचंद जू के ग्रंथन के खोज वारे
रसिक समूहन सौं धन्यवाद लीनो तैं।।
कबि अम्बादत्त तोहि कहाँ लौं सराहै आजु
करि दीनो भाषा को अभाग अति छीनो तैं।।
एहो बाबू रामदीन सिंह धीर बीरबर
नागरी को उमगि खजानो भरि दीनो तैं।।

....　　　....　　　....

कपटी कलंकी कूर सरबस हारिन की
नासिका मरोरि कै पताल सरसातो कौन।।

अम्बादत्त कहै या बिहार के बिहारिन को
नर अरु नारिन को छाती सरसातो को ॥
होतो जो न रामदीन सिंह सो उछाही आज
हरीचंद कला को पियूष बरसातो कौन ॥[1]

इस पत्रिका का सम्पादन-भार जब नरेन्द्रनारायण सिंह ने उठाया, तब इसमें समाचार, पुस्तक-समीक्षा, स्वतन्त्र लेखों के प्रकाशन के साथ ही पुस्तकों का धारावाहिक प्रकाशन भी होता रहता था। इसमें प्रकाशित होनेवाली पुस्तकों की पृष्ठ-संख्या अलग होती थी और पत्रिका की पृष्ठ-संख्या अलग।

धारावाहिक रूप से पुस्तकों के प्रकाशन से ग्राहकों को छह रुपये में, साल के अन्त में, कई पुस्तकें एक साथ मिल जाती थीं। इससे हरिश्चन्द्र और उनसे इतर अन्य साहित्यकारों की रचनाओं की पहुँच सामान्य जन-समाज तक हो गई थी।

'द्विज-पत्रिका' (सन् १८९० ई०) :

यह पाक्षिक पत्रिका थी। यह रॉयल आकार में छपती थी। यह प्रत्येक हिन्दी मास की पहली और पन्द्रहवीं तिथि को प्रकाशित होती थी। इसका पहला अंक फाल्गुन कृष्ण प्रतिपदा, सन् १८९० ई० को प्रकाशित हुआ था। इसके सम्पादक थे तारणपुर-निवासी बाबू दीनदयाल सिंह, किन्तु उनका नाम इस पत्रिका में नहीं छपता था।

इस पत्रिका का वार्षिक मूल्य डाक-व्यय-सहित तेरह आने था। एक अंक में चौदह पृष्ठ होते थे। किन्तु, यह संख्या स्थिर नहीं थी, बल्कि इसमें प्रायः बढ़ोत्तरी होती रहती थी।

यह साहित्यिक पत्रिका थी, किन्तु कुछ विद्वानों ने इसे जातीय पत्रिका की संज्ञा दी है। 'क्षत्रिय-पत्रिका' और 'द्विज-पत्रिका' को जातीय पत्रिका की श्रेणी में रखा है।[2]

इस पत्रिका के मुखपृष्ठ पर स्पष्ट लिखा है : 'द्विज-पत्रिका' अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को सुधारनेवाली पाक्षिक पुस्तिका। विद्या, धर्म, नीति-व्यवहार, कर्म, इतिहास, प्राचीन प्रणाली, अनुवाद, काव्य, नाटक, परिहास, साहित्य, दर्शन, स्त्री-शिक्षा, पंच-प्रपंच, प्रेरित पत्र आदि विविध विषयों से सम्बन्धित लेख इसमें प्रकाशित होते थे।

इसका सिद्धान्त-वाक्य था :

अहो ब्राह्मन क्षत्रिय वैश्य कुलोत्पन्न
आलस आपनो दूरि धरो।
कुल देस औ धर्म के प्रेम
उमंग सों एकता के रसरङ्ग भरो।

---

१. पीयूष-प्रवाह, भाग ३, संख्या ४; २५ मई, १८८५ ई०, पृ० १६-१७
२. जर्नलिज्म इन बिहार, पृ० ६९

जुपै रीति औ नीतिन देखन चाहहु
मानहु बोल हमारो खरो।
अति विद्या विवेक भरी उमगी
द्विज पत्रिका पै अनुराग करो।

इसकी दो सौ प्रतियाँ छपती थीं। यह ऐसी पत्रिका थी, जिसमें समाचार ही नहीं छपते थे, बल्कि पुस्तकों का धारावाहिक प्रकाशन भी होता था। मुख्यत: बिहार की पाठशालाओं के विद्यार्थियों की पाठ्यपुस्तकों से लेकर समकालीन लब्ध-प्रतिष्ठा साहित्यकारों की कृतियों का भी इसमें धारावाहिक प्रकाशन होता था।

इसमें पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, अम्बिकादत्त व्यास, खड्गबहादुर मल्ल आदि प्रमुख लेखकों की रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। इसके खण्ड एक, संख्या २३ में पण्डित प्रतापनारायण मिश्र का 'अपभ्रंश' शीर्षक लेख छपा था। इस पत्रिका के विभिन्न अंकों में भारतेन्दु के अनेक लेख प्रकाशित हुए थे, जो आज भी अन्यत्र दुर्लभ हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के **स्त्रीसेवा-पद्धति, भूकम्प, नौकरों की शिक्षा, आशा, लाख-लाख की एक बात, ईश्वर के वर्त्तमान होने के विषय में,** शब्द में प्रेरक शक्ति, बुरी रीतें, भगवत-स्तुति जैसे निबन्ध आज दुर्लभ हैं, जो इस पत्रिका के विभिन्न अंकों में बिखरे पड़े हैं। उनका **'सूर्योदय'** शीर्षक निबन्ध इस पत्रिका में प्रकाशित हुआ था।

कुल मिलाकर यह साहित्यिक पत्रिका थी। इसमें कभी-कभी साहित्यिक विषयों पर जो विवाद होता था, उसे प्रकाशित किया जाता था। यह पत्रिका कबतक प्रकाशित होती रही, इसकी जानकारी नहीं मिलती, किन्तु दो-तीन वर्षों के अंक देखने में आये हैं।

'ब्राह्मण' (सन् १८९० ई०) :

खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित पाँचवाँ पत्र, जिसका प्रकाशन सन् १८९० ई० से प्रारम्भ हुआ, 'ब्राह्मण' था। भारतेन्दु की नवोन्मेषशालिनी विचारधारा से अनुप्रेरित हो उनके अनेक मित्र पत्रकारिता के क्षेत्र में आये। उनके ऐसे ही मित्रों में पंण्डित प्रताप नारायण मिश्र थे, जिन्होंने 'ब्राह्मण' के सम्पादन-प्रकाशन के माध्यम से निर्भीक साहित्यिक पत्रकारिता को दिशा प्रदान की।

पण्डित प्रतापनारायण मिश्र ने २७ वर्ष की उम्र में सन् १८८३ ई० में कानपुर से मासिक 'ब्राह्मण-पत्रिका' का सम्पादन-प्रकाशन आरम्भ किया था। इसका पहला अंक होली के दिन, १५ मार्च, १८८३ ई० को कानपुर के नामी यन्त्रालय से ईश्वरावलम्बित द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित हुआ था। पहला अंक रॉयल आठपेजी आकार में लीथो से मुद्रित हुआ था। उसमें कुल बारह पृष्ठ थे। मुखपृष्ठ के शीर्षभाग पर अर्द्धचन्द्र बना रहता था, जिसके ऊपर अंक में एक लिखा था। अर्द्धचन्द्र के भीतर **'शत्रोरपिगुणावाच्या**

दोषावाच्या गुरोरपि' उल्लिखित था। अर्द्धचन्द्र भारतेन्दु का प्रतीक था। 'एक' एकता का बोधक था। 'एक' के विषय में मिश्रजी ने लिखा है :

"एक तो भगवान का नाम है। 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' और वह सर्वसामर्थी है, फिर भला उसके लिए क्या नहीं होता ? उसकी श्रीमुख आज्ञा है कि 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणम् व्रज।' शास्त्रार्थ की बड़ी गुंजाइश है, पर हम तो प्रत्यक्ष प्रमाण से कह सकते हैं कि आप एक होके देख लीजिए कि सब कुछ हो सकता है या नहीं ? पाठक ! क्या तुम्हें सदा ब्राह्मण के मस्तक पर एक का चिह्न देखके उसका महत्त्व कुछ अनुभव होता है ? तो फिर क्यों नहीं सब झगड़े छोड़के सतचित से एक ही शरण होते ? क्यों नहीं एक होने और एक करने का प्रयत्न करते ?"[१]

मुखपृष्ठ पर भर्तृहरि के श्लोक का हिन्दी-अनुवाद सिद्धान्त-वाक्य के रूप में इस प्रकार छपा था :

नीति निपुण नरधीर बीर कछु सुजस करौ किन।
अथवा निन्दा कोटि कहो दुर्वचन छिनहु छिन॥
सम्पति हू चलि जाहु रहौ अथवा अगणित धन।
अबहि मृत्यु किन होहु अथवा निश्चल तन॥
पर न्यायवृत्ति को तजत नहिं जे विवेक गुणज्ञाननिधि।
यह संग सहायक रहत नित देत लोक परलोक सिधि॥

'ब्राह्मण' के दूसरे अंक से 'शत्रोरपि' अर्द्धचन्द्र के नीचे लिखा जाने लगा। तीसरे अंक से 'ब्राह्मण' पर अँगरेजी में 'दी ब्राह्मण' का उल्लेख होने लगा। खण्ड, संख्या तथा स्थान, तारीख, महीना और सन् अँगरेजी में भी लिखे जाने लगे जबकि दो अंकों तक अँगरेजी में कहीं कुछ नहीं लिखा गया। 'दी ब्राह्मण' खण्ड १, संख्या १२ तक लिखा गया। दूसरे खण्ड के पहले अंक से केवल खण्ड, संख्या, स्थान, तारीख, महीना और सन् हिन्दी के साथ अँगरेजी में पूर्ववत् लिखे जाने लगे। इसके खण्ड २, संख्या १२, १५ फरवरी, १८८५ से सन् के स्थान पर 'श्रीहरिश्चन्द्राब्द सं० १' लिखा जाने लगा। खण्ड ३, संख्या ५ से डेट-लाइन पहले हिन्दी और उसके नीचे अँगरेजी में लिखी जाने लगी जबकि खण्ड १, संख्या ३ से खण्ड ३, अंक ५ तक पहले अँगरेजी और बाद में हिन्दी में डेट-लाइन लिखी जाती थी। खण्ड ४, संख्या १ से अर्द्धचन्द्र के बीच—'प्रेम एव परोधर्मः' तथा सिद्धान्त-वाक्य में हिन्दी-अनुवाद के स्थान पर भर्तृहरि का निम्नलिखित मूल श्लोक दिया जाने लगा :

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु।
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्॥
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा।
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

---

१. प्रतापनारायण मिश्र : जीवन और साहित्य, पृ० ३६० पर यह लिखा है कि मूल श्लोक तथा 'प्रेम एवं परोधर्मः' खण्ड ४, संख्या ५ से लिखा जाने लगा था—यह उल्लेख गलत है।

'ब्राह्मण' खण्ड ६, संख्या ४ से विशेष परिवर्त्तन यह हुआ कि अर्द्धचन्द्र बहुत बड़ा कर उसी के भीतर मुखपृष्ठ का शीर्षक 'ब्राह्मण' लिखा जाने लगा। 'एक' भी बड़ा हो गया तथा उसके ऊपर 'प्रेम एव परोधर्मः' लिखा जाने लगा। अब 'ब्राह्मण' के नीचे 'शत्रोरपि' छपने लगा। खण्ड ८, संख्या ७ से अँगरेजी में लिखी जानेवाली खण्ड, संख्या और डेट-लाइन समाप्त कर दी गई। अब वह केवल हिन्दी में छपने लगी। 'ब्राह्मण' अपने जीवन के अन्तिम समय तक इसी रूप में छपता रहा। पहले खण्ड के बारहवें अंक तक पृष्ठों की संख्या एक क्रम से छपती रही। पहले वर्ष में कुल १४४ पृष्ठ छपे। यह क्रम दूसरे वर्ष के अंक तीन तक ही चल सका। उसके बाद हर अंक में उसकी पृष्ठ-संख्या केवल १ से १२ तक रहा करती थी।

'ब्राह्मण' का वार्षिक चन्दा एक रुपया और एक प्रति का मूल्य दो आना था। प्रतिमास की अँगरेजी २५ तारीख को 'ब्राह्मण' छपकर प्रकाशित होता था। इसकी विज्ञापन-दर प्रतिपंक्ति एक आना थी।

'ब्राह्मण' का मुद्रण अर्थसंकट के कारण मिश्रजी के लिए एक कठिन समस्या बन गई। फलस्वरूप कोई भी प्रेस 'ब्राह्मण' के मुद्रण के लिए तैयार नहीं होता था। इसके खण्ड १, संख्या १२, से, खण्ड ६, संख्या ११ तक के अंकों के मुद्रण नामी यन्त्रालय, कानपुर; हरिप्रकाश यन्त्रालय, काशी; शुभचिन्तक प्रेस, शाहजहाँपुर; मर्चेण्ट प्रेस, कानपुर; ब्रादरान यन्त्रालय, लखनऊ; भारतभूषण यन्त्रालय, शाहजहाँपुर; हनुमत् प्रेस, कालाकाँकर से हुए थे।[1] खण्ड ६, संख्या १२ से मिश्रजी के जीवन के अन्तिम काल तक (खण्ड १२, संख्या ३ तक) स्थायी रूप से खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर से यह पत्र छपता रहा।

जनवरी, १८८५ ई० में भारतेन्दु जी की मृत्यु के बाद १५ फरवरी, १८८५ ई० से खण्ड २, संख्या १२ से ईसवी सन् के स्थान पर हरिश्चन्द्र-संवत् छपने लगा। इससे सन् के क्रम में कठिनाई पड़ती है। खण्ड ६, संख्या १२ में हरिश्चन्द्र-संवत् ६ के स्थान पर ५, खण्ड ७, संख्या १—५ में हरिश्चन्द्र-संवत् ६ के स्थान पर ५ तथा खण्ड ८, संख्या १ में हरिश्चन्द्र-संवत् ७ के स्थान पर ८ छपने के कारण इसकी गणना में भ्रम हो जाता है। १७ महीने तक (खण्ड ३, संख्या १२, १५ मार्च, १८८६ ई० से जुलाई १८८७ ई० तक) ब्राह्मण का प्रकाशन बन्द था। 'ब्राह्मण', खण्ड ४, संख्या १ का प्रकाशन हरिश्चन्द्र-संवत् ३, सन् १८८७ ई० से आरम्भ हुआ। अब वह नियमित रूप से प्रकाशित होने लगा। मिश्रजी के मृत्यु-पर्यन्त वह निकलता रहा। उनके निधन पर ब्राह्मण के १०वें वर्ष का (संख्या ११-१२) संयुक्तांक तथा ११वें वर्ष का पहला अंक श्रद्धांजलि-अंक के रूप में प्रकाशित हुआ था। यह स्पष्ट ही है कि मिश्रजी के निधन के बाद 'ब्राह्मण' का सम्पादन और प्रकाशन बाबू रामदीन सिंह करते थे। बाबूसाहब ने दो वर्षों तक 'ब्राह्मण' का प्रकाशन (खण्ड १२, संख्या ३, हरिश्चन्द्र-संवत् १३, सन् १८९७ ई० तक) किया। मुझे १२वें वर्ष के तीसरे अंक तक 'ब्राह्मण' के अंक देखने को मिले हैं।

---

१. देखें, परिशिष्ट घ, पत्र-संख्या ७

मिश्रजी का देहान्त हो जाने पर 'ब्राह्मण' के ग्यारहवें वर्ष का आरम्भ नये ढंग से हुआ। 'मंगलाचरण' में कहा गया :

> जै जय ग्राहक पाठक दर्शक। अन्त बिनै तुम लोगन पाहीं।
> है कर में तुम लोगन के यह। ब्राह्मण राखन राखन नाहीं॥ ४॥
> जैसी दया तुम राखत आवत। राखिहौ जो उहि भाँति सदाहीं
> तौ हमहुँ रघुनाथ कृपा मुँह मोरब ना निज जीवन माहीं॥ ५॥
> हानि औ लाभ को नाहि हमैं परवाह अहै यह सत्य बतावैं
> केवल मित्र प्रतापनारायण मिश्र के नाम को पत्र चलावैं॥ ६॥
> जेते सहायक त्यों शुभचिन्तक याके अहैं सब पाहिं सुनावैं
> पूरन वर्ष भये इहि के दस ग्यारह में हम हाथ लगावैं॥ ७॥[१]

बाबू रामदीन सिंह ने मिश्रजी की स्मृति-रक्षा के लिए 'ब्राह्मण' का सम्पादन-प्रकाशन जारी रखा। उनकी देखरेख में 'ब्राह्मण' पाँच फार्म का हो गया। वार्षिक चन्दा एक रुपया से बढ़ाकर एक रुपया छह आने कर दिया गया। इसके व्यवस्थापक खड्गविलास प्रेस के मैनेजर ने 'ब्राह्मण'-प्रेमियों को निम्नलिखित सूचना दी :

"यदि सचमुच 'ब्राह्मण' के हितैषी हैं तो कृपापूर्वक इसका मूल्य, जितना आपके यहाँ बाकी है, भेज दीजिए और आगे के लिए लेना है तो अब आप एक रुपया छः आने भेजिए; क्योंकि अब इसका आकार प्रतिमास पाँच फार्म रहेगा और डाक व्यय प्रतिमास आठ आना लगेगा। यदि आप पहले मूल्य न भेजेंगे तो कभी आपके पास न जायेगा, सचेत होइए और मुझे आशा है कि आप नादेहन्द ग्राहकों में नाम न लिखाइएगा। इसके सिवा कोई पृथक् पत्र भी अब आपके पास न जायगा। मूल्य मेरे पास १५ अगस्त तक आ जाना चाहिए।"[२]

इसी प्रकार के विशेष विज्ञापन में बाबू रामदीन सिंह ने पं० प्रतापनारायण मिश्र की मृत्यु के बाद पाठकों को सूचित किया :

"ब्राह्मण बराबर छपा करेगा यह निश्चय किया गया है प्रतिमास ५ फार्म रहा करेगा। जिन लोगों को लेना हो उन लोगों को उचित है कि मूल्य अग्रिम एक रुपया और पोस्टेज छह आना भेज दें। ऐसा न होने से ब्राह्मण मेरे प्रेमी लोगों के सिवाय किसी के पास न जायगा—रामदीन सिंह।"[३]

---

१. ब्राह्मण, खण्ड ११, संख्या १
२. ब्राह्मण, खण्ड ९, संख्या १२ : पहले इसे पढ़ लीजिए
३. ब्राह्मण, खण्ड १०, संख्या ११ एवं १२ ; विशेष विज्ञापन, पृ० ४४

'ब्राह्मण' के व्यवस्थापक :

मिश्र जी मनमौजी व्यक्ति थे। मौजीपन के साथ वे साहित्य-रचना करना जानते थे, किन्तु जिम्मेदारी के साथ ब्राह्मण की व्यवस्था उनके लिए सम्भव नहीं थी। इसलिए उन्होंने अपने मित्र कानपुर-निवासी गोपीनाथ खन्ना को इसका पहला व्यवस्थापक बनाया। गोपीनाथ खन्ना का कानपुर-स्थित सवाईसिंह के हाते में निजी मकान था। उसी में 'ब्राह्मण'-कार्यालय था। उन्होंने इस पत्रिका के खण्ड १ की संख्या ८ तक की व्यवस्था की। उसके बाद वे कहीं बाहर चले गये। इसलिए मिश्रजी ने कानपुर-निवासी अपने स्नेही मित्र पण्डित मनोहरलाल मिश्र को व्यवस्थापक बनाया। सवाईसिंह के हाते से 'ब्राह्मण' कार्यालय हटाकर अन्यत्र ले जाया गया।[१] मनोहरजी ने प्रथम वर्ष के नौवें अंक से व्यवस्था सँभाली और दूसरे वर्ष के दूसरे अंक तक उन्होंने इसकी व्यवस्था की। इसके बाद दूसरे वर्ष के तीसरे अंक से पण्डित प्रतापनारायण मिश्र ने व्यवस्था स्वयं अपने हाथ में ले ली। उन्होंने ग्राहकों को सूचित किया कि—"**कई एक कारणों से 'ब्राह्मण' का सब काम मैंने अपने हाथ में लिया है। इससे जो भी साहब रुपया या लेख इत्यादि कोई चीज भेजें मेरे नाम से भेजें वा पण्डित बद्रीदीन जी शुक्ल को अकबरपुर में भेजें। तीसरे के पास कोई वस्तु भेजी जायेगी उसके जवाबदेह हम नहीं हैं।**"[२]

अतः 'ब्राह्मण' के तीसरे व्यवस्थापक और सम्पादक वे स्वयं थे। उन्होंने दूसरे वर्ष के तीसरे अंक से तीसरे वर्ष के बारहवें अंक तक सम्पादन के साथ व्यवस्था भी सँभाली। तदनन्तर मिश्रजी सख्त बीमार पड़ गये। एक वर्ष पाँच महीने तक 'ब्राह्मण' का प्रकाशन बन्द रहा। स्वस्थ होने के बाद १५ अगस्त, १८८७ ई० से पुनः 'ब्राह्मण' का प्रकाशन होने लगा। चौथे वर्ष के पहले अंक से पण्डित बद्रीदीन शुक्ल ने व्यवस्था सँभाली। वे 'ब्राह्मण' के चौथे व्यवस्थापक थे। उन्होंने ग्राहकों को सूचना दी :

"**लेख तथा 'ब्राह्मण' सम्बन्धी पत्र सम्पादक के नाम 'ब्राह्मण' ऑफिस कानपुर भेजने चाहिए और मूल्य नीचे लिखे पते पर पण्डित बद्रीदीन शुक्ल, अकबरपुर, जिला कानपुर।**"[३]

शुक्लजी अकबरपुर में सहायक शिक्षा-निरीक्षक थे। उनकी सहायता से प्रभावित होकर मिश्रजी ने लिखा :

"श्रीमत्पण्डितवर बद्रीदीनजी शुक्ल महोदय को भी जितने धन्यवाद दें थोड़े हैं जभी हमने उत्साह क्षेत्र से असहाय होके भागना चाहा है तभी इन पूज्यपाद ने कहा है क्यों कचियाते हो हम सब प्रकार तुम्हारे साथ हैं।"[४]

---

१. ब्राह्मण, खण्ड १, संख्या ९ : विशेष सूचना, पृ० १८

२. ब्राह्मण, खण्ड २, संख्या ३, जरूर पढ़िए, पृ० २६

३. ब्राह्मण, खण्ड ४, संख्या १, विज्ञापन, पृ० १

४. ब्राह्मण, खण्ड ४, संख्या १, धन्वाद, पृ० २

मिश्रजी जब बीच में बीमार पड़े तब इसकी देखभाल कानपुर-निवासी द्वारिकानाथ तिवारी कर रहे थे। मिश्रजी उन्हें ही अपनी पत्रिका का व्यवस्थापक बनाना चाहते थे, किन्तु ऐसा न कर सके। उनके स्थान पर पण्डित बद्रीदीन शुक्ल व्यवस्थापक बनाये गये। शुक्लजी 'ब्राह्मण' के चौथे वर्ष के १२वें अंक तक (अगस्त, १८८७ ई० से सितम्बर, १८८८ ई० तक) व्यवस्थापक रहे। पाँचवें वर्ष के तीसरे अंक से कानपुर-निवासी ब्रजभूषण लाल गुप्त व्यवस्थापक नियुक्त किये गये। मिश्रजी ने पुनः ग्राहकों को सूचना दी :

"अब हमारे ग्राहकों को नीचे लिखे पते पर मूल्य भेजना चाहिए और ठौर भेजने से हम उत्तरदाता न होंगे। ब्रजभूषणलाल गुप्त, मैनेजर ब्राह्मण, कानपुर।"[1]

वे 'ब्राह्मण' के पाँचवें व्यवस्थापक थे। उन्होंने १५ जुलाई, १८९० ई० (खण्ड ६, संख्या १२) तक व्यवस्था सँभाली। इस पत्र के छठे व्यवस्थापक थे बाबू राधामोहनलाल अग्रवाल। उन्होंने ब्राह्मण के सातवें वर्ष के संयुक्तांक (एक और दो) से प्रबन्ध-भार लिया। उन्होंने ग्राहकों को सूचना दी :

"लेख तथा ब्राह्मण-सम्बन्धी पत्र सम्पादक के नाम भेजने चाहिये और मूल्य नीचे लिखे पते पर—राधामोहन लाल अग्रवाल, मैनेजर, ब्राह्मण, कानपुर।"[2]

उन्होंने ग्राहकों से अनुरोध किया—"बाबू वृजभूषणलाल गुप्त को कई कामों के सब ब्राह्मण का मैनेजम्यंट करने की फुरसत नहीं है। इसलिए यह काम मैंने ले लिया है। पाठकों को चाहिए कि अब से मैनेजर के सम्बन्ध की चिट्ठी पत्री तथा ब्राह्मण की दक्षिणा मेरे नाम से भेजा करें।"[3]

उन्होंने 'ब्राह्मण' की एक वर्ष तक (ब्राह्मण खण्ड १ से १२ तक : १५ अगस्त, १८९० ई० से जुलाई, १८९१ ई० तक) व्यवस्था सँभाली। '**ब्राह्मण**' की आर्थिक अवस्था उत्तरोत्तर खराब होती गई। मिश्रजी के लिए इसका संचालन सम्भव नहीं था। उन्होंने इसकी प्रकाशन-व्यवस्था का भार खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर को सुपुर्द किया। आठवें वर्ष के पहले अंक से ३० अगस्त, १८९१ ई० तक 'ब्राह्मण' बिहारी हो गया, यद्यपि उसकी आत्मा कानपुरी थी। खड्गविलास प्रेस के व्यवस्थापक ने 'ब्राह्मण'-प्रेमियों को सूचना दी :

"लेख तथा ब्राह्मण-सम्बन्धी पत्र सम्पादक के नाम भेजने चाहिए और मूल्य नीचे लिखे पते पर, मैनेजर, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर।"[4]

मिश्रजी ने भी अपने ग्राहकों को सूचित किया :

"हमारी पुस्तकों की माँग और दाम मैनेजर खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर के पास भेजा कीजिए और अपने तथा हमारे लिए कोई बात पूछना भी हो तो खैर कानपुर ही सही बस।"[5]

---

१. ब्राह्मण, खण्ड ५, संख्या ३, १५ अक्टूबर, १८८८ ई०; महाविज्ञापन, पृ० २
२. ब्राह्मण, खण्ड ७, संख्या १-२, १५ अगस्त, १८९० ई०; नियमावली, पृ० १
३. वही, अवश्य देखिए, पृ० २
४. ब्राह्मण, खण्ड ८, संख्या १, ३० अगस्त, १८९१ ई०; नियमामली, पृ० १
५. वही, नवसम्भाषण, पृ० ५

मिश्रजी 'ब्राह्मण' को क्षत्रिय के हाथ में सौंप आश्वस्त होकर सम्पादन करने लगे। बाबू रामदीन सिंह सनातनी ब्राह्मण-पूजक थे। इसलिए 'ब्राह्मण' देवता की उन्होंने आन्तरिक भाव से सेवा की। मिश्रजी ने 'ब्राह्मण' के ऋण से मुक्त हो मंगल-पाठ करते हुए 'ब्राह्मण' और क्षत्रिय दोनों के यशस्वी जीवन की शुभ कामना प्रकट की :

यति माँगहि जोरि कर धरि उर आस महान।
हिन्दी हिन्दू हिन्द कर करहु नाथ कल्यान॥
सब प्रकार सुख सों रहहिं इनके चाहनहार।
जग महँ चहुँ दिस सुनि परै इनकी जय जयकार॥
हैं इनके साँचे हितू, श्री महराज कुमार।
रामदीन हरिविज्ञवर, धरमवीर समुदार॥
जासु कृपा लहि के भयो, मृत्युंजय यह पत्र।
राखहु निज कर-कंज कर, प्रभुबर तेहि सिर छत्र॥
रामदीन कहँ दिव्य गुन, रामदीन जिहिं रीति।
त्यों ही सब संसार कहँ, दीजिय भारत प्रीति॥
निहचल निहछल रूप सों, निज तन मन धन लाय।
सबके सब बिधि सब समय, सब कोउ होहिँ सहाय॥
श्री हरि शशि के तत्त्व कहँ, समुझहिं सब भलिभाँति।
सदा सबै कहुँ सुनि परै, धर्म प्रेम सुभ भाँति॥११॥[1]

'ब्राह्मण' के ग्राहक और चन्दा :

'ब्राह्मण' सामान्य जन का पत्र था। उसके जीवन के चौथे मास में ही ग्राहकों की संख्या ३६० हो गई थी। वर्षान्त तक ग्राहकों की संख्या ४०७ पहुँची। लेकिन इसके उधार ग्राहकों की संख्या अधिक थी। मिश्रजी चन्दा वसूलने में बहुत सावधान थे। उनकी आर्थिक स्थिति भी ऐसी नहीं थी कि वे विना चन्दा के मुफ्त में 'ब्राह्मण' वितरित करते रहें। इसलिए उन्होंने इसके चौथे महीने से ग्राहकों को सावधान किया :

"हम अपने ग्राहकों को याद दिलाते हैं कि इस पत्र को चार महीने हो गये और अग्रिम मूल्य की म्याद केवल ३ मास थी परन्तु फिर हम जुलाई मास भर की म्याद देते हैं जो कोई इस अर्से में रुपया देगा तो अग्रिम में जमा होगा नहीं दुगुना लिया जावेगा।"[2]

पुनः उन्होंने ९वें अंक में चन्दे के लिए अनवधान ग्राहकों को चेतावनी दी :

"साल तमाम होने में अब सिर्फ तीन महीने रह गये हैं इससे जिन्होंने अब तक दक्षिणा नहीं भेजी कृपा करके जल्दी भेजें।"[3]

ग्राहक इसपर भी खामोश बैठे रहे। इसलिए 'ब्राह्मण'-सम्पादक ने ग्राहकों को निम्नांकित रूप में सम्बोधित किया :

---

१. ब्राह्मण, खण्ड ८, संख्या १, ३० अगस्त, १८९१ ई०; मंगलपाठ, पृ० २
२. ब्राह्मण, खण्ड १, संख्या ५, १५ जून, १८८३ ई०
३. ब्राह्मण, खण्ड १, संख्या ९, १५ नवम्बर, १८८३ ई०

"जरा सुनो तो सही—'अफसोस है बहुतेरे सज्जनों ने इसका मूल्य आज तक नहीं भेजा। अरे भाई, हमने इस पत्र को अपने लाभ की गरज से नहीं निकाला है। ले दे बराबर हो जाय यही गनीमत है।"[१]

फिर भी ग्राहकों ने चन्दा नहीं दिया। तदनन्तर मिश्रजी ने ग्राहकों को आवश्यक सूचना देते हुए कहा :

"तीन महीने हो चुके जो प्रियवर सचमुच 'ब्राह्मण' का बना रहना चाहते हैं कृपा करके शीघ्र दक्षिणा भेज दें। जिन्होंने सन् १८८३ का मूल्य नहीं भेजा उनके नाम अगले महीने में छापे जायँगे, मुलाहिजा बहुत हो चुका। 'ब्राह्मण' का ऋणी लोक-परलोक में बिना दिये न बचेगा। 'ऋण हत्या न मुच्यते' समझ जाइये नादिहंद बहुत बुरा नाम है। १ रु० के लिए मुलाहिजा तोड़ना बहुत अच्छा न होगा पर हम लाचारी से सब कुछ करेंगे।"[२]

मिश्रजी की इस सूचना पर कुछ ग्राहकों ने चन्दे भेजे, पर कुछ ने नहीं ही भेजा। अतः चिढ़कर उन्होंने ग्राहकों से कहा :

"हाथ बेशरम जमामार नादिहिंदों के पीछे हम भी बेहया हुए जाते हैं। खैर अबकी और भलमंसी करते हैं फिर तो लाचारी से 'ब्राह्मण' को भटई करना ही है।"[३]

फिर भी मिश्रजी ग्राहकों से चन्दा वसूल नहीं कर सके। अन्ततः उन्होंने कहा :

"सुनो भाई—'अब देर न करो हमारी दक्षिणा जल्दी भेजो बार-बार तगादा करते हमें शर्म आती है देते ही हो तो फिर देर क्यों ?"[४]

इतने अनुनय-विनय पर भी ग्राहकों की तन्द्रा भंग नहीं हुई। तदनन्तर मिश्रजी ने विज्ञापन छापकर फिर साग्रह निवेदन किया :

"दाता जजमान ! प्यारे पाठक !! अनुग्राहक ग्राहक !!!
चार महीने हो चुके ब्राह्मण की सुधि लेव।
गंगा मई जै करै हमें दक्षिणा देव ॥१॥
जो बिन माँगे दीजिये दुहुँ दिश होय अनंद।
तुम निचिंत हो हम करै माँगन को सौगंद ॥२॥
सदुपदेश नितही करैं मागैं भोजन पात्र।
देखहु हम सब दूसरा कहाँ दानकर पात्र ॥३॥
तुर्त दान जो करिय तो होय महा कल्यान।
बहुत बकाये लाभ क्या ? समुझ जाव जजमान ॥४॥
रूपराज की कगर पर जितने होय निशान।
तिते वर्ष सुख सुजस जुत जियत रहौ जजमान ॥५॥"[५]

---

१. ब्राह्मण, खण्ड १, संख्या १०, १५ जनवरी, १८८४ ई०
२. ब्राह्मण, खण्ड २, संख्या ३, १५ मई, १८८४ ई०, जरूर पढ़िये, पृ० २
३. ब्राह्मण, खण्ड २, संख्या ४, १५ जून, १८८४ ई०, विज्ञापन पृ० २
४. ब्राह्मण, खण्ड २, संख्या ५, १५ जुलाई, १८८४ ई०, सुनो भाई, पृ० २
५. ब्राह्मण, खण्ड ३, संख्या ५, १५ जुलाई, विज्ञापन, पृ० १२

चन्दे की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ। उन्हें पुनः अपने प्यारे पाठकों से निवेदन करना पड़ा :

> "आठ मास बीते जजमान। अब तो करो दच्छिना दान। हरिगंगा ॥
> आजकु काल्हि जो रुपया देव। मानो कोटि यज्ञ करि लेव। ,,
> माँगत हमका लागे लाज। पै रुपया बिन चलै न काज॥ ,,
> तुम अधीन ब्राह्मण के प्रान। ज्यादा कौन बकै जजमान॥ ,,
> जो कहु देहौ बहुत खिझाय। यह कौंनिउ भलमंसी आय॥ ,,
> सेवादान अकारथ होय। हिन्दू जानत है सब कोय॥ ,,
> हँसी खुसी से रुपया देव। दूध पूत सब हमते लेव॥ ,,
> काशी पुन्नि गया मां पुन्नि। बाबा बंजनाथ मां पुन्नि॥"[१] ,,

मिश्रजी की इतनी आरजू-मिन्नत पर भी जब ग्राहक मौन रहे तब उन्होंने चेतावनी दी :

"साल तमाम होने में केवल दो महीने रह गये हैं। हम माँगते २ थक गये। जिन्होंने दक्षिणा नहीं भेजी, पहिली जनवरी तक भेज दें। नये वर्ष से कुछ और विचार है। जिन्होंने शुरू से भेजा ही नहीं उन्हें हम अब कुछ न कहेंगे। यदि पहिली जनवरी तक न पाया तो चुपचाप नालिश कर देंगे। भारत जीवन ने दस्तूर खोल दिया है। ब्राह्मण का रुपया हराम का नहीं है कि पच जाय।"[२]

मिश्रजी चिल्लाते-चिल्लाते बीमार पड़ गये। पाठक अपने पुराने रास्ते पर ही थे। जब वे अच्छे हुए तब पुनः पाठकों से आग्रह किया—"जिनके नीचे अभीतक रुपया बाकी है वे भी यदि निरे कंगाल न हो गये हों तो इस पत्र के पाते ही जी कड़ा करके दे डालें। नहीं तो हम कुछ दिन के लिये असमर्थ हो जायेंगे कहाँ तक रिण का भार उठावें।"[३]

बार-बार आग्रह करने पर भी जब ग्राहकों ने ध्यान नहीं दिया तब मिश्रजी ने बेतकल्लुफ होकर पाठकों को धिक्कारा :

'हमने बेईमान ग्राहकों का नाम तो रजिस्टर से उड़ा दिया ब्रह्मघातियों में धीरे-धीरे छाप देगें।'[४]

इतने पर भी जब पाठकों ने चन्दा नहीं भेजा तब मिश्रजी ने 'ब्राह्मण' को ब्रह्मलोक भेज देने की धमकी देते हुए कहा :

"हमारे ब्राह्मण का यह हाल है कि हृदय का रक्त सुखा२ के अब तक चलाए जाते हैं। वर्ष भर में डेढ़ सौ रुपया छपवाई और डाक महसूल को चाहिए। और आमदनी इस वर्ष आठ मास में केवल २० रु० की हुई है। चार वर्ष में दो सौ का कर्जा हुआ है। उसे कुछ भुगता चुके हैं १५० रु० भुगताना बाकी है। महीनों से तगादा करते हैं ग्राहक सुनते ही नहीं। बाजे२ महापुरुषों ने चार बरस में कौड़ी नहीं दी। बाजे२ दस२

---

१. ब्राह्मण, खण्ड ३, संख्या ८, १५ अक्टूबर, हरगंगा, पृ० १२
२. ब्राह्मण, खण्ड ३, संख्या १०, चेतो चेतो, पृ० २३
३. ब्राह्मण, खण्ड ३, संख्या १२, सूचना, पृ० २
४. ब्राह्मण, खण्ड ३, संख्या ३, महाविज्ञापन, पृ० २

पन्द्रह२ रुपये यों लिए बैठे हैं महीना दो महीना और देखते हैं नहीं तो सनकी नामावली छापनी पड़ेगी। कहाँ तक मुलाहिजे के पीछे मार सहें। प्रेसवाले जानते हैं सम्पादक जमामार है। सम्पादक बिचारा नादिहंदो की हत्या अपने सिर मुंडियाए हैं। छापनेवालों का तगादा सुनके लज्जा और क्रोध और चिन्ता खाए लेती है। अपनी गृहस्थी के खर्च में हर्ज सह-सह के कुछ देते जाते हैं और झूठे वो तथा मनको मारके खुशामद से टाले जाते हैं। भविष्यत् का ज्ञान परमेश्वर को है। क्या जाने उसकी इस लीला में कौन गुप्त भेद है। पर हमारा विचार यह है कि जैसे तैसे यह वर्ष पूरा हो तो ब्राह्मण को ब्रह्मलोक भेजें।"[1]

फिर भी 'ब्राह्मण' के ग्राहकों ने चन्दा जमा नहीं किया। आपे से बाहर होकर मिश्रजी ने 'ब्रह्मघाती', 'बेईमान', 'जमाखोर' शब्दों से ग्राहकों को सम्बोधित किया :

"बरसों से हम बहुतेरे बेईमान जमाखोरों को भलामानस समझते रहे हैं। हम नहीं, बहुत लोगों ने उनके कपड़े-लत्ते चिहरे-मुहरे बातचीत नाम-ग्राम जाति-पाँति देख अथवा सुनके धोखा खाया होगा। हम अबकी बार और देख लें कि और कितने इस प्रकार के विश्वासघाती हैं। फिर ब्राह्मण में तो नहीं क्योंकि इसका क्लेवर बहुत छोटा है और आयुर्दाय भी शायद थोड़ी है। इससे एक पुस्तक छपावेंगे और सम्पादकों तथा निज मित्रों को सेंत में बाँटेंगे !!!। हमने कोई बुराई न की थी जो पोस्टकार्ड या जवाबी माँग पर उन्हें ब्राह्मण भेजा था। हमने कोई घटिहई न की थी जो निहायत जरूरत पर महीनों तगादा करने के पीछे वेल्युपेएबिल पोस्ट में पत्र भेजा था। हम कोई भीख न माँगते थे केवल अपना मूल्य माँगते थे। न देओ ! पर याद रहे, यह ब्राह्मण का धन था इस जिले में हिन्दी एकमात्र हिन्दुओं का एक ही शुभ-चिन्तक पत्र बना रहता तो कोई हानि न थी। वर्ष भर में १ रु० बहुत न था। जिन्होंने बरसों बाद बेईमानी की, वे भिखमंगे न थे। पर हमारे साथ दगाबाजी की गई। यद्यपि आ पड़ने पर सौ-डेढ़ सौ रुपये दे देने में हम कंगाल न हो जायेंगे। पर जब दूसरों को असली कीमत के अधिक से अधिक चार रुपये अखरे ! तो हमें धोखे-धोखे इतना रुपया देना क्यों न अखरे ! खैर ! हरिइच्छा पर बहुत शीघ्र हमारी हाय का फल पावेंगे !!! हमने केवल अनजाने भूल की है पर दूसरों ने जानबूझ के 'ब्रह्महत्या' में साझा किया। जिसके लिये अवश्यमेव रोना पड़ेगा।"[2]

अन्ततोगत्वा मिश्रजी ने चन्दा न देनेवाले ग्राहकों की सूची 'ब्राह्मण' में छाप दी।[3]

'बेहद परेशानी के साथ मिश्रजी ने 'ब्राह्मण' को चलाया जिन पाठकों को 'ब्राह्मण' ने "सुखी रहौ शुभ मति गहौ, जीवहु कोटि बरीष। धन बल की बढ़ती रहे, ब्राह्मण देत अशीष।" लिखकर मंगल-कामना की, उसी 'ब्राह्मण' ने अपने पाठकों को खीझकर यह भी कहा : "खुसी रहौ जजमान नैन ये दोनों फूटैं"—जिसमें कोई समाचारपत्र देखने को जी न चाहे—"राह चलत गिर पड़ौ दाँत बत्तीसौ टूटैं"—जिसमें तकाजा करने पर खीस काढ़के—'सुध नहीं रहती' न कहौ।"[4]

---

१. ब्राह्मण, खण्ड ४, संख्या ९, मरेका मीर साहमदार, पृ० २

२. ब्राह्मण, खण्ड ४, संख्या १०, हमारी भूल, पृ० १०

३. ब्राह्मण, खण्ड ५, संख्या २, ब्रह्मघाती, पृ० ९

४. ब्राह्मण, खण्ड ५, संख्या ६, पृ० ४

'ब्राह्मण' के लेखक :

'ब्राह्मण' सामान्य जनता का पत्र था। इसमें मिश्रजी की रचना अत्यधिक रहती थी, फिर भी समकालीन लेखकों की रचनाएँ भी छपती थीं। इस पत्र में बाबू राधाकृष्ण दास, गदाधरप्रसाद नवीन, बद्रीदीन शुक्ल, रायसिंह देव शर्मा, भोलादत्त पाण्डेय, बाँकेलाल खत्री, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', शंकरप्रसाद दीक्षित, प्रभुदयाल चौबे, काशीनाथ खत्री, बलभद्र प्रसाद मिश्र, अम्बिकाप्रसाद मुदर्रिस, श्रीधर पाठक, सीताराम, भैरवप्रसाद वर्मा, ललिताप्रसाद शुक्ल, मास्टर नन्हें मल, देवदत्त शर्मा, चक्रपाणि मित्र, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राधा चरण गोस्वामी, गोकर्ण सिंह, पुत्तनलाल सुशील और साहबप्रसाद सिंह की रचनाएँ भी छपीं।

'ब्राह्मण' के प्रमुख स्तम्भ :

'ब्राह्मण' के मुखपृष्ठ पर 'ब्राह्मण' के नियम विज्ञापन के रूप में छपते थे। अन्य पृष्ठों पर विज्ञापन छपते थे। कविता, प्रेरित पत्र, कानपुर-समाचार आदि इसके प्रमुख स्तम्भ थे। इनके अलावा निबन्ध रहते थे, जो मुख्यतः मिश्रजी के लिखे होते थे। कविताएँ और लावनियाँ भी मिश्रजी लिखा करते थे। इनके अतिरिक्त मिश्रजी की कविताएँ, नाटक और बँगला उपन्यासों के हिन्दी-अनुवाद छपा करते थे।

'ब्राह्मण' की विषयवस्तु :

'ब्राह्मण' का पहला अंक १५ मार्च, १८८३ ई० को कानपुर के नामी यन्त्रालय से मुद्रित होकर प्रकाशित हुआ था। पहले अंक में 'प्रस्तावना' शीर्षक सम्पादकीय लेख में 'ब्राह्मण'-सम्पादक ने पत्र के उद्देश्य इस प्रकार निरूपित किये थे :

"हम वह ब्राह्मण नहीं हैं कि केवल दक्षिणा के लिये निरी ठकुरसुहाती बातें करें। अपने काम से काम, कोई बने वा बिगड़े, प्रसन्न रहे वा अप्रसन्न। नहीं, अन्तःकरण से वास्तविक भलाई चाहते हुए सदा अपने यजमानों (ग्राहकों) का कल्याण करना ही हमारा कर्त्तव्य होगा।"

'ब्राह्मण' स्वाभिमानी पत्र था। यह घोषणा प्रस्तावना में की गई थी :

"हमको निरा ब्राह्मण ही न समझियेगा, जिस तरह सब जहान में कुछ हैं। हम भी अपने गुमान में कुछ हैं।"

यह पत्र हास्य-व्यंग्य-विनोद-प्रधान था। इसकी सूचना प्रस्तावना से इस प्रकार मिलती है : "हाँ, एक बात हममें कुछ अवगुण भी है सो सुनिये। जन्म हमारा फागुन में हुआ है और होली की पैदाइश प्रसिद्ध है कभी कोई हँसी कर बैठें तो क्षमा कीजिएगा। सभ्यता के विरुद्ध न होने पावेगी। वास्तविक बैर हमको किसी से नहीं है पर अपने करमलेख से लाचार हैं। सच-सच कह देने में हमको कुछ संकोच न होगा। इससे जो महाशय हमपर अप्रसन्न होना चाहें पहिले उन्हें अपनी भूल पर अप्रसन्न होना चाहिये।"

'ब्राह्मण' ने अपने ग्राहकों के प्रति शुभकामना प्रकट करते हुए कहा था।

सुखी रहौ शुभ मति गहौ, जीवहु कोटि वरीष।
धन बल को बढ़ती रहै, ब्राह्मण देत अशीष ॥

'ब्राह्मण' का महत्त्व मिश्रजी की प्रकाशित रचनाओं के कारण है। उनके निबन्ध धारावाहिक रूप से निकलते रहे। हो ओ ओली, घूरे के लत्ता बीनैं कनातन का डौल बाँधे, हिम्मत राखौ एकदिन नागरी का प्रचार हो-हीगा, मुनीनां च मतिभ्रमः, मुच्छ, प्रेम एव परोधर्मः, द, माँ, जवानी की सैर ककराष्टक, ट, काम, युवावस्था, दाँत, त, दो, स्वप्न, पंचपरमेश्वर, छै छै छै, पंचायन-ममता जैसे व्यक्तिव्यंजक लेखों से उनकी निबन्ध-लेखन-शैली की जानकारी मिलती है।

यह पत्र बड़ी निर्भीकता के साथ लोकमत को समाज तथा सरकार तक पहुँचाने में समर्थ था। यह किसी की परवाह नहीं करता था। पाठकों से गहरी आत्मीयता से बात करता था। अनेक बाधाओं को सहन करता हुआ भी वह अपने पाठकों की सेवा करता रहा। मुहावरेदार भाषा भारतेन्दु-युग के किसी अन्य पत्र में नहीं दिखाई पड़ती। इसलिए हिन्दी-गद्य को सहज, सुगम और प्राणवन्त स्वरूप प्रदान करने में 'ब्राह्मण' का जितना अधिक योगदान है, अन्य किसी पत्र का नहीं। डॉ० विजयशंकर मल्ल ने ठीक ही लिखा है :

"कुल मिलाकर 'ब्राह्मण' सामान्य जनता का पत्र है। उसका मानसिक गठन और शैली-शिल्प में आभिजात्य एकदम नहीं है। ब्राह्मण-सम्पादक समान स्तर पर खड़ा होकर पाठक से ऐसी बेतकल्लुफी और आत्मीयता से बात करता है जिसकी मिसाल नहीं। ब्राह्मण का मुख्य उद्देश्य सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं की ओर से पाठकों को जागरूक करना और उनका मनोरंजन करना है। उसकी शक्ति का स्रोत सामान्य जनता की सजीवता और कहावतों तथा मुहावरों की खान ग्रामीण भाषा की प्राणवत्ता है। उसमें सहज, अनगढ़ प्रतिभा की जो चुलबुलाहट और जागरूकता है वह उस समय के अन्य पत्रों में विरल है।"[1]

खडगविलास प्र स और 'ब्राह्मण' :

आर्थिक कठिनाइयों के कारण जब 'ब्राह्मण' का प्रकाशन बन्द होने की नौबत आई, तभी उसका प्रकाशन जारी रखने के लिए पण्डित देवदत्त शर्मा ने रामदीन सिंह से इसके मुद्रण का अनुरोध किया था। बाबू साहब ने अनुरोध को सहर्ष स्वीकार किया। १५ जुलाई, १८८९ ई० से 'ब्राह्मण', खण्ड ६, संख्या १२ से खड्गविलास प्रेस से छपने लगा। मिश्रजी की डूबती नाव को प्रबल सहारा मिल गया।

पण्डित प्रतापनारायण मिश्रजी ने 'ब्राह्मण' को लोकप्रिय बनाने में कोई कौर-कसर नहीं रखी। किन्तु अर्थ-संकट से इसके मुद्रण की समस्या प्रधान रूप से गम्भीर हो गई थी। ब्राह्मण के आठवें वर्ष से उसका पूरा प्रबन्ध-भार रामदीन सिंह ने अपने ऊपर लिया। इसी कारण मिश्रजी बाबू साहब के कृतज्ञ हो 'ब्राह्मण' के अंकों में उनका गुणगान किया करते थे। मिश्रजी ने प्रसन्नचित्त से अपनी पुस्तकों तथा 'ब्राह्मण' का अधिकार भा बाबूसाहब को दे दिया था। इस सम्बन्ध में मिश्रजी ने लिखा था :

"हमारी पुस्तकों तथा 'ब्राह्मण' पत्र के दाता-ग्रहीता खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर के स्वामी श्रीमहाराजकुमार बाबू रामदीन सिंह महोदय हैं। हमने जो कुछ लिखा है,

१. प्रतापनारायण-ग्रन्थावली, पृ० ७०४

लिखते हैं, लिखेंगे उसके अधिकारी वही हैं अथवा वह जिसे आज्ञा दें वह सही, फिर हमसे लोग न जाने क्या जानकर एतद्विषयक पत्र-व्यवहार करते हैं। हम इस विज्ञापन द्वारा सब साहबों को सूचना दिये देते हैं कि जिन्हें हमारे लेख देखने की साध हो अथवा छापने की इच्छा हो उन्हें बाँकीपुर के पते पर चिट्ठी-पत्री भेजना चाहिए, हम जवाब- अबाब न देंगे बल्कि जवाबी कार्ड या टिकट भी हजम कर जायगें....स....म...झे ?"[1]

'ब्राह्मण' के आठवें खण्ड के पहले अंक से मुद्रण और प्रकाशन का उत्तरदायित्व जब रामदीन सिंह ने ग्रहण किया तब मिश्रजी की प्रसन्नता की सीमा न थी। उन्होंने बाबू साहब की इस उदारता की चर्चा इस प्रकार की है :

"किन्तु ! हाँ श्रीमन्महाराजकुमार बाबू रामदीन सिंह महोदय को धन्यवाद न देना कृतघ्नता है। जिन्होंने हिन्दी के प्रचारार्थ तन, मन और वित्त बाहर धन उस दशा में लगा रखा है जबकि सद्ग्रन्थों के ग्राहक इतने भी नहीं हैं कि कनिष्ठिका से लेकर अंगुष्ट तक तो गिने जायँ। इस प्रत्यक्ष प्रमाण से यह तो एक बालक भी समझ सकता है कि धन बटोरने के लिये झूठ-मूठ देश-भक्ति के गीत नहीं गाते परन्तु सचमुच सद्विद्या रत्न का वितरण करना चाहते हैं और इस प्राकृतिक उदारता के पलटे में अपनी नामवरी फैलाने की भी गुप्त अथवा प्रगट कारवाई नहीं करते वरंच दूसरों ही का नाम चिरस्थायी रखने के प्रयत्न में लगे रहते हैं। भला ऐसे निःस्वार्थ देशबन्धु को कौन समझदार धन्यवाद न देगा ? विशेषतः हमारे साथ तो वह उपकार किया है जिसका पलटता हम दे ही नहीं सकते। लोग जिससे अपना स्वार्थ निकालना चाहते हैं उससे बड़ी भारी बनावट के साथ कहा करते हैं कि 'ऐसा कर दीजिए तो हमें मानों मरने से जिला लीजिएगा।' पर इस उदारचेता ने हमारी प्रार्थना के बिना ही हमें मरते से नहीं, मृत हो जाने पर जिला दिया है। गत संख्या का अन्तिम सम्भाषण पढ़के और हमें फिर भी प्रकाशित देख के आशा नहीं निश्चय है कि कोई विचारवान् हमारे कथन को अत्युक्ति अथवा मिथ्या प्रशंसा न समझेंगे फिर भला हम उन्हें क्यों न रोम-रोम से असीसें ?"[2]

मिश्रजी ने रामदीन सिंह की इस सदाशयता पर विमुग्ध होकर कहा था, 'ऐसो रामदीन हितकारी।' रामदीन सिंह की मृत्यु हो जाने से प्रतापनारायण-ग्रन्थावली छप न सकी, अन्यथा भारतेन्दु की रचनाओं की भाँति मिश्रजी की रचनाओं को भी ग्रन्थावली में सन्निविष्ट होने का गौरव मिला होता।

'विद्याविनोद' (सन् १८६४ ई०) :

'विद्या-विनोद' को अधिकतर विद्वानों ने मासिक पत्र कहा है। किन्तु वास्तव में यह वार्षिक पत्र था, जिसमें धारावाहिक रूप से विभिन्न विषय की पुस्तकों का प्रकाशन होता था। यह रायल आकार का पत्र था। इसका प्रकाशन सन् १८६४ ई० में प्रारम्भ हुआ और १६१२ ई० तक इसके वार्षिक अंक धारावाहिक रूप से प्रकाशित होते रहे। इसके कुल

१. ब्राह्मण, खण्ड ७, संख्या १२

२. ब्राह्मण, खंड ८, संख्या १, नवसम्भाषण, पृ० ४

१८ अंक प्रकाशित हुए। इसका सम्पादन बाबू साहबप्रसाद सिंह के अग्रज बाबू चण्डी-प्रसाद सिंह करते थे। यह सजिल्द पत्र था।

इस पत्र में महापुरुषों और साहित्यिक पुरुषों की जीवनी, स्वास्थ्य-विद्या-विषयक पुस्तकों, नीति-विषयक पुस्तकों, हिन्दी की पाठ्य-पुस्तकों, चुटकुलों के संग्रह, रसायन-विषयक पुस्तकों हिन्दुस्तान का इतिहास, बँगला से हिन्दी में अनूदित पुस्तकें, अँगरेजी-निबन्धों के हिन्दी-अनुवाद, नाटक, ईसप की कहानियों, कविता-संग्रह और गणित-विषयक पुस्तकों के धारा-वाहिक प्रकाशन हुए थे।

यह बालोपयोगी पत्र था। बिहार के विद्यालयों और पुस्तकालयों के लिए यह स्वीकृत था। उस समय बिहार में ऐसा कोई पत्र नहीं था, जो सामान्य विद्यार्थियों के लिए पाठ्य-सामग्री प्रस्तुत करता हो। ऐसी स्थिति में इस पत्र ने सामान्य पाठकों में हिन्दी के प्रचार में योग दिया। इसने जहाँ एक ओर बालोपयोगी लेख और पुस्तकों के धारा-वाहिक प्रकाशन किये, वहीं दूसरी ओर इसमें गम्भीर साहित्यिक लेख भी छापे गये। इस पत्र ने बाल-साहित्य और बिहार की जनता में हिन्दी के प्रसार में विशेष योगदान किया है।

'कवि-समाज' पत्र (सन् १८९७ ई०) :

पटना-कवि-समाज की स्थापना हरमन्दिर के महन्थ और भारतेन्दुयुगीन साहित्यकार बाबा सुमेर सिंह ने २५ मार्च, १८९७ ई० को की थी। कवि-समाज में स्थानीय तथा बाहर के कवि आते थे और समस्या-पूर्त्तियाँ पढ़ते थे। उन समस्या-पूर्त्तियों के प्रकाशन के लिए 'कवि-समाज' पत्र का प्रकाशन होता था। यह पत्र खड्गविलास प्रेस से निकलता था।

कवि-समाज का यह मासिक पत्र 'समस्या-पूर्त्ति' नाम से छपता था। इसके सम्पादक बाबू ब्रजनन्दन सहाय थे। इसमें समकालीन कवियों की रचनाएँ प्रकाशित होती थीं। समस्या-पूर्त्ति के माध्यम से ब्रजभाषा-साहित्य की श्रीवृद्धि में इस पत्रिका का उल्लेखनीय योगदान है। यह लगभग दो-तीन वर्षों तक प्रकाशित होता रहा। इसके कुछ अंक मुझे खड्गविलास प्रेस के संग्रहालय में देखने को मिले थे।

'शिक्षा' (सन् १८९७ ई०) :

यह बालोपयोगी साप्ताहिक पत्रिका थी। इसका प्रकाशन सन् १८९७ ई० में आरम्भ हुआ। इसके प्रथम सम्पादक पण्डित सकलनारायण शर्मा थे। यह डबल डिमाई सोलहपेजी आकार में मुद्रित होती थी। इसका वार्षिक मूल्य ५ रुपया था। बालकों के लिए शिक्षा-विषयक लेख मुख्य रूप से इसमें छापे जाते थे। यह इतिहास, वास्तु-विद्या, नीति-शिक्षा, किण्डर-गार्टन और शिक्षा-सम्बन्धी समाचार तथा टिप्पणी आदि से युक्त साप्ताहिक पत्रिका थी।

इसमें कभी-कभी समाचार भी छपते थे। शिक्षा के ५ दिसम्बर, १९०७ ई० के अंक में दो-तीन समाचार अत्यन्त संक्षेप में छपे थे, जो इस प्रकार थे :

"ग्वालियर-लशकर में ट्रामगाड़ी शीघ्र ही दौड़ने वाली है। छोटानागपुर हजारीबाग, अकाल पड़ गया। अन्न बहुत महँगा हो गया।

बिहार प्रदर्शनी। बिहार प्रान्त के बाँकीपुर वाले मैदान में आगामी २२वीं, २३वीं, २४वीं और २५वीं फरवरी को बिहार प्रदेश की शिल्प प्रदर्शनी होगी।

ई० आई० रेलवे कम्पनी की हड़ताल के कारण अन्दाजन १५ लाख रुपये की हानि पहुँची।''

इस पत्रिका में विभिन्न विषयों पर लेख छपते थे। 'कपास', राम-नाम की महिमा आदि पर भी लेख छपे थे। इसमें बालोपयोगी कविता भी छपती थी। १४ अप्रैल, १९०४ ई० का अंक कविता-अंक था। इसमें शिवप्रसाद 'सुमति' का ऐक्शन-सौंग छपा था।

यह पत्रिका लगभग चालीस-पचास वर्षों तक प्रकाशित होती रही। इसका आकार-प्रकार भी बदलता रहा।

सन् १९३३ ई० में सहायक सम्पादक के रूप में पण्डित दुर्गाप्रसाद त्रिपाठी काम करने लगे थे। इसका वार्षिक मूल्य पाँच रुपये से घटाकर तीन रुपये कर दिया गया। तब यह हर महीने की ३० तारीख को प्रकाशित होने लगी और एक प्रति की कीमत तीन आने रखी गई। शिक्षा के मुखपृष्ठ पर निम्नलिखित श्लोक छपने लगा :

अशेषदेशेषु विशेषशिक्षां
प्रचारयन्ती विविधैः स्वलेखैः।
प्रचारयन्तीप्सितनीतिदीक्षां
प्रकाशते लोकहिताय शिक्षा॥

खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित अन्य पत्रिकाओं की भाँति इस पत्रिका में भी कृतियों के धारावाहिक प्रकाशन होते थे, जो प्रधानतः बालोपयोगी होती थीं। सन् १९३६ ई० के बाद लगभग तीन-चार वर्षों तक यह पत्रिका प्रकाशित होती रही। इसका आकार डबल क्राउन अठपेजी हो गया। इस रूप में अनेक समाचार, लेख, पुस्तक-समीक्षा और विज्ञापन छापे जाने लगे। 'शिक्षा' के अन्तिम दिनों के अक पर्याप्त संख्या में खड्गविलास प्रेस के संग्रहालय में रखे हुए हैं, किन्तु मुझे भलीभाँति देखने का अवसर नहीं मिला।

खड्गविलास प्रेस की पत्रिकाओं का हिन्दी की प्रगति में अवदान :

खड्गविलास प्रेस ने अपने सक्रिय जीवन-काल में सात पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन किया। सम्भवतः हिन्दी-पत्रकारिता के इतिहास में यह अकेला उदाहरण है कि हिन्दी की किसी साहित्यिक संस्था ने आधे दर्जन पत्रों का प्रकाशन हिन्दी की प्रगति के लिए किया हो। इस प्रेस की प्रकाशित पत्रिकाओं में भी 'हरिश्चन्द्र-कला' और 'शिक्षा' ऐसी पत्रिकाएँ थीं, जिनका ५१ वर्षों तक निरन्तर प्रकाशन होता रहा। बिहार की हिन्दी-पत्रकारिता की ये दोनों प्रतिनिधि पत्रिकाएँ थीं।

इन पत्रिकाओं के माध्यम से भारतेन्दु-साहित्य और हिन्दी का आधुनिक साहित्य जन-सामान्य तक पहुँच सका। जन-सामान्य को सस्ते मूल्य पर साहित्यिक संस्कार देने का खड्गविलास प्रेस का यह श्लाघ्य प्रयास हिन्दी-जगत् की अनूठी घटना है। जन-सामान्य ने सामान्य साहित्य के साथ गम्भीर साहित्य को भी इसके माध्यम से स्वीकार किया। हिन्दी-साहित्य का इतना व्यापक प्रचार अन्य किसी माध्यम से सम्भव नहीं था। अतः इन पत्रिकाओं के माध्यम से हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता की प्रगति हुई।

पण्डित प्रतापनारायण मिश्र के 'ब्राह्मण' के प्रकाशन-भार को स्वीकार कर हिन्दी के आधुनिक साहित्य और विशेषतः निबन्ध-विधा को जीवित रखने में इस प्रेस की सेवा प्रशंसनीय रही है। 'ब्राह्मण' ने हिन्दी के व्यक्ति-व्यंजक और ललित निबन्ध के साहित्य-भाण्डार को पुष्ट किया। अगर इस संस्था का संरक्षण उसे न प्राप्त हुआ होता तो आज हिन्दी का निबन्ध-साहित्य-भाण्डार इन ललित निबन्धों के अभाव में सूना लगता। अतः पत्रकारिता के माध्यम से हिन्दी-साहित्य की प्रगति के लिए की गई खड्गविलास प्रेस की सेवा का विशिष्ट महत्त्व है।

●

पाँचवाँ अध्याय

खड्‌गविलास प्रेस द्वारा संरक्षण-प्राप्त भारतेन्दु-मण्डल के प्रमुख लेखक

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

आधुनिक हिन्दी-साहित्य के जनक भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र इतिहास-प्रसिद्ध सेठ अमीचन्द के कुल में उत्पन्न कवि गोपालचन्द गिरधरदास के ज्येष्ठ पुत्र थे। उनकी माता का नाम पार्वती देवी था। उनका जन्म भाद्र-शुक्ल पंचमी, सोमवार, संवत् १९०७ वि० तदनुसार ९ सितम्बर, १८५० ई० को रात के ४ बजकर ३७ मिनट, १२ सेकेण्ड पर काशी में हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा घर से शुरू हुई। पण्डित ईश्वरदास ने अक्षरारम्भ के बाद कुछ दिनों तक पढ़ाया। मौलवी ताज अली से उन्होंने उर्दू सीखी। अँगरेजी की तालीम नन्दकिशोर से मिली। कुछ दिनों तक उन्होंने ठठेरी-बाजार की महाजनी पाठशाला में शिक्षा पाई। बाद में राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' से अँगरेजी पढ़ी।

हरिश्चन्द्र जब ५ साल के थे तभी उनकी माता का निधन हो गया। ९ वर्ष की उम्र में पिता के स्नेह से सदा के लिए वंचित हो गये। जिस दिन उनका यज्ञोपवीत होनेवाला था, उसी दिन उनके पिता का निधन हुआ। कुछ समय बाद उन्होंने काशी के क्वीन्स कॉलेज में नाम लिखाया, जहाँ उन्होंने अँगरेजी तथा संस्कृत की शिक्षा ग्रहण की। स्वतन्त्र प्रकृति के होने के कारण पढ़ने में उनका मन नहीं लगा। किसी तरह तीन-चार वर्षों में ८वीं कक्षा तक स्कूल में पढ़ने के बाद उन्होंने विद्यालयीय जीवन से हमेशा के लिए छुट्टी ले ली। फिर भी स्वाध्याय से उन्होंने अँगरेजी, बँगला, गुजराती, फारसी, उर्दू, हिन्दी और संस्कृत का अच्छा ज्ञान अर्जित कर लिया।

भारतेन्दुजी ने सन् १८६५-६६ ई० में जगन्नाथजी की यात्रा की। तभी से वे जीवन के कर्मक्षेत्र में उतरे। स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति ने उनको साहित्य की ओर उन्मुख किया। इससे शायरी में उनकी गहरी दिलचस्पी पैदा हुई। उन्होंने सन् १८६६ ई० में 'मुशायरा', सन् १८७० ई० में 'कवितावर्द्धिनी सभा', सन् १८७३ ई० में 'पेनीरीडिंग क्लब' का गठन किया। उन संस्थाओं में कभी उर्दू की शायरी तथा समस्यापूर्त्तियों का और कभी वाद-विवाद का आयोजन होता था। इन्हीं प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर सन् १८६७ ई० में उन्होंने 'कवि-वचन-सुधा' पत्रिका का प्रकाशन किया। सन् १८७३ ई० में '**हरिश्चन्द्र-मैगजीन**' का प्रकाशन शुरू किया, जो आठ अंकों के बाद 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' के नाम से प्रकाशित होने लगी। महिलाओं के लिए सन् १८७४ ई० में 'बालबोधिनी' पत्रिका निकाली।

प्रातिभ उद्‌भावना के साथ भारतेन्दु का हिन्दी-क्षेत्र में प्रवेश हुआ। उन्होंने सन् १८६७ ई० से ग्रन्थ-लेखन तथा अनुवाद का कार्य शुरू किया। कहा जाता है, उन्होंने सन् १८६७ ई० में 'प्रभास' नाटक लिखा, जो अधूरा ही रह गया। वह नाटक अब अप्राप्य है। सन् १८६८ ई०

चित्र-सं० : ९

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र
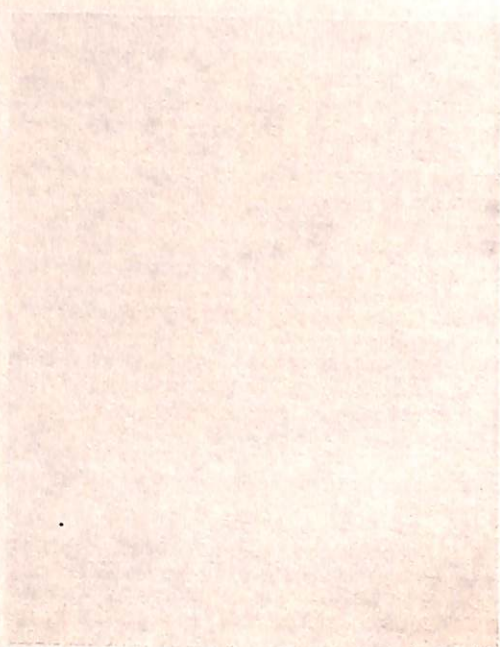
में 'रत्नावली नाटिका' का अनुवाद प्रारम्भ किया, जो अधूरा रह गया। सन् १८६८ ई० में ही 'विद्यासुन्दर' का हिन्दी-अनुवाद किया। तदनन्तर उन्होंने धाराप्रवाह साहित्यिक सर्जन किया।

अल्पवय में हिन्दी-साहित्य की विभिन्न विधाओं के विकास में विशेष अवदान के कारण हिन्दी-संसार ने उन्हें 'भारतेन्दु' की सम्मानित उपाधि से अलंकृत किया। रसिक प्रवृत्ति के कारण वे भावुक और खर्चीले स्वभाव के थे। उनका जीवन अनियन्त्रित बनता गया। जीवन के अन्तिम प्रहर में उन्हें आर्थिक परेशानियों का सामना करना पड़ा। फलस्वरूप उन्हें आधि और व्याधि दोनों ने ग्रस्त किया। वे सन् १८८४ ई० में बीमार पड़े। लगभग एक वर्ष-पर्यन्त व्याधिग्रस्त रहकर ३४ वर्ष ४ मास की आयु में ६ जनवरी, १८८५ ई० की रात में ६ बजकर ४५ मिनट पर 'हिन्दी का भारतेन्दु' अस्त हो गया।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और रामदीन सिंह :

उन्नीसवीं सदी के सातवें दशक में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी-जगत् की सर्वाधिक प्रखर प्रतिभा थे। वे हिन्दी-प्रेमियों के प्रेरणा-स्रोत थे। देश-विदेश में हिन्दी के यशस्वी साहित्यकार के रूप में उनकी तथा उनके साहित्य की चर्चा होती रही। जीवन और साहित्य को एक साथ लेकर चलनेवाले भारतेन्दु का सहयोग हिन्दी के किसी भी मामले में किसी भी क्षेत्र में साहित्यकार को सुलभ था। उन दिनों महाराजकुमार रामदीन सिंह खड्गविलास प्रेस की स्थापना के पूर्व विहार-प्रदेश में स्कूलों तथा कचहरियों में हिन्दी की प्रतिष्ठा के लिए चल रहे आन्दोलन का नेतृत्व कर रहे थे। इसी क्रम में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र से सुपरिचित हो चुके थे। किन्तु भारतेन्दु से साक्षात्कार का उन्हें अवसर नहीं मिला था। मझौली-नरेश लाल खड्गबहादुर मल्ल भारतेन्दु-युग के कवि और नाटककार थे। भारतेन्दुजी से उनकी घनिष्ठता थी। लाल साहब बाबू रामदीन सिंह के मित्र थे। इसलिए उन्होंने बाबू रामदीन सिंह का परिचय भारतेन्दुजी से कराया। दोनों हिन्दी-रसिक पहली मुलाकात में ही एक-दूसरे के प्रति स्नेह-सूत्र में आबद्ध हो गये। दोनों की मैत्री बढ़ती गई। घनी मित्रता का चरमोत्कर्ष यही था कि बाबू रामदीन सिंह ने भारतेन्दुजी को 'भारतेन्दु' बना दिया। दोनों हिन्दी के क्षेत्र में एक-दूसरे के पूरक थे।

बाबू रामदीन सिंह उदारचेता थे। वे साहित्य और साहित्यकार दोनों का मूल्यांकन करना जानते थे। उन्नीसवीं सदी का सातवाँ-आठवाँ दशक उर्दू-फारसी का काल था। अँगरेजी की तूती बोलती थी। उस भाषा-वैषम्य के युग में हिन्दी के साहित्यकार अपनी कृति का किसी तरह प्रकाशित हो जाना सौभाग्य की बात समझते थे। उन दिनों हिन्दी के साहित्यकारों को आर्थिक कष्ट भोगना पड़ता था। स्वयं भारतेन्दुजी को भी यह दुर्भाग्य देखना पड़ा था। दूसरे, वे शाहखर्च भी थे। इसी कारण उन्हें अपने बड़े भाई गोकुलचन्द से सन् १८७० ई० में पारिवारिक सम्पत्ति का बँटवारा करना पड़ा। सम्पत्ति के तीन हिस्से लगे। दो हिस्से दोनों भाइयों को मिले तथा एक हिस्सा उस ठाकुरजी का रखा गया, जिनका परम्परा से उनके कुल में पूजन होता आ रहा था। भारतेन्दुजी के जीवन-चरित्र-लेखक बाबू शिवनन्दन सहाय ने लिखा है : "एक तो यह स्वाभाविक उदार, दूसरे रसिकता के आगार

एवं सर्वदा रसिक-समाज के साथ व्यवहार, तीसरे सदैव गुणियों का सत्कार; चौथे देश-सुधार एवं परोपकार का विचार, पाँचवें अर्थलोलुप विश्वासघातियों की भरमार। इन्हीं कारणों से जब समय-समय पर अपने पास पैसा न रहता तो दूसरों से लेकर भी व्यय करने में इनका हाथ नहीं रुकता था। भला ऐसे व्यक्ति के पास चंचला कब अचल भाव से चिरकाल लौं ठहर सकती है।"[1]

बाबू हरिश्चन्द्र की दानशीलता की इस स्वच्छन्द प्रवृत्ति पर दुःखि होकर बनारस के महाराज ने उनसे कहा था : 'बबुआ, घर को देखकर काम करो।' भारतेन्दुजी ने उत्तर दिया : 'हजूर, मेरे पूर्वजों को यह खा गया है, अब मैं इसको खा डालूंगा।'[2]

सत्य यह है कि उन्होंने सम्पत्ति का होम किया और स्वयं कालान्तर में निर्धन बन गये। जीवन के अन्तिम दिनों में सन् १८८० ई० तक वे कर्ज के भार से बेहद दब चुके थे। बाबू रामदीन सिंह ने भारतेन्दुजी के आरम्भिक जीवन की वैभवपूर्ण मस्ती और उनके उत्तर-जीवन का अभाव भी देखा था। ऐसे कठिन समय में बाबू रामदीन सिंह ने उनको आर्थिक सहायता प्रदान कर अपने सखा-धर्म का निर्वाह किया था। इस सम्बन्ध में तारणपुर-निवासी बाबू आनन्दीनारायण सिंह के एक संस्मरण से वस्तुस्थिति पर सम्यक् प्रकाश पड़ता है।

पटना जिले के तारणपुर ग्राम के निवासी तथा इस ग्रन्थ के लेखक के पितामह बाबू आनन्दीनारायण सिंह ने खड्गविलास प्रेस की स्थापना देखी थी तथा बाबू रामदीन सिंह के सहयोगी के रूप में उक्त प्रेस में अनेक वर्षों तक काम भी किया था। उन्हें भारतेन्दु-युग के अनेक साहित्य-मर्मज्ञों के दर्शन हुए थे तथा उनकी गोष्ठियों में सम्मिलित होने का उन्हें अवसर भी प्राप्त हुआ था। जीवन के अन्तिम दिनों में वे अतीत के सुखद साहित्यिक संस्मरण सुनाया करते थे। उनके एक संस्मरण के अनुसार ऋणग्रस्त भारतेन्दुजी के जीवन पर प्रकाश पड़ता है : "महाराजकुमार रामदीन सिंह की भारतेन्दुजी से हार्दिक घनिष्ठता थी। वे प्रायः बनारस आते-जाते थे। बनारस में बाबू हरिश्चन्द्र से मिलना उनका अनिवार्य कार्यक्रम रहता था। एक बार महाराजकुमार बनारस गये। वे भारतेन्दु जी की बैठक में जाकर बैठ गये और उनकी प्रतीक्षा करने लगे। इसी बीच एक व्यक्ति बैठकखाने में आया। वह कुछ बुदबुदाने लगा, 'बड़े साहित्यकार बने हैं। कवि हैं। दूसरों से लिया पैसा देने का नाम नहीं।' महाराजकुमार ने उत्सुकतावश उससे पूछा, 'क्या बात है?' वह उलटे महाराजकुमार पर उबल पड़ा—'पूछनेवाले बहुत मिलते हैं। देनेवाला कोई नहीं दिखाई पड़ा। आप क्या दे देंगे?'

महाराजकुमार ने धीरज से काम लिया और कहा कि आखिर बात क्या है? उसने जरा त्योरी बदलकर कहा—'बहुत बड़े साहित्यकार बने हैं, मेरे चार हजार रुपये के लिए, रोज टाल-मटोल करते हैं। आप चले हैं पूछने —क्या बात है। जैसे मालूम पड़ता है, आप रुपये दे ही देंगे।'

---

१. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की जीवनी : शिवनन्दन सहाय, पृ० ३२२
२. वही, पृ० ३२३

कहते हैं, महाराजकुमार ने तत्क्षण चार हजार रुपये गिन दिये। वह व्यक्ति महाराजकुमार की इस सदाशयता पर अवाक् रह गया।"

जिन दिनों मेरे पितामह ने उपर्युक्त संस्मरण सुनाया था, मुझे उनकी बातों पर विश्वास नहीं हुआ। किन्तु, आज उन संस्मरणमूलक तथ्यों को स्वीकार करना पड़ता है, इसलिए कि उस घटना की पुष्टि भारतेन्दुजी के पत्र से हो जाती है। भारतेन्दु ने कलकत्ता-स्थित अपने एक मित्र को पत्र लिखा था :

"प्रियवर,

इतने दिनों के अनन्तर मुझे एक हिन्दी के सच्चे प्रेमी मिले, जो अपने वचन के सच्चे और कार्य के पक्के हैं। इन्होंने मेरी पुस्तकों के छापने का प्रण किया है और मेरी अर्थ-सहायता भी यथेष्ट कर रहे हैं, जिससे मैं अब निश्चिन्त होकर कुछ लिखने में प्रवृत्त हूँ। परन्तु खेद है कि उक्त मित्र कुछ काल पूर्व न मिले, नहीं तो मैं बहुत कुछ कर सकता, क्योंकि मेरा शरीर स्वस्थ रहता था। अब मेरा स्वास्थ्य भंग हो गया है, इससे मैं यथायोग्य श्रम नहीं कर सकता। यों तो मेरे मित्र बहुत हैं, परन्तु प्रायः सब सम्पत के साथी ही निकले, अधिकांश स्वार्थी निकले। किसी से कुछ आशा नहीं, हाँ, इनमें अधिकांश मित्र वे हैं, जो मेरे ग्रन्थों को छापकर निज उदर पूर्ण करने को ही मित्रता का निदर्शन समझते हैं। परन्तु ईश्वर का धन्यवाद है कि उसने इतने दिनों के बाद एक सच्चा प्रेमी मिला दिया जोकि हिन्दी के लिए बड़े व्यग्र हैं और हिन्दी की उन्नति के लिये ठीक मेरी तरह तन, मन, धन श्रीकृष्णार्पण करने को कटिबद्ध हैं। आप इस समाचार से प्रसन्न होंगे कि ये बीच-बीच में मेरी अर्थ-सहायता तो करते ही आते हैं। परन्तु सम्प्रति इन्होंने एक साथ ४००० रु० देकर मुझे ऋण से उऋण किया है। क्या आप ऐसे महात्मा का नाम भी सुनना चाहते हैं ? लीजिए सुनिये—इनका नाम महाराजकुमार श्रीरामदीन सिंह 'क्षत्रिय-पत्रिका' के सम्पादक हैं। मै अब किसी को पुस्तकें छापने न दूंगा, प्रकाशित-अप्रकाशित समस्त पुस्तकों का स्वत्व भी इन्हीं को दिये देता हूँ।"

भारतेन्दु की उस विषम आर्थिक स्थिति में महाराजकुमार ने उनका जो मूल्यांकन किया, यथार्थ में वह उनकी साहित्यप्रियता तथा हिन्दी के विकास के लिए उनकी बेचैनी का का ज्वलन्त प्रमाण है।

भारतेन्दुजी विपन्नता की उस स्थिति में पहुँच चुके थे, जिसका उल्लेख उनके 'सती-प्रताप' नाटक में द्युमत् सेन के कथन में मिलता है :

मोहि न धन को सोच भाग्यवश होत जात धन।
पुनि निर्धन सों दोस न होत यही गुन गुनि मन॥
मो कहँ इक दुख यहै जु प्रेमिन हूँ मोहि त्याग्यो।
बिना द्रव्य के स्वानहु नहिं मो सों अनुराग्यो॥
सब प्रियगन छोड़ी मित्रता, बन्धुन हूँ नातो तज्यो।
जो दास रह्यो मम गेह को मिलनहु में अब सो लज्यो॥

बाबू हरिश्चन्द्र की आर्थिक अवस्था उत्तरोत्तर ह्रासोन्मुख होती गई। उनके एकमात्र सहायक महाराजकुमार रामदीन सिंह थे। उनसे वे निस्संकोच सारी बातें कहते थे। उन्होंने

१. देखें—परिशिष्ट ३, पत्र-संख्या ३०

२३ सितम्बर, १८८२ ई० को महाराजकुमार को सम्बोधित कर पत्र लिखा, जिससे भारतेन्दु जी की शोचनीय स्थिति का परिदर्शन होता है :

"आपने जैसा अनुग्रह इस समय किया वह कहने योग्य नहीं, चित्त ही साथी है। आज शनिवार की दोपहर है अब तक बाबू साहबप्रसाद सिंह नहीं आये। शाम तक या रात तक शायद आवें। यद्यपि इस अवसर पर फिर कुछ आपको लिखना निरा झख मारना है किन्तु अत्यन्त कष्ट के कारण लिखता हूँ। हो सके तो एक सौ और भेज दीजिए। जो काम कम्बख्त दरपेश है नहीं निकलता और मैं यहाँ किसी से उसका जिक्र तक नहीं किया चाहता इसी से फिर निर्लज्ज होकर लिखा। किन्तु जाने दीजिए, बहुत कष्ट हो तो नहीं, क्षमा।"[1]

बाबू रामदीन सिंह के नाम दूसरे पत्र में भारतेन्दुजी ने लिखा, "बाबू साहबप्रसाद सिंह की शिष्टाचार मुझसे कुछ भी नहीं बन पड़ी। मेरा स्वभाव आपने देखा होगा कि बिल्कुल बाह्याडम्बर-शून्य है इसी से मुझको जाहिरा कुछ नहीं आता। वह सब पत्र यहीं छापूँगा। यह फिर मैं किस मुख से कहूँ कि हो सकै तो शीघ्र एक सौ और भेज दीजिए।"[2]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने उपर्युक्त पत्रों में अपनी परेशानियों की चर्चा करते हुए लिखा था :

'प्रायः सब सम्पत् के साथी ही निकले, अधिकांश स्वार्थी निकले।'

यह उनके जीवन का कटु सत्य था। उन्होंने कछ रुपये अपने किसी मित्र को जमा करने को दिये थे। वह बनारस छोड़कर मिर्जापुर चला गया। भारतेन्दुजी विवश हो उसके यहाँ मिर्जापुर पहुँचे। वहाँ उसने रुपया देने से इनकार कर दिया। वे इतने अर्थ-संकट में थे कि उसके विरुद्ध अदालती कार्रवाई करने में भी आर्थिक कारणों से विवश थे। वे अपनी पुस्तकों का स्वत्वाधिकार तक बेचने को विवश हो गये। पुस्तक ही उनकी आमदनी का स्रोत रह गया था। पुस्तकों से भी क्या आमदनी हो सकती है, इसका आभास उनके उस तीसरे पत्र से मिलता है, जो उन्होंने महाराजकुमार के नाम लिखा था :

"रुपया सब एक साथ हाथ से निकल जाने से मैं बहुत तंग हो गया हूँ। नालिश, दीवानी, फौजदारी सभी करनी है—यदि हो सके तो शीघ्र सहायता कीजिए। वह यों कि मैं अपनी पुस्तकों में से जिसका आप चाहें स्वत्व हकतसनीफ मैं आपके हाथ बेच डालूँ। वा और जैसे उचित समझिए। ४०० रु० की मुझको जरूरत है इसमें आपका किया जितना हो सकै वा न हो सकै, जो कुछ हो तार द्वारा समाचार दीजिएगा। आदित्यवार तक रु० हमको यहाँ तक पहुँच जाना चाहिए। यहाँ अन्धेर नगरी, विद्यासुन्दर इत्यादि का लोगों ने ५५ रु० प्रति पुस्तक लगाया, किन्तु लज्जा के कारण मैंने नहीं बेचा। वहाँ होगा तो जो वस्तु १ की बिकैगी वह आप नोटिस में ४ की लिखिएगा। तब हमारी; आपकी और पुस्तक की प्रतिष्ठा रहैगी। वा यह जो आप न चाहैं तो जो कुछ हो लिखिएगा। सिद्धान्त यह

१. परिशिष्ट ३, पत्र-संख्या १
२. वही, पत्र-संख्या ३

समझिए कि इस विषय को मैं विशेष नहीं लिख सकता। इस समय सहायता कीजिएगा तो अगले जनम-भर एहसान मानूँगा और किसी बात से आपसे बाहर नहीं हूँगा।...यह सब वृत्त सब गुप्त रखियेगा। ४०० रु० हो सके अत्युत्तम, नहीं जितना भेज सकिए।"[1]

आर्थिक उलझन ने भारतेन्दुजी की हिम्मत पस्त कर दी थी। इसका असर उनकी सेहत पर पड़ा। उन्होंने आश्विन शुक्ल १४, संवत् १९३९ वि० को महाराजकुमार के नाम अपने पत्र में लिखा :

"रुपये के विषय में यह निवेदन है कि जितना तैयार हो इस पत्र के पाते ही रवाने कीजिये। एक २ क्षण में हानि और दुख है वरंच इन्हीं चिन्ताओं के कारण मैं इस रुग्णावस्था को प्राप्त हुआ हूँ। थोड़ा लिखा बहुत समझियेगा इति—इससे विशेष मैं क्या लिखूँ।

तेरे बीमार को चारा नहीं गोयाई का।
ऐ मसीहा यही मौका है मसीहाई का॥"[2]

भारतेन्दुजी की इस विपन्नता में बाबू रामदीन सिंह हितैषी मित्र के रूप में सहायक सिद्ध हुए। उन्होंने भारतेन्दुजी को अभाव की स्थिति में रुपये दिये। उन्हें साहित्य-रचना के लिए निश्चिन्तता प्रदान की। एक बात अवश्य थी कि बाबू साहब में हिन्दी के लिए उत्कृष्ट अनुराग था। इसी कारण उन्होंने अपना नुकसान सहकर भी साहित्यकारों के लिए साहित्य-संवर्धन का अवसर प्रदान किया। बाबू साहब भारतेन्दु-साहित्य बेचकर धनकुबेर नहीं हो सके। इसका ज्वलन्त उदाहरण उनके प्रेस में भारतेन्दु-साहित्य के मुद्रित संस्करण हैं, जो न बिक सकने के कारण आज भी गोदाम की शोभा बढ़ा रहे हैं।

भारतेन्दु का पटना-प्रवास :

महाराजकुमार बाबू रामदीन सिंह ने अपने साहित्यिक क्रिया-कलाप तथा सारस्वत साधना से खड्गविलास प्रेस को साहित्यिक संस्था और साहित्यिक तीर्थ का रूप दिया था। वहाँ उन्नीसवीं सदी के सातवें दशक के हिन्दी-साहित्यकारों का जमघट होता था। महाराजकुमार की साहित्य-साधना से प्रभावित होकर भारतेन्दुजी पटना गये थे। सन् १८८४ ई० के मार्च के प्रथम सप्ताह में पटना जाने का उल्लेख मिलता है।[3]

सम्भवतः वह उनकी प्रथम पटना-यात्रा थी। बताया जाता है कि भारतेन्दुजी रात में पटना पहुँचे। उन दिनों खड्गविलास प्रेस पटना के चौहट्टा मुहल्ले में था। किराये के खपरैल मकान में प्रेस चल रहा था। वे प्रेस पहुँचे। रात में प्रेस बन्द था। दरवान को प्रेस खोलने को कहा। उसने अपरिचित जानकर ताला नहीं खोला। भारतेन्दुजी प्रेस के बरामदे में सो गये। सुबह महाराजकुमार को जब सूचना मिली तब वे दौड़े आये। उन्हें अपने आवास पर ले गये। उन्होंने नौकरों को डाँटा। इसपर भारतेन्दुजी ने कहा, इसमें क्रुद्ध होने की कोई बात नहीं है। रक्षकों ने अपना कर्त्तव्य-पालन किया।[4]

---

१. परिशिष्ट ३, पत्र-संख्या ४
२. ,, ,, , पत्र-संख्या ५
३. ,, ,, पत्र-संख्या ८
४. 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' : ब्रजरत्नदास; पृ० १५५

भारतेन्दुजी कई दिनों तक महाराजकुमार के साथ रहे। महाराजकुमार के प्राचीन ग्रन्थों का संग्रहालय देखकर वे चकित हो गये। सारी रात संग्रहालय देखते रहे। भारतेन्दु जी बाबू साहब को अपने ही जैसा साहित्यानुरागी समझकर अत्यन्त भाव-विभोर हो उठे। जब वे पटना से बनारस के लिए प्रस्थान करने लगे तब बाबू रामदीन सिंह ने उन्हें एक पगड़ी, एक थान कपड़ा और ५०१ रु० नकद से उनकी विदाई की। खड्गविलास प्रेस के मैनेजर बाबू साहबप्रसाद सिंह ने अपनी ओर से ७५ रु० विदाई में दिये।

श्रीनरेशचन्द्र चतुर्वेदी ने लिखा है कि एक बार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और पण्डित प्रतापनारायण मिश्र दोनों एक साथ पटना गये। बाबू रामदीन सिंह के प्रयास से भारतेन्दु-कृत सत्यहरिश्चन्द्र नाटक का अभिमंचन हुआ। उसमें भारतेन्दुजी ने हरिश्चन्द्र का और मिश्रजी ने रोहिताश्व का प्रभावोत्पादक अभिनय किया था।[1] पर, मेरे मत से यह बात असंगत-सी लगती है; क्योंकि सन् १८८६ ई० से 'ब्राह्मण' खड्गविलास प्रेस, पटना से मुद्रित और प्रकाशित होने लगा था और उसके पूर्व मिश्रजी का महाराजकुमार से सद्यः परिचय नहीं था।[2] भारतेन्दु जी का निधन जनवरी, १८८५ ई० में हुआ।

महाराजकुमार को बलिया-जिलान्तर्गत अपनी जन्मभूमि रेपुरा गाँव से बड़ा लगाव था। यद्यपि उनका कर्मक्षेत्र बिहार था तथापि अपनी जन्मभूमि से लगाव रहना स्वाभाविक था। इसलिए वे बलिया की साहित्यिक गतिविधियों से सुपरिचित थे। वहाँ की साहित्यिक हलचल को सक्रिय बनाये रखने के लिए वे सचेष्ट रहते थे। उनकी प्रेरणा से सितम्बर, १८८४ ई० में भारतेन्दुजी बलिया गये। काशी-निवासी पण्डित रविदत्त शुक्ल ने बलिया के जिलाधिकारी रॉबर्ट्‌स, कानपुर-निवासी मातादीन शुक्ल और बलिया-निवासी रायसाहब मुंशी नवाबलाल के सम्मिलित सहयोग से रंगमंच की स्थापना की। महाराज-कुमार ने शुक्लजी के प्रयत्न से उस रंगमंच से, ददरी मेले के अवसर पर, 'सत्यहरिश्चन्द्र नाटक' का मंचन कराया था। भारतेन्दुजी महाराजकुमार के स्नेहपूर्ण आग्रह पर इस अवसर पर बलिया गये। ५ नवम्बर, १८८४ ई० को नाटक खेला गया। भारतेन्दुजी ने उसमें हरिश्चन्द्र की अनुपम भूमिका अदा की थी। उनकी भूमिका इतनी मार्मिक हुई कि बलिया के जिलाधिकारी रॉबर्ट्‌स की पत्नी की आँखों से अविरल आँसू प्रवाहित होने लगे।[3] इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेन्दुजी का बिहार से और खासकर खड्गविलास प्रेस से अविच्छिन्न सम्बन्ध कायम हो गया था।

खड्गविलास प्रेस और महाराजकुमार रामदीन सिंह प्रकारान्तर से भारतेन्दु के पर्याय-से हो गये थे। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि साहित्य-साधना के प्रबल उत्साह से दोनों ने हिन्दी-साहित्य के नवनिर्माण में अपने ढंग से उल्लेखनीय कार्य किया और वे साहित्य एवं साहित्यकारों के प्रकाश-स्तम्भ बन गये।

---

१. हिन्दी-साहित्य का विकास और कानपुर, पृ० २१३
२. परिशिष्ट ४, देवदत्त शर्मा का पत्र
३. भारत-जीवन, नवम्बर, १८८५ ई०।

भारतेन्दु-साहित्य का स्वत्वाधिकार :

भारतेन्दु के लिए यह सौभाग्य तथा सुयोग की बात थी कि उन्हें बाबू रामदीन सिंह जैसा कर्मशील साहित्य-प्रेमी सहायक मिला। यद्यपि दोनों साहित्य-निर्माताओं का सम्पर्क उस समय हुआ जब भारतेन्दु अपने जीवन के संकटाकीर्ण उत्तरपक्ष में पहुँच चुके थे। उनके जीवन के अन्तिम दिन आर्थिक दृष्टि से अवश्य ही संकटापन्न थे, फिर भी बाबू साहब ने शक्ति-भर उनकी मदद की। भारतेन्दुजी प्रतिपादन-स्वरूप अपने ग्रन्थों के प्रकाशन का स्वत्वाधिकार लिखने के लिए बार-बार आग्रह करते रहे। किन्तु, स्नेही मित्र बाबू साहब क्या लिखवाते। उनकी पुस्तकें और लोग भी छाप लेते थे। इससे बाबू साहब और भारतेन्दुजी की भी परेशानी बढ़ती थी। इस परेशानी से ऊबकर भारतेन्दुजी ने २३ सितम्बर, १८८२ ई० को बाबू साहब को लिखित सूचना दी थी, जो उनकी पुस्तकों के आवरण-पृष्ठों पर छपा करती थी :

"मेरी बनाई वा अनुवादित वा संग्रह की हुई पुस्तकों को श्री बाबू रामदीन सिंह खड्‌गविलास प्रेस के स्वामी छाप सकते हैं जबतक जिन पुस्तकों को ये छापते रहें और किसी को अधिकार नहीं कि छापैं।"[१]

इसी भाँति अपने 'हिन्दी-व्याकरण' के प्रकाशन का भी उन्हें स्वत्वाधिकार दे दिया था।[२]

भारतेन्दुजी ने १४ नवम्बर, १८८४ ई० के एक पत्र में महाराजकुमार को लिखा था :

'जो पुस्तकें आप छाप चुके हैं या छापते हैं उनका सब अधिकार आप ही को है, इस बिषय में जब जैसे कहिए लिख दूँ।'[३]

किन्तु बाबू साहब भारतेन्दु की पुस्तकें पूर्ववत् प्रकाशित करते रहे। अपने ऐसे उदारचेता साहित्यकार से कुछ भी लिखवाना उन्हें धर्मसम्मत नहीं जँचा। भारतेन्दुजी सोच रहे थे कि मेरे निधन के बाद महाराजकुमार को कोई परेशानी न हो। भारतेन्दुजी के किसी मित्र ने ही उनके सम्बन्ध में जो कुछ लिखा था उससे भारतेन्दु कितने खिन्न हुए थे, उसी की एक झलक उनके निम्नांकित पत्र से मिलती है :

"बाबू काशीनाथ के पत्र ही मैं जो उन्होंने बाबू रामकृष्ण के पत्र की पंक्तियाँ मेरे बिषय में लिखी हैं उन्हीं से सब बात समझ लीजिए मेरे लिखने की कोई भी आवश्यकता नहीं। कलियुग के मित्र और शत्रु या उदासीन का कुछ भेद मालूम नहीं पड़ता। मैं तो अपना सर्वस्व कलियुग के मित्रों के चरित्र पर न्योछावर कर चुका हूँ। आपसे इन लोगों से अभी काम नहीं पड़ा है। चुप से सब कुछ तमाशा देखते चलिये। .. मेरी लिखी हुई आज्ञा सिवा आपके और किसी के पास नहीं है निश्चिन्त रहिए।"[४]

---

१. परिशिष्ट ३, पत्र-सं० २
२. वही, पत्र-सं० ७
३. वही, पत्र-सं० ८
४. वही, पत्र-सं० १३

भारतेन्दुजी बाबू साहब के इस असीम अनुराग तथा शुभचिन्तक मित्र के रूप में उनकी सेवा के प्रतिदान के लिए उद्विग्न थे। अन्ततः भारतेन्दुजी ने अपनी पुस्तकों का स्वत्वाधिकार लिख ही दिया। स्वत्वाधिकार-विषयक पत्र इस प्रकार है :

"बाबू रामदीन सिंह मालिक व मुहतमिम क्षत्रिय-पत्रिका, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर।

आपको मैं इजाजत देता हूँ कि आप मेरे किताबों में से, जिनको आप चाहें, छापें और इस वास्ते कि जो किताबें आप छापें उनमें आपको नुकसान न हो। यह भी आपको लिखा जाता है कि जो चीज आप छाप लेंगे, उसको और कोई न छाप सकेगा, और अगर कोई छापे तो कानून हक तसनीफ के मुताबिक आप उसपर नुकसानी का दावा करने के मजाज होंगे और मेरे किताबों के सबब से आपको जो कुछ इनतिफाअ हो उससे मुझको कोई वास्ता नहीं। वह कुल मुनाफा क्षत्रिय-पत्रिका के पर्चे में लगाया जायगा जिसके कि आप मालिक हैं। फकत मरकूम, २३ सितम्बर, १८८२ ई०, मुकाम बनारस।"[१]

बाबू रामदीन सिंह भारतेन्दुजी के इस उपकार को नहीं भूल सके। उनके निधन के बाद भी उनके ऋणों का भुगतान करने के लिए कृतसंकल्प थे। भारतेन्दुजी के परिचित तथा गया (बिहार) में शिक्षा-विभाग के प्रख्यात विद्यालय-उप-निरीक्षक मुंशी राधालाल माथुर का १३५० रुपये साढ़े पन्द्रह आने किसी मद का भारतेन्दुजी पर कर्ज था। भारतेन्दुजी ने अपने जीवन-काल में मुंशीजी को ३८० रु० दिये थे। उसी मद में महाराजकुमार ने ६०० रु० मुंशीजी को दिये। मुंशीजी को ३७० रु० साढ़े पन्द्रह आने देने को रह गये। इस बीच ६ जनवरी, १८८५ ई० को भारतेन्दुजी की मृत्यु हो गई। मुंशी राधालाल ने भारतेन्दु के निधन के बाद भी शेष धनराशि की वसूली करने में संकोच नहीं किया। निधन के ठीक पन्द्रहवें दिन बाद शेष धनराशि के लिए राधाकृष्ण दास को पत्र लिखा।[२] यह खबर बाद में महाराजकुमार को मिली। उन्होंने २७ मई, १८८५ ई० को मुंशीजी को शेष धनराशि देकर भारतेन्दुजी की आत्मा को शान्ति प्रदान की।[३] साहित्य के क्षेत्र में ऐसा सम्बन्ध विरल देखा जाता है।

उपर्युक्त समाचार तथा घटनाओं से स्पष्ट है कि दोनों ने एक-दूसरे के साथ बन्धुत्व के सम्बन्ध का निर्वाह कर आधुनिक हिन्दी-साहित्य के विकास में अन्यतम योगदान किया। यह घटना हिन्दी-साहित्य का एक ऐसा ऐतिहासिक तथ्य है, जो स्वर्णाक्षरों में उल्लेख योग्य है।

भारतेन्दुजी की मृत्यु के बाद स्वत्व-सम्बन्धी झगड़ा :

काशी के भारत-जीवन प्रेस के स्वामी बाबू रामकृष्ण वर्मा ने भारतेन्दुजी की 'अन्धेर-नगरी' नाटक को महाराजकुमार की आज्ञा के विना प्रकाशित किया। महाराजकुमार ने पटना के जिला-जज के न्यायालय में वर्माजी के खिलाफ हानि का दावा दायर किया।

---

१. परिशिष्ट ३, पत्र-सं० २१

२. वही, पत्र-सं० २१

३. वही, पत्र-सं० २२ और २३

उन्होंने अपनी सफाई में भारतेन्दुजी के पत्र तथा उनके हाथ का लिखा स्वत्वाधिकार-पत्र न्यायालय में प्रस्तुत किया। अन्त में अनेक साक्ष्यों की जाँच के बाद पटना के जिलाजज कर्कवुड ने १७ दिसम्बर, १८८६ ई० को महाराजकुमार के पक्ष में निर्णय दिया। वर्माजी को क्षतिपूर्त्ति करनी पड़ी।

आधुनिक हिन्दी-साहित्य को बाबू हरिश्चन्द्र ने नई दिशा दी और अपने तन-मन-धन को उसके विकास के लिए न्योछावर किया। महाराजकुमार ने भारतेन्दु-साहित्य को विद्वान् से लेकर जन-सामान्य तक पहुँचाकर उनके साहित्य को उजागर किया। इतनी बड़ी सेवाओं को विस्मृत कर देश के कुछ स्वार्थी जनों ने उनकी कृतियों पर अपने वणिक् उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए तरह-तरह के मतवाद प्रकट किये। ३ अगस्त, १९१८ ई० को इसी ढंग की एक मनगढ़न्त बात प्रयाग के 'अभ्युदय' में प्रकाशित हुई। 'अभ्युदय' ने लिखा था :

"खड्गविलास प्रेस के स्वामी बाबू रामदीन सिंह, सुना जाता है, भारतेन्दुजी के परम मित्र थे। भारतेन्दु की मृत्यु के पश्चात् उन्होंने उनके साहित्य के प्रचार और उद्धार का कार्य अपने जिम्मे लिया, और इसकी सर्वोत्तम युक्ति उन्हें यह सूझी कि उन्होंने हिन्दी-संसार में यह प्रसिद्ध कर दिया कि भारतेन्दुजी अपने ग्रन्थों का प्रकाशन-स्वत्व केवल हमें ही दे गये हैं, अतएव, उन्हें छापने का अधिकार प्रेस एक्ट के नियमानुसार केवल हमीं को प्राप्त है। इस उक्ति के सामने किसी की दाल न गली, और समस्त हिन्दी-संसार भारतेन्दुजी के ग्रन्थों के प्रकाशन के सम्बन्ध में मौन होकर बैठ रहा। इस मिथ्या उक्ति की ओट में खड्गविलास प्रेस के स्वामी को स्वार्थ-साधन का अच्छा अवसर हाथ लगा।"

भारतेन्दु की कृतियों का प्रकाशन :

भारतेन्दुजी की एक-दो पुस्तकों को छोड़ शेष सभी पुस्तकों का मुद्रण और प्रकाशन, खड्गविलास प्रेस से होने से पूर्व बनारस लाइट प्रेस, चन्द्रप्रभा यन्त्रालय, हरिप्रकाश प्रेस, ब्रजचन्द यन्त्रालय, लाजरस प्रेस, मेडिकल हॉल प्रेस, विक्टोरिया प्रेस और भारत-जीवन यन्त्रालय से हो चुका था। इनमें से कुछ प्रेसों ने प्रकाशन का अधिकार भी रखा था। भारतेन्दुजी ने कुछ पुस्तकें स्वयं पैसे खर्च कर उपर्युक्त प्रेसों से मुद्रित कराई थीं। उनकी अधिकतर कृतियाँ सन् १८६८ से १८८० ई० के बीच बनारस से मुद्रित और प्रकाशित हुई थीं। जबसे भारतेन्दुजी का महाराजकुमार से परिचय हुआ, तबसे उनकी कृतियों का पुनर्मुद्रण खड्गविलास प्रेस से होने लगा, यद्यपि भारतेन्दु की समस्त कृतियों पर उन्होंने प्रथम संस्करण का ही उल्लेख किया है। उन्होंने भारतेन्दु की कृतियों को व्यापक रूप से प्रसारित किया। उनकी कृतियाँ बिहार प्रदेश के स्कूलों के लिए मंजूर कराई गईं। 'सत्यहरिश्चन्द्र नाटक' बिहार के स्कूलों में बहुत दिनों तक पाठ्यक्रम में था। उनकी अनेक कृतियों के अनेक संस्करण प्रकाशित हुए।

भारतेन्दुजी के देहावसान के बाद महाराजकुमार रामदीन सिंह ने उनकी कृतियों की रक्षा तथा उनकी स्मृति को अमर बनाने के लिए उनके ग्रन्थों को ग्रन्थावली का रूप दिया।

हिन्दी-प्रकाशन-जगत् में सम्भवतः यह पहला प्रयास था, जबकि हिन्दी के एक लेखक की समस्त कृतियों को ग्रन्थावली का रूप दिया गया था। उनकी समस्त कृतियाँ छह भागों में प्रकाशित की गईं, जिनका आरम्भ 'नाटकावली' से हुआ। इन ग्रन्थावलियों को रामदीन सिंह ने 'हरिश्चन्द्र-कला' की संज्ञा दी। उन्होंने उनके कुल १२९ ग्रन्थों का प्रकाशन 'ग्रन्थावली' के रूप में किया।

हरिश्चन्द्र-संवत् और भारतेन्दु की प्रामाणिक जीवनी :

रामदीन सिंह भारतेन्दुजी के इतने बड़े स्नेही थे कि उनके निधन के बाद खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित सभी पुस्तकों तथा पत्रिकाओं पर 'हरिश्चन्द्राब्द' प्रकाशित किया जाने लगा। उन्होंने हिन्दी-जगत् से अनुरोध किया था कि उनकी स्मृति में हिन्दी-जगत् पुस्तकों में हरिश्चन्द्र-संवत् का प्रयोग करे। इसमें बाबू साहब को सफलता मिली।

रामदीन सिंह का दूसरा प्रयास था कि बाबू हरिश्चन्द्र का प्रामाणिक विस्तृत जीवन-चरित उनके किसी निकटतम मित्र द्वारा लिखाकर प्रकाशित किया जाय। इस दिशा में भारतेन्दु के मित्र व्यास रामशंकर शर्मा प्रयत्नशील हुए। जितनी सामग्री इस विषय की चाहिए थी उतनी प्राप्त नहीं हो सकी। इसीलिए महाराजकुमार ने भारतेन्दु के मित्रों के नाम अपील प्रकाशित कराई, जिसमें उन्होंने उनके सम्बन्ध में विशद जानकारी देने के लिए निवेदन किया।[1] यह कार्य भगीरथ-प्रयत्न के बाद भी महाराजकुमार के जीवन-काल में नहीं हो सका। लेकिन उनका सत्प्रयास विफल नहीं हुआ। सन् १९०४ ई० में इस कार्य को बाबू शिवनन्दन सहाय ने 'सचित्र हरिश्चन्द्र' नामक लगभग ५०० पृष्ठों की पुस्तक द्वारा पूरा किया। सन् १९०५ ई० में उसका प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ। यह पुस्तक बहुत लोकप्रिय हुई। दूसरा संस्करण सन् १९०७ ई० में प्रकाशित हुआ।

इस पुस्तक के पहले बाबू राधाकृष्ण दास की पुस्तक 'हरिश्चन्द्र की जीवनी' प्रकाशित हुई थी, किन्तु उसमें इतना विस्तृत विवरण तथा विवेचन नहीं था। राधाकृष्ण दास की पुस्तक में भारतेन्दुजी के जीवन के कुछ पहलुओं तथा उनके कृतित्व की मात्र परिचयात्मक समीक्षा रही है।

उपर्युक्त सारे तथ्यों तथा विवेचनों से हम सहज रूप से इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारतेन्दुजी को साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठा प्रदान कराने में महाराजकुमार रामदीन सिंह और उनकी प्रकाशन-संस्था खड्गविलास प्रेस ने जो कार्य किया है, वह हिन्दी-साहित्य के इतिहास में अपने ढंग की असाधारण घटना है।

पण्डित प्रतापनारायण मिश्र

भारतेन्दु-युग के सप्तर्षि-मण्डल के प्रमुख नक्षत्र बाबू रामदीन सिंह के परम स्नेही कात्यायन गोत्रीय कान्यकुब्ज ब्राह्मणवंशावतंस पण्डित प्रतापनारायण मिश्र का जन्म

---

1. परिशिष्ट ३, पत्र-सं० ३०

चित्र-सं० : १०
पण्डित प्रतापनारायण मिश्र
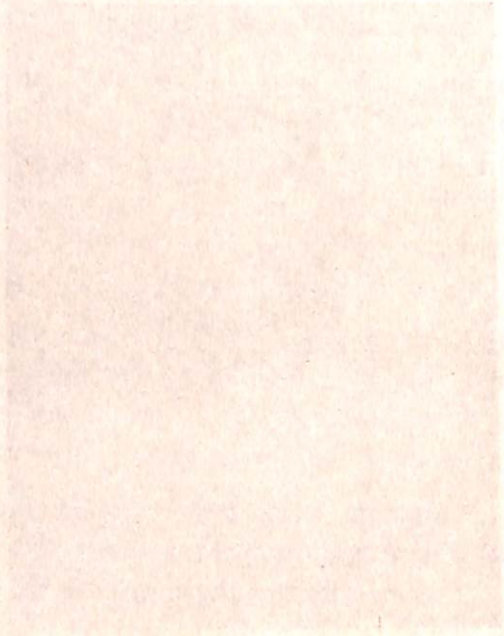
सोमवार, आश्विन-कृष्ण नवमी, संवत् १९१३ वि०[1] तदनुसार २४ सितम्बर, १८५६ ई० को, उन्नाव जिले के बैजेगाँव में हुआ था। उनके पिता पण्डित संकठादीन मिश्र चौदह वर्ष की आयु में मातृ-पितृविहीन हो, जीविका की खोज में कानपुर आये। वहाँ उन्होंने संस्कृत तथा ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन किया और ज्योतिर्विद् के रूप में प्रख्यात हुए। वे कानपुर के स्थायी निवासी हो गये।

प्रतापनारायण मिश्र पिता-माता की एकलौती सन्तान थे। इनका जन्म अनेक देवाराधनों के बाद हुआ था, इसलिए उनका नाम प्रतापनारायण रखा गया। उनका बचपन जन्म-स्थान बैजेगाँव में बीता। पिता ने शिक्षा के लिए कानपुर बुलाया। पिता सस्कृत के पण्डित थे, इसलिए उन्होंने स्वयं संस्कृत पढ़ाई तथा ज्योतिषशास्त्र की भी शिक्षा दी। लेकिन उन्हें 'आदिनाडी वरं हन्ति मध्यनाडी च कन्यकाम्' वाली बात पसन्द नहीं आई।[2] अतः उन्हें पढ़ने के लिए कानपुर के एस० पी० जी० स्कूल में दाखिल किया गया। तदनन्तर उनका नाम अँगरेजी स्कूल में लिखाया गया, जहाँ उन्होंने अँगरेजी, फारसी, उर्दू और हिन्दी का अध्ययन किया, किन्तु गम्भीर अध्ययन के प्रति उनका रुझान नहीं हुआ।[3] भारतीय भाषाओं में उन्होंने बँगला, मराठी और पंजाबी सीखी। मिश्रजी का मन अध्ययन तथा स्कूली शिक्षा में नहीं रमा। उन्होंने कोई परीक्षा उत्तीर्ण किये विना ही सन् १८७१ ई० में स्कूली जीवन का परित्याग कर दिया।[4] फिर भी उन्होंने भाषाओं का ज्ञान अर्जित किया। उनके समवयस्क मित्र बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने उनकी शिक्षा के सम्बन्ध में लिखा है :

"पढ़ने में परिश्रम उन्होंने कभी न किया और न कभी जी लगाकर पढ़ा। इसी से उनकी सब पढ़ाई अधूरी रही, तिसपर भी वह अँगरेजी खासी बोल सकते थे। आध-आध घण्टा, घण्टा बराबर अँगरेजी में बातें किये जाते थे, अँगरेजी-अखबार पढ़ लेते थे, कभी इच्छा करते तो कुछ अनुवाद भी कर लेते थे, पर बड़ी अनिच्छा से। अँगरेजी-पोथियों और अखबारों के पढ़ने में वह जरा भी मन न लगाते थे। कोई इसके लिए दबाता था तो भी वे परवाह न करते थे। मुँह बनाके कागज-पोथी फेंक देते थे।...यही हाल उनकी सस्कृत का था। छः-छः और आठ-आठ साल से जो विद्यार्थी कौमुदी रटते थे अथवा जिन पण्डितों को कथा कहते युग बीत गये थे उनके साथ हमने प्रतापनारायण जी को बातें करते देखा है।"[5]

---

१. सुकवि-संकीर्त्तन, पृ० ८४; हिन्दी-निर्माता, पृ० ५०; गुप्त-निबन्धावली, पृ० ११; भारतेन्दु-मण्डल, पृ० ९६; हरिश्चन्द्र की जीवनी, पृ० ३६७; प्रतापनारायण मिश्र : जीवन और साहित्य, पृ० ३१। इस ग्रन्थ में ही सबसे पहले अँगरेजी तिथि का भी उल्लेख किया गया है।

२. सुकवि-संकीर्त्तन, पृ० ८४

३. प्रतापनारायण मिश्र : जीवन और साहित्य, पृ० १२

४. हिन्दी-निर्माता, भाग एक, भारतेन्दु-मण्डल में मिश्रजी के विद्यालयी जीवन-समापन का वर्ष १८७५ ई० का उल्लेख है, जबकि 'प्रतापनारायण मिश्र : व्यक्ति और साहित्य' (पृ० १३) में १८७१ ई० का उल्लेख है।

५. गुप्त-निबन्धावली, पृ० १३

मिश्रजी के काव्य-गुरु हरदोई के मल्लावाँ ग्रामवासी पण्डित ललिताप्रसाद त्रिवेदी 'ललित' थे।[१] वे कानपुर में गल्ले की दुकान पर मुनीमी करते थे। मिश्रजी का उनसे परिचय वहीं हुआ। वे मिश्रजी को प्रतिभा से प्रभावित हुए। उन्होंने उन्हें छन्द:शास्त्र की शिक्षा दी। वे उनको साहित्यिक कार्यों के लिए प्रोत्साहित करते रहते थे। इसीलिए मिश्रजी उन्हें अपना काव्य-गुरु मानते थे। ललितजी साहित्यिक प्राणी थे। वे कानपुर के जीवन को सुसंस्कृत बनाने के लिए रामलीला, नाटक आदि का आयोजन करते थे। उन्होंने 'धनुष-यज्ञ' का आयोजन किया था, जिसकी उन दिनों उस नगर में बड़ी चर्चा थी। 'उस लीला के लिए उन्होंने स्वयं कविता की रचना की थी।' वह कविता की रचना करके लीलागत पात्रों की जबान से सुनाकर सुननेवालों का मन मोहित कर लेते थे। प्रतापनारायण भी इस लीला में शामिल होते थे और ललितजी की कविताओं का पाठ करते थे।[२]

उन दिनों कानपुर में लावनीबाजों की धूम थी। लावनी के प्रख्यात कवि बनारसी भी उन दिनों वहीं रहा करते थे। सम्मेलन में प्रायः लावनी होती थी। मिश्रजी आयोजनों में उत्साहपूर्वक भाग लेते थे। 'कविवचन-सुधा' का उन दिनों अधिक प्रसार था, जिसे मिश्रजी बड़े प्रेम से पढ़ते थे। इन सबका प्रभाव मिश्रजी पर पड़ा। उनके साहित्यिक संस्कार का इन परिवेशों से परिष्कार हुआ। अपने काव्य-गुरु ललितजी से उन्होंने छन्दः-शास्त्र का अध्ययन किया। वे कविता करने और लेख लिखने लगे। '**कविवचन-सुधा**' में उनकी कविताएँ प्रकाशित हुईं।

मिश्रजी भारतेन्दुजी के परम अनुरागी थे। उन्हीं की प्रेरणा से उन्होंने 'ब्राह्मण' पत्र का सम्पादन और प्रकाशन किया। उनका शरीर व्याधि-मन्दिर था। वे हमेशा बीमार रहा करते थे। फिर भी वे ऐसी स्थिति में साहित्य-साधना से विरत नहीं हुए। आर्थिक संकट तथा शारीरिक पीड़ा के रहते हुए भी उन्होंने सन् १८८९ ई० में कालाकाँकर से प्रकाशित दैनिक 'हिन्दुस्तान' के सहायक सम्पादक का कार्य किया। अक्खड़ स्वभाव-वश किसी बात में राजासाहब से नहीं पट सकी। वे 'हिन्दुस्तान' को छोड़कर कानपुर चले गये।

मिश्रजी सन् १८९२ ई० में गम्भीर रूप से बीमार पड़े। बीच में अच्छे भी हुए। पर, बीमारी का क्रम नहीं टूटा। बवासीर के पुराने मरीज हो चुके थे। वे सन् १८९४ ई० में अत्यधिक बीमार पड़े। इसी बीमारी से ३८ वर्ष की आयु में आषाढ़-शुक्ल चतुर्थी, रविवार, १९५१ वि० तदनुसार ६ जुलाई, १८९४ ई० को दस बजे रात्रि में उनका कानपुर में निधन हो गया।[3]

---

१. प्रतापनारायण मिश्र : व्यक्ति और साहित्य, पृ० ५९

२. निबन्ध-नवनीत, पहला भाग, पृ० ३-४

३. 'भारतेन्दु-मण्डल के सात प्रमुख लेखक' नामक ग्रन्थ में डॉ० श्यामनारायण तिवारी ने उनकी निधन-तिथि के सम्बन्ध में विशद रूप से विचार किया है। उनकी निधन-तिथि के सम्बन्ध में विभिन्न तिथियाँ दी गई हैं।

प्रतापनारायण मिश्र और रामदीन सिंह :

भारतेन्दु-मण्डल के सदस्य के नाते बाबू रामदीन सिंह मिश्रजी को तथा 'क्षत्रिय-पत्रिका' के नाते मिश्रजी बाबू रामदीन सिंह को जानते थे। 'ब्राह्मण' के पटना से प्रकाशित होने से पूर्व दोनों का परस्पर साक्षात्कार नहीं हुआ था। मिश्रजी तथा बाबूसाहब को एक-दूसरे के निकट लाने और स्नेहपाश में आबद्ध करानेवाले कानपुर से प्रकाशित 'गोधर्म-प्रकाश' पत्रिका के सम्पादक तथा फर्रुखाबाद-निवासी पण्डित देवदत्त शर्मा थे। आर्थिक परेशानियों के कारण जब 'ब्राह्मण' के प्रकाशन तथा मुद्रण की कठिनाई उत्पन्न हुई तब शर्माजी ने ही मिश्रजी को परामर्श दिया कि बाबू साहब को पत्र लिखा जाय कि वे इसके मुद्रण की व्यवस्था करें। मिश्रजी आलस्य से बाबूसाहब को पत्र नहीं लिख सके। किन्तु, उनके परामर्श पर शर्माजी ने प्रतापनारायण मिश्र के गुणों की चर्चा करते हुए 'ब्राह्मण' को खड्गविलास प्रेस से मुद्रित करने के लिए बाबूसाहब से अनुरोध किया। बाबूसाहब ने उत्तर में शर्माजी को लिखा था :

"मैंने भी उनके गुण बहुत दिवस से सुने हैं परन्तु साक्षात् नहीं किया है। आप ब्राह्मण भेजिये मैं प्रसन्नतापूर्वक छापूँगा।"[१]

शर्माजी के सदुद्योग से दोनों साहित्यकार एक-दूसरे के निकट आये। 'ब्राह्मण' छठे वर्ष, १२वीं संख्या, १५ जुलाई, १८८९ ई० से खड्गविलास प्रेस से छपने लगा। बाद में पटना से मुद्रण के साथ-साथ उसका प्रकाशन भी होने लगा।

मिश्रजी एक बार पटना गये थे। उन्हें बाँकीपुर स्टेशन से ले आने के लिए खड्ग-विलास प्रेस से कुछ लोग स्टेशन गये। मिश्रजी बड़ी सादी वेषभूषा में थे। वे एक हाथ में लोटा और बगल में कम्बल लिये ट्रेन से बाँकीपुर स्टेशन उतरे। प्रेस के लोगों ने उन्हें नहीं पहचाना। वे बड़ी व्यग्रता के साथ उनकी खोज कर रहे थे। मिश्रजी यह तमाशा देख रहे थे। जब लोग बहुत परेशान हो गये तब मिश्रजी ने उनलोगों से पूछा, 'आप किसे ढूँढ़ रहे हैं?' प्रेस के लोगों ने बताया—'कानपुर के प्रतापनारायण मिश्र को।' मिश्रजी ने कहा—'यहै कम्पू का परतपवा आय।' उनका स्वागत कर लोग उन्हें सादर प्रेस ले गये।[२] वहीं पहली बार मिश्रजी तथा बाबूसाहब ने एक-दूसरे को देखा था। बाबूसाहब ने मिश्रजी को बड़ा सम्मान प्रदान किया। सम्भवतः इसी अवसर पर बाबूसाहब ने भारतेन्दु-कृत 'सत्यहरिश्चन्द्र' नाटक के आमंचन का आयोजन भी किया था, जिसमें मिश्रजी ने रोहिताश्व की भूमिका का निर्वाह बखूबी किया था।[३]

रामदीन सिंह ने मिश्रजी की रचनाओं को प्रकाशित करने का जो उत्साह दिखलाया था, वह उस युग के लिए अनोखी बात थी। वे उनकी कृतियों की ग्रन्थावली भी निकालना चाहते थे। किन्तु मिश्रजी की असामयिक मृत्यु से बाबूसाहब की आकांक्षा पूरी न हो सकी। मिश्रजी के देहावसान पर सन् १८९४ ई० के 'ब्राह्मण' के दसवें वर्ष के अंक

---

१. ब्राह्मण, खण्ड ११, संख्या १, अगस्त. १८९७ ई०

२. प्रतापनारायण मिश्र : जीवन और साहित्य, पृ० ३७

३. वही, पृ० २६

११ और १२ संयुक्तांक के रूप में निकले थे, जिसमें उन्होंने समकालीन साहित्यकारों द्वारा व्यक्त शोक-प्रकाश छापा था। उसी अंक में उन्होंने 'ब्राह्मण', खण्ड ११ के अंक १ को 'प्रतापनारायण मिश्र-श्रद्धांजलि-अंक' के रूप में निकालने की अपनी योजना घोषित की थी। बाबूसाहब भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की जीवनी की भाँति मिश्रजी की प्रामाणिक जीवनी भी पुस्तकाकार प्रकाशित करना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने मिश्रजी के घनिष्ठ मित्रों तथा समकालीन साहित्यकारों से निवेदन भी किया था।[1] किन्तु, खेदजनक बात यह हुई कि समकालीन साहित्यकारों ने सन्तोषप्रद सहयोग प्रदान नहीं किया। फिर भी बाबूसाहब ने 'ब्राह्मण' का श्रद्धांजलि-अंक प्रकाशित किया। किन्तु जीवन-सम्बन्धी सामग्री के अभाव में वे मिश्रजी का प्रामाणिक जीवन-चरित्र प्रकाशित नहीं कर सके। आलोचकों का यह कथन सर्वथा निराधार एवं भ्रान्तिपूर्ण है कि बाबूसाहब ने अव्यवस्था के कारण मिश्रजी की कृतियों का प्रचार नहीं किया।[2] मिश्रजी की मृत्यु के अनन्तर भी उनकी रचनाएँ छापी गईं। बिहार के स्कूलों में उनकी पुस्तकें २५—३० वर्षों तक चलती रहीं। बाबूसाहब की उदारता पर मुग्ध होकर मिश्रजी कहा करते थे 'ऐसो रामदीन हितकारी।'

मिश्रजी की मृत्यु के बाद बाबू रामदीन सिंह कानपुर गये थे। उन्होंने मिश्रजी की पत्नी की आर्थिक सहायता की। वे वहाँ से मिश्रजी की अप्रकाशित रचनाएँ अपने भी साथ ले आये थे, जिनका उन्होंने धीरे-धीरे प्रकाशन भी किया। मिश्रजी के निधन के बाद बाबू रामदीन सिंह का भी देहान्त हो गया। बाबूसाहब के निधन के अनन्तर उनके ज्येष्ठपुत्र बाबू रामरणविजय सिंह ने मिश्रजी की रचनाओं का प्रकाशन किया। उन्हीं के प्रयास से सन् १९१० ई० में पटना में प्रताप-जयन्ती मनाई गई, जिसमें उन्होंने मिश्रजी पर शोकपूर्ण निबन्ध पढ़ा था।

खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित मिश्रजी की कृतियाँ :

काव्य : १. लोकोक्ति-शतक, २. प्रार्थना-शतक, ३. दंगल-खण्ड आल्हा, ४. तृप्यन्ताम्, ५. मन की लहर।

नाटक : ६. हठी हम्मीर, ७. संगीत शाकुन्तल, ८. कलिकौतुक।

गद्य-लेख : ९. शैवसर्वस्व, १०. प्रताप-चरित, ११. सुचाल-शिक्षा, १२. प्रताप-कथा-संग्रह।

संग्रह : १३. रसखान-शतक, १४. मानस-विनोद।

---

१. परिशिष्ट ४, पत्र-सं० २, ३

२. (अ) पं० प्रतापनारायण मिश्र : जीवन और साहित्य, पृ० ७१ और १४५

(ब) प्रतापनारायण मिश्र की हिन्दी-गद्य को देन, पृ० ५२

३. परिशिष्ट ४, पत्र-संख्या ३

अनूदित रचनाएं :

उपन्यास : १५. राजसिंह, १६. इन्दिरा, १७. राधारानी, १८. युगलांगुरीय, १९. अमर सिंह, २०. कपालकुण्डला।

कहानी : २१. कथामाला, २२. नीति-रत्नावली।

जीवन-चरित्र : २३. चरिताष्टक, २४. आर्यकीर्त्ति, भाग एक, २५. आर्यकीर्त्ति, भाग दो।

इतिहास : २६. सेन-राजवंश, २७. सूबे बंगाल का इतिहास, २८. सूबे बंगाल का भूगोल।

दर्शन : २९. पंचामृत।

स्वास्थ्य : ३०. स्वास्थ्यविद्या।

पाठ्यपुस्तक : ३१. बोधोदय, ३२. शिशु-शिक्षा (तीन भागों में), ३३. शिशु-विज्ञान, ३४. वर्णपरिचय (तीन भागों में)।

काव्य :

लोकोक्ति-शतक : इस पुस्तक का धारावाहिक प्रकाशन 'ब्राह्मण' के चार अंकों में हुआ था, जिनमें कुल ६१ छन्द हैं।[1] इसके बाद इसका प्रकाशन बन्द कर इसे पुस्तकाकार प्रकाशित करने की सूचना दी गई।[2] इस पुस्तक का प्रथम संस्करण भारत-जीवन प्रेस, बनारस से सन् १८८७ ई० में प्रकाशित हुआ था। खड्गविलास प्रेस से यही पुस्तक, जिसमें ११ पृष्ठ हैं, रायल अठपेजी आकार में सन् १८९६ ई० में प्रकाशित हुई। इस संस्करण में भी 'प्रथम बार' का उल्लेख है। ज्ञातव्य है कि बाबू रामदीन सिंह अपने प्रेस से प्रकाशित ग्रन्थों की संस्करण-संख्या अपने प्रकाशन के अनुसार देते थे, इसलिए इस पुस्तक पर भी 'प्रथम बार' लिखा गया। मिश्रजी ने इस पुस्तक के प्रकाशन का अधिकार सन् १८९६ ई० में उनको दिया था। पुस्तक के मुखपृष्ठ पर लिखा है : 'श्रीमन्महाराजकुमार बाबू रामदीन सिंह के अतिरिक्त इसके छापने का अधिकार किसी को नहीं है।' इसका मूल्य दो आने है।

पुस्तक की रचना सन् १८८४ ई० में हो गई थी, किन्तु पुस्तकाकार प्रकाशन पर उसमें जो 'समर्पण' दिया गया, उसके अनुसार उसकी रचना-तिथि रामनवमी श्रीहरिश्चन्द्राब्द ३, अर्थात् सन् १८८७ ई० है। इस पुस्तक के समर्पण के अनुसार भारतीय प्रजागण के मानसिक रोगों को दूर करने के लिए यह सौ गोलियाँ हैं। इन सौ छन्दों में नीति की शिक्षा दी गई है।

---

१. ब्राह्मण, खण्ड २, संख्या ७, पृ० २, छन्द-सं० ११३ तक, १५ सितम्बर, १८८४ ई०
,, खण्ड २, संख्या ८, पृ० २, छन्द-सं० १४—३१ तक, १५ अक्टूबर, १८८४ ई०
,, खण्ड २, संख्या ९, १०, पृ० ८, छन्द-सं० ३२—५३ तक, १५ दिसम्बर, १८८४ ई०
,, खण्ड ३, संख्या ३, पृ० ४, छन्द-सं० ५४—६१ तक, १४ जून, १८८५ ई०

२. 'ब्राह्मण' के जून, १८८५ ई० के अंक में ६१ छन्द छापने के बाद यह सूचदा दी गई थी—"अब यह लोकोक्तिशतक अलग पुस्तकाकार छपता है, जो महाशय मँगाना चाहैं, ब्राह्मण कार्यालय से बद्रीदीनजी शुक्ल अकबरपुर से मँगा लें अभी दाम भेजनेवालो से एक आना दाम और आध आना महसूल लिया जायगा। ब्राह्मण के ग्राहकों को डाक महसूल न देना पड़ेगा।"

छन्द के अन्तिम चरण की पूर्त्ति किसी-न-किसी लोकोक्ति से हुई है। यह उनके लोकोक्ति-ज्ञान का परिचायक है। देशदशा, व्यवहार, सज्जन-प्रशंसा, सत्संगति-महिमा, भाषा-विवाद, परोपकार आदि विषयों पर उक्तियाँ कही गई हैं। इन पदों में लोकप्रचलित उक्तियाँ तथा 'घाघ'-कथित उक्तियों का प्रयोग किया गया है। लोकोक्तियों से पदपूर्त्ति के कारण उक्तियाँ प्रभावोत्पादक हो गई हैं। कवि ने लिखा है :

संग्रह करी 'प्रतापहरि', जग कहतूति प्रसिद्ध।
जैसी जाकी भावना, तैसी ताकी सिद्धि ॥

सभी उक्तियाँ व्यंग्य-विनोदपूर्ण हैं। धर्म-पाखण्डियों पर व्यंग्य-बाण का प्रहार करते हुए कहा गया है :

मुख में चारि बेद की बातें, मन पर धन परतिय की घातें।
धनि बकुला भक्तन की करनी, हाथ सुमिरनी बगल कतरनी ॥

हिन्दी तथा स्वदेश-प्रेम पर भी व्यंग्य किया गया है :

छोड़ि नागरी सगुन, आगरी उर्दू के रँगराते।
देसी वस्तु बिहाय बिदेसी सों सर्वस्व ठगाते ॥
मूरख हिन्दू कस न लहैं दुख जिनकर यह ढँग दीठा।
घर की खाँड़ खुरखुरी लागै, चोरी का गुड़ मीठा ॥
पढ़ि कमाय कीन्हों कहा, हरे न देश कलेस।
जैसे कन्ता घर रहे, तैसे रहे विदेस ॥

प्रार्थना-शतक : इस पुस्तक का धारावाहिक प्रकाशन 'ब्राह्मण' में अक्टूबर, १८९४ ई० में आरम्भ हुआ था। 'ब्राह्मण' के दो अंकों में कुल २० छन्द छपे।[१] तत्पश्चात् इसका प्रकाशन बन्द हो गया था। बाद में पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हुआ। मुझे पुस्तकाकार संस्करण देखने को नहीं मिला। अनुमान है, उसमें सौ स्वरचित कवित्त होंगे।

मिश्रजी की यह काव्य-रचना उनकी विशुद्ध धार्मिक वृत्ति तथा उनकी भगवद्भक्ति की द्योतक है। नमूने देखिए :

गीध गनिकादि रहे रावरे सनेही साँचे, नीच उन्हें भाख्यो तिन झूठमूठ भाख्यो है।
पतित-सिरोमनि तो हम हैं प्रताप, जिन पेट भरि कीन्हों जौन पाप अभिलाख्यो है।
एते पै न तारिहौ तौ तुमही बिचारि देखो, जो पे कृतघनता को स्वाद नहीं चाख्यों है।
पूरी अधमाई करि अधम उधारन जू, बूड़ते पै हमही तिहारो नाम राख्यो है ॥१॥
केती बैस, केती समरत्थि, केती बुद्धि रही, वाही अनुसार अपराधहू बिचारिये।
केतो दुख पायो तौहूँ केतिक दिना लौं हाय, बिनती कितेक करै सो तो चित्त धारिये ॥
तापर 'प्रताप' दुज दीन तुम दीनबन्धु, अन्तर छुटाई और बड़ाई को निहारिये।
योंही मनमौज है तो न्याव निरधारिये, पै काँकरी के चोरहि कटारी मति मारिए ॥१७॥

---

१. ब्राह्मण : खण्ड १०, संख्या ३, पृ० २६, सन् १८९४ ई० पर १० कवित्त छपे थे
खण्ड १०, सं० ४—९, पृ० २—५, नवम्बर—अप्रैल, १८९५ ई० पर १० कवित्त छपे।

सरब सकतिमान जाहिर जहान मैं हो, ताहू पै हमारी बार ह्वै रहे अकरमन्य ।
बेदन में बिदित सहस्त्रनाम बारे तहूँ, रोदन हमारे को बनाय राख्यो मानो बन्य ।।
ऐसी दसा देखि बिनै करते न बार बार, कहूँ परताप कछु होतो जो सहारो अन्य ।
चित्त के कुढ़े पै कढ़ै मुखते कठोर बात, और अब कहा कहै धन्य महाराज धन्य ।।२०।।

'प्रार्थना-शतक' के लगभग १२ छन्द सन् १९३४ ई० तक बिहार की मिड्ल कक्षा में पढाये जाते थे ।

मन की लहर : यह रचना सर्वप्रथम भारत-जीवन प्रेस से सन् १८८५ ई० में प्रकाशित हुई, जिसके ३७ पृष्ठों में २५ विभिन्न भाषाओं की लावनियाँ थीं । मिश्रजी ने बाद में इस संस्करण में परिवर्त्तन-परिवर्द्धन कर बाबू रामदीन सिंह को भेजा था । बाबू साहब तथा मिश्र जी के निधन के बाद उसका खड्गविलास प्रेस से सन् १९१४ ई० में प्रकाशन हुआ । इस संस्करण में ३९ पृष्ठ थे । इसमें मिश्रजी की रचित ३१ लावनियों का संकलन था । इस संस्करण का मूल्य साढ़े तीन आने है । इस प्रेस से प्रकाशित यह प्रथम संस्करण था । इसमें (बरहमन के) मन-मानस से उमंगी और परमानन्द महोदधि श्रीप्रेमदेव से मिली हुई १३ कविताएँ हैं । प्रथम संस्करण के कुल छन्दों की संख्या २५ है । बाद में मिश्रजी ने इसमें छह छन्द और जोड़ दिये । इसमें संस्कृत, उर्दू, फारसी और हिन्दी की लावनियाँ हैं ।

दंगल-खण्ड आल्हा : मिश्रजी को दंगल देखने का बहुत शौक था । कानपुर में सन् १८८७ ई० में दंगल का आयोजन किया गया था । वे भी उस दंगल को देखने गये थे । उसी दंगल का सजीव चित्र इस कृति में वर्णित है । यह कृति सन् १८८७ ई० में पहली बार कानपुर से छपी थी । पुनः इसे खड्गविलास प्रेस ने छापा था । मुझे इस प्रेस का मुद्रित संस्करण देखने को नहीं मिला था ।

तृप्यन्ताम् : यह कृति पहली बार धारावाहिक रूप में 'ब्राह्मण' में प्रकाशित हुई ।[1] इसका पुस्तकाकार पहला संस्करण खड्गविलास प्रेस से सन् १८९१ ई० में और इसी प्रेस से दूसरा संस्करण सन् १९१४ ई० में प्रकाशित हुआ । यह २३ पृष्ठों की लघु कृति है । इसमें ९० छन्द हैं । इस कृति में देश-दशा का वर्णन है । इस कृति के प्रत्येक छन्द में देश-दशा पर दुःख और असन्तोष व्यक्त किया गया है । इसके प्रत्येक छन्द के तीन चरणों में देश-दशा और चौथे चरण में किसी देवी-देवता के नाम तर्पण हैं ।

देश की आर्थिक गुलामी के कारण भारतीय जनता अपनी सांस्कृतिक चेतना भी भूलने लगी थी । एक तर्पण में उसकी ओर लक्ष्य कर कहा गया है :

---

१. ब्राह्मण : खण्ड ७ : संख्या ३
,, खण्ड ७ : संख्या ४
,, खण्ड ७ : संख्या ५
,, खण्ड ७ ; संख्या ६
,, खण्ड ७ : संख्या ७

केहि बिधि वैदिक कर्म होत, कब कहा बखानत रिक यजु साम।
हम सपनेहू में नाहिँ जानैं, रटैं पेट के बने गुलाम।
तुमहिं लजावत जगत जनम धरि दुहूँ लोकन में निपट निकाम।
कहैं कौन मुख लाय हाय फिर ब्रह्मा बाबा तृप्यन्ताम् ॥

नाटक :

हठी हम्मीर—राधाकृष्ण दास के कथनानुसार भारतेन्दु ने इस नाटक का पहला परिच्छेद लिखा था। उनकी मृत्यु के बाद इसे पूरा करने का भार लाला श्रीनिवास दास ने लिया। उनके कार्य पूरे न होने पर पण्डित प्रतापनारायण मिश्र ने इसे स्वयं पूरा करना चाहा।[1] इस नाटक का प्रणेता कौन था, इसका कहीं उल्लेख नहीं है। मिश्रजी के इस नाटक का पहला अभिमंचन श्रीभारत मनोरंजिनी सभा के तत्त्वावधान में २६ नवम्बर, १८८७ ई० को कानपुर में हुआ था।[2] इससे स्पष्ट है कि इस नाटक के अभिनीत हो जाने से पूर्व इसकी रचना निश्चित रूप से हो चुकी थी। अतः इसकी रचना-तिथि १८८७ ई० मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। नाटक अभिनीत हो जाने पर इसका हस्तलेख मिश्रजी ने अपने मित्र पण्डित देवदत्त शर्मा को प्रसाद-स्वरूप दे दिया था।[3] इस कारण इसका प्रकाशन यथासमय नहीं हो सका। मिश्रजी के निधन के बाद शर्माजी ने इस नाटक को बाबू रामदीन सिंह के आग्रह पर प्रकाशनार्थ पटना भेजा। अतः मिश्रजी के निधन के तीन वर्ष बाद सन् १८९८ ई० में यह नाटक 'ब्राह्मण' में प्रकाशित हुआ। यह नाटक खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित 'विद्याविनोद' पत्रिका में भी प्रकाशित हुआ था।[4]

'हठी हम्मीर' ऐतिहासिक नाटक है। इसमें कुल छह ऐक्ट हैं। पहले ऐक्ट में एक, दूसरे ऐक्ट में दो, तीसरे ऐक्ट में एक, चौथे ऐक्ट में दो, पाँचवें ऐक्ट में एक और छठे ऐक्ट में एक दृश्य है। मिश्रजी ने अंक तथा दृश्य के लिए क्रमशः 'ऐक्ट' और 'सीन' शब्दों का इस्तेमाल किया है। छठा ऐक्ट सबसे बड़ा है। स्त्री-पात्रों की संख्या तीन तथा पुरुष-पात्रों की पच्चीस है। नान्दी तथा भरत-वाक्य के अतिरिक्त आठ दोहे, एक सवैया, एक लावनी, दो गजलें और अन्य पद्य इसमें प्रयुक्त किये गये हैं।

बादशाह अलाउद्दीन की बेगम मरहट्टी जंगल में हिरन का शिकार करने गई है। परिश्रान्त हो एक वृक्ष के नीचे बैठ थकान मिटाती है। वातावरण की मादकता काम जगाती है। वह अपने मंगोल सैनिक मीर मुहम्मद को बुलाती है। उससे कहती है, 'अगर मैं बादशाह से कह दूँगी कि शिकार देखने गई थी और वहाँ मीर मुहम्मद मुझसे गुस्ताखी करता था' और इस धमकी के साथ उसे स्नेहपाश में आबद्ध कर लेती है। यह बात अलाउद्दीन को ज्ञात होने पर, मरहट्टी बेगम मीर मुहम्मद को पत्र द्वारा सूचना देती है। वह प्राण-भय से राजाओं की शरण प्राप्त करना चाहता है, किन्तु कोई राजा राजनीतिक शरण देने को

---

१. राधाकृष्ण-ग्रन्थावली, पृ० ४०१
२. ब्राह्मण, खण्ड ४, सं० ५, सन् १८८७ ई०, 'कानपुर कुछ कुनमुनाया है'
३. ब्राह्मण, खण्ड १०, सं० १२, सन् १८८४ ई० : देवदत्त शर्मा का पत्र
४. ब्राह्मण, खण्ड १२, सं० २, जनवरी, १८९८ ई०

तैयार नहीं होता। अन्त में रणथम्भौर-नरेश हम्मीरदेव ने मीर मुहम्मद को राजनीतिक शरण दी। इसकी सूचना अलाउद्दीन को मिली। वह रणथम्भौर-नरेश को मीर को वापस करने के लिए पत्र लिखता है। हम्मीरदेव क्षात्रधर्म-प्रतिपालन की भावना से उसके आग्रह को ठुकरा देता है। फलतः अलाउद्दीन हम्मीरदेव पर हमला करता है। घमासान लड़ाई होती है। मीर मुहम्मद युद्ध करता हुआ पकड़ा जाता है, जिसे बादशाह हाथी के पैरों-तले कुचलवा देता है। इसी बीच हवा के झोंके में रणथम्भौर का राजध्वज गिर पड़ता है, जिसे देख रानियाँ यह समझ लेती हैं कि राजा वीरगति को प्राप्त हो गये। वे जौहर कर लेती हैं। राजा यह देख वीतराग हो जाता है। वह देवालय में पूजालीन हो जाता है। वहीं शिव के दर्शन होते हैं। वह प्राण त्याग देता है और उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है। देवतागण उनकी सराहना करते हैं।

इस नाटक का प्रारम्भ काल्पनिक, मध्य ऐतिहासिक और अन्त पौराणिकता पर आधृत है। नाटक के मुसलमान पात्र उर्दू तथा हिन्दू पात्र हिन्दी बोलते हैं। हिन्दू पात्र सद्वृत्तियों तथा मुसलमान पात्र असद्वृत्तियों के प्रतीक हैं। चूँकि नाटककार हिन्दू और हिन्दुस्तान का हिमायती रहा है, इसलिए ऐसे चरित्रों का निर्माण उसके लिए स्वाभाविक था।

संगीत शाकुन्तल : इस नाटक की समर्पण-तिथि इसके रचयिता ने वसन्त-पञ्चमी, हरिश्चन्द्राब्द, ७ फरवरी, १८९१ ई० लिखी है। यही इस पुस्तक की प्रणयन-तिथि है। इस ग्रन्थ की रचना के लगभग आठ वर्ष बाद इसका पहला संस्करण हरिश्चन्द्राब्द १५, सन् १८९९ ई० में प्रकाशित हुआ। पहले संस्करण में ११२ पृष्ठ हैं। दूसरा संस्करण, सन १९०८ ई० में प्रकाशित हुआ, जिसमें १३५ पृष्ठ हैं। डॉ० सुरेशचन्द्र शुक्ल और डॉ० शान्तिप्रकाश वर्मा ने इसका प्रथम प्रकाशन-काल सन् १८६१ ई० लिखा है, जो भ्रामक है। इस नाटक में सूत्रधार को छोड़ पुरुष-पात्रों की संख्या १३ तथा नटी को छोड़ स्त्री-पात्रों की संख्या ९ है।

यह सात अंकों का नाटक है, जिनमें कुल उन्नीस दृश्य हैं। यह कालिदास के सुप्रसिद्ध नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का हिन्दी-छायानुवाद है। यह गद्य-पद्य-मिश्रित नाटक है, इसलिए मिश्रजी ने इसे 'गीतिरूपक' भी कहा है। कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' तथा इस 'संगीत शाकुन्तल' की कथावस्तु प्रायः एक-सी है। इस नाटक की प्रमुख विशेषता इसका गद्यानुवाद तथा मूल श्लोकों का यत्र-तत्र सरस अनुवाद है।

कलिकौतुक रूपक : यह चार दृश्यों का रूपक है। इसका पहला संस्करण भारत-जीवन प्रेस से फरवरी, १८८६ ई०[1] में तथा इसी प्रेस से इसके दूसरे और तीसरे संस्करण क्रमशः सन् १८९० ई० तथा सन् १९०४ ई० में हुए थे।[2] यह रूपक खड्गविलास प्रेस से पहली बार सन् १९१३ ई० में प्रकाशित हुआ। इस संस्करण में ३८ पृष्ठ हैं। रूपक का रचना-काल आश्विन-कृष्ण नवमी, सन् १८८५ ई० दिया गया है।

---

१. भारतेन्दु मण्डल के सात प्रमुख लेखक : डा० श्यामनारायण तिवारी पृ० २६७

२. प्रतापनारायण मिश्र : जीवन और व्यक्तित्व, पृ० १६८

पता नहीं, डॉ० शुक्ल ने इस पुस्तक के प्रथम संस्करण का प्रकाशन-काल सन् १८८५ ई० कैसे माना है

इस पुस्तक के नामकरण का आधार रामचरितमानस का उत्तरकाण्ड है, जिसमें गोस्वामी तुलसीदास ने कलि-वर्णन के प्रसंग में कहा है : 'कलिकौतुक तात न जात कही ।' मिश्रजी ने इस नाटक में कलियुग के नगर-निवासियों के गुप्त चरित्र का उद्‌घाटन किया है। इसमें १५ पुरुष-पात्र एवं तीन स्त्री-पात्र हैं। नान्दी के एक दोहा-पाठ से इसका आरम्भ होता है। रूपक में सूत्रधार की योजना नहीं है। रूपक के अन्त में छप्पयबद्ध भरत-वाक्य है। दूसरे दृश्य में एक गीत की योजना की गई है।

इस रूपक के पहले दृश्य का आरम्भ, नायक किशोरीदास के घर पर उसकी पत्नी श्यामा तथा चम्पा के कथोपकथन से होता है। दोनों के संवादों से यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों ही पुंश्चली हैं। श्यामा की सहेली चम्पा निःसन्तान है, जिसके लिए वह अनेक व्यक्तियों से सम्बन्ध रखती है। उसका पति अपने रोजगार, व्यवहार और कचहरी-दरबार में रहता है, इसलिए उसे पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त है। किशोरीदास अपनी पत्नी श्यामा के के समक्ष परम वैष्णव भक्त बनता है, किन्तु उसके चरित्र से उसकी पत्नी अच्छी तरह वाकिफ है। लालाजी 'रहस' देखने के बहाने रात लश्करी जान के कोठे पर बिताते हैं। इधर श्यामा रसिकविहारी के साथ प्रेमालाप करती है।

दूसरा दृश्य किशोरीदास की बैठक में पण्डित ब्रह्मानन्द और गप्पूमल के वार्त्तालाप से आरम्भ होता है। तीनों व्यक्ति मांस-भक्षण, विलायती शक्कर और डाकदरी दवा के सेवन को अधर्म बताते हैं। लाला किशोरीदास जी पण्डितजी के विचारों का जोरदार समर्थन करते हैं, परन्तु गप्पूमल और ब्रह्मानन्द के आते ही उनकी बैठक में कबाबियों एवं शराबियों का जमघट लगता है। अँगरेजी-दाँ मायाप्रसाद, उर्दूपरस्त मुंशी शंकरलाल, बिगड़ैल देहाती पण्डित चण्डीदत्त, लश्करी जान वेश्या तथा उसका भँड़ुआ नब्बू का प्रवेश होता है। सभी कबाब और शराब के दौर में वृत्त हो जाते हैं। लश्करी जान अपनी जूतियों से किशोरी दास की खोपड़ी पर प्रहार करती है। किशोरीदास उसे देवी का प्रसाद समझ कहते हैं : 'अहाहा ! खोपड़ी तर हो गई। पुरखे तर गए।' (लिपटके) अजब लुत्फ है यार की जूतियों का अँगरेजी-दाँ मायाप्रसाद नशे में बोल उठते हैं, 'अगर इस जिन्दगी में या मरने के बाद कहीं कोई मजे की हालत है; बैकुण्ठ, मुक्ति या हेविन जो कहो तो इसी वाइन में है।' लोग किशोरीदास को भगतजी कहते हैं, किन्तु वे जात-पाँत, कण्ठी-तिलक, धर्म-कर्म, तन-प्राण, लोक और परलोक सब बोतल पर कुरबान कर देते हैं। इस प्रकार शराब-कबाब के साथ ही शेरो-शायरी के दौर के साथ सभी नेपथ्य में चले जाते हैं।

तीसरे दृश्य में किशोरीदास का दत्तक पुत्र पदमचन्द, कुमार्गी बालगोविन्द कुण्डाकैंचा सिंह, शेरासिंह की सगति में पड़कर आवारा हो गया। भुसण्डी दास तो पदमचन्द के सौन्दर्य पर मुग्ध हो कहते हैं : 'अहा ! इसकी सुन्दरता पर तो अपने राम मुद्दत से निछावर हैं, पर 'घात' नहीं लगती।' इस दृश्य में भगत किशोरी दासजी अपनी पुरोहिताइन मिसराइन पर घात लगाने के चक्कर में हैं।

चौथा दृश्य सम्पादक विश्वनाथ के घर ऐक्यवर्द्धिनी सभा की बैठक से आरम्भ होता है, जिसमें पदमचन्द, शिवनाथ तथा गप्पूमल की वार्त्ता होती है। 'सभा' की बैठक सप्ताह में दो घण्टे के लिए होती है। उसमें भी सब सदस्य नहीं उपस्थित होते। देशोन्नति की चर्चा

होती है। इसी बीच रसिकविहारी आते हैं। वह यह सूचना देते हैं कि लाला किशोरीदास की सम्पत्ति कुर्क हो गई। उन्हें तीन साल की कैद की सजा भी हुई है। मांस-मदिरा के पीछे कर्जखोर होकर इस बुरी दशा को प्राप्त हुए। उनकी चरित्रहीनता ने उनको कहीं का रहने नहीं दिया। रसिकविहारी शिवनाथ से अपने पत्र में किशोरीदास की करतूतों की चर्चा करने के लिए आग्रह करते हैं। किन्तु, शिवनाथ दुःखग्रस्त देवियों पर हँसना अच्छा नहीं समझते। इसलिए वे उसकी करतूतों की चर्चा नहीं करते। किशोरी का दत्तक पुत्र पदमचन्द भी आवारा हो गया। वह किसी वेश्या के यहाँ नौकरी करता है। सम्पादक शिवनाथ धर्म और प्रेम की धूम मचाकर भारतीयों को सन्मार्ग पर लाने के लिए भरतवाक्य के रूप में अपनी कामना करते हैं :

तजि दुखप्रद दुरव्यसन पुरुष बनिता अरु बालक।
मन क्रम बच सों होंहि बेद-आज्ञा-प्रतिपादक ॥
निज गौरव पहिचानि सजग रहि कपटी जन सों।
करहिं सबै सब काल देशहित तन मन धन सों ॥
भारत में चहुँदिशि प्रेममय धवल धजा फहरत रहै।
बानी प्रतापहरिमिश्र की सुहृद हृदय आदर लहै ॥

इस रूपक का उद्देश्य कलियुग के पुजारियों, आधुनिक शिक्षा-ग्राहकों, गुण्डों और असन्तों के पोल खोलना है। इस दृष्टि से मिश्रजी सफल हैं। शिवनाथ, पदमचन्द, ब्रह्मानन्द और गप्पूमल को छोड़ इस रूपक के सभी पात्र खण्डित व्यक्तित्व के हैं। शिवनाथ की भूमिका में मिश्रजी स्वयं बोलते हैं। उन्होंने देशभक्ति की वाणी को और बुलन्द किया है। इस रूपक के स्त्री-पात्र तथा चण्डीदत्त बैसवाड़ी में बोलते हैं। शेष पात्र हिन्दी, अँगरेजी-मिश्रित हिन्दी तथा ब्रजभाषा का प्रयोग करते हैं। इस रूपक के अनेक स्थलों पर यथार्थवादी अभिव्यक्ति के कारण अश्लीलता आ गई है।

गद्यलेख :

शैवसर्वस्व : 'ब्राह्मण' में 'शिवपूजन' और 'शिवपूजा' शीर्षकों से मिश्रजी ने निबन्ध लिखे थे।[१] इस धारावाहिक निबन्ध को सन् १८९० ई० में पहली बार पुस्तक-रूप में प्रकाशित किया गया, जिसमें ३२ पृष्ठ हैं। निबन्ध को पुस्तक का रूप देते समय लेखक ने (मुझे ऐसा लगता है कि प्रकाशक ने) यत्र-तत्र बहुत अंशों को छोड़ दिया है। कुछ अंश जोड़ दिये गये हैं। लेखक ने यह पुस्तक शिव को समर्पित की है। समर्पण-तिथि श्रावण-शुक्ल १४, हरिश्चन्द्राब्द ४ है।

---

१. ब्राह्मण, खण्ड ३, संख्या ६, पृष्ठ ५-८ : १५ अगस्त, १८८५ ई०, शिवपूजन
खण्ड ३, संख्या ७, पृष्ठ १०-११ : १५ सितम्बर, १८८५ ई०, शिवपूजन
खण्ड ४, संख्या ७, पृष्ठ ३ : शिवमूर्त्ति
खण्ड ४, संख्या ८, पृष्ठ ३ : शिवमूर्त्ति
खण्ड ४, संख्या ११, पृष्ठ ७ : शिवमूर्त्ति
खण्ड ४, संख्या १२, पृष्ठ ४ : शिवमूर्त्ति
खण्ड ५, संख्या १, पृष्ठ १२ : शिवमूर्त्ति
खण्ड ५, संख्या २, पृष्ठ १ : शिवमूर्त्ति

मिश्रजी शैव थे। इसलिए उन्होंने अपने इस निबन्ध में शिवालय, शिव और पूजा-विधि पर वैज्ञानिक ढंग से प्रकाश डाला है। 'शैवसर्वस्व' की भाषा और शैली दोनों रोचक हैं।

सुचाल-शिक्षा : प्रथम भाग (सन् १८९१ ई०) : गद्यलेखों के संकलन का पहला प्रकाशन खड्गविलास प्रेस से सन् १८९१ ई० में हुआ था। इसका एक और (पहला संस्करण) सन् १८९२ ई० में उचित वक्ता प्रेस, कलकत्ता से मुद्रित हुआ था। उस संस्करण की एक हजार प्रतियाँ मुद्रित की गई थीं तथा एक प्रति का मूल्य चार आने था। वह रायल आकार की पुस्तक है, जिसमें कुल ६८ पृष्ठ हैं। चार पृष्ठ और जोड़ दिये गये हैं, जिनमें कठिन शब्दों के अर्थ दिये गये हैं। खड्गविलास प्रेस से इस पुस्तक का दूसरा संस्करण सन् १९११ ई० में छपा, जिसकी दो हजार प्रतियाँ छपीं। इस पुस्तक का दूसरा भाग तैयार नहीं हुआ।

मिश्रजी ने इस पुस्तक की भूमिका में लिखा था—"यदि हमने यह न जाना कि अपने तथा दूसरों के लिए किस-किस रीति से हमारे क्या-क्या कर्त्तव्य हैं तो हमारा दूसरे जीवों से उत्तम बनना वृथा है। बस, यही सिखाने के उद्देश्य से यह पुस्तक लिखी गई है।"

नवयुवकों के चरित्र-निर्माण की दृष्टि से यह इक्कीस उपदेशात्मक लेखों का संकलन है, जो पाठों में विभक्त है। इसमें पढ़ना और लिखना, नित्यकर्म, साधारण व्यवहार, समय पर दृष्टि, अवकाश के कर्त्तव्य, मनोयोग, निर्लिप्तता, मिताचरण, लोकलज्जा, निजत्व, आत्मगौरव, आत्मीयता, अन्तरात्मा या अनुसरण, संगति का विचार, संलग्नता, आत्मनिर्भरता, अर्थबुद्धि, स्वत्वसंरक्षण, आस्तिकता, कर्त्तव्यपालन और स्मरणीय वाक्य शीर्षक लेख हैं। पुस्तक सरल गद्य में लिखी गई है, जो सामान्य जन के लिए सहज बोधगम्य है। इसके गद्य का एक नमूना इस प्रकार है :

"शरीर के द्वारा जितने काम किये जाते हैं उन सबमें मन का लगाव अवश्य रहता है। जिनमें मन प्रसन्न रहता है वे ही उत्तमता के साथ होते हैं। और जो उसकी इच्छा के अनुकूल नहीं होते हैं वह वास्तव में चाहे अच्छे कार्य भी हों किन्तु भले प्रकार पूर्ण-रीति से सम्पादित नहीं होते।"[1]

प्रताप-चरित : मिश्रजी ने अपना जीवन-चरित 'प्रताप-चरित' के नाम से लिखा था। इसका प्रकाशन 'ब्राह्मण'[2] में शुरू हुआ था, पर तीन अंकों के बाद इसका प्रकाशन बन्द हो गया। बाद में खड्गविलास प्रेस से यह पुस्तक छपी थी, पर मुझे देखने को नहीं मिली। यह चरित अधूरा ही छपा।

प्रताप-कथा-संग्रह (सन् १९१० ई०) : मिश्रजी ने बालोपयोगी छोटी-छोटी कहानियाँ लिखी थीं। उन छोटी कहानियों का संग्रह 'प्रताप-कथा-संग्रह' के नाम से सन् १९१० ई० में खड्गविलास प्रेस से छपा। इस संग्रह में सौ कहानियाँ हैं।

---

१. सुचाल-शिक्षा : प्रथम भाग, छठा पाठ 'मनोयोग'

२. ब्राह्मण, खण्ड ५, संख्या २, ३, ४, सन् १८८८ ई०

संग्रह :

रसखान-शतक : यह भक्त कवि सैयद इब्राहीम 'रसखान' के बिखरे १११ मुक्तकों का संकलन है। रसखान के छन्दों के संकलन की दिशा में पण्डित किशोरीलाल गोस्वामी ने सर्वप्रथम उन्नीसवीं सदी में प्रयास किया था। उन्होंने अपने संकलन के १०५ छन्द मिश्रजी को दिये थे। किशोरीलाल ने लिखा है कि "जब श्रीभारत धर्ममहामण्डल का अधिवेशन दिल्ली में हुआ था, तब मैं आरा से प्रतिनिधि होकर वहाँ गया था, लौटती बार कानपुर में ठहरा, वहाँ 'ब्राह्मण'-सम्पादक पं० प्रतापनारायण मिश्र से भेंट हुई, कथा-प्रसंग में उन्होंने रसखान की कविता के लिए वासना प्रगट की, मैने भी आरा आकर अपनी संगृहीत एक सौ पाँच कविता उनके पास भेज दी।"[1]

मिश्र जी ने गोस्वामीजी की इस कृपा का उल्लेख करते हुए लिखा है, "कई बार कई एक अपने से वित्तवाले मित्रों से निवेदन किया, पर उत्तर यह आया कि हम तो आप ही से इस मनोरथ पूर्ति की आशा किए बैठे हैं। अस्तु, इस वर्ष आरा-निवासी मित्रवर श्री पण्डित किशोरीलालजी गोस्वामी के द्वारा थोड़े से कवित्त मिल गए इसके लिए उन्हें धन्यवाद देता हूँ और कुछ अन्यान्य " पाई हुई सवैया एकत्रित करके इस प्रेमरसपूर्ण रसखान-शतक को प्रकाशित करता हूँ।"[2] इन संकलनों के ७२ छन्द सर्वप्रथम 'ब्राह्मण' के दो अंकों में धारावाहिक रूप से प्रकाशित किये गये।[3] इसके बाद इसका प्रकाशन 'ब्राह्मण' में नहीं हुआ।

रसखान के इन १११ छन्दों का संकलन ज्येष्ठ-कृष्ण एकादशी, श्रीहरिश्चन्द्राब्द ७, को तैयार कर लिया गया था।[4] इस ३४ पृष्ठों की पुस्तक का प्रकाशन सन् १८९२ ई० में हुआ। यह पुस्तक बाबू रामदीन सिंह को मिश्रजी ने समर्पित की थी। दो पृष्ठों के उपक्रम में रसखान का संक्षिप्त परिचय है। पुस्तक की मात्र एक सौ प्रतियाँ ही मुद्रित की गई थीं।

मिश्र जी ने इस संकलन का सम्पादन अच्छे ढंग से किया था। कठिन शब्दों के अर्थ प्रत्येक पृष्ठ के नीचे दे दिये गये हैं। इससे पाठकों के अध्ययन में सुविधा होती है। 'सुजान-रसखान' तथा 'रसखान-शतक' के छन्दों के क्रम में बहुत बड़ा अन्तर है, फिर भी दोनों संकलनों के अनेक छन्दों में साम्य है।

मानस-विनोद : इस पुस्तक में मानस के सातो सोपानों में से नीति-विषयक और नित्य उपयोगी विषयों के सन्दर्भ के छन्दों के संकलन किये गये हैं। उन दोहों-चौपाइयों पर मिश्रजी ने अपनी टिप्पणियाँ दी हैं।

---

१. सुजान-रसखान, भूमिका, पृ० ६

२. रसखान-शतक, उपक्रम, पृ० १

३. ब्राह्मण, खण्ड ८, संख्या २ तथा ३, छन्द-संख्या १२९ तक, पृ० १७—२४ तथा खण्ड ८, संख्या ४ तथा ५, छन्द ३० से ७२ तक, पृ० ९-२१

४. पण्डित किशोरीलाल गोस्वामी ने सन् १८९२ ई० में रसखान की कविताओं का 'सुजान-रसखान' नाम से १२७ छन्दों का संकलन प्रकाशित कराया था।

इसका धारावाहिक प्रकाशन 'मानस-रहस्य' शीर्षक से केवल अयोध्या-काण्ड तक 'ब्राह्मण' में हुआ था। यह कृति सन् १८८६ ई० में बनारस के भारतजीवन प्रेस से पहली बार प्रकाशित हुई। इसके बाद खड्गविलास प्रेस ने भी इस कृति का प्रकाशन किया था। मुझे खड्गविलास प्रेसवाला संस्करण देखने को नहीं मिला।

अनूदित रचनाएँ :

राजसिंह (सन् १८९४ ई०) : बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के कतिपय बँगला-उपन्यासों का हिन्दी-अनुवाद पण्डित प्रतापनारायण मिश्र ने किया था। राजसिंह का प्रकाशन सन् १८९४ ई० में हुआ था। इस ६० पृष्ठों की पुस्तक में अनुवादक तथा प्रकाशक ने कोई भूमिका नहीं लिखी है। हिन्दी-पाठकों के समक्ष बँगला-उपन्यास का पहली बार अनुवाद प्रस्तुत किया गया था। इसमें कुल १९ परिच्छेद हैं, जिनकी संख्या संस्कृत में ऊनविंशति है। इस संस्करण की केवल ८०० प्रतियाँ मुद्रित की गई थीं। सामान्यतः अनुवाद बोधगम्य है।

इन्दिरा (सन् १८९४ ई०) : बंकिम बाबू के इस चौथे उपन्यास के अनूदित प्रथम संस्करण में ६५० प्रतियों का प्रकाशन सन् १८९४ ई० में हुआ। इस पुस्तक में भी कोई भूमिका नहीं है। २३ पृष्ठों की इस पुस्तक का दाम चार आने है।

राधारानी (सन् १८९४ ई०) : बंकिम बाबू का यह उपन्यास किसी भूमिका के बिना मिश्रजी द्वारा अनूदित होकर सन् १८९४ ई० में (प्रथम संस्करण) प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक की कुल ७५० प्रतियाँ छपी थीं। बीस पृष्ठों की इस पुस्तक का मूल्य चार आने है।

युगलांगुरीय (सन् १८९४ ई०) : बंकिम बाबू का यह तीसरा उपन्यास मिश्रजी द्वारा अनूदित होकर सन् १८९४ ई० में (प्रथम संस्करण) प्रकाशित हुआ। १९ पृष्ठों की इस पुस्तक की कीमत ४ आने है। इस पुस्तक की कुल ७५० प्रतियाँ छपी थीं। इसमें भी कोई भूमिका नहीं है।

कपालकुण्डला (सन् १९०१ ई०) : बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के बँगला-उपन्यास के अनुवाद का पहला संस्करण मिश्रजी के निधन के बाद सन् १९०१ ई० में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास चार खण्डों और १०७ पृष्ठों में है। प्रत्येक परिच्छेद का आरम्भ अँगरेजी के किसी पद्यांश से होता है, जिसका हिन्दी-अनुवाद भी किया गया है। सामान्यतः अनुवाद अच्छा है। इस पुस्तक के दो-तीन संस्करण प्रकाशित हुए।

अमरसिंह : यह पुस्तक मुझे देखने को नहीं मिली।

कहानी :

कथामाला (सन् १८९८ ई०) : ईश्वरचन्द्र विद्यासागर-कृत बँगला-पुस्तक का यह हिन्दी-अनुवाद है। ४५ पृष्ठों की इस पुस्तक का पहला संस्करण सन् १८९८ ई० में प्रकाशित हुआ था। इसमें बालकोपयोगी छोटी-छोटी कहानियाँ हैं। ये सभी कहानियाँ उपदेशात्मक हैं। अनुवाद सरल और बोधगम्य है।

नीतिरत्नावली (सन् १८६० ई०) : यह बँगला के लेखक कुमार कृष्णप्रसन्न सेन की कृति 'नीतिरत्नमाला' का हिन्दी-अनुवाद है। यह पहली बार सन् १८६० ई० में प्रकाशित हुई थी। इसमें ३४ पृष्ठ हैं। इसमें नीति-विषयक उपदेश, कहानियाँ और कविताएँ हैं। अनुवाद सरल और बोधगम्य है।

जीवन-चरित्र :

चरिताष्टक (प्रथम भाग) (सन् १८६४ ई०) : इस पुस्तक का प्रथम संस्करण सन् १८६४ ई० में प्रकाशित हुआ, जिसमें ८० पृष्ठ हैं। इस पुस्तक में ८ वंगीय विद्वानों— राजा कृष्णचन्द्र राय, जगन्नाथ तर्क-पंचानन, भारतचन्द्र राय गुणाकर, कृष्णा पान्ती, राजा राममोहन राय, पद्मलोचन मुखोपाध्याय, मोतीलाल शील और हरिश्चन्द्र मुखोपाध्याय की जीवनियाँ दी गई हैं। मूल पुस्तक बँगला में लिखी गई थी। उसीका यह हिन्दी-अनुवाद है। इस पुस्तक में यथास्थान अनेक टिप्पणियाँ दी गई हैं। इससे इस पुस्तक की उपयोगिता बढ़ गई है। इस पुस्तक में ही सर्वप्रथम रामदीन सिंह ने (पृ० २१) 'जानकी-मंगल' नामक नाटक में लक्ष्मण की भूमिका में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अवतरित होने की सूचना दी है। अनुवाद निर्दोष है। इसकी केवल २५० प्रतियाँ छपी थीं।

आर्य्यकीर्त्ति (प्रथम खण्ड) (सन् १८९९ ई०) : रजनीकान्त गुप्त की मूल बँगला-पुस्तक 'आर्य्यकीर्त्ति' का मिश्रजी ने हिन्दी में अनुवाद किया है। इस पुस्तक का प्रथम संस्करण सन् १८९९ ई० में प्रकाशित हुआ, जिसका मूल्य चार आने था। चालीस पृष्ठों की इस पुस्तक में मूल लेखक ने राणा कुम्भा, रायमल्ल, वीररमणी, प्रतापसिंह, वीरबाला पन्ना और वीरबाला कर्मदेवी के शौर्य का वर्णन किया है। इसमें उन वीर पुरुषों तथा बालाओं की संक्षिप्त जीवनियाँ दी गई हैं। पुस्तक में यत्र-तत्र अनेक टिप्पणियाँ हैं, जो अनुवादक की ओर से दी गई हैं। किन्तु, मुझे ऐसा लगता है कि ये सभी टिप्पणियाँ श्रीरामदीन सिंह की लिखी हैं। इस अनुवाद में दी गई टिप्पणियों के कारण इस संस्करण की महत्ता बढ़ गई है। अनुवाद की भाषा सामान्यतः साफ-सुथरी है तथा पाठकों को पढ़ने में कोई कठिनाई नहीं होती। इस पुस्तक में कोई भूमिका नहीं है।

आर्य्यकीर्त्ति (द्वितीय खण्ड) (सन् १९०८ ई०) : रजनीकान्त गुप्त की बँगला-पुस्तक 'आर्य्यकीर्त्ति' का यह दूसरा खण्ड है। इसका अनुवाद भी 'ब्राह्मण'-सम्पादक कात्यायन कुमार प्रेमदास प्रसिद्ध पण्डितवर प्रतापनारायण मिश्र ने किया था। अस्सी पृष्ठों की इस पुस्तक का प्रथम संस्करण सन् १९०८ ई० में प्रकाशित हुआ था। इस पुस्तक में भी अनुवादक या प्रकाशक की ओर से कोई भूमिका नहीं दी गई है। इस पुस्तक में सिक्खों के उदय, उनके राज्य-विस्तार और उनके पतन का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक के अन्त में ३० पृष्ठों के परिशिष्ट में सिक्खों के दसवें गुरु गुरुगोविन्द सिंह के दरबार के ५२ कवियों की सूची और उनकी कविताओं के उदाहरण दिये गये हैं। पुस्तक के अनुवाद की भाषा स्वच्छ और प्रवाहमयी है।

इतिहास :

सेनराजगण (सन् १८९१ ई०) : ४० पृष्ठों के इस इतिहास का बँगला से मिश्रजी ने अनुवाद किया था। इसका प्रथम मुद्रण-प्रकाशन खड्गविलास प्रेस से सन् १८६१ ई० में हुआ। इसका मूल्य तीन आने था। इस पुस्तक में संक्षेप में बँगला के सेन-राजवंश का इतिहास दिया गया है। दक्षिण से आकर महाराज वीरसेन ने बंगाल पर आधिपत्य स्थापित कर अपने राज्य का विस्तार किया था—इसीका विवरण प्रस्तुत किया गया है। इस पुस्तक में बँगला की मूल पुस्तक के अनुवाद के साथ ही मिश्रजी ने अपनी ओर से अनेक ऐसी टिप्पणियाँ दी हैं, जिनसे पुस्तक की उपयोगिता बढ़ गई है।

सूबे बंगाल का इतिहास (सन् १८९८ ई०) : यह रामगति न्यायरत्न की पुस्तक का हिन्दी-अनुवाद है। इसका तीसरा संस्करण सन् १८६८ ई० में हुआ था। यह बिहार और बंगाल के स्कूलों के पाठ्यक्रम में स्वीकृत था। इसमें बंगाल का ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत किया गया है।

सूबे बंगाल का भूगोल (सन् १८९४ ई०) ; यह कृति भी बँगला से अनूदित है। इस कृति का हिन्दी-अनुवाद सन् १८६४ ई० में सबसे पहले प्रकाशित हुआ था। इसमें ५८ पृष्ठ हैं। यह पुस्तक भी बंगाल और बिहार के स्कूलों के पाठ्यक्रम में पाठ्यपुस्तक के रूप में स्वीकृत थी। इसमें बंगाल का भौगोलिक परिचय दिया गया है। मिश्रजी का अनुवाद बालकों के लिए सहज बोधगम्य है।

दर्शन :

पंचामृत (सन १८६१ ई०) : कृष्णानन्दस्वामी परिव्राजक-लिखित बँगला-भाषा की पुस्तक 'पंचामृत' का यह हिन्दी-अनुवाद सन् १८६१ ई० में पहली बार इस प्रेस द्वारा प्रकाशित हुआ था।

यह ४३ पृष्ठों की पुस्तक है। इसमें परिव्राजकजी ने शैव, शाक्त, शक्तितत्त्व, पंचदेव, पंचतत्त्व, पंचमकार जैसे दार्शनिक विषयों पर प्रकाश डाला है। जन-साधारण इसे अच्छी तरह समझ सके, इसलिए सरल भाषा में इसकी रचना की गई है। मिश्रजी ने इस कृति का भी बहुत अच्छा सरल अनुवाद किया है।

स्वास्थ्य :

स्वास्थ्य-विद्या (सन् १८६८ ई०) : कहा जाता है कि मिश्रजी आलसी थे। उनका स्वास्थ्य कभी अच्छा नहीं रहा। इससे वे चिन्तित रहते थे। ऐसा लगता है कि स्वास्थ्य के महत्त्व को बतलाने की दृष्टि से उन्होंने यह पुस्तक रची थी। यह ११४ पृष्ठों की पुस्तक है, जिसका प्रकाशन सन् १९०४ ई० में हुआ था। दैनिक जीवन में अच्छे स्वास्थ्य के लिए जिन बातों की ओर ध्यान देना चाहिए, उनकी ओर निर्देश किया गया है। यह कृति बंगाली लेखक भानुचन्द्र बनर्जी की स्वास्थ्य-शिक्षा के ढंग पर लिखी गई है। इस कृति का पहला संस्करण सन् १८६८ ई० में हुआ था। इस कृति के चार संस्करण प्रकाशित हुए। यह बिहार-प्रदेश के स्कूलों में पाठ्यपुस्तक के रूप में स्वीकृत थी।
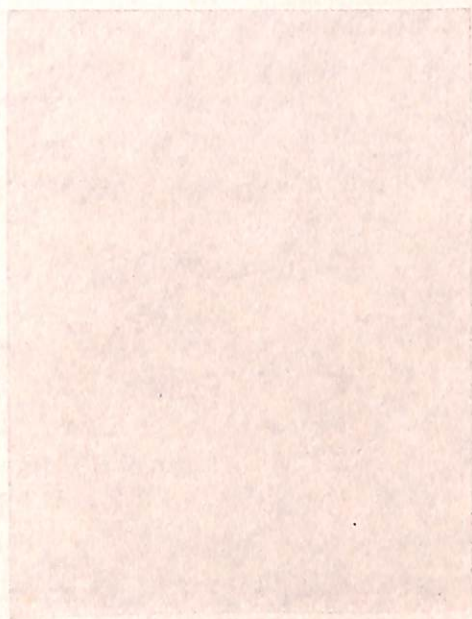
चित्र-सं० : ११

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास

पाठ्यपुस्तक :

बोधोदय : इस पुस्तक का बँगला से हिन्दी में अनुवाद प्राइमरी कक्षा की पाठ्यपुस्तक के रूप में किया गया था। इसमें वर्णमाला तथा छोटे-छोटे पाठ संकलित किये गये हैं।

शिशु-शिक्षा : यह पुस्तक बँगला से हिन्दी में अनूदित थी। इसमें बच्चों के लिए प्रारम्भिक ज्ञान की बातें दी गई हैं। यह पुस्तक तीन भागों में लिखी गई है।

शिशु-विज्ञान : यह पुस्तक भी मूल बँगला से अनूदित थी। बच्चों की प्रारम्भिक शिक्षा की यह पाठ्यपुस्तक है।

वर्ण-परिचय : यह पुस्तक तीन भागों में लिखी गई है। यह पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की बँगला-पुस्तक का हिन्दी-अनुवाद है। इसका दूसरा संस्करण सन् १८९७ ई० में प्रकाशित हुआ था। इसमें वर्णमाला से आरम्भ कर अन्त में हिन्दी के छोटे-छोटे पाठ भी दिये गये थे। यह पुस्तक बिहार-प्रदेश की लोअर प्राइमरी कक्षा के लिए स्वीकृत पाठ्यपुस्तक थी।

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास

भारतेन्दु-युग आधुनिक हिन्दी-साहित्य की उद्‌भावना का युग था। भारतेन्दु इस काल के युगान्तरकारी साहित्य-निर्माता तथा अपने समकालीन साहित्यकारों के प्रेरणा-स्रोत थे। उनके अनेक साहित्य-प्रेमी मित्र उनसे प्रभावित हो साहित्य की विभिन्न विधाओं के संवर्द्धन में साधनारत थे। उनके साहित्य-साधक मित्रों में पण्डित अम्बिकादत्त व्यास भी थे, जिन्होंने अपनी बहुमुखी प्रतिभा से हिन्दी के साहित्य-भाण्डार को गौरवान्वित किया है।

जयपुर से २२ मील पूरब 'रावलजी का धूला' नामक स्थान के समीप मानपुर गाँव में आदिगौड़ पराशर गोत्रीय यजुर्वेदी ब्राह्मण भींडावंशावतंस पण्डित श्रीकृष्णराम अपनी ज्योतिष-विद्या के लिए प्रख्यात थे। धूला-नरेश ठाकुर दलेल सिंह ने ज्योतिषीजी की अनेक भविष्यवाणियों की सत्यता तथा अनुष्ठानों की सार्थकता से प्रसन्न हो, उन्हें अपना राजज्योतिषी मनोनीत किया था। उन्होंने उन्हें 'धूला' में जमीन तथा मकान देकर और वहाँ का स्थायी निवासी बनाकर समादृत किया था। उन्हीं ज्योतिषीजी के पौत्र पण्डित राजाराम तीर्थाटन करने काशी आये। वे संस्कृतज्ञ विद्वान् थे। उन्होंने अपनी विद्वत्ता से काशी में प्रतिष्ठा पाई। कालान्तर में उनपर लक्ष्मी की भी कृपा हुई। वे काशी के मानमन्दिर मुहल्ले में बस गये। अपना भवन बना लिया। पण्डित राजारामजी के दो पुत्र हुए। बड़े पुत्र पण्डित दुर्गादत्त तथा छोटे पुत्र देवीदत्त थे। पण्डित दुर्गादत्त व्यास अपनी वंश-परम्परा के अनुकूल संस्कृत के विद्वान् तथा हिन्दी के कवि और लेखक थे। वे 'दत्त' कवि के नाम से हिन्दी-कविता करते थे। वे भारतेन्दु के स्नेही मित्रों में थे। काशी के संस्कृत के विद्वानों में उनकी प्रतिष्ठा थी। ऐसे ही विद्वान् पिता के विद्वान् पुत्र पण्डित अम्बिकादत्त व्यास थे।

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास का जन्म, अपने मामा के घर चैत्रशुक्ल अष्टमी, संवत् १९१५ वि० तदनुसार २४ मार्च, १८५८ ई० को जयपुर के सिलवटों के मुहल्ले में

हुआ था। चैत्र-नवरात्र की अष्टमी तिथि को जन्म होने के कारण उनका नाम 'अम्बिकादत्त' रखा गया। उनके काका पण्डित देवीदत्तजी उन्हें स्नेह से 'रामचन्द्र' कहते थे। व्यासजी अपने पिता के कनिष्ठ पुत्र थे। एक वर्ष की उम्र में वे जयपुर से काशी आये। पाँच वर्ष की अवस्था में उनका अक्षरारम्भ हुआ। रूपावली तथा अमरकोश पढ़ाया जाने लगा। पिता ने उन्हें अनेक कवित्त और सवैये कण्ठाग्र करा दिये थे। दैनिक प्रयोग की संस्कृत-शब्दावली भी रटा दी गई थी, जिससे वे संस्कृत बोलने और समझने लगे। पिता ने शतरंज और ताश खेलना भी सिखलाया। साथ में खेल-तमाशे दिखलाने को ले जाते थे, जहाँ उन्हें जीवन की व्यावहारिक शिक्षा दी जाती थी। पारिवारिक परिवेश शिक्षितों का था। दादी, चाची, माता और बहनें सभी साक्षर थीं। इस वातावरण का सहज प्रभाव पण्डित अम्बिकादत्त जी पर था। जब वे तेरह वर्ष के थे, काशी के पण्डित घनश्यामजी ने उनका उपनयन कराया। पिता से पुराण पढ़े। उनसे कथा-वाचन-शैली का अध्ययन किया। अपने बहनोई पण्डित वासुदेवजी वैद्य से तथा विश्वनाथ कविराज से वैद्यकी पढ़ी। काशी के प्रसिद्ध विद्वान् पण्डित ताराचरण तर्करत्न से साहित्य-दर्पण का अध्ययन किया। पण्डितों का शास्त्रार्थ देख उसी जिज्ञासा से पण्डित कैलासचन्द्र भट्टाचार्य से तर्कशास्त्र, पण्डित कुंजनलाल से न्यायशास्त्र, पण्डित राममिश्र शास्त्री से सांख्यशास्त्र, अपने सहपाठी पण्डित रामशंकर भाउ से कुश्ती-कला और महेश बाबा से सितार सीखा। अँगरेजी-भाषा में उनकी दिलचस्पी थी, इसलिए ऐंग्लो-संस्कृत स्कूल में नाम लिखाया और अँगरेजी पढ़ी। बनारस संस्कृत कॉलेज की साहित्याचार्य-परीक्षा उन्होंने प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की।

व्यासजी अपने विद्यार्थी-काल में ही अपनी आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने के लिए कथावाचन करने लग गये थे। सन् १८७९ ई० में वे बनारस के जयनारायण हाईस्कूल के प्रिन्सिपल रीड० एम० एम० हॉकेट को हिन्दी पढ़ाते थे। उसी वर्ष उनके पिताजी का चैत्रमास में काशी में देहान्त हो गया। परिवार का उत्तरदायित्व उनपर आ पड़ा। संयोग से सन् १८८३ ई० में उनकी नियुक्ति मधुबनी (बिहार) के एक ग्रामीण संस्कृत-स्कूल में हुई। वहाँ उन्होंने लगभग तीन वर्षों तक अध्यापन किया। संस्कृत-शिक्षा का प्रचार-प्रसार उन्होंने सम्पूर्ण बिहार में किया। सन् १८८३ ई० में उनके भाई की मृत्यु हो गई। इससे खिन्न हो उन्होंने विद्यालय से त्यागपत्र दे दिया। उसी दिन मुजफ्फरपुर जिला स्कूल में हेडपण्डित-पद पर नियुक्ति का उन्हें पत्र मिला। उन्होंने २५ जून, १८८६ ई० को पदभार ग्रहण किया। एक वर्ष मुजफ्फरपुर में रहने के बाद उनका स्थानान्तरण भागलपुर हो गया। उन्होंने १३ अगस्त, १८८७ ई० को वहाँ पद-भार ग्रहण किया। लगभग सात-आठ वर्षों तक उन्होंने भागलपुर में अध्यापन किया। सन १८९५ ई० में वहाँ से उनका स्थानान्तरण छपरा हुआ। वहाँ कुछ वर्षों तक अध्यापन करने के बाद वे पटना कॉलेज में अध्यापक नियुक्त हुए और जीवन के अन्तिम समय तक वहीं रहे। संवत् १९५३ वि० में उदर-रोग से पीड़ित होकर वे काशी चले आये, लेकिन ऐसी स्थिति में भी साहित्य-साधना करते ही रहे। बयालीस वर्ष की आयु में मार्गशीर्ष कृष्ण-त्रयोदशी तदनुसार १९ नवम्बर, १९०० ई० को उनका काशी में शरीरान्त हो गया।

व्यासजी के पिता पण्डित दुर्गादत्त व्यास हिन्दी और संस्कृत के विद्वान् थे। काशी-निवासी हनुमान कवि, मन्नालाल द्विज, दम्पति किशोर, बाबा निहाल सिंह और जयपुर-निवासी पण्डित तुलसी ओझा दत्तकवि से साहित्य का अध्ययन करने आते थे। जहाँ एक ओर नवोदित कवि साहित्याध्ययन करते थे, वहीं उनका काव्य-पाठ भी होता था। इन्हीं कारणों से अम्बिकादत्तजी को काव्य-प्रणयन का सहज अभ्यास हो गया। समस्या-पूर्त्ति की उनमें विलक्षण प्रतिभा थी। कविदत्त स्वयं अपने साथ काव्य-गोष्ठियों में व्यासजी को ले आते थे। जब व्यासजी मात्र ग्यारह वर्ष के थे, कविवर तुलसी ओझा संवत् १९२६ वि० में काशी आये। उन दिनों 'जनि तोरहु नेह को काचो तगा' की समस्या की बड़ी चर्चा थी। व्यासजी ने उस समस्या की पूर्त्ति की थी :

मुरली तजि के तरवार गही, अरु जामा गह्यो तजि पीरो झगा।
तजी अम्बिकादत्त सबै हमहूँ, अहै साँचहुँ कौन को कौन सगा॥
कहियो तुम ऊधव साँवर सो, इहाँ प्रेम को पंथ पगा सो पगा।
इन जोग-बिराग झटक्कन सों, जनि तोरहु नेह को काचो तगा॥

उसी वर्ष काशी के राधारमण जी के मन्दिर में भारतेन्दुजी ने कवियों के सामने एक समस्या रखी थी : 'सूरज देखि सकै नहीं घुग्घू', जिसकी पूर्त्ति कोई नहीं कर पा रहा था। बालक व्यास ने उसकी पूर्त्ति इन शब्दों में की थी :

गोद लिये हरि को नन्दराय जू, सुग्गा कहायो कह्यो उन घुग्घू।
तोतरे बैन सुनो चित चैन भों, काग कहायो कह्यो तब कुग्घू।
अम्बिकादत्त अनन्वित ह्वै पुनि, बाघ कहाय कह्यो उन बग्घू।
देखि सकैं नहि पातकी सो, जिमि सूरज देखि सकै नहिं घुग्घू॥

इसी प्रकार कवितावर्द्धिनी सभा की स्थापना पर पहली बार व्यासजी ने कवियों के समक्ष रखी गई समस्या, 'चिरजीवी रहो विक्टोरिया रानी' की पूर्त्ति की थी।

व्यास जी सुवक्ता, सुचेता लेखक और निष्ठावान् सनातनी थे। बिहार में संस्कृत-शिक्षा के प्रसार के लिए उन्होंने पटना में 'संस्कृत-संजीवन-समाज' की और भागलपुर में संस्कृत-पाठशाला की स्थापना की थी। सनातन धर्म के प्रचार के लिए उन्होंने सैकड़ों धर्मसभाओं का गठन किया था। भारतेन्दु ने उनकी काव्य-प्रतिभा पर मुग्ध हो 'सुकवि' की उपाधि से उन्हें अलंकृत किया था। इसी तरह घटिकाशतक, बिहारभूषण, भारतभूषण और उस समय के भारतरत्न की उपाधियों से उनका समादार हुआ था। व्यासजी ने काशी से प्रकाशित 'आर्यमित्र' से लेखन-कार्य आरम्भ किया था। तदनन्तर वे 'उचित वक्ता', 'सारसुधानिधि', 'भारत-जीवन', 'क्षत्रिय-पत्रिका' और 'चम्पारन-चन्द्रिका' मे लिखा करते थे। उन्होंने 'वैष्णव-पत्रिका' का, जिसका बाद में 'पीयूष-प्रवाह' नामकरण हुआ, सम्पादन किया था। उन्होंने अनेक साहित्यिक निबन्ध लिखे। उन्होंने हिन्दी के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी कारयित्री प्रतिभा के प्रसून खिलाये।

रामदीन सिंह और व्यासजी :

बाबू रामदीन सिंह साहित्यानुरागी एवं गुणग्राहक थे। समकालीन सभी साहित्यकारों से उनका परिचय था। बाबू साहब का व्यासजी से लाल खड्गबहादुर मल्ल के

माध्यम से पत्राचार द्वारा परिचय हुआ था। वैसे बाबू साहब व्यासजी को पहले से जानते थे। बाबू साहब प्रायः काशी आते-जाते रहते थे। व्यासजी मार्च, १८८२ ई० में कलकत्ता-यात्रा के क्रम में पटना गये। उन्होंने खड्गविलास प्रेस का आतिथ्य स्वीकार किया। वहाँ तीन-चार दिन रहे। यह पहला अवसर था जबकि व्यासजी का बाबू रामदीन सिंह, बाबू रामचरित्र सिंह, बाबू दीनदयाल सिंह, बाबू साहबप्रसाद सिंह प्रभृति से साक्षात्कार हुआ। पहली भेंट में व्यासजी ने भारतेन्दु के 'वेश्यास्तोत्र' की भाँति संस्कृत में 'द्रव्यस्तोत्र' पूरा कर सुनाया। बाबू साहब ने उस द्रव्यस्तोत्र को दूसरे दिन अपने प्रेस से प्रकाशित किया। 'द्रव्यस्तोत्र' के ४२ अनुष्टुप् छन्दों में धनकुबेरों पर व्यंग्य किया गया है। सन् १८८३ ई० में वे संस्कृताध्यापक होकर मधुबनी गये। तबसे जीवन के अन्तिम दिनों के कुछ पूर्व तक भागलपुर, मुजफ्फरपुर, छपरा और अन्त में पटना में नौकरी करते रहे। कर्म-क्षेत्र बिहार में होने से व्यासजी रामदीन सिंह के निकटतम हो गये थे। पटना-प्रवास में उनकी गोष्ठी खड्गविलास प्रेस के पुस्तकालय-कक्ष में जमती थी, जिसमें स्थानीय कवियों की कविताओं का पाठ होता था। इतना ही नहीं, आर्यसमाज के विरोध में भाषण देने की तैयारी वहाँ की जाती थी। व्यासजी ने जो भी लिखा उसे बाबू साहब ने प्रकाशित करने का भरसक प्रयास किया। बाबू साहब स्वयं सनातनी विचार के ब्राह्मण-भक्त थे। इसलिए, वे व्यासजी का अत्यधिक सम्मान करते थे। उन्होंने आग्रह कर उनसे पुस्तकें लिखवाईं। इस प्रकार दोनों व्यक्तियों का सम्बन्ध उत्तरोत्तर घनिष्ठतर होता गया।

व्यासजी की निम्नलिखित रचनाएँ खड्गविलास प्रेस से मुद्रित और प्रकाशित हुई थीं। उन पुस्तकों की यहाँ परिचयात्मक समीक्षा प्रस्तुत की जा रही है।

हिन्दी :

कविता : १. धर्म की धूम, सन् १८८५ ई०; २. पावस-पचासा, सन् १८८६ ई०, ३. मानस-प्रशंसा, सन् १८८६ ई०।

नाटक : १. गो-संकट नाटक, सन् १८८६ ई०; २. महा अन्धेर, सन् १८८६ ई०, ३. भारत-सौभाग्य, सन् १८८७ ई०।

जीवनी : १. स्वामिचरित, सन् १८९८ ई०; २. निज वृत्तान्त, सन् १९०१ ई०।

गद्य-रचनाएँ : १. उपदेश-लता; २. दयानन्द-मत-मूलोच्छेद, सन् १८८५ ई०।

विविध : १. कथाकुसुम; २. रेखागणित।

संस्कृत : १. सामवतम् नाटक; २. द्रव्यस्तोत्र और ३. सांख्य-तरंगिणी।

कविता :

धर्म की धूम : पहले बता चुका हूँ कि व्यासजी निष्ठावान् सनातनी थे। उनके समय में आर्यसमाज का प्रचार जोरों पर था। वे आर्यसमाजी विचार का विरोध करते थे। विरोध में भाषण, कविता आदि लिखते थे। 'धर्म की धूम' उनकी इसी प्रकार की रचना है, जिसमें धर्म तथा भारत-दुर्दशा का वर्णन किया गया है। रचना-तिथि का कवि ने इस प्रकार उल्लेख किया है :

रची धर्म की धूम, सुकवि अम्बिका दत्त ने ।
मांते ह्वै रसझूम, याको सब मिलि गाइयो ॥१॥
इन्दु वेदनिधिभूमि, मित संबत फागुन मास ।
सुक्ला दसमी भौम को, भयो यासु परकास ॥२॥

इससे यह विदित होता है कि इस पुस्तक की रचना फाल्गुन-शुक्ल दशमी, बुधवार, संवत् १९४१ वि० को हुई थी। इसका प्रथम प्रकाशन 'क्षत्रिय-पत्रिका'[1] में हुआ था। इसका पुस्तकाकार प्रकाशन सन् १८८५ ई० में हुआ। इसमें विभिन्न रागों में बद्ध २६ पद हैं, जिनमें होली, चैती भी हैं। विषयवस्तु भारत-दुर्दशा और धार्मिक चेतना को उद्बुद्ध करना है। एक चैती का नमूना द्रष्टव्य है :

घर ही के लोग बिगारी हो रामा, सब बातें ।
देखहु किन जयचन्द ने मारी अपनेहि पेट कटारी हो रामा ॥
एक एक की चहत बुराई खोई सम्पत्ति सारी हो रामा ।
करत बिदेसिन हीं कि मु-बड़ाई पुरुषन भाषत गारी हो रामा ॥
ब्रह्मसूत्र की तजि मरजादा बहुबिधि बोतल ढारी हो रामा ।
लावेंडर भालू की चर्बी लै निज जुलुफ सँवारी हो रामा ॥
बेद शास्त्र की निन्दा ठानत सब मिलि दै दै तारी हो रामा ।
धमकि धर्म की धूर उड़ावत भारत कियो भिखारी हो रामा ।
'सुकवि' कौन सों कहा बखाने भीज्यो आँसुन धारी हो रामा ॥

'धर्म की धूम' का दूसरा संस्करण व्यास-पुस्तकालय, वाराणसी से सन् १९१८ ई० में प्रकाशित हुआ।

पावस-पचासा : मझौली-नरेश और भारतेन्दु-युग के साहित्यकार लाल खड्गबहादुर मल्ल से व्यासजी का हार्दिक सम्बन्ध था। उन्हीं के आमन्त्रण पर व्यासजी सन् १८८५ ई० की जुलाई में मधुबनी से मझौली जा रहे थे। आषाढ़ का महीना था। वर्षा हो रही थी। व्यासजी के मन में यह भाव उदित हुआ कि लाल साहब स्वयं कवि हैं, उनको क्यों न कुछ कविता भेंट की जाय। उन्होंने वर्णन लिखना प्रारम्भ किया। ट्रेन में ३५ कवित्त लिखे। मझौली पहुँचकर १५ और लिखे। उन्होंने लाल साहब को 'पावस-पचासा' सुनाया।[2] अगस्त में मझौली से लौटकर इस पुस्तक को प्रकाशनार्थ उन्होंने खड्गविलास प्रेस को दिया। किन्तु, पुस्तक तत्काल नहीं छप सकी। इसका पहला संस्करण सन् १८८६ ई० में निकला। दूसरा संस्करण व्यास प्रेस, भागलपुर से हुआ।[3] इस पुस्तक की रचना के सम्बन्ध में व्यास जी ने लिखा है :

---

१. क्षत्रिय-पत्रिका, खण्ड ५, संख्या १, ज्येष्ठ-शुक्ल १०, संवत् १९४२, पृ० २९—३७

२. निज वृत्तान्त, पृ० ४१-४२

३. भारतेन्दु-युग के सात प्रमुख लेखक, पृ० ४१७

मुजा बेद निधि इन्दु के, संवत सावन मास।
हिये लाल के प्रेम को, अति ही भयो हुलास ॥१॥
सुकबि अम्बिकादत्त जू, काव्याचारज व्यास।
पावस की कविता रची, मति अनुरूप पचास ॥२॥

अर्थात् संवत् १९४२ विक्रमी के सावन में इस कृति की रचना हुई, लेकिन इसका ४६वाँ छन्द अक्टूबर, १८७२ ई० के 'कविवचन-सुधा' (जि० ३, न० ५) में प्रकाशित मिलता है।[1] व्यासजी की पुस्तकों के रचना-काल का जो उल्लेख मिलता है[2], उसमें इस पुस्तक के रचना-काल की तिथि संवत् १९४२ वि० तथा प्रकाशन-काल भी वही बताया गया है। किन्तु यह तिथि गलत है। इसके पहले संस्करण में १६ पृष्ठ हैं। कोई भूमिका नहीं है। पुस्तक के आरम्भ में मंगलाचरण के रूप में निम्नलिखित कवित्त है :

सारद विसारद की जै जै करि नीकी भाँति,
दैहों धन्यवाद मेरे गुन के गहैया पै।
होइहौं प्रसन्न पुनि मेरे ये कवित्तन के,
प्रेमी लिखवैया पै पढ़ैया पै सुनैया पै :।
दम्भिन की देहरी न जैहों कबि अम्बादत्त,
चिढ़िहौं चपल की न चुगुल चलैया पै ॥
रस को तमासा सुभ 'पावस-पचासा' रच्यो,
वारि वारि फेंकिहौं मैं अपने कन्हैया पै ॥१॥

इस पचासा में पावस-ऋतु पर ३८ कवित्त और १२ सवैये हैं। बीस छन्दों में संयोग और तीस छन्दों में विप्रलम्भ श्रृंगार पर सरस रचनाएँ हैं। पावस का विभिन्न रूपों में वर्णन किया गया है। प्रकृति के भावपूर्ण शब्दचित्र प्रस्तुत किये गये हैं, जो उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत आते हैं।

मानस-प्रशंसा[3] : महाराजकुमार रामदीन सिंह ने अपने प्रेस से 'रामचरितमानस' का प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित किया था। उन्होंने उस अवसर पर व्यासजी को मानस की प्रशंसा में रचना करने के लिए प्रेरित किया था। यह 'मानस-प्रशंसा' उसी प्रेरणा का प्रसाद है। यह मानस-प्रशंसा रामचरित-मानस के साथ ही सन् १८८७ ई० में प्रकाशित हुई। इस कृति में व्यासजी ने पचीस कवित्त लिखे हैं। इसमें तनिक सन्देह नहीं कि व्यासजी काव्य-प्रतिभा के धनी थे। इसलिए उनकी यह कृति भी अच्छी बन पड़ी। इस रचना के उद्देश्य पर व्यासजी ने स्वयं प्रकाश डाला है :

---

१. भारतेन्दु-युग के सात प्रमुख लेखक, पृ० ४१७

२. बिहारी-विहार, व्यासजी की स्वरचित पुस्तकों की सूची।

३. यह कृति सुलभ नहीं है। 'मानस-मयूख' पत्रिका के सम्पादक रामादास शास्त्री ने 'मयूख' के प्रथम वर्ष के तृतीय प्रकाश में, पृ० २०१-६ में प्रकाशित कर हिन्दी-प्रेमियों को सुलभ कराई है। यह रचना 'रामचरित-वर्णना-पचीसी' के नाम से प्रकाशित हुई है।

बाबू रामदीन गुनरासी। कीरति जासु जगत परकासी ॥
तिनकी सम्मति सों सुखदाई। व्यास अम्बिकादत्त बनाई ॥
रामचरित बर्नना पचीसी। यह भक्तन सुखदायक दीसी ॥
यह पढ़ि रामायन चित दीजं। मेरे धन्यवाद बहु लीजं ॥

इसमें कुल पच्चीस छन्द हैं, २४ कवित्त तथा एक सवैया है। मानस के सम्बन्ध में उन्होंने एक कवित्त में लिखा है :

राजन समाजन के काज लख्यो चाहो जौ पै,
चाहहु जो देखन रहनि भाई भाई की।
सभा माँहि बोलनि त्यौं छोटे औ बड़ेन हूँ की,
चाहहु विलोकन संहार सुघराई की।
जाँचन चहहु जो परख अम्बादत्तहू की,
रस की बरष औ निरख सरलाई की।
रीत चाहौ नीत चाहौ प्रीत जो पै चाहौ कछु,
कविता पढ़हु तो श्री तुलसी गोसाई की ॥२॥

इतना ही नहीं, वे तो यहाँ तक कह देते हैं :

राम को चरित जाको नीको नाहि लागै ताहि
नाक कान काटिकै निकारि दीजै घर सौं ॥२०॥

यह रचना अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल रही है।

नाटक :

गो-संकट नाटक (सन् १८८६ ई०) : पण्डित अम्बिकादत्त व्यास ने अपनी जीवनी 'निज वृत्तान्त' में लिखा है : "मैंने कलकत्ते ही में एक 'गोसंकट' नाटक बनाना आरम्भ किया और वह 'उचित वक्ता' (भाग ४, अंक ११) में छपा।"[१]

इस नाटक के पुस्तक-रूप में प्रकाशित होने पर उन्होंने इसकी भूमिका में लिखा : "जिनको हिन्दी-भाषा से प्रेम है वे भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का नाम अवश्य जानते हैं। उनके अनुग्रह, प्रेम, भक्ति और भ्रातृभाव से मैं सब दिन डहडहाया रहता था। एक दिन स्वाभाविक आलाप का आनन्द हो रहा था कि गो-संकट-विषयक कोई ग्रन्थ बनना चाहिए—यह बात उठ खड़ी हुई और मने इसकी रचना की प्रतिज्ञा की। यह बात प्रसिद्ध होने पर और भी अनेक योग्य लेखकों ने अनेक नाटक इस विषय पर लिखें, पर काशीस्थ कवि-मण्डली ने मेरे क्षुद्र लेख ही को स्वीकृत किया।—अन्ततः मैंने इसे सन् १८८२ ई० में 'उचित वक्ता' द्वारा सर्वसाधारण के आगे प्रकाशित किया।"[२]

---

१. निज वृत्तान्त, पृ० ३१
२. गो-संकट नाटक, प्रथम संस्करण, सन् १८८६ ई०, पृ० १-२

इस नाटक का पहला संस्करण सन् १८८६ ई० में खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित हुआ था। नाटककार ने इस नाटक के भूमिका-लेखन की तिथि चैत्रशुक्ल नवमी, संवत् १९४३ वि० लिखी है। इसी में लाल खड्गबहादुर मल्ल की इस पुस्तक के सम्बन्ध में 'समालोचना' भी है, जिसके लेखन की तिथि ३१ अगस्त (गुरुवार), १८८२ ई० है। डॉक्टर श्यामनारायण तिवारी तथा डॉ० कृष्णकुमार इस नाटक के पहले संस्करण की प्रकाशन-तिथि १८८२ ई० तथा दूसरे संस्करण का काल सन् १८८६ ई० बतलाते हैं[1], जो गलत प्रतीत होता है। सन् १८८६ ई० में शिवनन्दन सहाय-कृत इसका अँगरेजी-अनुवाद इसी प्रकाशन-संस्थान द्वारा प्रकाशित किया गया था।

गोरक्षा विषय पर अनेक नाटक लिखे गये हैं, पर व्यासजी का नाटक सर्वोत्तम माना जाता है। 'गो-संकट' नाटक तीन अंकों का लघु नाटक है। इसके पहले अंक में तीन दृश्य, दूसरे में दो दृश्य और तीसरे में चार दृश्य हैं। इसमें कुल आठ पद्य हैं। पुरुष-पात्रों की संख्या ११ तथा स्त्री-पात्र दो हैं। इसमें नाट्य-प्रस्तावना का भी विधान है। सूत्रधार नाटक खेलने की प्रस्तावना करता है। इस नाटक का कथानक इस प्रकार है :

अकबर के शासन-काल में दिल्ली की घटना है कि बकरीद के अवसर पर मौलवी साहब गोवध करना चाहते हैं। यह बात मन्दिर के पुजारी को मालूम होती है। वह सभी हिन्दुओं को इसकी सूचना देते हैं। साबजी मौलवी साहब से गोहत्या का निषेध करते हैं। सेठ गोबरधन लाल तथा गोपाल दास प्रभृति बीबी साहिबा को धन का प्रलोभन देकर गाय अधिक दाम पर खरीद लेना चाहते हैं। फिर भी समस्या का समाधान नहीं होता। ठाकुर गोपी सिंह मुसलमानों की इस गुस्ताखी का अपने खड्ग से प्रतिकार करने के लिए तैयार हैं। हिन्दू-समुदाय हड़ताल कर विरोध प्रकट करता है। अन्त में अकबर के दरबार में हस्ताक्षर-अभियान से फरियाद की जाती है। बादशाह गोवध-निषेध का आदेश देते हैं। इस प्रसन्नता में हिन्दू गोरक्षा-महोत्सव मनाते हैं।

इस नाटक को मनोरंजक बनाने के लिए चौबेजी जैसे पात्र का निर्माण किया गया है, जो विशुद्ध रूप से विदूषक हैं। इसमें हिन्दी के अतिरिक्त बनारसी बोली का भी व्यवहार हुआ है। इस नाटक का घटनाक्रम अकबर के शासन-काल का है, किन्तु यहाँ शुद्ध रूप से आधुनिक युग की हड़ताल और हस्ताक्षर-अभियान द्वारा समस्या का समाधान प्रस्तुत किया गया है।

नाट्यारंगन : यहाँ यह उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा कि 'गो-संकट नाटक' के कृतिकार के रूप में पण्डित प्रतापनारायण मिश्र का भी नाम विद्वानों ने जोड़ा है तथा नाट्य-रचना की जो तिथि दी है वह वही तिथि है, जो व्यासजी के 'गो-संकट नाटक' की रचना-तिथि है।[2] मुझे ऐसा लगता है कि हिन्दी के किसी भी विद्वान् ने मूल रचना को देखने

१. (क) भारतेन्दु-मण्डल के सात प्रमुख लेखक, पृ० २५०
(ख) अम्बिकादत्त व्यास : एक अध्ययन, पृ० ४२०

२. (क) हिन्दी-नाटक साहित्य का इतिहास, तीसरा संस्करण, पृ० ७८
(ख) भारतेन्दुकालीन नाटक-साहित्य, पृ० २१०।—आश्चर्य है कि लेखक ने इसकी दो रचना तिथियाँ (१८८२ तथा १८८६ ई०) दी हैं, जो वस्तुतः व्यासजी की नाटक-रचना तथा प्रकाशन की तिथि हैं।

का प्रयास नहीं किया, बल्कि अपने पूर्व-लिखित ग्रन्थों के सन्दर्भों से काम चलाकर भ्रम को ज्यों-का-त्यों कायम रखा। उसपर समालोचना भी की। इस भूल के मूल में कानपुर के 'गोधर्म-प्रकाश' के सम्पादक तथा पण्डित प्रतापनारायण मिश्र के स्नेही फर्रूखाबाद-निवासी पण्डित देवदत शर्मा हैं। उन्होंने मिश्रजी के निधन पर अपने संस्मरण में लिखा था : 'पण्डितजी ने बहुत-से नाटक बनाये थे जिनमें कलिप्रभाव, हठी हम्मीर, गो-संकट आदि कानपुर के थियेटर हाल में खेले गये थे।'[१]

इस संस्मरण ने भ्रान्ति का प्रचार किया। संस्मरण पढ़कर ऐसा लगता है कि पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने मिश्रजी के सम्बन्ध में 'सरस्वती' के सन् १९०६ ई० के अंक में अपने लेख को उनकी पुस्तकों की सूची में 'गो-संकट नाटक' का उल्लेख किया।[२] द्विवेदी जी का यह उल्लेख ही अधिक प्रचारित हुआ। बाद के विद्वानों ने आँखें बन्द कर गो-संकट के प्रणेता-रूप में मिश्रजी को प्रतिष्ठित किया। आश्चर्य यह है कि पण्डित देवदत्त ने ऐसी भूल कैसे की जबकि मिश्रजी ने स्पष्टतः इसका उल्लेख किया है कि यह नाटक पण्डित अम्बिकादत्त व्यास की रचना है। अब भी हिन्दी के विद्वान् अज्ञानवश इस तरह की भूल कर भ्रम फैला रहे हैं।[3] मिश्रजी की प्रकाशित पुस्तकों तथा तत्कालीन अन्य किसी लेख के विज्ञापन में भी इस पुस्तक का उल्लेख नहीं मिलता। अतः यह सिद्ध है कि मिश्रजी ने 'गो-संकट नाटक' नाम से किसी नाटक की रचना नहीं की।

व्यासजी के इस नाटक का अभिनय कानपुर की 'भारत-मनोरंजिनी सभा' के सदस्यों ने २८ नवम्बर, १८८७ ई० को किया था। अभिनय की दृष्टि से कुछ जोड़-घटाव भी किया गया था। इसमें अकबर के राजसिंहासन का भी दृश्य दिखाया गया था, जो मूल नाटक में नहीं है। दर्शकों के चटकीले मनोरंजन के लिए—'नौकर तुम अपना मुझको साहब मत जानो रे' की पारसी धुन भी सुनाई गई थी। इसके साथ अन्य १४ नये गीतों की रचना कर इसके अभिनय को आकर्षक तथा समर्थ बनाया गया था।[४]

इस नाटक के आरम्भ में जो गीत गाये गये थे, वे इस प्रकार हैं :

निज करुणा रस बरसाओ प्रभो ! अब भारत को अपनाओ ॥
देखि दुर्दशा आरज कुल की बेगि दया उर लाओ।
हे प्राणेश ! पतित पावन प्रिय प्रेम पन्थ दरसाओ ॥
वर्त्तमान दुरगुन अगनित गनि नाथ ना न्याय जताओ।
अगिले ऋषिन मुनिन के नाते पितु-इवहृदय लगाओ ॥
धन बल बुद्धि विद्या सुख सर्वसु बिनसो जात बचाओ।
परवशता बहु दिवस दई अब अपनो दास बनाओ ॥
कानपूर वासिन के मन उन्नति की ओर फिराओ।
भारत मनरंजिनी सभा में नित नव मोद मचाओ ॥१॥

---

१. ब्राह्मण, खण्ड ११, संख्या १, पृ० ३
२. ब्राह्मण, खण्ड ४, सं० ५, पृ० १—५ : 'कानपुर कुनमुनाया'
३. प्रतापनारायण मिश्र की हिन्दी-गद्य को देन, पृ० ५६ तथा ६३
४, ब्राह्मण, खण्ड ४, संख्या ५, पृ० १ पर 'कानपुर कुनमुनाया' शीर्षक मिश्रजी का लेख।

"दूसरा गीत लिखने के पहिले यह जता देना है कि 'जय नारसिंह' श्री सम्पादक, 'प्रयाग-समाचार' कृत तो ज्यों-का-त्यों खेला गया था, पर श्री सम्पादक 'पीयूष-प्रवाह' लिखित गो-संकट में कहीं-कहीं घटाओ-बढ़ाओ भी इसलिए किया गया था कि दर्शकों की रुचि अधिक बढ़े। उसमें अकबर का दरबार भी दिखाया गया था, जिसमें राजधर्मादि का विषय था उसी के अन्तर्गत फरादियों के मुख से यह गाया गया था"—फारसियों की (नौकर तुम अपना मुझको मत अब साहब जानो रे) धुन।

है महाविपति गौओं पर शाह अकबर की दुहाई पर (प्रसंगवश अकबर का नाम रखना पड़ा था और इस बात के लिए उनका गुणगान भी उचित है, पर रसिकगण यों भी गा सकते हैं), है महा बिपत गौओं पर हे गोपाल दुहाई है। नहीं बोल सके बेचारी, जो अर्ज करें दुख भारी, दुष्टों ने बिन अपराध गले पर छुरी चलाई है ।। नहिं ध्यान कोई देता है रे उपकार गऊ से क्या है रे। भरपेट घास से लेवें, और दूध अमृत सा देवें, जिससे होता घी दही मही पकवान मिठाई है ।। सब आर्य्य जवन ईसाई रे छोटे बड़े लोग लुगाई रे३ रे। सच कहो संकोच नहीं है! ऐसा भी कोई कहीं है! माता न जिसे खोआ खुरचन रबड़ी और मलाई है ।।३।। भोजन स्वादिष्ट खिलावे रे। बल पौरुष सदा बढ़ावे रे। गोबर से ईंधन होवे। घर की सरदी सब खोवे ।। और मूत्र भी जिसका बड़े-बड़े रोगों की दवाई है। हाँ, बंस से इनके खेती रे। क्या किसान क्या बैपारी, जितने हैंगे रुजगारी सबके इयां गऊ की और गऊ पुत्री की कमाई है।[1]

सतजुग त्रेता द्वापर में रे!
पुजती थी गाय घर घर में रे।
उपकार अनेक विचारे।
लिख गये पोथियों में कि
गऊ संसार की माई है ।।६।।

सब देश के सब लोगों पर रे!
अहसान हैं, इनके बराबर रे!
जीते अनेक सुख देवें।
फिर चरण चाम से सेवें।
बुहने की तौ बर्बाद।
यह उलटी आफत आई है ।।७।।

हिन्दू का धर्म यही है रे
अति उत्तम कर्म यही है रे!
मारे चाहे मर जावे!
पर गाय के दुःख मिटावे!
इस ही से लोक परलोक में
सब लोगों की भलाई है ।।८।।

१। ब्राह्मण, खण्ड ४, संख्या ५, १५ दिसम्बर, १८८७ ई०, पृ० १०५

कुरआन में भी नहीं लिक्ख रे !
कुरबानी कहीं गऊ की रे।
फर्माते हैं हजरत आपी—
जाब्बीहुल बकर को पापी।
हर मोमिन सुलह पसंद।
समझता इसमें बुराई है ॥९॥

कहते हैं हकीम भी अक्सर रे !
यह गोश्त है रोगों का घर रे
अजबस सकील होता है।
कूवते दिमाग खोता है।
और कोढ़ वैगरह मरज—
हाय खूनी का भाई है ॥१०॥

बकरीद का करके बहाना रे !
लोगों ने झगड़ा ठाना रे !
फिरते हैं सबसे उलझते !
यह जी में नहीं समझते !
अल्लाह करोमो रहीम है।
यह कोई कसाई है ॥११॥

हिन्दू हैं बहुतेरे रे !
निज धर्म को मुह से फेरे रे !
पहिले हाँ ! हाँ ! कर लेवें
पीछे न मदद कुछ देवें !
कल चन्दे पर दस्तखत किये
दुम आज दबाई है ॥१२॥

साथी दस बीस हमारे रे !
बेचारे बक-बक हारे रे !
तन मन धन से हाजिर हैं।
पर, बेबस ही आखिर हैं।
मन मानके रह जाने के
सिवा क्या अपनी रसाई है ॥१३॥

क्या करें हाय ! कहँ जावे रे !
अपना दुःख किसे सुनावे रे।
गो - संकट देख दुखारी—
आये हैं सरन तुम्हारी—
नहीं राधे को अब और
कोई देता दिखाई है ॥१४॥

"अन्त में हमें यह आनन्द भी बड़ा हुआ। श्रीमन्त डॉक्टर मनोहरप्रसादजी त्रिपाठी महोदय हमारी सभा के सक्रेटरी (मन्त्री) हुए हैं। इससे दृढ़ आशा है कि अभ्युन्नति हो और ऐसे-ऐसे सद्युद्योगों से आज तो कानपुर कुनमुनाया है। परमेश्वर चाहे तो कल को आर्यावर्त्त में सचमुच जाग्रत दशा में दिखाई देगा।"[1]

महाअन्धेर : इस नाटक के आरम्भिक अंश 'क्षत्रिय-पत्रिका' में प्रकाशित मिलते हैं।[2] पूरा नाटक तथा इसका पुस्तकाकार रूप मुझे देखने को नहीं मिला। इस अधूरे नाटक में आठ पृष्ठ हैं। आरम्भ में नाट्य-प्रस्तावना है, जिसमें हास्य-विनोद-प्रधान नाटक खेलने के विचार से सूत्रधार (पण्डित अम्बिकादत्त व्यास) 'महाअन्धेर नाटक' खेलने की उद्घोषणा करता है। इसके प्रथम दृश्य का आरम्भ मुंशीजी तथा गुरुसोसन लाल के हास्य-प्रधान संवादों से होता है। मुंशीजी आधुनिक युवकों तथा देशभक्तों की आलोचना करते हैं। राजा धर्मध्वज सिंह के दरबार में गुरुसोसन लाल को उनकी तलबी की सूचना देते हैं। राजा धर्मध्वज सिंह को गप्पू झा मदिरा को शास्त्र-सम्मत बताकर पीने को देते हैं। राजा पीकर अनाप-शनाप बकते हैं। इस प्रकार आरम्भ का एक दृश्य समाप्त होता है। नाटक अधूरा है।

भारत-सौभाग्य (सन् १८८७ ई०) : इस नाटक की रचना व्यासजी ने मुजफ्फरपुर में सन् १८८७ ई० में की थी। उसी वर्ष यह पुस्तक खड्गविलास प्रेस से छपी। रामदीन सिंह ने महारानी विक्टोरिया की जुबिली के अवसर पर इसे मुद्रित कर निःशुल्क वितरित किया था। यह पुस्तक बड़ी अच्छी सुनहली किनारी तथा विभिन्न रंगों में छापी गई थी। विदेशी पत्रों ने इसकी बड़ी सराहना की थी। चार दृश्यों और इक्यावन पृष्ठों का यह नाटक 'क्षत्रिय-पत्रिका' के 'प्रीति-स्वरूप' वितरित किया गया उपहार था। अँगरेजी शासन के प्रति नाटककार आस्था प्रकट करता है :

> कविजनवर्णित कीर्त्ति, भरितभरणस्य बिभ्रतो भारम्
> धन्या मान्या प्राज्ञी, राज्ञी विक्टोरिया नाम्नी ॥१॥
> विलसन्तु तत्करमलै, भारतसौभाग्यमेतदतिसुखदम्
> भारतभूवास्तवैः, मा चिन्तां काञ्चनाऽपिगमः ॥२॥
> भारत सौभाग्यतत्त्वं, मा चिन्तां काञ्चनाऽपि गमः
> सा लालयति यतस्त्वां, राज्ञी श्रीभारतेश्वरी देवी ॥३॥
>
> —'क्षत्रिय-पत्रिका' सन्दर्भ-सम्पादकः

इस नाटक का आरम्भ संक्षिप्त प्रस्तावना से होता है। इसमें सात पुरुष तथा दस स्त्री-पात्र हैं। सभी पात्र मानसिक वृत्तियाँ हैं, जिनका मानवीकरण कर नाटककार ने उन्हें रंगमंच पर प्रस्तुत किया है। ऐसे पात्रों में भारत-दौर्भाग्य, विषय-भोग, प्रताप, फूट, मूर्खता, शिक्षा, एकता, उदारता, दया आदि हैं। इन चार अंकों में यह दिखलाया गया है कि अँगरेजी राज के पूर्व मुगलकाल में यवनों के दुराचार, मूर्खता, फूट आदि से

१. ब्राह्मण, खण्ड ४, संख्या ५, पृ० १—२
२. क्षत्रिय-पत्रिका, खण्ड ६, संख्या ७—९, सं० १९४३ वि०

भारत में दुर्भाग्य का साम्राज्य छा गया था। अँगरेजी राज में शिक्षा, उत्साह, एकता, यन्त्रविद्या और शिल्प ने दुर्भाग्य को दूर कर दिया। प्रताप की कृपा से अँगरेजी पताका तथा भारतीय पताका अपनी महिमा की रक्षा करते हुए मेल कर लेती हैं। प्रताप की कृपा से दोनों का वैमत्य दूर हो जाता है तथा महोत्सव में भाग लेते हैं।

यह पद्य-बहुल नाटक है। इसमें अँगरेजी, संस्कृत, ब्रजभाषा, राजस्थानी, मैथिली, बँगला तथा खड़ीबोली की कविताएँ भी विभिन्न पात्रों के मुख से सुनवाई गई हैं। इसकी भाषा स्वच्छ और सशक्त तथा संवाद अभिनेय हैं।

जीवनी :

स्वामिचरितामृत : इसकी रचना सं० १९४९ वि० में हुई थी।[1] इसका पहला प्रकाशन 'ब्राह्मण' में हुआ था।[2] इसके बाद यह पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। इसमें स्वामी भास्करानन्द सरस्वती का जीवन-चरित लिखा है, जो विभिन्न छन्दों में पद्यबद्ध है।

निज वृत्तान्त : व्यासजी भारतेन्दु-युग के एकमात्र ऐसे मनीषी साहित्यकार हैं, जिनकी जीवनी तथा कृतियों के सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं है। उन्होंने अपना जीवन-वृत्त स्वयं लिखा, किन्तु निज वृत्तान्त उनके निधन के बाद सन् १९०१ ई० में प्रकाशित हुआ। उसमें विना भूमिका के ५६ पृष्ठ हैं। संस्करण का उल्लेख नहीं किया गया है। इसमें उनके जन्मकाल से संवत् १९५३ वि० तक की घटनाओं की जानकारी है। पुस्तक में उनके विषय में प्रामाणिक विवरण प्राप्त होता है।

गद्य-लेख :

उपदेश-लता : यह पुस्तक मुझे देखने को नहीं मिली।

दयानन्द-मत-मूलोच्छेद (सन् १८८५ ई०) : उन्नीसवीं सदी के आठवें दशक में स्वामी दयानन्द के आर्यसमाज की तूती बोलती थी। सनातन धर्म का बड़ी बेरहमी से तर्क के साथ खण्डन किया जा रहा था। व्यासजी निष्ठावान् ब्राह्मण तथा सनातन धर्म के समर्थक थे। उन्होंने पटना में स्वामी दयानन्द के प्रभाव को अपने अनेक भाषणों से कम करने का प्रयास किया था। उनका एक भाषण १६ नवम्बर, १८८५ ई० को पटना में हुआ था, जो अत्यन्त प्रभावशाली था। उस भाषण को बाबू साहबप्रसाद सिंह ने संकलित किया था। बाबू शिवनन्दन सहाय ने उसका उर्दू तथा अँगरेजी में अनुवाद किया था। इन तीनों भाषणों में लिखे गये उक्त भाषण का संकलन सन् १८८५ ई० में प्रकाशित भी हुआ था।

संस्कृत-रचनाएँ :

द्रव्यस्तोत्र (सन् १८८२ ई०) : भारतेन्दु के वेश्या-स्तोत्र की भाँति संस्कृत में व्यासजी ने द्रव्यस्तोत्र की रचना सन् १८८२ ई० के मार्च में की थी। इसका प्रकाशन सन् १८८२ ई० में खड्गविलास प्रेस में हुआ था। इसमें ४२ अनुष्टुप् छन्द हैं, जिनमें धनकुबेरों पर व्यंग्य किया गया है। यह रचना 'हिन्दी-प्रदीप' में भी प्रकाशित हुई थी।

---

१. निज वृत्तान्त, पृ० ५०
२. ब्राह्मण, खण्ड १२, सं० ३, फरवरी, १८९८ ई०

सामवतम् (सन् १८८२ ई०) : यह संस्कृत-नाटक है, इसका प्रकाशन खड्गविलास प्रेस से सन् १८८८ ई० में हुआ था। व्यासजी की यह कृति उनकी नाट्य-कृतियों में अत्यन्त उत्कृष्ट मानी जाती है।

सांख्यतरंगिणी (सन् १८९१ ई०) : संस्कृत-पुस्तक 'सांख्यतत्त्व-कौमुदी' की कारिका है। सन् १८८२ ई० में लेखक ने इसकी रचना की थी, जिसका प्रकाशन सन् १८९१ ई० में हुआ था। इसमें ६३ पृष्ठ हैं। यह धारावाहिक रूप से 'वैष्णव-पत्रिका' तथा 'पीयूष-प्रवाह' में प्रकाशित हुई थी। इसमें रामदीन सिंह ने प्रकाशकीय वक्तव्य लिखा था। इसमें ७२ श्लोकों की व्याख्या की गई है।

पण्डित शीतलाप्रसाद त्रिपाठी

पण्डित शीतलाप्रसाद त्रिपाठी भारतेन्दुजी के समकालीन तथा काशी के गोवर्धन-सराय मुहल्ले के निवासी थे।[1] उनके पिता का नाम कुछ विद्वानों ने ईश्वरीप्रसाद त्रिपाठी बतलाया है।[2] किन्तु, यह ठीक प्रतीत नहीं होता। बाबू रामदीन सिंह ने अपनी डायरी में उनके पिता का नाम पण्डित देवीदयाल तिवारी लिखा है।[3] जॉर्ज ग्रियर्सन भी यही मानते हैं।[4] यही ठीक भी मालूम होता है, पण्डित शीतलाप्रसाद त्रिपाठी, बाबू रामदीन सिंह के खड्गविलास प्रेस में पुस्तक-लेखन का कार्य करते थे। अतः उनके सम्बन्ध में बाबूसाहब का उल्लेख प्रामाणिक होना चाहिए। ग्रियर्सन को भी, जो उस समय पटना के ज्वायण्ट मजिस्ट्रेट थे, उक्त सूचना खड्गविलास प्रेस से ही मिली होगी।

शीतलाप्रसादजी अपने भाइयों में सबसे बड़े थे। उनके छोटे भाई पण्डित छोटूराम तिवारी, हिन्दी और संस्कृत के विद्वान् एवं पटना कॉलेज में संस्कृत के प्रोफेसर थे।[5] सबसे छोटे भाई पण्डित गोपीनाथ तिवारी थे। छोटूराम तिवारी ने अनेक हिन्दी-संस्कृत-ग्रन्थों का प्रणयन किया था।

---

१. विद्याविनोद, तृतीय भाग, सन् १८८६-८७ ई०, खड्गविलास प्रेस, 'जवाहिर कवि' शीर्षक लेख।

२. हरिश्चन्द्र : शिवनन्दन सहाय, प्रथम संस्करण, सन् १९०५ ई०, पृ० ३६९

३. पण्डित शीतलाप्रसाद त्रिपाठी के सम्बन्ध में बाबू रामदीन सिंह की हस्तलिखित डायरी का प्रस्तुत अंश द्रष्टव्य है : "जनवरी, १८९५ ई०, सं० १९५१ वि०, पौष-शुक्ल पंचमी। पण्डित सुखवासी तिवारी से मालूम हुआ कि पण्डित शीतलाप्रसादजी बहुत बीमार हैं। ये बड़े योग्य मनुष्य हैं और बनारस के नामी पण्डित हैं। इनके पिता पण्डित देवीदयाल तिवारी जो ने ५४ वर्ष तक विना बाधा के अन्नपूर्णा के मन्दिर में चण्डीपाठ और विष्णुसहस्रनाम का पाठ किया था और ये बड़े धर्मशास्त्री और ज्योतिष के जाननेवाले थे।" (यह डायरी श्रीवेणी पुस्तकालय, तारणपुर, पो० लखनपार, जिला पटना में सुरक्षित है।)

४. 'द मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ नॉर्दर्न हिन्दुस्तान' : जॉर्ज ए० ग्रियर्सन, प्रथम संस्करण, सन् १८८९ ई०, कलकत्ता, पृ० १५४।

५. वही।

शीतलाप्रसादजी हिन्दी, संस्कृत, ज्योतिष एवं व्याकरण के अच्छे विद्वान् थे। उनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर बाबू रामदीन सिंह उनसे हिन्दी का बृहद् व्याकरण लिखा रहे थे।[1] किन्तु, वह व्याकरण पूरा न हो सका। वे बहुत दिनों तक काशी के संस्कृत-कॉलेज में साहित्याध्यापक[2] तथा अपने समय के माध्व धर्मशास्त्री थे।[3]

जिन दिनों त्रिपाठीजी काशी के संस्कृत-कॉलेज में साहित्याध्यापक थे, वहाँ से प्रकाशित होनेवाली पाक्षिक 'पण्डित पत्रिका' के सम्पादक थे। संस्कृत-साहित्य-विषयक उनके अनेक लेखों का प्रकाशन 'पण्डित पत्रिका' में हुआ था। वे हरिश्चन्द्र मैगजीन के सम्पादक-मण्डल में थे।

त्रिपाठीजी भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के वरिष्ठ मित्रों में थे। भारतेन्दुजी उन्हें गुरुतुल्य मानते थे। वे प्राचीन शिलालिपि पढ़ने में सुदक्ष और कुशल अनुवादक थे। गार्सां द तासी ने लिखा है कि 'कविवचनसुधा' में संस्कृत से हिन्दी में अनूदित नाटकों के अनुवाद में वे बाबू हरिश्चन्द्र के सहायक थे।[4] शीतलाप्रसादजी ने एक बार भारतेन्दु की प्रशंसा में लिखा था :

श्रूयन्ते ये हरिश्चन्द्रे जगदाह्लादिनो गुणाः।
दृश्यन्ते ते हरिश्चन्द्रे चन्द्रवत् प्रियदर्शने॥

इस श्लोक का अनुवाद भारतेन्दु ने स्वयं अपने 'सत्यहरिश्चन्द्र' नाटक में इस प्रकार किया था :

जो गुन नृप हरिचंद मैं जग हित सुनियत कान।
सो सब कवि हरिचन्द मैं लखहु प्रतच्छ सुजान॥[5]

त्रिपाठीजी का सम्बन्ध काशी-नरेश से भी था। 'जानकीमंगल' नाटक के नान्दीपाठकर्त्ता सूत्रधार के अनुसार उन्होंने इस नाटक का प्रणयन काशी-नरेश महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह के आदेश से किया था। 'जानकीमंगल' नाटक का सूत्रधार कहता है : "वाह ! तुमने बहुत अच्छी बात कही रघुनाथ के विवाह के चरित मेरे भी मन को अति भावते हैं। इसलिए हमलोग आज काशीवासी कविवर पण्डित शीतलाप्रसाद त्रिपाठी जी की लेखनी से निर्गत जानकीमंगल नाम नाटक की लीला इस सभा में करेंगे।[6] सम्भव है, वे काशी-नरेश के दरबारी कवि भी रहे हों। शीतला-

---

१. हरिश्चन्द्र : शिवनन्दन सहाय, पृ० ३६९
२. बाबू साहबप्रसाद सिंह की जीवनी, पृ० १३
३. वैराग्यसंदीपिनी नेह प्रकाशिका : वन्दन पाठक, खड्गविलास प्रेस, पृ० १०
४. हिन्दुई साहित्य का इतिहास : अनुवादक, लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, सन् १९५८ ई०, पृ० ११३
५. जानकीमंगल नाटक, प्रयाग-संस्करण, नाटक की प्रस्तावना
६. भारतजीवन, भाग ११, अंक ४७, ४ फरवरी, १८९५ ई०

प्रसाद जी की जन्मतिथि का पता नहीं। उनका निधन काशी में माघ-शुक्ल चौथ, बुधवार, संवत् १९५१ वि० में तदनुसार ३० जनवरी, बुधवार, १८९५ ई० को हुआ।[१]

अन्य रचनाएँ :

त्रिपाठीजी बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति थे। हिन्दी, संस्कृत तथा अँगरेजी—तीनों भाषाओं में उनकी समान गति थी। उनमें कवित्व-प्रतिभा भी थी। वे लेखक, अनुवादक और वैयाकरण थे। उन्होंने हिन्दी और संस्कृत में अनेक रचनाएँ कीं। उनकी रचनाओं के सम्बन्ध में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने पहली बार अपने 'नाटक' शीर्षक निबन्ध में 'जानकीमंगल नाटक' तथा संस्कृत के प्रसिद्ध नाटक 'प्रबोधचन्द्रोदय' के हिन्दी-अनुवाद का उल्लेख किया है। उनकी रचनाओं की संख्या ग्यारह है। 'जानकीमंगल नाटक' और 'सावित्री-चरित', खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित हुए थे।

जानकीमंगल : इस नाटक का रचनाकाल सन् १८६८ ई० है, जिसका प्रथम प्रकाशन सम्भवतः काशी में हुआ था। दूसरी बार यह पुस्तक प्रयाग के ज्ञानमार्त्तण्ड यन्त्रालय से सं० १९३३ वि० में मुद्रित हुई, जिसमें कुल छप्पन पृष्ठ थे। लेखक ने भूमिका में यह लिखा था कि इस नाटक का अभिनय पहली बार बनारस के थिएटर रायल में श्रीयुत महाराजाधिराज काशीनरेश बहादुर के आज्ञानुसार चैत्र शुक्ल ११, सं० १९२५ वि० को हुआ। यह संस्करण लीथो से छापा गया था।

इस नाटक का संशोधित प्रथम संस्करण सन् १८८४ ई० में खड्गविलास प्रेस ने छापा। बाबू साहबप्रसाद सिंह ने अपनी 'भाषासार' पुस्तक में इसे संगृहीत किया था, जिसके अनेक संस्करण प्रकाशित हुए। यह नाटक रायल आकार के बीस पृष्ठों में मुद्रित-प्रकाशित हुआ था। यह ५२ वर्षों तक बिहार तथा बंगाल की उच्च कक्षाओं में सन् १९३६ ई० तक पाठ्यक्रम में था। इसका अन्तिम संस्करण सन् १९३४ ई० में छपा था।

'जानकीमंगल' हिन्दी-रंगमंच-परम्परा का अग्रदूत है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने अपने नाटक में पहली बार यह बतलाया कि 'हिन्दी भाषा में जो सबसे पहले नाटक खेला गया वह 'जानकीमंगल' था। स्वर्गवासी मित्रवर ऐश्वर्यनारायण सिंह के प्रयत्न से चैत्र-शुक्ल ११, सं० १९२५ वि० में बनारस थियेटर में बड़ी धूमधाम से यह नाटक खेला गया था। रामायण से कथा निकालकर यह नाटक पं० शीतलप्रसाद त्रिपाठी ने बनाया था।'[२] बाबू रामदीन सिंह ने पहली बार यह बात हिन्दी-जगत् को बतलाई कि इस नाटक में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने लक्ष्मण की भूमिका प्रस्तुत की थी। उन्होंने 'चरिताष्टक' में टिप्पणी दी थी : "बनारस गोबरधनसराय-निवासी पं० शीतलाप्रसाद त्रिपाठी बनारस कॉलेज के अध्यापक और जानकीमंगल के कर्त्ता और उनके सहोदर भाई पं० छोटूराम

---

१. भारतेन्दु-नाटकावली : श्यामसुन्दर दास, इण्डियन प्रेस, प्रयाग, सन् १९२७ ई०, पृ० ४०८

२. श्रीहरिश्चन्द्र-कला, प्रथम भाग, नाटकावली में 'नाटक' शीर्षक निबन्ध, पृ० ४१, प्रथम संस्करण, खड्गविलास प्रेस, सन् १८८८ ई०।

त्रिपाठी, पटना कॉलेज के संस्कृत-प्राध्यापक कहते थे कि जानकीमंगल जब महाराज ईश्वरी-प्रसाद नारायण सिंह बहादुर के आज्ञानुसार बना और खेलने का प्रबन्ध हुआ तब एक लड़का, जो लक्ष्मण बना था, वह बीमार पड़ गया और यह हाल सभा जुटने पर मालूम हुआ। अब तो रंग में भंग का समय हुआ और यह ठहरा कि दूसरे दिन नाटक होगा। उसी समय बाबू हरिश्चन्द्र जी आये और पूछा कि आज नाटक क्यों न होगा? महाराज बहादुर ने स्वयं पछतावे के साथ कहा कि जो लक्ष्मण का पाठ लेनेवाले थे वह बीमार पड़ गये। इसपर बाबू साहब ने कहा कि मैं लक्ष्मण बनूंगा, पोथी मुझे दीजिए, पाठ देखूँ। इसपर महाराज ने कहा इस समय याद होना कठिन है। बाबू साहब ने कहा कि गुस्ताखी माफ हो। मैं एक पाठ क्या, समग्र 'जानकीमंगल' स्मरण कर लूंगा। एक बार देखना चाहिए। महाराज ने पुस्तक दी और बाबू साहब ने घंटा-भर के भीतर महाराज के हाथ में पुस्तक देकर ज्यों-का-त्यों अक्षर-अक्षर जानकीमंगल सुना दिया। तब महाराज बहुत प्रसन्न हुए और बाबू हरिश्चन्द्र लक्ष्मण बने और नाटक खेला गया।"[1] इसी तथ्य का बाद में अन्य विद्वानों ने अपने लेखों में अपने ढंग से उल्लेख किया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा रामदीन सिंहजी की उपर्युक्त सूचनाओं का उपयोग ग्रियर्सन ने अपने 'मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑव हिन्दुस्तान' में किया है।

कहा जाता है कि 'जानकीमंगल नाटक' का अभिनय पहली बार काशी में चैत्र-शुक्ल एकादशी, सं० १९२५ वि० (३ अप्रैल, १८६८ ई०) में हुआ था। इस नाटक के प्रथम अभिनय का प्रबन्ध काशी के जगतगंज मुहल्ले के प्रसिद्ध रईस श्रीऐश्वर्यनारायण सिंह ने, जिन्हें लोग 'लरबर बबुआ' कहते थे, किया था। बनारस के महाराज भी इस नाटक को देखने के लिए रामनगर से वाराणसी आये थे। यह नाटक सफल रहा।

हिन्दी-रंगमंच शतवार्षिकी के अवसर पर इस नाटक के प्रथम अभिनय की स्मृति में राधास्वामी-बाग में जाकर नागरी-प्रचारिणी सभा की ओर से दीपदान किया गया। किन्तु, सत्य तो यह है कि इस नाटक का अभिनय बनारस थिएटर में नहीं, बल्कि काशी के थिएटर-रायल में हुआ था। हिन्दी के आलोचकों ने भारतेन्दु के कथन की पुनरावृत्ति कर साहित्य-जगत् में भ्रान्ति पैदा की है। यह थिएटर-रायल बनारस के सैनिक-अस्पताल के सामने था। आज भी यह अपने स्थान पर में अवस्थित है। उस समय इसे 'नाचघर' कहते थे। आज भी वह 'नाचघर' के नाम से ही प्रसिद्ध है।

इस नाटक के प्रथम अभिनय के सम्बन्ध में 'इण्डियन मेल' के ७ मई के अंक में प्रकाशित विवरण का पहली बार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में 'केत किया था।[2] यह कहना कि इस समाचार की प्रकाशन-तिथि तथा नाटकाभिनय की तिथि की प्रथम सूचना हिन्दी-जगत् को श्रीशरद् नागर ने दी, गलत है।

---

१. चरिताष्टक, प्रथम भाग, अनु० पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, प्रथम संस्करण, सन् १८९४ ई०, पृ० २१ के फुटनोट में बाबू रामदीन सिंह द्वारा दी गई टिप्पणी।

२. हिन्दी-साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल, पन्द्रहवाँ संस्करण, पृ० १९३

'जानकीमंगल' नाटक के प्रथम अभिनय का लन्दन के 'इण्डियन मेल ऐण्ड मन्थली रजिस्टर' ने अपने ७ मई, १८६८ ई० के अंक में जो समाचार प्रकाशित किया था, उसका हिन्दी-अनुवाद इस प्रकार है :

बनारस, ४ अप्रैल। महामहिम काशी-नरेश के आदेश पर गत रात हिन्दी-नाटक 'जानकीमंगल' का अभिनय स्थानीय लोगों ने सभा-भवन में प्रस्तुत किया। हमारे प्रबुद्ध महाराज भी, जो अपने देशवासियों के सुधार-सम्बन्धी सभी कार्यों में अभिरुचि रखते हैं, उस अवसर पर उपस्थित थे। उनके साथ, अपने पार्षदों के साथ, कुँवर साहब भी मौजूद थे। नाटक देखने के लिए प्रमुख यूरोपियन और स्थानीय नागरिक भी आमन्त्रित किये गये थे। कुछ इनी-गिनी महिलाएँ, अधिक संख्या में सैनिक और असैनिक अधिकारी तथा नगर के अनेक सम्भ्रान्त नागरिक मौजूद थे। नाटक के मध्यान्तर में देशी संगीत का कार्यक्रम प्रस्तुत किया जाता था।

संस्कृत-नाटकों के अनुरूप सर्वप्रथम सूत्रधार ने मंच पर उपस्थित होकर संस्कृत में नान्दीपाठ किया। सूत्रधार के भाषण की समाप्ति पर अभिनेत्री ने प्रवेश किया और दर्शकों के मनोरंजन की विधि पर संक्षिप्त वार्त्ता की। संस्कृत-नाटकों का आरम्भ इसी रूप में हुआ करता था। संस्कृत-नाटकों में सदा से ही सूत्रधार और किसी अन्य व्यक्ति में होनेवाली एक संक्षिप्त वार्त्ता द्वारा नाटक की कथावस्तु का परिचय दर्शकों को करा दिया जाता था। प्रस्तुत नाटक में जिस समय कथोपकथन चल रहे थे, पर्दे के पीछे कोलाहल की ध्वनि हुई। सूत्रधार ने सूचित किया कि श्रीराम का वन में आगमन हो गया है, जिसके कारण कोलाहल हो रहा है। इतना कहकर सूत्रधार और अभिनेत्री उन्हें देखने के लिए दौड़ते हुए पर्दे के पीछे चले गये। इसके बाद ही नाटक का प्रथम दृश्य आरम्भ हो गया।

दृश्य उद्यान का था, जिसमें हिन्दुओं के संहार-देवता शिव की अर्धांगिनी पार्वती समासीन थीं। इतने में राम ने अपने अनुज लक्ष्मण के साथ प्रवेश किया। उनकी वार्त्ता से दर्शकों को पता चला कि सीता का आगमन भी शीघ्र होनेवाला है। उन्होंने माली से पुष्प-चयन की अनुमति माँगी। दोनों भाई पुष्प-चयन में संलग्न थे कि इतने में अपनी सखी-सहेलियों के साथ सीता का प्रवेश हुआ। उन्होंने भवानी की अर्चना की और पुष्प-वाटिका का चक्कर लगाने लगीं। इसी बीच सीता की एक सहेली ने कहा कि मैंने अनुपम सौन्दर्य-शाली राजकुमार को वाटिका में विचरण करते हुए देखा है। मैं उसे देखकर ठगी-सी रह गई और आत्मविह्वल हो उठी। सभी सखियाँ राम के सम्बन्ध में बातें कर ही रही थीं कि राम सहसा वहाँ आ पहुँचे। सीता का अनुपम सौन्दर्य निरखकर वे मन्त्रमुग्ध-से रह गये। उन्होंने कहा कि मेरे जैसे व्यक्ति का हृदय भी मदन के बाणों से विद्ध हो गया है। इसके बाद एक ओर से राम और दूसरी ओर से अपनी सहेलियों के साथ सीता रंगमंच से प्रस्थान कर जाती हैं।

द्वितीय और अन्तिम दृश्य राजभवन का था, जिसमें सीता के पिता जनक सिंहासनस्थ दिखाये गये हैं। राजदरबार में विभिन्न वेषभूषा से सज्जित अनेक देशों के नरेश सीता-

स्वयंवर के लिए समुपस्थित थे। सबसे अन्त में राम ने प्रवेश किया। सभी युवराजों और नरेशों के स्थान ग्रहण कर लेने पर यह घोषणा की गई कि राजा जनक ने यह प्रतिज्ञा की है कि उनकी कन्या उसी राजकुमार का वरण करेगी, जो वहाँ रखे हुए धनुष को उठा लेने में समर्थ होगा। सभी राजाओं ने धनुष उठाने का प्रयत्न किया, किन्तु वे विफल रहे। अन्त में राम उठे। उन्होंने धनुष को ऊपर उठाकर खण्ड-खण्ड कर दिया। इस शौर्य-प्रदर्शन के बाद सीता के साथ राम का विवाह हो गया। तदनन्तर वहाँ परशुराम ने प्रवेश किया। वे राम पर अतिशय क्रुद्ध थे और लक्ष्मण का वध करने पर उतारू हो गये। किन्तु, अन्त में उनका क्रोध शान्त कर दिया गया। परशुराम ने राम की शक्ति-परीक्षा के लिए अपना धनुष दिया। इस परीक्षा में राम सफल हुए। परशुराम ने उनकी श्रेष्ठता स्वीकार की। इसके साथ ही नाटक समाप्त हो गया।

ऐसा प्रतीत होता है कि यह नाटक संस्कृत-नाटक 'हनुमन्नाटक' के प्रथम अंक से लिया गया है।[1]

'जानकीमंगल' नाटक बहुत लोकप्रिय हो चुका था। काशी में इस नाटक के प्रथम अभिनय के लगभग आठ वर्ष पश्चात् २६ अगस्त, १८७६ ई० को प्रयाग में इसका पुनः मंचन किया गया। इस बार दर्शकों की संख्या पाँच सौ के करीब थी तथा प्रथम अभिनय की तुलना में दूसरी बार अधिक सफलता प्राप्त हुई। नैनीताल से प्रकाशित होनेवाली पत्रिका 'समयविनोद' के १५ सितम्बर, १८७६ ई० के अंक में इस नाटक के अभिनय का विवरण प्रस्तुत करते हुए लिखा गया था : "२६ अगस्त को प्रयाग आर्य्यनाट्य-सभा के मेम्बरों ने रेलवे थियेटर में 'जानकीमंगल' नाटक और जय नारसिंह की लीला का अभिनय किया। अबकी बार का अभिनय बहुत ही उत्तम हुआ। नाटक-रसिकों की भीड़ भी पाँच सौ मनुष्यों से अधिक थी।....... उसमें जानकी के रूप की सजावट और उनकी सखियों का गान, परशुराम का क्रोध और मालियों का गीत अत्यन्त उत्कृष्ट हुए।"

उक्त विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि 'जानकीमंगल' ने हिन्दी-नाटक खेलने की परम्परा का केवल सूत्रपात ही नहीं किया, वरन् दर्शकों में नाटक देखने की अभिरुचि भी जाग्रत् की। तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए इस नाटक के पाँच सौ से भी अधिक दर्शकों का होना उल्लेखनीय बात है।

'जानकीमंगल' नाटक तीन अंकों का है। इस नाटक में राम के द्वारा शिव के धनुर्भंग तथा सीता-स्वयंवर में विजयी होकर राम द्वारा सीता के पाणिग्रहण की कथा निबद्ध है।

'जानकीमंगल' नाटक में संस्कृत की परम्परा के अनुसार नान्दीपाठ संस्कृत में किया गया है। राम की वन्दना करते हुए नान्दी कहता है :

पुष्पेभ्यो विचरन् विदेहनृपतेः क्रीडावनं सानुजो

दृष्ट्वा तत्तनयां हृदि प्रमुदितोऽलङ्कारभूतां भुवः।

---

१. द्रष्टव्य : परिशिष्ट ४

प्राप्तो रङ्गमहीं महेश्वरधनुर्भङ्क्त्वा वृतः सीतया
जित्वा भार्गवमञ्चितः सुरगणैः श्रीराघवः पातु वः ॥१॥

या पूर्णचन्द्राधिकसुन्दरास्या या शुद्धचामीकरदेहकान्तिः ।
या रामचन्द्रामृतपानलुब्धा सा जानकीमङ्गलमातनोतु ॥२॥

इस मंगल श्लोक-पाठ के पश्चात् सूत्रधार तथा नटी नाटक खेलने का प्रस्ताव करते हैं तथा सूत्रधार यह सूचित करता है कि हमलोग आज काशीवासी कविवर श्रीयुत पण्डित शीतलाप्रसाद त्रिपाठीजी की लेखनी से निर्गत 'जानकीमंगल' नामक नाटक की लीला इस सभा में करेंगे । इस प्रकार नाट्य-प्रस्तावना समाप्त होती है ।

इस नाटक का प्रथम अंक जनकपुर की फुलवारी तथा शिव-मन्दिर में जानकी द्वारा गिरिजा-पूजन के दृश्य के साथ आरम्भ होता है । जनकपुर की इस वाटिका के मालियों द्वारा 'आज जानकी केर विवाहू । आये इहाँ सकल नरनाहू ।' के गीत के साथ पर्दा उठता है । इसी अंक में राम-लक्ष्मण-सहित विश्वामित्र मुनि का प्रवेश होता है । रामलक्ष्मण-सहित इस उपवन में पूजा के लिए फूल चुनने आते हैं । यहीं राम तथा सीता का प्रथम दर्शन होता है । सीता अपनी सखियों-सहित पूजन कर राम के प्रति आसक्त होकर घर लौटती है । प्रथम अंक पर पटाक्षेप होता है ।

दूसरा अंक तथा दृश्य सीता-स्वयंवर का है । इस राजसभा में देश-विदेश के अनेक राजे अपने-अपने स्थान पर विराजमान हैं । शिव का धनुष तोड़ने के लिए रखा है । वन्दी-जन सभी राजाओं का क्रम से परिचय देते हैं तथा प्रत्येक राजा अपनी शक्ति-परीक्षा करता है । पर, सभी विफल होते हैं । रामचन्द्र अपने गुरु विश्वामित्र की आज्ञा पाकर शिव के पिनाक को उठाते हैं तथा उसे तोड़ डालते हैं । सीता अपने हाथों में जयमाल लेकर रंगभूमि में प्रवेश करती हैं तथा रामचन्द्र के गले में डालती हैं । सीता की सखियों के मंगल-गीत के साथ दूसरे अंक का पटाक्षेप होता है ।

तीसरा अंक इस नाटक का अन्तिम अंक तथा दृश्य है । इस अंक में परशुराम का प्रवेश होता है तथा लक्ष्मण और परशुराम-संवाद बड़ी गम्भीरता के साथ होता है । परशु-राम शिव के धनुर्भंग पर अपना तीव्र क्रोध प्रकट करते हैं । रामचन्द्रजी पुनः विष्णु के धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर उसे तोड़ने का दृश्य उपस्थित करते हैं । परशुराम के क्रोध तथा भ्रम का निवारण हो जाता है । वे गद्गद होकर नेपथ्य की ओर चले जाते हैं । बाजा बजने लगता है, फूल बरसने लगते हैं । तीसरा अंक समाप्त होता है और 'जानकीमंगल' नाटक का नाट्याभिनय पूरा होता है । इस नाटक का प्रधान उपजीव्य तुलसीदास का रामचरित-मानस है । मानस के प्रथम सोपान की दोहा-संख्या २२६ से २८५ तक सीता-स्वयंवर की जिस घटना का वर्णन तुलसीदास ने किया है, उसी घटना का पण्डित शीतलाप्रसादजी ने नाट्यरूपान्तर किया है । वस्तुतः इस नाटक की विषयवस्तु 'मानस' का सीता-स्वयंवर ही है । 'इण्डियन मेल' के अँगरेज समीक्षक ने इस नाटक के कथानक के सम्बन्ध में लिखा था—'लगता है, यह नाटक हनुमन्नाटक नामक संस्कृत-नाटक के प्रथम अंक से लिया गया है ।'

हिन्दी-समीक्षक ने भी कथानक के विषय में अटकलबाजी की है। डॉ० देवर्षि सनाढ्य ने अपने शोध-प्रबन्ध में जानकीमंगल की घटना के सम्बन्ध में लिखा है : "यद्यपि जानकी-मंगल की घटना रामायण (वा० रा०, बाल० ६६-६७ सर्ग) की है, परन्तु ऐसा लगता है कि गोस्वामी तुलसीदास के 'जानकीमंगल' को दृष्टि में रखकर इसकी रचना हुई है।"[1]

इन कथनों से ऐसा प्रतीत होता है कि अँगरेज समीक्षक ने संस्कृत-नाटकों का अध्ययन नहीं किया था तथा हिन्दी-समीक्षक को यह नाटक देखने को ही नहीं मिला, अन्यथा इस नाटक के कथानक का संस्कृत के हनुमन्नाटक के प्रथम अंक तथा वाल्मीकीय रामायण के बालकाण्ड के ६६-६७ सर्ग से सम्बन्ध न जोड़ा जाता। 'रामायण' शब्द से भ्रान्ति हुई है। भारतेन्दुजी ने वस्तुतः इस शब्द का प्रयोग बोलचाल की भाषा में किया था और उनका आशय रामचरितमानस से ही था। अतः इस नाटक की कथावस्तु का आधार 'रामचरित-मानस' का प्रथम सोपान है, न कि संस्कृत का हनुमन्नाटक या वाल्मीकि की रामायण का बालकाण्ड। नाटककार ने आरम्भ में लिखा है : 'धनुषयज्ञ की लीला का अभिनय तुलसी-कृत रामायण को मूलस्थापन कर हिन्दी भाषा में निर्माण किया।'[2] इस नाटक के प्रणयन में तुलसीदास की 'कवितावली' तथा 'विनयपत्रिका' से अवश्य सहायता ली गई है।

यह नाटक प्रधान रूप से खड़ीबोली-गद्य में लिखा गया है। पात्रों के संवाद गद्य में ही हैं। पात्र गद्य-पद्यमय या मिश्रित भाषा में नहीं बोलते। बीच-बीच में गीतों तथा चौपाइयों को नाटककार ने उद्धृत किया है। ये चौपाइयाँ 'रामचरितमानस' के प्रथम सोपान की हैं। तत्कालीन गद्य की दृष्टि से इस नाटक का अधिक महत्त्व माना जा सकता है। सामान्यतः इस नाटक में खड़ीबोली का गद्य बनारस की शिष्ट जनता की बोली के निकट है। स्थानीय भाषा प्राकृत शब्दों के प्रयोग और वाक्य-विन्यास के द्वारा स्वतः प्रकट है। इस नाटक की भाषा सामान्यतः साफ-सुथरी और व्यवस्थित कही जा सकती है।

नाटकीयता की दृष्टि से इस नाटक का विशेष महत्त्व नहीं है; क्योंकि इसमें जो कुछ भी नाटकीयता आ पाई है, वह 'रामचरितमानस' के प्रासंगिक नाटकीय स्थलों के कारण ही। यद्यपि नाटककार ने नाटक में 'सक्रियता' को आद्योपान्त बनाये रखने की चेष्टा की है, तथापि जगह-जगह लम्बे-लम्बे संवादों की योजना से उसमें बाधा भी उपस्थित होती है। फिर भी 'रामचरितमानस' के इन अंशों से सुपरिचित होने के कारण दर्शकों को ऐसे स्थलों पर नीरसता का अनुभव कम ही हो पाया होगा। इस नाटक के प्रायः सभी पात्र 'रामचरित-मानस' के हैं। केवल सीता की सखियों को, चतुर सखी, प्रेम सखी और रहस्यसखी नाम देकर अलग-अलग व्यक्तित्व प्रदान करने की चेष्टा की गई है। इसी प्रकार स्वयंवर में सम्मिलित होनेवाले कुछ राजाओं को स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रदान किया गया है, जो मानस में नहीं है। पर, इन उल्लेखों से व्यक्तित्व-प्रकाशन में कोई विशिष्टता नहीं आ पाई है।

पहले यह बताया जा चुका है कि इस नाटक के अधिकांश संवाद 'रामचरितमानस' के धनुर्भंग तथा सीता-राम-विवाह-प्रसंग की दोहा-चौपाइयों के गद्यानुवाद हैं। इस नाटक

---

१. हिन्दी के पौराणिक नाटक, पृ० १२१

२. जानकीमंगल नाटक की भूमिका

के प्रथम अंक में रामचन्द्र जनक की फुलवारी को देखकर कहते हैं : "लक्ष्मण ! देखो यह कैसी सुन्दर वाटिका है, इसमें कैसे मनोहर वृक्ष लगे हुए हैं। इनपर चातक, कोकिल, चकोर इत्यादि पक्षी कैसी मीठी-मीठी बोलियाँ बोल रहे हैं और देखो, इसके मध्य में यह सरोवर कैसा रमणीय है।" वस्तुतः यह संवाद मानस की निम्नांकित चौपाइयों का गद्यानुवाद-मात्र है :

"भूप बागु वर देखेउ जाई, लागे बिटप मनोहर नाना, चातक कोकिल कीर चकोरा, कूजत बिहग नटत कल मोरा, मध्यबाग सरु सोह सुहावा, विमल सलिलु सरसिज बहुरंगा, तथा जल खग कूजत गुंजत भृंगा।" इसी प्रकार रामचन्द्रजी सीता को देखकर कहते हैं : 'यह बाला सुन्दरता को भी सुन्दर कर रही है और छवि के गृह में दीपशिखा-सी बर रही है।' यह अंश भी 'सुन्दरता कहँ सुन्दर करई, छबिगृह दीपशिखा जनु बरई' का गद्यानुवाद है। इसी प्रकार इस नाटक के द्वितीय तथा तृतीय अंक में भी ऐसे अनेक अनूदित स्थल देखे जा सकते हैं।

नाटक में कुल तीन गीतों का समावेश किया गया है, जिनमें से प्रथम अंक में एक तथा द्वितीय अंक में दो गीत हैं। इन तीनों गीतों में एक तुलसीदास की 'विनयपत्रिका' तथा शेष दो उनकी 'गीतावली' से उद्धृत हैं। 'विनयपत्रिका' की पद-संख्या सोलह से, जिस पद को नाटककार ने अपने इस नाटक में उद्धृत किया है, उसके अन्तिम चरण में थोड़ा अपनी ओर से परिवर्त्तन भी कर दिया है। 'विनयपत्रिका' के इस पद के अन्तिम चरण का पाठ—'रघुपति पद परम प्रेम तुलसी यह अचल नेम' के स्थान पर नाटककार ने परिवर्त्तन कर—'सुन्दर बर सुभ संयोग माँगति सब कुंअरि जोग' लिखा है। द्वितीय अंक में भी 'गीतावली' से गीत-संख्या एक सौ दो उद्धृत है। इस गीत के अन्तिम चरण में भी पाठ-परिवर्त्तन कर दिया गया है। 'तुलसीदास जान सोई यह सुख, जेहि उर बसति मनोहर जोरी' के स्थान पर 'घर घर मुद मंगल मिथिलापुर चिरजीयौं यह सुन्दर जोरी' कर दिया गया है।

इस नाटक में नाटककार ने बहुत थोड़े संवादों की रचना स्वयं की है। फिर भी मौलिक रूप से खड़ीबोली-गद्य में रंगमंचीय नाटक लिखने का नाटककार का प्रयत्न विशेष महत्त्वपूर्ण है। इस नाटक ने हिन्दी-नाटक लिखे जाने में प्रेरणा-स्रोत का कार्य किया है। यह नाटक तत्कालीन परिस्थितियों की दृष्टि से रोचक कहा जा सकता है। इस नाटक का ऐतिहासिक महत्त्व तो है ही, साथ ही यह हिन्दी का प्रथम अभिनीत नाटक है, जिसने हिन्दी के साहित्यिक रंगमंच की स्थापना की।

सावित्री-चरित : इस पुस्तक की रचना त्रिपाठीजी ने सन् १८७२ ई० में की थी।[1]

---

१. कवि ने अनुवाद-काल का उल्लेख इस प्रकार किया है :

संवत विक्रम नृपति के, उनइस सौ उनतीस।
फागुन बदी दुआदसी, तिथि वासर रजनीस॥
काशीवासी विप्रवर, कवि सीतलाप्रसाद।
भारत के वनपर्व ते, किय भाषा अनुवाद॥

चित्र-सं० : १२

फ्रेडरिक पिन्कॉट

इसका प्रथम प्रकाशन इलाहाबाद के गवर्नमेण्ट प्रेस से सन् १८७६ ई० में हुआ था। रायल आकार में पहली बार सन् १८९१ ई० में खड्गविलास प्रेस ने इसे प्रकाशित किया था। यह काव्य-कृति है, जिसमें महाभारत के वनपर्व की 'सावित्री की सत्यवान् के प्रति पति-भक्ति' का वर्णन किया गया है। कथा का हिन्दी-पद्यबद्ध अनुवाद है। दोहा-चौपाई में तथा छह अध्यायों में पूरी कथा का अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। अनुवाद सामान्यत: अच्छा है। दोहा-चौपाई में अनुवाद होने के कारण यह रचना रुचिकर और सामान्य जनों की रुचि के अनुकूल और सहज बोधगम्य है।

फ्रेडरिक पिन्कॉट

हिन्दी-भाषा और साहित्य को लन्दन में प्रचारित-प्रतिष्ठित करने, हिन्दी-भाषियों को अपनी भाषा का गौरव बताने तथा भारत में खड़ीबोली और देवनागरी लिपि की सार्थकता सिद्ध करने की दिशा में जिन अँगरेज साहित्य-चिन्तकों ने स्पृहणीय योगदान किया है, उनमें फ्रेडरिक पिन्कॉट का स्थान बहुत ऊँचा है। हिन्दी-प्रेमी पिन्कॉट का जन्म लन्दन के सामान्य परिवार में सन् १८३६ ई० में हुआ था। उनको प्रारम्भिक शिक्षा लन्दन के नवीन एलिजाबेथ चार्टर्ड स्कूल में हुई। अर्थ-चिन्ता ने छात्र-जीवन में ही जीवन-संघर्ष के लिए उनको मजबूर किया। अर्थोपार्जन के लिए उन्होंने पहले प्रेस में कम्पोजीटर का काम शुरू किया। इसमें उन्हें सफलता मिली। कर्त्तव्य के प्रति अटूट निष्ठा के फलस्वरूप उनकी पदोन्नति कर प्रूफ-संशोधक बनाया गया। प्रेस का काम करते समय उनमें भारतीय भाषा के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ। अध्यवसाय, अध्ययन और लगन के कारण लन्दन के प्रसिद्ध प्राच्यविद्या प्रकाशक डब्ल्यू० एच्० ऐलन ऐण्ड कम्पनी ने पिन्कॉट को अपना प्रेस-प्रबन्धक नियुक्त किया। उस कम्पनी में कार्य करते समय उन्हें प्राच्यभाषा और साहित्य के अध्ययन का सुअवसर मिला। उन्होंने अपने गहन अध्ययन को प्रौढता प्रदान की। बाद में उन्होंने उस प्रकाशन-संस्थान से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। तदनन्तर लन्दन के प्रसिद्ध व्यावसायिक संस्थान 'गिलबर्ट ऐण्ड रिविंगटन' में सन् १८९० ई० में उनकी नियुक्ति प्राच्यभाषा-सलाहकार के रूप में हुई। वहाँ से प्रकाशित होनेवाली उर्दू-पत्रिका 'आईन-ए-सौदागरी' का वे सम्पादन करते थे। सन् १८९२ ई० से उस पत्रिका के अँगरेजी-संस्करण का भी उन्होंने सम्पादन करना शुरू किया। मृत्यु के पूर्व तक वे उस पत्रिका का सम्पादन करते रहे।

पिन्कॉट का विवाह २३ वर्ष की अवस्था में सन् १८५९ ई० में हुआ। संयोग की बात देखने में यह आई कि खड़ीबोली के प्रथम उन्नायक अयोध्याप्रसाद खत्री की एकमात्र सन्तान उनकी कन्या थी और खड़ीबोली-साहित्य के अध्येता विद्वान् पिन्कॉट को भी एक-मात्र सन्तान उनकी कन्या थी। पिन्कॉट की पत्नी का अक्टूबर सन् १८८८ ई० में शरीरान्त हुआ। पत्नी के आकस्मिक निधन से वे अत्यधिक व्यथित हुए। वे पत्नी को

सचिव, मित्र, सहायिका, परामर्शदात्री, प्रेमिका और प्रसन्नता का स्रोत मानते थे।[1] उनके २९ वर्ष के सुखमय दाम्पत्य-जीवन का सहसा अन्त हो गया।[2]

गिलबर्ट ऐण्ड रिविंगटन कम्पनी में काम करते समय उन्होंने भारत और लन्दन के व्यावसायिक सम्बन्धों को घनिष्ठतर बनाने का यत्न किया था। भारत के व्यवसाय के प्रति उनका दृष्टिकोण उदार था। भारतीय व्यापार को अँगरेजों के हाथ में जाने का दुःख भी उनको था —'यह कोई बधाई का कारण नहीं, अपितु दुःख का विषय है कि भारतवर्ष का लगभग सारा व्यापार यूरोपियन आढ़तियों के हाथ में है।'[3]

'आईन-ए-सौदागरी' भारतीय व्यापार-सम्बन्धी सूचना प्रदान करती थी। उक्त कम्पनी ने भारत में पैदा होनेवाली रीआ घास की अच्छी उपज के प्रचार के लिए उन्हें सन् १८९५ ई० में भारत भेजा। भारत में उन्होंने लन्दन की रीआ-ए फाइबर ट्रीटमेण्ट कम्पनी के साथ १५ हजार टन रीआ की छाल सात पौण्ड प्रतिटन की दर से भेजने का ठीका लिया। पिन्कॉट नवम्बर, १८९५ ई० में कलकत्ता आये। उन दिनों अवध में रीआ की खेती की अधिक गुंजाइश थी। कार्यक्रमानुसार भ्रमण करते हुए वे लखनऊ पहुँचे। दैव-दुर्योग से लखनऊ में एकाएक उनकी तबीयत खराब हुई। जिस भारत-भूमि के प्रति उनके हृदय में अगाध अनुराग था, उसी की धरती पर बुधवार, ५ फरवरी, १८९६ ई० को लखनऊ में उनका अन्तिम दैहिक संस्कार हुआ।[4]

भारतीय साहित्य के अध्येता :

पिन्कॉट भारतीय भाषाओं के जिज्ञासु अध्येता थे। भारतीय साहित्य के अध्ययन-चिन्तन में उनकी गहरी अभिरुचि थी। उन्होंने चार भारतीय भाषाएँ—संस्कृत, हिन्दी, फारसी और उर्दू सीखी थीं।[5]

---

१. फ्रेडरिक पिन्कॉट : व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ० २७

२. वही, पृ० २३

३. वही, पृ० ३

४. डॉ० श्यामसुन्दर दास ने हिन्दी कोविद-रत्नमाला, भाग १, पृ० ३० और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने, 'सरस्वती', सन् १९०८ ई० के अंक में, फ्रे० पिन्कॉट की निधन-तिथि ७ फरवरी, १८९६ ई० दी है। किन्तु, काशी से 'प्रकाशित-भारत-जीवन' के १७ फरवरी, १८९६ ई० के अंक में प्रकाशित समाचार में उनकी निधन-तिथि बुधवार, ५ फरवरी, १८९६ ई० बताई गई है। अतः उन दोनों तिथियों की तुलना में यह तिथि प्रामाणिक प्रतीत होती है।

५. फ्रेडरिक पिन्कॉट : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० ३८ एवं पिन्कॉट के पत्र हरिश्चन्द्र के नाम। डॉ० श्यामसुन्दर दास ने हिन्दी-कोविद-रत्नमाला (१ भाग), सन् १९०९ ई०, पृ० १३ में यह लिखा है कि पिन्कॉट दक्षिण-भारत की तमिल, तेलुगु, कन्नड और मलयालम तथा गुजराती और बँगला भी जानते थे। इससे ऐसा लगता है कि 'फ्रेडरिक पिन्कॉट : व्यक्तित्व एवं कृतित्व' पुस्तक में जिन चार भाषाओं का उल्लेख किया गया है, उसमें सन्देह होता है।

पिन्कॉट का, जैसा पहले बता चुका हूँ, हिन्दी के प्रति अनन्य अनुराग था । वे हिन्दी लिखना-पढ़ना जानते थे । किन्तु, हिन्दी में लेख लिखने में उन्हें कठिनाई होती थी । इसलिए वे अँगरेजी मे ही हिन्दी-भाषा तथा साहित्य के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किया करते थे । विदेशी पत्रों में हिन्दी-पुस्तकों की समालोचना तथा हिन्दी के विषय में अपना मत प्रकट किया करते थे । वे लन्दन की 'इण्डियन मैगजीन ऐण्ड रिव्यू' के नियमित लेखक थे । आरम्भ में वह पत्रिका 'जर्नल ऑफ दि नेशनल इण्डियन एसोसिएशन' नाम से निकलती थी ।

भारतीय भाषाओं में हिन्दी पिन्कॉट को अतिप्रिय थी । उन्होंने सन् १८७२ ई० से हिन्दी के सम्बन्ध में अँगरेजी पत्र-पत्रिकाओं में लिखना शुरू किया था । उन्होंने पण्डित श्रीधर पाठक को २ अगस्त, १८७८ ई० के अपने पत्र में लिखा था :

"१८७२ ई० से मैंने हिन्दी-भाषा के पक्ष में लिखना प्रारम्भ किया और तभी से इस प्रसंग को जनसाधारण के सम्मुख बनाये रखा है । (हिन्दी) भाषा के पठन-पाठन को बढ़ावा देने की दृष्टि से मैंने अनेक पुस्तकें प्रकाशित की हैं । स्मरण नहीं कि मैंने इस बात का इससे पूर्व भी उल्लेख किया हो, परन्तु मेरी कृतियों में 'शकुन्तला' (हिन्दी में) मय विवरणात्मक टिप्पणियों के 'द हिन्दी मैनुअल' (व्याकरण तथा अभ्यास-प्रश्नावली-सहित) तथा स्कूली पुस्तकों की एक माला निकाली है और आजकल मैं हिन्दी में मलिका का जीवन-चरित्र लिख रहा हूँ । मैं हिन्दी के लिए और प्रयत्नशील रहूँगा और अधिक लिखूँगा तथा इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए मैं जितनी भी हिन्दी की पुस्तकें पा सकता हूँ, उन्हें पढ़ने का इच्छुक हूँ ।"[१]

पिन्कॉट हिन्दी के उन समर्थ उन्नायकों में थे, जो सुदूर लन्दन में हिन्दी की बात सोचा करते थे । लन्दन में सिविल सर्विस के अधिकारियों को अनिवार्य रूप से हिन्दी पढ़ने की व्यवस्था का श्रेय भी उन्हीं को प्राप्त है । उन्होंने पाठकजी को लिखे गये अपने २ अगस्त, १८८८ ई० के पत्र में कहा है :

"बीस वर्ष पूर्व से मैं यूरोपियनों में प्रायः अकेला ही सरकार पर हिन्दी के अधिकारों के प्रति दबाव डालता रहा । दस वर्ष पूर्व डाक्टर हाल के साथ मिलकर मैंने सेक्रेटरी ऑफ स्टेट को इस बात के लिए उद्यत करने में सफलता पाई कि इंगलैण्ड छोड़ने से पहले प्रत्येक उत्तर-पश्चिमी नागरिक के लिए हिन्दी की किसी परीक्षा में बैठना अनिवार्य कर दिया जाय ।"[२]

इस प्रयास में उन्हें सफलता मिली । 'सिविल सर्विस' के अधिकारियों के लिए हिन्दी पाठ्यक्रम के रूप में, राजा लक्ष्मण सिंह द्वारा अनूदित 'शकुन्तला-नाटक' का उन्होंने सम्पादन कर लन्दन से मुद्रित-प्रकाशित कराया था । सिविल सर्वेण्ट के लिए उन्होंने 'हिन्दी-मैनुअल' नाम से हिन्दी-व्याकरण की रचना की थी । उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर

---

१. फ्रेडरिक पिन्कॉट : व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ० २२
२. वही, पृ० २२

विचार कर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विदेश में हिन्दी को सम्मान प्रदान करानेवाले वे प्रथम विदेशी हिन्दी-प्रेमी थे। हिन्दी के प्रति उनका दृष्टिकोण निर्मल था। उनकी मान्यता थी कि हिन्दी जबतक सरकारी काम-काज के व्यवहार की भाषा नहीं होगी तब तक उसके विकास का मार्ग प्रशस्त नहीं होगा।

फ्रेडरिक पिन्कॉट और रामदीन सिंह :

यद्यपि पिन्कॉट लन्दन में रहते थे, तथापि उन्होंने पत्राचार के माध्यम से बाबू हरिश्चन्द्र, पण्डित श्रीधर पाठक, बाबू कार्त्तिकप्रसाद खत्री, बाबू रामदीन सिंह, बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री, पण्डित प्रतापनारायण मिश्र प्रभृति से सम्पर्क बना रखा था। बाबू हरिश्चन्द्र तथा पाठकजी से उनका बहुत पत्राचार होता था। बाबू रामदीन सिंह से पिन्कॉट बहुत प्रभावित थे। बाबू साहब के प्रेस से प्रकाशित पुस्तकों की, पिन्कॉट लन्दन के पत्रों में समालोचना किया करते थे। पिन्कॉट जब लन्दन से भारत आये, तब सर्वप्रथम रामदीन सिंह ने कलकत्ता में उनका स्वागत किया था। इस आशय की सूचना कलकत्ता के अँगरेजी दैनिक 'अमृतबाजार-पत्रिका' में प्रकाशित हुई थी।

बाबू साहब ने भारतेन्दुजी की रचनाओं का धारावाहिक प्रकाशन 'हरिश्चन्द्रकला' पत्रिका में किया था, जिसका सम्पादन वे स्वयं करते थे। उन्होंने उसकी प्रति पिन्कॉट साहब को भेजी। पिन्कॉट ने उसकी समालोचना लन्दन की 'इण्डियन मैगजीन ऐण्ड रिव्यू' के जनवरी, १८८८ ई० के अंक में प्रकाशित करायी थी। उन्होंने लिखा था :

"The late Babu Harishchandra was the most industrious writer of Modern India. He certainly did more than any other man to bring his native language into notice, and to render it a polished medium of communications."[२]

उनकी हिन्दी के प्रति अविरल भक्ति का पता इस बात से चलता है कि वे हिन्दी-पुस्तकों को विदेश में प्रचारित करने का प्रयत्न करते रहते थे। यदि हम कहें कि हिन्दी को गति प्रदान करने में पिन्कॉट का श्लाघनीय प्रयास था तो अत्युक्ति न होगी। यहाँ एक बात ध्यान में रखनी होगी कि पिन्कॉट के भारत-आगमन के पूर्व रामदीन सिंह से उनका सम्पर्क था। उन्होंने पिन्कॉट की तीन हिन्दी पुस्तकें अपने प्रेस से प्रकाशित की थीं।

---

१. EXPECTED ARRIVAL : Mr. Frederick Pincott is expected here very soon. Maharaj Kumar Babu Ramdin Singh, M. A. S. will, it is said, receive him. Mr. Pincott is a lover of Hindi, and the Maharaj Kumar is the only patron of Hindi in these provinces.
—*Amrit Bazar Patrika*, Wednesday, 11 September, 1895.

२. (क) फ्रेडरिक पिन्कॉट : व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ० ११
(ख) 'परिषद्-पत्रिका', वर्ष ३, अंक १, पृ० ७०, अप्रैल, १९६३ ई०

रचनाएं :

(१) बालदीपक, (२) श्रीमती भारतेश्वरी—महाराणी विक्टोरिया।
(३) पिन्कॉट के पत्र भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाम ।

१. **बालदीपक**—यह पुस्तक चार भागों में है। मुझे इस पुस्तक का चौथा भाग (तीसरा संस्करण), सन् १८९३ ई० उपलब्ध हो सका है। इसमें २३४ पृष्ठ और ६० पाठ हैं, जिनमें छह पाठों में रामचरितमानस से विभिन्न पाठों का संग्रह है।

इस पुस्तक का संकलन पाठशालाओं के लिए किया गया था। इसके लेखों का चयन बहुत ही वैज्ञानिक सूझ-बूझ और अँगरेजी पाठ्यपुस्तक के परिप्रेक्ष्य में किया गया है। पिन्कॉट ने इसकी भूमिका अँगरेजी में लिखी है। उन्हें इस संकलन को तैयार करने में हिन्दी के शब्द-प्रयोगों की परेशानी हुई थी। इससे उन्होंने यह संकलन तैयार किया था। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है :

"There are many different forms of Hindi in common use, some authors employ many Sanskrit words, some employ Persian words, some employ a majority of Tadbava words, and others use even English words. It is, therefore, evident that no boy can be considered proficient at reading until he can read any kind of Hindi which may be placed before him; for this reason in these Reading Books, lessions have been given in many different kinds of Hindi."[1]

इस दृष्टि से यह सर्वोत्तम पाठ्यपुस्तक है। इस पुस्तक में पिन्कॉट की गद्य-शैली का भी रूप मिलता है, जिससे यह ज्ञात होता है कि वे हिन्दी-गद्य में अपने भाव अच्छी तरह व्यक्त कर सकते थे। उनके गद्य का एक नमूना देखिए :

"पहिले पहल गुटेनबर्ग और कोस्टर ये दोनों पण्डित लकड़ी की पट्टी पर अक्षर खोद-खोद छापा करते थे पीछे से लकड़ी के भिन्न-भिन्न अक्षर बनाकर भी उन्होंने ही व्यवहृत किये थे। परन्तु, जबसे होफर नामक एक शिल्प-कुशल बुद्धिमान् पुरुष ने धातु-निर्मित अक्षर प्रचलित किये हैं तब ही से इस विषय की अधिक श्रीवृद्धि देखने में आती है।"[2]

श्रीमती भारतेश्वरी महाराणी विक्टोरिया[3] : फ्रेडरिक पिन्कॉट की हिन्दी में लिखी यह दूसरी पुस्तक महारानी विक्टोरिया की जीवनी है। इस पुस्तक का खड्गविलास प्रेस से सन् १८९५ ई० में प्रकाशन हुआ था। यह पुस्तक १३६ पृष्ठों की है, जिसके २५ अध्यायों में महारानी विक्टोरिया के जीवन के विविध पक्षों पर सरल और सुबोध शैली में प्रकाश डाला गया है।

१. बालदीपक की भूमिका
२. बालदीपक, भाग ४, पृ० ९
३. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लन् १८८७ ई० के संस्करण का उल्लेख किया है। मुझे सन् १८९५ ई० वाला संस्करण सुलभ हुआ है।

उन्होंने यह पुस्तक मूलतः हिन्दी-भाषा और देवनागरी लिपि में लिखी थी। उनकी हिन्दी में लिखी गई यह पहली पुस्तक है। उन्होंने इस पुस्तक की भूमिका में इस कृति पर प्रकाश डालते हुए कहा था :

"हम सीधी-सादी हिन्दी में वह मनोरंजक इतिहास लिखते हैं, जिससे सब हिन्दुस्थान के बालक हमारी महाराणी के दयापूर्ण कर्मों को पढ़ सकें और अपने-अपने जीवन को उपकारी और धर्मयुक्त बनाकर उनके उदाहरण के अनुसार चलने की चेष्टा करें।

ईश्वर हमारे इस मनोरथ को, जिससे प्रिय भारतवर्ष की भलाई हो सकती है, सफल करे।"[1]

इस पुस्तक में विक्टोरिया के जन्म से उसके शासनकाल के जुबिली-महोत्सव तक का विशद वृत्तान्त दिया गया है। इस पुस्तक की भाषा सरल और बोधगम्य है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस पुस्तक का नाम 'विक्टोरिया-चरित' बताया है और इसकी समीक्षा करते हुए कहा है कि 'इसकी भाषा उनके पत्रों की भाषा की अपेक्षा अधिक मुहावरेदार है।'[2]

पिन्कॉट की गद्य-शैली और उनकी भाषा की मुहावरेदारी का परिचय इस रचना के एक उद्धरण में मिलता है, जिसमें सन् १८७७ ई० के दिल्ली-दरबार की चर्चा करते हुए भारत की स्वतन्त्रता की भविष्यवाणी की गई थी।

"......भारतवर्ष पूर्व की तरह केवल इंगलिस्तान के अधीन ही न था किन्तु अँगरेजी राज्य के अन्य भागों के समान भारतवर्ष निवासियों को भी सम्पूर्ण सत्ताएँ और विशेषाधिकार हैं।......अब भारतवासियों को अपनी तईं स्वतन्त्र और आत्मशासन के अधिकारों के योग्य बनना चाहिए और जब वे इनके योग्य होंगे तो इंग्लैण्ड की गवर्नमेण्ट प्रसन्नतापूर्वक उनको एक-एक करके उन अधिकारों को देगी।"[3]

यह कृति भारतेन्दु-युग की जीवनी साहित्य के क्षेत्र में एक अच्छी रचना मानी जा सकती है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का इस कृति के सम्बन्ध में विचार है कि 'इसकी भाषा उनके पत्रों की भाषा की अपेक्षा अधिक मुहावरेदार है।'[4]

पिन्कॉट के पत्र : भारतीय हिन्दी-साहित्यकारों में पिन्कॉट का सबसे अधिक पत्राचार भारतेन्दु बाबू हरिचन्द्र से हुआ था। पण्डित श्रीधर पाठक तथा बाबू कात्तिकप्रसाद खत्री से भी उनका पत्राचार हुआ था। खत्रीजी को उन्होंने अपना हस्ताक्षरयुक्त फोटो भेजा

---

१. महाराणी विक्टोरिया, पृ० २

२. हिन्दी-साहित्य का इतिहास, १६वाँ संस्करण, पृ० ४५९

३. महाराणी विक्टोरिया, पृ० १२७

४. हिन्दी-साहित्य का इतिहास, १६वाँ संस्करण, पृ० ४५९

था, जिसका प्रकाशन सन् १९०८ ई० की 'सरस्वती' में हुआ था। पिन्काँट ने बाबू हरिश्चन्द्र को देवनागरी हिन्दी में आठ पत्र लिखे थे, जिनका प्रकाशन उनके निधन के पश्चात् खड्गविलास प्रेस से हुआ था।

उनकी लिखावट मोती के दाने की तरह गोल-गोल, भाषा साफ-सुथरी और अभिव्यक्ति प्रवाहमयी होती थी। जिज्ञासु वृत्ति के कारण वे हिन्दी-भाषा की गहराई तक पहुँचे थे। हिन्दी में उनकी जो रचनाएँ हैं, वे गद्यप्रधान हैं।

बाबू हरिश्चन्द्र को सबसे पहले पिन्काँट ने २० मार्च, १८८३ ई० को पत्र लिखा था। इस पत्र में उन्होंने अपनी साहित्यिक गतिविधि का परिचय दिया है और पत्र के अन्त में उनकी प्रशंसा में एक सोरठा, दो कवित्त और एक दोहा लिखा है। देखिए :

सोरठा

वैशवंश अवतंस, श्रीबाबू हरिचंद जू।
क्षीर नीर कलहंस, टुक उत्तर लिखि देव मोहि॥

कवित्त

विनय हमारी भारतेन्दु हरिचन्द जू सों
नखत कबिन्द सों अनन्द रहिबो करो।

सींचि बसुधा को निज सुखद सुधा के धार
यार उपकारन के भार सहिबो करो॥

दूर करि सारो अन्धकार जगती तल को
सीतल कै सुजस अपार लहिबो करो।

चाहते चकोरन को कोरन कृपा के चाहि,
एबो चहुँ ओरन सों प्रेम कहिबो करो॥

पर उपकार में उदार अवनी में एक
भाखत अनेक यह राजा हरिचन्द हैं।

विभव बड़ाई बपु बसन विलास लखि,
कहत यहाँ के लोग बाबू हरिचन्द हैं॥

चन्द कैसो अमित अनन्दकर आरत को,
कहत कबिन्द यह भारत के चन्द हैं।

कैसे अब देखें को बतावे कहाँ पावें हाय,
कैसे वहाँ आवें हम कोई मतिमन्द हैं॥

दोहा

श्रीयुत सकल कवींद कुल, नुत बाबू हरिचन्द।
भारत हृदय सतार नभ, उदय रहो जनु चन्द॥

पिन्कॉट की काव्य-प्रतिभा बाबू हरिश्चन्द्र के प्रति उनके सात्त्विक स्नेह की मार्मिक अभिव्यक्ति है।

पिन्कॉट हिन्दी-भाषा के सरल रूप के समर्थक थे। वे भारतीय हिन्दी-विद्वानों को हिन्दी के प्रति निष्ठावान् होने तथा उसके सरल रूप को प्रचलित करने के लिए उद्बोधित करते रहते थे। उनकी यह धारणा थी :

"जबतक किसी देश में निज भाषा और अक्षर सरकारी और व्यवहार-सम्बन्धी कामों में नहीं प्रवृत्त होते हैं तबतक उस देश का परम सौभाग्य हो नहीं सकता।"[1]

उन्होंने आगे लिखा है : "मेरी धारणा है कि गद्य के अच्छे आदर्श हिन्दी के लिए काव्य से अधिक लाभदायक सिद्ध होंगे। कोई भी भाषा तबतक उपयोगी अथवा अपने देश के लिए हितकर सिद्ध नहीं होती जबतक कि व्यावहारिक भाषा के अच्छे गद्य-लेखक उत्पन्न न हों, जो उदार और लाभदायक विचारों को सीधी-सादी भाषा द्वारा प्रयोग में लाएँ। कवि साहित्य का आभूषण है, वह भावनाओं का स्पर्श करता है और जीवन की शक्तियों की प्रतिष्ठा बढ़ाता है, परन्तु गद्यकार अपने देश की शक्ति है जो ठोस मानसिक खुराक प्रदान करता है, जिसके कारण देश महान् बनता है। जीवन के साधारण पहलुओं की गद्य में चर्चा ही उर्दू और बँगला के अद्भुत विकास का कारण है और यदि हिन्दी कभी सर्व-मान्य राष्ट्रभाषा बने, तो गद्य-लेखकों के द्वारा ही बन सकती है।"[2]

पिन्कॉट ने गम्भीरता से हिन्दी का हितचिन्तन किया था। वे हिन्दुस्थानी भाषा बिलकुल पसन्द नहीं करते थे। बाबू हरिश्चन्द्र को १ जनवरी, १८८४ ई० के पत्र में उन्होंने स्पष्ट लिखा था :

"राजा शिवप्रसाद बड़ा चतुर है। बीस बरस हुए उसने सोचा कि अँगरेजी साहबों को कैसी-कैसी बातें अच्छी लगती हैं, उन बातों का प्रचलित करना चतुर लोगों का परम धर्म है। इसलिए बड़े चाव से उसने काव्य को और अपनी हिन्दी भाषा का बिना लाज छोड़कर उर्दू भाषा के प्रचलित करने में बहुत उद्योग किया। उसके उपरान्त उसने देखा कि हिन्दी भाषा साल-पर-साल पूज्यतर होती जाती थी, तब उसने उर्दू और हिन्दी के परस्पर मिलाने का उद्योग किया। बहुतेरे अँगरेजी लोग जानते हैं कि उन दो भाषाओं का मिश्रित होना सबसे श्रेष्ठ बात होगी। क्योंकि वैसी संयुक्तता से सारे हिन्दुस्तान के लिए एक ही भाषा निकलेगी। मेरी समझ वैसा बोध मूर्खता की बात है।...यह सच है कि आपकी हिन्दी और हिन्दुस्तान सबसे मनोहर है, इसके बदले राजा शिवप्रसाद को अपना ही हित सबसे भारती बात है।"[3]

हिन्दुस्तानी का इतना तीव्रतम विरोध कोई हिन्दी-प्रेमी ही कर सकता था।

●

---

१. हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृ० ४५९

२. फ्रेडरिक पिन्कॉट : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० ३७-३८

३. पिन्कॉट के पत्र : खड्गविलास प्रेस, पृ० ३०

छठा अध्याय

खड्गविलास प्रेस और हिन्दी-आन्दोलन

बिहार में हिन्दी-आन्दोलन का सर्वेक्षण

मुस्लिम-सल्तनत के पूर्व तक भारत में हिन्दी राज-काज की भाषा थी। सत्ता-परिवर्त्तन के बावजूद कुछ काल तक राजकीय कार्यालयों में माध्यम-भाषा के रूप में हिन्दी बनी रही। हिन्दी की प्रतिष्ठा अकबर के शासन के पच्चीसवें वर्ष तक राजभाषा के रूप में कायम थी। मुस्लिम-अमलदारी में कचहरी की भाषा फारसी बना दी गई। इस देश की जनता के लिए यद्यपि फारसी नई थी, तथापि कचहरियों में इसी का व्यवहार होने लगा। कहा जाता है कि अकबर के शासन के छब्बीसवें वर्ष में राजा टोडरमल के कारण हिन्दी का प्रयोग बन्द कर दिया गया और राज-काज की भाषा के रूप में फारसी जनता पर लाद दी गई।

अँगरेजी सत्ता का स्थापन और मुस्लिम-सल्तनत का अन्त होने पर अँगरेजों को फारसी के माध्यम से राज-काज का काम चलाना रुचिकर नहीं लगा। वे अधिकारियों की कचहरी की माध्यम-भाषा के रूप में अँगरेजी चाहने लगे। इसके प्रचलन के लिए कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स से निवेदन किया गया। कोर्ट को अधिकारियों का यह सुझाव पसन्द नहीं आया। उसने २६ सितम्बर, १८३० ई० के अपने पत्र में उपर्युक्त सुझाव पर नापसन्दगी प्रकट करते हुए अधिकारियों को सूचित किया।[1]

अधिकारियों के लिए भाषा की समस्या जटिल थी। शासन ने इस विषय पर गम्भीरता से विचार किया। उसने महसूस किया कि जनता के व्यवहार की भाषा विदेशी नहीं हो सकती। उसने तय किया कि आपसी पत्राचार की भाषा अँगरेजी और अदालत की क्षेत्रीय होनी चाहिए। इस निर्णय से संयुक्त प्रान्त और बंगाल प्रदेश (बिहार-प्रदेश-सहित) की सरकारों ने अपने अधीनस्थ अधिकारियों को अवगत करा दिया।

बंगाल-सरकार के सचिव ने राजस्व-वोर्ड के सचिव को (पत्र-सं० ६१४, ३० जून, १८३७ ई० को) फारसी के स्थान पर अँगरेजी और अदालत की भाषा के रूप में फारसी के स्थान पर स्थानीय भाषा का प्रयोग करने का आदेश देते हुए लिखा था :

"If the question were solely between retaining the Persian as the language of public business and replacing it by the English, the change would not be Prima Facie decidedly objectionable, and we should willingly

---

१. वही, पृ० ३

rely upon your judgment and superior local knowledge as a security that its advantages and inconveniences would be duly weighted. But if any change be made in the existing practice, it is deserving of great consideration, whether that change out not rather to be the adoption of the vernacular language than of our own, as the language] at least of judicial proceedings.

It is highly important that justice should be administered in a language familiar to the judge, but it is of no less important that it should be administered in a language familiar to the litigan parties, to their Vakeels, and to the people at large; and it is easier for the judge to acquire the language of the people than for the people to acquire the language of the judge. You are indeed partly influenced by a desire to render this last acquirement more common; but the poorer classes, who are the parties concerned in the great majority of the cases which come before our courts, cannot be expected to learn a foreign language, and we, therefore, are of opinion, that at least the proceedings of the courts of justice should be expected from the practice which you propose gradually to introduce, and be conducted in the vernacular language of the particular Zillah, or district, unless upon consideration, you should see good reasons for adhering to the present practice."[1]

"His Lordship is extremely desirous, in accordance with the sentiments of the Honourable the Court of Directors, that the vernacular language of the people should resume its proper place, from which it has been so long banished in the transaction of the business of the country. Only in that part of the correspondence between European officers, which is not directly intended for the information of the people and that the vernacular language should be substituted for it in every other department of the business."[2]

इस आदेश के परिपालन में वैधानिक दिक्कतें थीं। राजस्व-विभाग में फारसी का व्यवहार राजकीय नियम के अनुसार हुआ था। इसलिए इस वैधानिकता को समाप्त करने के लिए वायसराय की व्यवस्थापिका सभा में ४ सितम्बर, १८३७ ई० को विधेयक रखा गया। विधेयक पारित हो गया और २० नवम्बर, १८३७ ई० को बंगाल और बिहार में कार्यान्वित भी हो गया। पारित विधेयक में कहा गया था :

"His lordship in council strongly feels it to be just and reasonable that those judicial and fiscal proceedings on which the dearest interests of the

१. कोर्ट कैरेक्टर्स ऐण्ड प्राइमरी एजुकेशन इन द नार्थ-वेस्ट प्राविन्सेज ऐण्ड अवध, पृ० १
२. वही, पृ० २

Indian people depend, should be conducted in a language which they understand. That this great reform must be gradual, that a considerable time must necessarily elapse before it can be carried into full effect, appears to his Lordship in council to be an additional reasons for commencing it without delay. His Lordship in council is, therefore, disposed to empower the Supreme Executive Government of India, and such subordinate authorities as may be there-unto appointed by the Supreme Government, to substitute the vernacular languages of the country for the Persian in Legal proceedings and in proceedings relating to the revenue."[१]

उक्त विधान के अनुसार बंगाल और उड़ीसा की अदालतों में क्रमशः बँगला और उड़िया में काम शुरू हो गया। बिहार की भाषा हिन्दुस्तानी (उर्दू) मानी गई। ऐसा अँगरेज विद्वानों के अज्ञान के कारण हुआ। फलतः, बिहार की अदालतों में हिन्दी-भाषा और देवनागरी-लिपि के बजाय उर्दू-भाषा और फारसी-लिपि कायम रखी गई। इससे उद्बुद्ध जनता में रोष बढ़ा। लोगों को अदालत में उर्दू में आवेदन-पत्र लिखना पड़ता था। भाषा की कठिनाई सामने थी। हिन्दी-भाषियों के लिए यह दुरूह कार्य हो गया। लगभग चालीस वर्षों तक बिहार की कचहरियों में उर्दू का प्रयोग जारी रहा। उर्दू क्या थी, उसके नाम पर फारसी थी। वस्तुतः उपर्युक्त विधान के लागू होने से बिहार के लोगों को लाभ नहीं हुआ। जनता को अपनी अभिव्यक्ति का कोई माध्यम नहीं मिल रहा था। जनता को अभिव्यक्ति के माध्यम-रूप में उन्नीसवीं सदी के पाँचवें और छठे दशकों में अखबार सुलभ हुआ। लेकिन, वे सभी अखबार उर्दू के थे, इस कारण जनता की आवाज अँगरेज सरकार तक नहीं पहुँच सकती थी। विवशतः लोगों को स्थितिवश खामोश रहना पड़ा।

उन्नीसवीं सदी का सातवाँ दशक बिहार में नवजागरण का काल है। बिहार के पहले हिन्दी-पत्र 'बिहार-बन्धु' का सन् १८७२ ई० में कलकत्ता से मुद्रण-प्रकाशन हुआ। सन् १८७४ ई० से 'बिहार-बन्धु' स्थानान्तरित होकर पटना चला आया। इससे बिहार के हिन्दी-भाषी प्रबुद्ध लोगों को पहली बार अपनी विचाराभिव्यक्ति का माध्यम मिला। इस पत्र के प्रवर्त्तन का लक्ष्य बिहार की अदालतों और विद्यालयों में हिन्दी की प्रतिष्ठा करना था। इस ध्येय को ध्यान में रखकर 'बिहार-बन्धु' उर्दू का प्रबल विरोध करता था।

बिहार की कचहरियों में हिन्दी को मान्यता दिलाने, विद्यालयों में हिन्दी का समावेश कराने तथा हिन्दी के स्वतन्त्र प्रचार-प्रसार के लिए जन-आन्दोलन शुरू हुआ। इस आन्दोलन के नेताओं में गोविन्दचरण, रामदीन सिंह, 'बिहार-बन्धु' के सम्पादक केशवराम भट्ट, अयोध्याप्रसाद खत्री, रामकृष्ण पाण्डेय प्रभृति प्रमुख थे। आन्दोलनकारी

---

१. कोर्ट कैरेक्टर्स ऐण्ड प्राइमरी एजुकेशन इन द नॉर्थ-वेस्ट प्रॉविन्सेज ऐण्ड अवध, पृ० ३

साहित्यिक नेता और हिन्दी के समर्थक थे। इन लोगों ने 'बिहार-बन्धु' के माध्यम से सरकार तक जनवाणी को उद्वेलित किया। सभाएँ कर प्रस्ताव पारित किये गये। आन्दोलन के कारण अँगरेजी सरकार को अपने पूर्ण निर्णय पर फिर सोचना पड़ा।

आन्दोलन-काल में आरा के जिलाधिकारी के पेशकार जंगलीलाल की भूमिका अदालतों में हिन्दी की स्थापना के लिए महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई। अँगरेजी सरकार की यह धारणा थी कि अँगरेजी में अधिक तत्परता के साथ काम किया जा सकता है और उसके बाद फारसी उपयुक्त है। हिन्दी में काम करना उसकी दृष्टि में व्यवहार-संगत नहीं था। तत्कालीन आयुक्त सी० इ० एफ० डब्ल्यू ओल्डम ने पटना-प्रमण्डल के पटना जिले की कचहरियों में काम करनेवाले लिपिकों की, इस तथ्य की जानकारी के लिए, आलेख-परीक्षा का आयोजन किया। उक्त परीक्षा में ७० फारसीदाँ और इक्कीस रोमन-लिपिवाले थे। जंगलीलाल एकमात्र ऐसे व्यक्ति थे, जो हिन्दी-भाषा और देवनागरी-लिपि में आलेखन-परीक्षा देनेवाले थे। श्री ओल्डम ने परीक्षा ली। बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री ने जंगलीप्रसाद को अत्यधिक प्रेरणा दी। इसीका परिणाम था कि उन्होंने द्रुत आलेखन और सुपाठ्य लेखन में देवनागरी-लिपि और हिन्दी-भाषा के सम्मान को बढ़ाया। परीक्षा में वे प्रथम आये। परिणाम-स्वरूप यह धारणा निर्मूल हो गई कि हिन्दी-भाषा और देवनागरी-लिपि के माध्यम से अदालत में काम नहीं हो सकता।

हिन्दी-आन्दोलन का परिणाम यह हुआ कि ११ सितम्बर, १८७५ ई० से जनता को बिहार की कचहरियों में उर्दू के साथ-साथ हिन्दी-भाषा और देवनागरी लिपि में आवेदन-पत्र देने की सुविधा प्राप्त हो गई। कलकत्ता हाईकोर्ट ने ११ सितम्बर, १८७५ ई० को अपनी परिपत्र-संख्या १२ में बिहारप्रदेश की अदालतों को देवनागरी लिपि और हिन्दी-भाषा में काम करने का आदेश दिया।

Use of Nagari in Petitions in Bihar

1. At the instance of His Honour the Lieutenant Governor, the Court is pleased to direct that petitions in the Nagari character be accepted by Civil Courts equally with those in Urdu.

2. Judges of Civil Courts of every grade in the province of Bihar are enjoined to see that their clerks make themselves acquainted as soon as possible with the Nagari character where they do not already know it. The court will expect judges to be firm in resisting prejudices or passive

---

१. कोर्ट कैरेक्टर्स ऐण्ड प्राइमरी एजुकेशन इन द नार्थ-वेस्ट प्राँविन्सेज ऐण्ड अवध, पृ० ४४

opposition in the matter, and it is requested that the progress made be specially reported on in the next Annual Report.[1]

—W. M. SOUTTAR
Registrar

इस आदेश पर कचहरियों में हिन्दी का प्रचलन शुरू हुआ। हिन्दी-आन्दोलन के फलस्वरूप सरकार ने ८ अक्टूबर, १८७३ ई०, २ अप्रैल, १८७४ ई०; २० मई, १८७५ ई० और ९ जुलाई, १८७५ ई० को देवनागरी लिपि में काम करने के लिए अधिकारियों को आदेश दिये। लेकिन सभी आदेश व्यर्थ सिद्ध हुए। सरकारी कर्मचारी व्यवहारतः नागरी के प्रयोग में शिथिलता बरतते रहे। इससे एक ओर जहाँ सरकार की मंशा जहाँ-की-तहाँ रह गई, वहीं जनता को व्यावहारिक परेशानी होने लगी। फलतः सरकार जरा कठोरता से पेश आई। बिहार की पुलिस के डी० आई० जी० ने अपनी परिपत्र-संख्या १२०६ (६ सितम्बर, १८७९ ई०) और पटना-प्रमण्डल के आयुक्त ने अपनी परिपत्र-संख्या ८१ जे० (१२ मार्च, १८८० ई०) में देवनागरी या कैथी के प्रयोग के लिए आदेश दिया था। परिपत्र में कहा गया था :

He accordingly directs that these characters (Kaithi & Nagari) shall be exclusively used from the 1st January, 1881 throughout the Patna Division, and in such districts of the Bhagalpur Division as may hereafter be notified; and that the issue from the courts or the reception by the courts of any document in Persian character, except as exhibits, shall be absolutely forbidden. Police Officers and Amlah are hereby warned that if they cannot read write the Nagari character by the above date, they will have to make room for those who can.[2]

इस प्रकार हिन्दी-आन्दोलन से बिहार की कचहरियों में हिन्दी की प्रतिष्ठा हो सकी। नागरी के साथ कैथी लिपि का भी प्रचलन कचहरियों में हो सका। कैथी वस्तुतः बिहार के पटना और भागलपुर प्रमण्डलों के ग्रामीण क्षेत्रों की लिपि थी। कैथी लिपि के प्रचलन से नागरी का प्रचलन हुआ; क्योंकि जनता की भाषा हिन्दी थी। अपनी बात वह कैथी लिपि में सुगमता से लिख सकती थी। इससे हिन्दी का प्रसार बन्द नहीं हुआ, बल्कि हिन्दी भाषा को कचहरी में प्रतिष्ठित करने में सुविधा मिली।

बिहार के किसी भी प्रेस ने कैथी टाईप नहीं ढाला था और न कैथी में पुस्तकें छापी जाती थीं। अतः अदालतों में कैथी के प्रचलन के बाद अदालती कागजों को कैथी लिपि में छापने की आवश्यकता पड़ी। इस भार को खड्गविलास प्रेस ने अपने ऊपर लिया। इस प्रेस के स्वामी रामदीन सिंह को पटना के तत्कालीन संयुक्त न्यायाधिकारी जी० ए० ग्रियर्सन का सद्भावपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ। ग्रियर्सन महोदय ने सरकार की सहायता से

१. कोर्ट कैरैक्टर्स ऐण्ड प्राइमरी एडुकेशन इन अपर इण्डिया, एपेण्डिक्स, पृ० ५४
२. वही, पृ० ५६

कलकत्ता में कैथी टाईप ढलवाये। उन्होंने 'कैथी कैरेक्टर' नामक पुस्तक भी लिखी। इस पुस्तक में कैथी लिपि का इतिहास और परिचय दिया गया।

बंगाल-सरकार के सचिव श्री रेनॉल्ड ने फारसी के स्थान पर कैथी या नागरी को प्रचलित करने के लिए जिला-अधिकारियों को १३ अप्रैल, १८८० ई० को निम्नलिखित निर्देश जारी किया :

'The subject' has been under discussion for the last seven years, but the orders issued by Government appear to have been practically ignored. The orders are of the 2nd April 1874 and 9th July 1875, which reiterated previous orders for the use of Hindi and the Nagari Character in the courts and offices of Patna, Bhagalpur and Chotanagpore Divisions directed that all processes, notifications and proclamations should be made in Hindi; that official records should be kept in Hindi; that petitions should be received at the option of the presenters in the Hindi or Urdu Character; and that a knowledge of the Hindi Character should be insisted on in the case of Police and ministerial officers.[1]

अदालत में नागरी और खड्गविलास प्रेस की भूमिका :

बिहार की अदालत में हिन्दी की प्रतिष्ठा के सन्दर्भ में उपर्युक्त ऐतिहासिक सर्वेक्षण से यह स्पष्ट हो गया कि लगभग बीस वर्षों के अथक प्रयास के बाद वास्तविक रूप में सन् १८८० ई० में अदालतों में नागरी प्रचलित हुई। बिहार के जिन तीन प्रमण्डलों में नागरी का आदेश दिया गया, वे हिन्दी-भाषी क्षेत्र रहे हैं, यद्यपि उन क्षेत्रों की मातृभाषा मगही, मैथिली और भोजपुरी रही है। इनमें मगही और भोजपुरी की लिपि कैथी है। इन क्षेत्रों की सामान्य जनता की लिपि भी कैथी रही है। वे कैथी लिपि में हिन्दी लिखते थे। अतः अदालतों में नागरी और कैथी दोनों के प्रचलन की सुविधा दी गई, जिससे नागरी बलवती हुई। यह सोचना सर्वथा भ्रान्तिमूलक है कि कैथी के प्रचलन से नागरी को क्षति पहुँची।

कैथी के प्रयोग के फलस्वरूप अदालतों में पर्चे, सरकारी रजिस्टर और जनता से सीधे सम्पर्क से सम्बद्ध कागजों के प्रकाशन का कार्य खड्गविलास प्रेस ने किया। कृषि-कर की रसीद कैथी में छापी गई। इससे सामान्य जनता के माध्यम से हिन्दी कचहरी में पहुँच सकी। यह प्रेस बिहार का पहला प्रेस था, जिसने कैथी में पुस्तक छापी। अदालत में हिन्दी के प्रचलन में इस प्रेस का सर्वाधिक व्यावहारिक योगदान था।

बिहार के विद्यालयों में हिन्दी का प्रचलन (सन् १८७० ई०) :

बिहार-प्रदेश में सर्वप्रथम सन् १८६० ई० में राष्ट्रभाषा-आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। उस आन्दोलन का नारा था : स्कूलों में हिन्दी का स्थान हो, कचहरियों में हिन्दी का प्रवेश हो। उस आन्दोलन के फलस्वरूप बिहार के स्कूलों में सन् १८७० ई० में हिन्दी का प्रवेश हुआ।

१: ए फ्यू नोट्स ऑन हिन्दी : राधिकाप्रसन्न मुखर्जी, पृ० १; सन् १८८० ई०

बिहार-प्रदेश के स्कूलों के शिक्षाधिकारी ए० डब्ल्यू० फैलन हिन्दी-प्रेमी थे। उन्होंने हिन्दी-प्रचलन को स्कूलों में सफल बनाने के लिए पाठ्य-पुस्तकें लिखने की ओर ध्यान दिया। उस समय हिन्दी में पाठ्य-पुस्तकें नगण्य थीं। पाठ्य-पुस्तकों के लेखकों का भी अभाव था। इसलिए उन्होंने अजमेर से हिन्दी-अध्यापक लाला सूरजमल को बुलाया। उनकी नियुक्ति पटना नॉर्मल स्कूल में की गई। उनके रिश्तेदार मुन्शी राधालाल माथुर को बुलाया गया। उन्हें गया के नॉर्मल स्कूल में नियुक्त किया गया। इन लोगों के साथ ही अनेक हिन्दी-अध्यापकों की नियुक्ति की गई और उन्हें पाठ्य-पुस्तकें लिखने के लिए प्रेरित किया गया, किन्तु बिहार में उस समय प्रेसों का अभाव था। प्रारम्भ में पाठ्य-पुस्तक के लेखन में उत्साह का भी अभाव था। फैलन साहब के स्तुत्य प्रयास के बावजूद बिहार के स्कूलों में हिन्दी के प्रचलन में उत्साहवर्द्धक प्रयास करने पर भी सफलता नहीं मिली।

उन दिनों संयुक्तप्रान्त के शिक्षा-विभाग में राजा शिवप्रसाद का प्रभाव था। वे उस विभाग के हिन्दी-अधिकारी थे। इसलिए उन्होंने हिन्दी की पाठ्य-पुस्तकें लिखीं। वे ही पाठ्य-पुस्तकें हिन्दी-प्रदेशों के प्रायः सभी स्कूलों में प्रचलित थीं। राजा साहब की ऐसी कृतियों में विद्यांकुर, आलसियों को कोड़ा, भूगोल-हस्तामलक, वीरसिंह-वृत्तान्त और उनका गुटका प्रमुख था। राजा साहब की उर्दू-फारसी के प्रति अधिक रुझान थी। इस कारण इन पुस्तकों की लिपि मात्र देवनागरी थी। भाषा उर्दू-फारसी के अत्यन्त समीप कही जायगी। दूसरी बात, उनकी सभी पुस्तकें अँगरेजी की किसी-न-किसी पुस्तक का अनुवाद थीं। इस कारण उनकी एक भी पाठ्य-पुस्तक मौलिक पाठ्य-पुस्तक नहीं थी। बिहार-प्रदेश के स्कूलों में वे ही पुस्तकें चलती थीं। इससे हिन्दी के प्रचलन में सुधार नहीं हुआ। हिन्दी-प्रेमियों की आकांक्षाएँ पूरी नहीं हुईं। सन् १८७६ ई० तक इसी ढंग से हिन्दी का प्रचलन स्कूलों में होता रहा।

सन् १८७७ ई० में भूदेव मुखर्जी बिहार के स्कूलों के इन्सपेक्टर होकर पटना आये। वे प्रबल हिन्दी-प्रेमी थे। उन्होंने बिहार के स्कूलों में हिन्दी की दशा पर चिन्ता व्यक्त की। उन्होंने हिन्दी-विरोधियों से कहा :

"बिहारी हिन्दू बालक अपनी मातृभाषा हिन्दी, धर्म की भाषा संस्कृत और राज की भाषा अँगरेजी सीखें और मुसलमानों के लड़के प्रचलित भाषा हिन्दी, धर्म की भाषा अरबी और राज की भाषा अँगरेजी सीखें, यही उचित है।"[१] उनके इस विचार से बिहार के हिन्दी-प्रेमियों में उत्साह की लहर दौड़ गई। उन्होंने हिन्दी के सन्दर्भ में जो विचार व्यक्त किये थे, वे हिन्दी की यथार्थ स्थिति के अनुकूल थे।

अतः हिन्दी-भाषा के प्रति भूदेव बाबू का दृष्टिकोण उदार और सुस्पष्ट था। इसी दृष्टि से वे बिहार के स्कूलों में हिन्दी के प्रचलन के लिए सक्रिय थे। उन्होंने इस दिशा में कार्य करने के लिए पटना में ब्रांचबोधोदय प्रेस स्थापित किया। कहा जाता है कि वह प्रेस

---

१. जयन्ती-स्मारक ग्रन्थ, पृ० २५९

भूदेव बाबू की निजी सम्पत्ति था। उन्होंने पाठ्य-पुस्तक के मुद्रण के लिए प्रेस की स्थापना की थी। ज्ञातव्य है कि बिहार में इसके पूर्व केवल 'बिहार-बन्धु' प्रेस था। वहाँ से फैलन साहब के कार्यकाल में हिन्दी की दो-तीन पाठ्य-पुस्तकें छपी थीं। भूदेव बाबू के प्रेस से हिन्दी की पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशन की समस्या का समाधान अवश्य हुआ, किन्तु यथेष्ट नहीं। ऐसी स्थिति में खड्गविलास प्रेस की स्थापना और रामदीन सिंह का सहयोग बिहार में हिन्दी के प्रचलन की दिशा में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ। हिन्दी-आन्दोलन की उपलब्धि का मूर्त्तरूप हिन्दी पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण और कचहरी के लिए हिन्दी-भाषा और देवनागरी-लिपि में उसके पत्र-प्रपत्रों के प्रकाशन के रूप में खड्गविलास प्रेस का अवदान स्मरणीय है।

हिन्दी, भूदेव मुखोपाध्याय और खड्गविलास प्रेस :

सन् १८३७ ई० के सरकारी निर्णय के बाद बिहार की जनता शिक्षा और कचहरी के भाषा-माध्यम के रूप में हिन्दी की आवश्यकता महसूस करने लगी थी। लेकिन सन् १८६० ई० तक इस दिशा में प्रगति नहीं हुई। केवल बिहार की हिन्दी-भाषी जनता की आँखों के आँसू पोंछने के लिए कैथी-लिपि का प्रयोग शुरू करा दिया गया, लेकिन इससे जनता को कोई लाभ नहीं हुआ। सौभाग्य की बात यह थी कि सन् १८७७ ई० में बिहार के स्कूलों का निरीक्षक होकर भूदेव मुखोपाध्याय का पटना आगमन हुआ।

भूदेव मुखोपाध्याय और खड्गविलास प्रेस के नाम से हमारे मानस-पटल पर जो चित्र अंकित होते हैं, वे हिन्दी के ही हैं। दोनों नाम हिन्दी के पर्यायवाची हैं। भूदेव बाबू बंगाली थे, लेकिन उन्होंने सरकारी सेवा में रहकर भी हिन्दी की जो सेवा की है, वह स्वतन्त्र भारत के किसी अन्य शिक्षाधिकारी ने कदाचित् की हो। सन् १८७७ ई० में जब वे शिक्षा-निरीक्षक होकर पटना आये तब उनपर बिहार, बंगाल और उड़ीसा के इक्कीस जिलों के शिक्षा-संचालन का भार रखा गया था। वे हिन्दी के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने सरकार का ध्यान हिन्दी-पाठ्य-पुस्तकों के अभाव की ओर आकृष्ट किया था। उन्होंने लिखा था :

"हिन्दी एक जीवित भाषा है। इसकी मृत्यु कभी हो ही नहीं सकती। इसका भार हमपर छोड़ दिया जाय। हम हिन्दी के प्रचार का पूरा प्रबन्ध कर देंगे और प्रांजल भाषा में पाठ्य-पुस्तकें तैयार करा लेंगे।"[1]

हिन्दी की महत्ता और इस देश की सम्पर्क-भाषा के रूप में इसकी मान्यता की कल्पना सन् १८७४ ई० में की जा चुकी थी। बँगला के 'सुलभ समाचार' में बँगला के प्रसिद्ध लेखक ब्रह्मानन्द केशवचन्द्र सेन ने लिखा था :

"यदि भाषा एक न होने पर भारतवर्ष में एकता स्थापित नहीं होती तो क्या उपाय है? सारे भारतवर्ष में एक ही भाषा का प्रयोग करना एकमात्र उपाय है। इस समय जितनी भाषाएँ भारतवर्ष में प्रचलित हैं उनमें हिन्दी भाषा प्रायः सर्वत्र प्रचलित है। इसी

---

१. जयन्ती-स्मारक ग्रन्थ, पृ० २५९

हिन्दी भाषा को यदि भारत की एकमात्र भाषा बनाया जाय तो एकता अनायास सम्पन्न हो सकती है।"[1]

इस परिकल्पना को भूदेव बाबू ने बिहार में स्कूल-निरीक्षक के पद पर आने के बाद साकार किया। उन्होंने बिहार की कचहरियों में कैथी के स्थान पर हिन्दी का प्रयोग शुरू कराया। उनके हिन्दी-प्रेम पर मुग्ध होकर बिहार के सुशील कवि ने लिखा था :

धन्य धन्य गवरमेंट। परजा सुखदायी।
जामिनी को दूर करी। नागरी चलाई ॥१॥

भुवनदेव करि पुकार। लाट निकट जाई।
परजा दुख दूर करहु। जामिनी दुराई ॥२॥

नानाविधि जाल होत। जामनी में राई।
परजा मन हरष होत। विद्या निज पाई ॥३॥

धन्य बुद्धि धनि विचार। धनि अन्तर भाई।
करि नियाव हिन्द बीच। हिन्दुई चलाई ॥४॥

परजा नित सुजस गाय। अम्बिका मनाई।
जब लों चन्द्र सूर्य रहें। राज रहे नाई ॥५॥[2]

भूदेव बाबू ने समकालीन गवर्नर ईडेन साहब को हिन्दी-भाषियों की दुर्दशा समझाते हुए कहा था :

"देखिए, बंगाली हिन्दू बँगला, अँगरेजी और संस्कृत पढ़ रहा है और बंगाली मुसलमान बँगला, अँगरेजी और अरबी पढ़ रहा है। इस तरह प्रत्येक व्यक्ति को ही मातृभाषा, राजभाषा, और धर्म की भाषा पढ़ना उचित है। लेकिन बिहार के सारे बच्चों को ही उर्दू और फारसी सीखने को विवश किया जाता है। उनके लिए यह मुसीबत क्यों ? पहले के राजा मुसलमानों ने हिन्दी को इस प्रकार विकृत किया था और फारस से एक भाषा आयात कर लाये थे। इसलिए उस हिसाब से इंगलैण्ड में सैक्सन विजेताओं की जर्मन भाषा आज भी चलाये चलना चाहिए था और इस देश में किसी दूर भविष्य में (संसार में कुछ भी चिरस्थायी नहीं) अँगरेजी राज्य लुप्त हो जाने के बाद भी बिहारी बालक को हिन्दी, उर्दू, संस्कृत, फारसी और अन्य कोई राजभाषा के अतिरिक्त अँगरेजी भी पढ़नी पड़ेगी। बिहार और उससे पश्चिम के इलाके के हिन्दुओं के लिए ऐसी विडम्बना है। क्या कभी किसी अन्य देश में ऐसा होते सुना है आपने ?"

इसपर ईडेन साहब ने हँसकर कहा था—"हाँ, बेशक अनुचित है। किसी भी बालक के लिए तीन भाषाओं का दबाव भी काफी है।"[3]

---

१. सुलभ समाचार, ५ चैत्र, १२८० वंगाब्द (सन् १८७४ ई०)
२. सेवन ग्रामर्स, भोजपुरी लैंग्वेज : जी० ए० ग्रियर्सन
३. प्रबन्ध-संग्रह, पृ० २०

भूदेव बाबू हिन्दी में पाठ्य-पुस्तक लिखवाने में तत्पर हुए। इस दिशा में रामदीन सिंह का सक्रिय सहयोग सुलभ हुआ। खड्गविलास प्रेस ने हिन्दी में पाठ्य-पुस्तकें तैयार करने में भरपूर सहयोग किया। खड्गविलास प्रेस की पाठ्य-पुस्तकों को स्वीकृति प्रदान की गई। इस प्रकार भूदेव बाबू का इस संस्था से बड़ा घनिष्ठ लगाव था। भूदेव बाबू की हिन्दी-सेवा का उल्लेख करते हुए खड्गविलास प्रेस के साहित्यकार पुत्तनलाल सुशील कवि ने लिखा था :

श्री बाबू भूदेव मुकरजी, जाहिर सकल जहाना।
बंग बिहार उड़ीसा अजहूँ करत जासु गुनगाना॥

जिन इसकूल इनिसपेक्टर औ डैरेक्टर हूँ होई।
सुस्त अयोग्य भारतिन नामहि काम प्रगटि निज धोई॥

हिन्दी संसकिरत की उन्नति बहु प्रकार जिन कीनी।
डेढ़ लाख मुद्रा यहि कारण खास कोष ते दीनी॥

जे 'शिक्षा विधि प्रस्ताव' अरु 'इतिहासक उपन्यासा'।
'सार पुरावृत' ग्रीस, रोम त्यों इंगलैंड इतिहासा॥

'पुष्पांजुलि' विज्ञान प्राकृतिक विविध प्रबन्ध सुहाये।
'परिवारिक सामाजिक' औ 'आचार प्रबन्ध' बनाये॥

औरहु स्वप्नलब्ध भारत को इतिहासादि घनेरे।
पुस्तक विरचित कीन भारत में भले काज बहुतेरे॥

भूदेव बाबू हिन्दी के विकास के लिए स्वयं तत्पर थे और खड्गविलास प्रेस के हिन्दी-कार्य को प्राथमिकता देकर उन्होंने हिन्दी के उत्कर्ष में सद्भावपूर्ण योग दिया।

पाठ्यपुस्तक-निर्माण में खड्गविलास प्रेस का अवदान :

उपर्युक्त सर्वेक्षण से यह स्पष्ट है कि बिहार के विद्यालयों में जन-आन्दोलन से हिन्दी का प्रचार सैद्धान्तिक रूप में हो गया। किन्तु, हिन्दी-पाठ्य-पुस्तकें सुलभ नहीं थीं। इस दिशा में फैलन साहब का प्रयास सराहनीय था। उन्होंने हिन्दी-पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण में तत्परता दिखाई। इसमें सबसे बड़ी भूमिका खड्गविलास प्रेस की थी, जिसने बड़े पैमाने पर हिन्दी में विविध विषयों की पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण और प्रकाशन कर न केवल बिहार-प्रदेश के, अपितु बंगाल के विद्यालयों में भी प्रचलित कराईं। इस प्रकार इस संस्था ने हिन्दी-आन्दोलन के सत्प्रयासों को मूर्त्तरूप दिया।

खड्गविलास प्रेस के संस्थापक बाबू रामदीन सिंह स्वयं अध्यापक थे। उन्हें अपने अध्यापन-काल में हिन्दी-पुस्तकों का अभाव खटका था। उन्होंने सर्वप्रथम 'गणित-बत्तीसी' की रचना की। गणित-सूत्रों को आसानी से समझने के लिए पद्य में इसकी रचना की गई। उन्होंने अध्यापकी छोड़कर प्रेस चलाया और पाठ्यपुस्तक-निर्माण में विशेष रूप से यत्नशील हुए।

उन्नीसवीं सदी के आठवें दशक से बीसवीं सदी के तीसरे दशक तक बिहार के विद्यालयों में हिन्दी-पाठ्य-पुस्तकों के विषय में खड्गविलास प्रेस का एकाधिपत्य हो गया था। उसने विद्यालयों को हिन्दीमय बना दिया। नगर से ग्राम तक हिन्दी से जनता उसी तरह परिचित हो गई थी जिस तरह आधुनिक काल में हिन्दी का प्रचलन इस देश के विभिन्न भागों में है। उसी के सत्प्रयास और अध्यवसाय का परिणाम है कि आज हिन्दी बिहार-प्रदेश के कोने-कोने में प्रचलित है।

बिहार में हिन्दी को जीवन-दान करने में जिन मनीषियों का योग रहा है, उनमें भूदेव मुखोपाध्याय, जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन, मुन्शी राधालाल माथुर और रामदीन सिंह प्रमुख थे। उन्होंने अपनी जो रिपोर्ट सरकार को दी उससे उनका प्रगाढ़ हिन्दी-प्रेम प्रकट होता है। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में कहा था :

"यहाँ कचहरी की भाषा फारसी का मुँह जोहती है और संस्कृत का तो यहाँ से ऐसा बहिष्कार हुआ कि ऐसा बँगला से भी नहीं हुआ। हिन्दी है जीवित; क्योंकि इसकी मृत्यु हो ही नहीं सकती और हम इसके प्रचार की चेष्टा कर रहे हैं।"[1]

ऐसे हिन्दी-अनुरागी अधिकारी का सहयोग बाबू रामदीन सिंह को मिला। उन्होंने बाबू साहब को पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण के लिए प्रोत्साहित किया और उसके प्रचलन में तत्परता दिखाई। पुस्तकों के प्रचलन में जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन का सहयोग भी हिन्दी के लिए सुखद था। उन्होंने इसके लिए अपने प्रशासनिक अधिकार का उपयोग किया था। मुन्शी राधालाल माथुर ऐसे हिन्दी-प्रेमी थे, जिन्हें राजस्थान से फैलन साहब ने पटना बुलाया था और उन्हें सरकारी स्कूल में हिन्दी-संस्कृत का अध्यापक नियुक्त कराया था। मुन्शीजी की सबसे बड़ी भूमिका पाठ्य-पुस्तकों का स्वयं लेखन और दूसरे अध्यापकों से लिखवाने की रही है।

खड्गविलास प्रेस की पाठ्य-पुस्तकें (गणित) :

गणित नीरस विषय है। गणित के सूत्रों को समझाने में बौद्धिक व्यायाम करना पड़ता है। इसलिए सामान्य विद्यार्थी ऐसे नीरस विषय से कतराता है। बिहार के स्कूलों में शिक्षा का माध्यम हिन्दी होने पर हिन्दी में गणित की आवश्यकता हुई। खड्गविलास प्रेस ने इस ओर ध्यान देकर पाठ्य-पुस्तकों का भी प्रणयन कराया। इस संस्था की गणित की पाठ्य-पुस्तकें पूरे बिहार में प्रचलित थीं। साथ ही इन गणितीय पाठ्य-पुस्तकों ने एक स्तर स्थापित किया। खड्गविलास प्रेस की गणित-पाठ्य-पुस्तकों के लेखकों में रामदीन सिंह, साहबप्रसाद सिंह, लक्ष्मीशंकर नागर, उमानाथ मिश्र, रामगूदर सहाय, कालिकाप्रसाद सिंह, गोकर्ण सिंह और हरिऔधजी के नाम उल्लेखनीय हैं।

साहबप्रसाद सिंह की कृतियों में 'गणित-बत्तीसी' (सन् १८७९ ई०), 'गुरु-गणित-शतक' (सन् १८८२ ई०) और 'गणित बत्तीसी' (चार भाग) मुख्य हैं। 'गणित-बत्तीसी, बड़ी रचना है। इसमें गणित के सूत्रों को पद्यबद्ध किया गया है, जिससे कठिन सूत्रों को याद रखने में

---

१. बिहार की साहित्यिक प्रगति, पृ० ६५

सुविधा होती है। उन सूत्रों के आधार पर गणित की कठिन-से-कठिन गुत्थियों को आसानी से सुलझाया जा सकता है। उदाहरणस्वरूप एक सूत्र इस प्रकार है, जिसमें किसी वस्तु के एक मन के दाम के आधार पर एक सेर की कीमत निकालने का सूत्र बताया गया है :

जै रुपये को एक मन, करो अष्टगुण ताहि।
सोई दाम प्रमाण है, सेर भरे पर चाहि॥

'गणित-बत्तीसी' का बाद में विस्तार कर उसे चार भागों में कर दिया गया। यह पुस्तक कैथी और देवनागरी दोनों लिपियों में छापी गयी थी।

'गुरु गणित-शतक' दो भागों में प्रकाशित हुआ। इसमें देशी हिसाब को, जो दैनिक जीवन में उपयोगी है, सूत्रबद्ध और कहीं गद्य में सूत्रों का निरूपण किया गया है।

पण्डित लक्ष्मीशंकर नागर ने **'गणित-कौमुदी'** (सन् १८८४ ई०) की रचना की थी। इनमें गणित-सम्बन्धी प्रारम्भिक ज्ञान की बातें हैं और देशी हिसाब को सरल विधि से हल करने के सूत्र प्रस्तुत किये गये हैं।

पण्डित उमानाथ मिश्र कर्मकाण्डी ज्योतिर्विद् और गणितज्ञ थे। उन्होंने गणित-सम्बन्धी अनेक पुस्तकों की रचना की, जो बिहार के स्कूलों में पाठ्य-पुस्तक के रूप में प्रचलित थीं। उन्होंने देशी हिसाब चार भागों में लिखा। पहले भाग में गणित-सम्बन्धी ज्ञान की बातों और सूत्रों की जानकारी दी गयी है। इस भाग में देशी और अँगरेजी — दोनों प्रकार के गणित की जानकारी दी गई है। दूसरे भाग में देशी गणित पर विस्तार के साथ विचार किया गया है। तीसरे और चौथे भाग में क्षेत्रनाप-विद्या अर्थात् खेतों का क्षेत्रफल, उनकी पैमाइश, वर्ग, आयत और रेखागणित का विवेचन है। इस पुस्तक का वैशिष्ट्य यह है कि गणित के गुत्थियों के सुलझाव के लिए सरल सूत्रों के निर्देशन किये गये हैं। इससे सामान्य छात्र भी गणित समझ सकता है। यह पुस्तक बहुत लोकप्रिय हुई थी।

रामदीन सिंह स्वयं अध्यापक रह चुके थे, इसलिए वे स्कूल और विद्यार्थियों की समस्याओं से सुपरिचित थे। उन्होंने साहित्य की मौलिक कृतियों के साथ ही पाठ्य-पुस्तकों का लेखन-संकलन किया। उन्होंने गणित की मौलिक पुस्तक 'क्षेत्रतत्त्व' (सन् १८८१ ई०) की रचना की। यह पुस्तक रेखागणित की है। इसमें प्रश्न हल करने के उदाहरण और अभ्यास के लिए प्रश्नावली दी गई है।

पण्डित प्रेमन पाण्डेय ने रेखागणित, पण्डित 'अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने अंकगणित और गोकर्ण सिंह ने अपर प्राइमरी स्कूल और मिडिल स्कूल के लिए गणित-विषयक पुस्तकों की रचना की थी। इस प्रकार इस प्रेस ने हिन्दी में गणित-पुस्तकों की रचना और संकलन की विधा को परिपुष्ट किया और हिन्दी-भाण्डार को अलंकृत किया।

समाज-विज्ञान :

स्कूली छात्रों के लिए साहित्य और गणित की भाँति हिन्दी में इतिहास, भूगोल और विज्ञान की पुस्तकों की नितान्त आवश्यकता थी। इतिहास की प्रामाणिक पुस्तक दीनदयाल

सिंह-कृत 'भारतवर्ष का इतिहास' उल्लेखनीय है। भूगोल की पुस्तकों में मुन्शी रामप्रकाश लाल-कृत 'भूतत्त्व-प्रदीप' (सन् १८८६ ई०) और राय रामप्रसाद सिन्हा-कृत 'प्राकृतिक भूगोल-दीपिका' (सन् १८९० ई०) महत्त्वपूर्ण और अपने विषय की मौलिक कृतियाँ थीं। तबतक हिन्दी में ऐसी अच्छी पुस्तक नहीं आई थी। अतः इन पुस्तकों का हिन्दी-पाठ्य-पुस्तक-जगत् में विशेष स्थान है।

'भूतत्त्व-प्रदीप' में पृथ्वी की संरचना, वायु, बादल, कुहासा, वर्षा, समुद्र, नदी, झील और भूकम्प का भूतत्त्वीय विवेचन किया गया है। भाषा सरल और सुबोध है, जो विद्यार्थियों के लिए सहज ग्राह्य है।

'प्राकृतिक भूगोल-दीपिका' में पृथ्वी और उससे सम्बद्ध विषयों पर विस्तार के साथ विवेचन किया गया है। उस युग में इतनी गम्भीरता और सुबोध ढंग से भूगोल का परिचय कराने का प्रयास प्रशंसनीय है।

दीनदयाल सिंह-कृत 'भूगोल-संग्रह' (सन् १८९० ई०) भी भूगोल की अच्छी पाठ्य-पुस्तक है। इसमें छोटे दर्जे के बालकों के लिए भूगोल-सम्बन्धी जानकारी देनेवाली बातें हैं।

प्रतापनारायण मिश्र-कृत 'सूबे बंगाल का भूगोल' (सन् १८९४ ई०) बँगला से हिन्दी में अनूदित पुस्तक है। बिहार के विद्यालयों में यह पाठ्य-पुस्तक के रूप में स्वीकृत थी।

स्त्री-शिक्षा :

नारी-जागरण का आरम्भ उन्नीसवीं सदी में हो चुका था। आधुनिकता के साथ नारी-शिक्षा का आगमन हुआ। खड्गविलास प्रेस की स्थापना के पूर्व भारतेन्दु द्वारा सम्पादित मासिक पत्रिका 'बाला-बोधिनी' (सन् १८७४ ई०) के प्रकाशन द्वारा भारतीय समाज में नारी-जागरण को बल मिला। इस संस्था ने नारी-शिक्षा के लिए अनेक पुस्तकों की रचना और प्रकाशन किया।

साहबप्रसाद सिंह ने स्त्री-शिक्षा और एतद्विषयक कई पुस्तकें लिखीं। 'स्त्री-शिक्षा' (दो भागों में) और 'सुता-प्रबोध' (सन् १८८७ ई०) उल्लेखनीय हैं। स्त्री-शिक्षा में 'बाला-बोधिनी' के लेखों का संग्रह है, जिसमें स्त्री-शिक्षा, पतिव्रता सुलोचना, सावित्री-चरित जैसी चरित्र-निर्माण की कथाएँ दी गई हैं। साथ ही इन पुस्तकों में घरेलू काम-काज की बातों, बच्चों की देखभाल और पाकशास्त्र से भी परिचित कराया गया है। कुल मिलाकर इन पुस्तकों में भारतीय नारी को आधुनिक और आदर्श नारी बनने की बातें कही गई हैं। चन्द्रशेखर ओझा-कृत 'स्त्री-कर्त्तव्य' (चौथी बार सन् १९३६ ई०) भी स्त्री-शिक्षा-सम्बन्धी कृति है।

बालकों का चरित्र-निर्माण :

पाठशालाओं के लिए पाठ्य-पुस्तकों का हिन्दी में निर्माण कर इस संस्था ने हिन्दी की सेवा की। साथ ही बालकों के चरित्र-निर्माण के लिए हिन्दी में उपदेशात्मक और ज्ञान-वर्द्धक पुस्तकों की रचना की।

इस दृष्टि से संस्कृत की सुख्यात पुस्तक 'हितोपदेश' का हिन्दी में अनुवाद प्रस्तुत किया गया। स्वतन्त्र रूप में हिन्दी की उपदेशात्मक कहानियों का संकलन किया गया। इस दिशा में रामगरीब चौबे की 'अंगहारगीत' (सन् १९०४ ई०) उल्लेखनीय है। इस कविता-पुस्तक में ज्ञान और चरित्र-निर्माण की वातें सचित्र रूप से निरूपित की गई हैं।

प्रातः उठना प्रत्येक बालक के लिए आवश्यक है। इससे स्वास्थ्य ठीक रहता है। स्फूर्त्ति आती है। विद्या-अध्ययन में लाभ होता है। सुबह उठकर भगवान् का स्मरण करना चाहिए। इससे जीवनी-शक्ति का उदय होता है :

उठिके प्रात जपो हरि नाम,
सुखी रहो तुम आठो याम।
वह ईश्वर कर्त्ता तुमरो है,
रखवाला तुमरो हमरो है॥

सूर्य जिधर से उगत निहारो,
उसको पूरब दिशा पुकारो।
पूरब दिशि मुँह करके यारो,
खड़े होकर सूरज निहारो॥

तुम जिस ओर पीठ हो करते,
सब उसको पश्चिम हैं कहते।
बायाँ हाथ पड़े जिस ओर,
उत्तर दिशा जानो तिस ओर॥

दहिना हाथ ओर हो दक्खन,
मुख्य दिशा ये चार सुलक्खन॥

इसी भाँति 'गुरुभक्ति' में वताया गया है :

जो तुमको विद्या सिखलावैं,
मूरखता हर लेते हैं।
उत्तम ज्ञान सिखावन देते,
बुद्धिमान कर देते हैं॥

इनकी पूरन कृपा पायके,
नर पण्डित बन जाते हैं।
ऐसे गुरु की सेवा करके,
सबै परम सुख पाते हैं॥

इस प्रकार मानव-जीवन के विकास की विभिन्न दिशाओं के ज्ञान को संकलित कर हिन्दी में सामान्य जन तक पहुँचाकर भारतीय समाज को प्रबुद्ध करने में खड्गविलास प्रेस का प्रयास प्रशंसनीय था।

खड्गविलास प्रेस की पाठ्य-पुस्तकें और उनके लेखक :

हमने पहले बताया है कि बिहार के स्कूलों में हिन्दी की दयनीय स्थिति को देख उसके सम्बन्ध में वहाँ के शिक्षा-विभाग के निदेशक भूदेव मुखर्जी ने सरकार को सूचित किया था कि हिन्दी के विकास के लिए अधिक गम्भीरता से कार्य करना होगा। भूदेव बाबू की रिपोर्ट से सरकार सहमत थी। हिन्दी के विकास के लिए सरकार सहयोग देने के लिए तैयार थी। किन्तु, हिन्दी के लिए कार्य करना हिन्दी-भाषियों के ऊपर निर्भर करता था। भूदेव बाबू स्वयं हिन्दी-प्रेमी थे। उन्होंने पाठ्य-पुस्तकों के लिए पटना में ब्रांच-बोधोदय प्रेस खोला। बिहार के स्कूलों के लिए बँगला की पुस्तकों का अनुवाद कराया। सरकारी नौकरी और हिन्दी के लिए पाठ्य-पुस्तकों का अनुवाद-प्रकाशन दोनों काम उनके लिए सम्भव नहीं था। अतः यह कार्य अधिक गम्भीरता के साथ पूरा करने के लिए रामदीन सिंह को सौंपा गया। वे स्वयं पाठ्य-पुस्तक की चिन्त्य स्थिति से परिचित थे। इसलिए खड्गविलास प्रेस ने हिन्दी में स्वतन्त्र पाठ्य-पुस्तक के निर्माण में पहल की।

हिन्दी में स्वतन्त्र और मौलिक पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण में खड्गविलास प्रेस को भूदेव बाबू का संरक्षण, जॉर्ज ग्रियर्सन की सहायता और मुन्शी राधालाल माथुर, मुन्शी रामप्रकाश लाल, मथुरानाथ सिन्हा और राय रामप्रसाद सिन्हा का, जो शिक्षा-विभाग से सम्बद्ध थे, सहयोग प्राप्त हुआ। इन लोगों ने हिन्दी की पाठ्य-पुस्तकें लिखीं और खड्ग-विलास प्रेस से उनका प्रकाशन हुआ। ये सभी अधिकारी शिक्षक रह चुके थे। इन्हें पाठ्य-पुस्तकों की कमी की सही स्थिति का पता था। अतः इन्होंने विभिन्न कक्षाओं के स्तर को ध्यान में रखकर पुस्तक-लेखन का कार्य किया।

प्रारम्भिक कक्षाओं के लिए चण्डीप्रसाद सिंह ने 'वर्ण-विनोद' की रचना की। यह प्रारम्भिक दर्जे में पढ़ाई जाती थी। हिन्दी-ज्ञान के लिए हिन्दी की पहली पुस्तक की रचना साहबप्रसाद सिंह ने की। इसी ढंग की पुस्तक चार भागों में हिन्दी की पहली पुस्तक (भारतेन्दु हरिश्चन्द्रकृत) का प्रचलन बिहार के स्कूलों में हुआ। मुन्शी राधालाल माथुर ने हिन्दी-किताब दो भागों में तैयार की। सन् १८८२ ई० में खड्गविलास प्रेस ने उसे प्रकाशित किया। उस पाठ्य-पुस्तक की लोकप्रियता का सबसे बड़ा प्रमाण था है कि सन् १९०१ ई० तक उसके पन्द्रह संस्करण प्रकाशित हुए। इसी प्रकार फ्रेडरिक पिन्कॉट-कृत 'बालदीपक' का चार भागों में प्रकाशन (सन् १८८६ ई०) हुआ, जिसके अनेक संस्करण हुए। रामदीन सिंह ने 'हिन्दी-साहित्य' (प्रथम भाग) का संकलन किया था। इन संकलनों की विशेषता यह थी कि इनमें गद्य और पद्य दोनों रहते थे। विद्यार्थियों को केवल साहित्य की प्राचीन काव्यधारा का ही ज्ञान नहीं कराया जाता था, वरन् आधुनिक काव्य-धारा का भी संस्कार दिया जाता था। इन संकलनों में हिन्दी के उत्कृष्ट रचनाकारों की रचनाएँ होती थीं।

खड्गविलास प्रेस द्वारा निर्मित पाठ्य-पुस्तकों के पहले हिन्दी में जितनी भी पाठ्य-पुस्तकें बिहार के स्कूलों में पढ़ाई जाती थीं, वे सभी राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' की लिखी थीं। उनके हिन्दी-सेलेक्शन का, जो बाद में 'हिन्दी-गुटका' नाम से सुप्रसिद्ध हुआ, प्रचलन

बिहार के स्कूलों में था। राजा साहब ने हिन्दी के जिस स्वरूप को प्रचलित किया था, वह उर्दू और फारसी के अधिक निकट था। अतः हिन्दी-प्रेमी जनता हिन्दी के इस स्वरूप को पसन्द नहीं कर रही थी। खड्गविलास प्रेस ने हिन्दी की उत्तम पाठ्य-पुस्तकों की रचना कर उन्हें पूरे बिहार-प्रदेश में प्रचलित किया और राजा साहब के गुटका का बिहार के स्कूलों में प्रचलन बन्द कराया।

खड्गविलास प्रेस ने हिन्दी में ऐसे उच्चस्तर की पाठ्य-पुस्तकें तैयार कीं, जिनकी प्रशंसा न केवल भारत में हुई, अपितु विदेशी पत्रों ने भी उनकी प्रशंसा की। उनकी 'भाषासार' पुस्तक अत्यन्त प्रख्यात हुई और बिहार के स्कूलों में लगभग ५० वर्षों तक जारी रही।

भाषासार : पहला भाग (सन् १८८१ ई०) : 'भाषासार' खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित भाषा-साहित्य की सर्वोत्तम पाठ्य-पुस्तक थी। इसके संकलयिता खड्गविलास प्रेस के प्रबन्धक और साहित्यक रुचि-सम्पन्न साहबप्रसाद सिंह थे। उन्होंने इस पुस्तक का संकलन सन् १८८१ ई० में किया था। मेरे सामने इस कृति का चौथा संस्करण (सन् १८८५ ई०) रहा है।

ज्ञातव्य है कि हिन्दी-प्रदेशों में साहित्य-पाठ की पाठ्य-पुस्तक में राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' का गुटका, जो उसके सेलेक्शन का छोटा रूप था, प्रचलित था। राजासाहब उर्दूपरस्त थे। इस कारण उस गुटका में ऐसे भी पाठ थे, जिनकी भाषा हिन्दुस्तानी थी। हिन्दी-प्रेमी ऐसी पाठ्य-पुस्तक को अच्छी दृष्टि से नहीं देखते थे। साथ ही इसे हिन्दी की विशुद्ध पाठ्य-पुस्तक नहीं कहा जा सकता था। अतः इस पुस्तक के स्थान पर हिन्दी में ऐसी पाठ्य-पुस्तक की आवश्यकता थी, जिसे हिन्दी का प्रतिनिधि-संकलन कहा जाय। 'भाषासार' ने उस अभाव की पूर्त्ति की।

'भाषासार', प्रथम भाग में निम्नलिखित लेखकों की रचनाएँ संकलित की गई थीं :

१. लल्लूजी लाल : प्रेमसागर (उत्तरार्द्ध)
२. शिवप्रसाद : वामामनरंजन, कालिदास की स्त्री, द्रौपदी
३. हरिश्चन्द्र : मुद्राराक्षस नाटक
४. गोपालचन्द्र : नीति-विषयक कविताएँ, विदुर-नीति
५. हरिश्चन्द्र : हिन्दी-लेक्चर
६. छोटूराम तिवारी : रामकथा
७. हरिश्चन्द्र : वर्षा (निबन्ध), प्रेमपथिक
८. गदाधर सिंह : कादम्बरी
९. तुलसीदास : मानस-बालकाण्ड
१०. जी० ए० ग्रियर्सन : कनरपटी की लड़ाई
११. तपसीराम : प्रेमगंग-तरंग
१२. हरिश्चन्द्र : सतसई-शृंगार
१३. ग्वाल : कविताएँ (ब्रजभाषा)

इस पुस्तक के पहले भाग के सातवें संस्करण में लगभग तीन गुना विषय सम्मिलित किये गये थे, जो इस प्रकार थे :

१. प्रेमसागर : लल्लूलाल कवि, उत्तरार्द्ध ५१वाँ अध्याय
२. वर्षा : हरिश्चन्द्र (निबन्ध)
३. प्रेमपथिक : हरिश्चन्द्र (संवाद-शैली)
४. कादम्बरी : हरिश्चन्द्र (गद्य-लेख)
५. रामकथा : छोटूराम तिवारी (गद्य-लेख)
६. रामचरितमानस : सं० जॉर्ज ग्रियर्सन
७. ग्वाल के कवित्त : ग्वाल कवि
८. सुन्दरी-तिलक : सुन्दरी-तिलक से १४ छन्दों का संकलन
९. रसिक बिनोद : लाल खड्गबहादुर मल्ल (५ छन्द)
१०. विष्णुपद युवराज : हरिश्चन्द्र
११. कवितावली : रामगुलाम द्विवेदी (दो छन्द)
१२. उर्दू-कविता : सन्तोष सिंह और सुमेर सिंह
१३. भाषा का लाभ : गोल्डस्मिथ के लेख का अनुवाद—रामशंकर शर्मा
१४. मित्रता : रामशंकर शर्मा
१५. चतुराई और चालाकी : रामशंकर शर्मा
१६. ईर्ष्या : अज्ञात
१७. उपदेश करना : रामशंकर शर्मा
१८. प्रशंसा : रामशंकर शर्मा
१९. परिश्रम : रामशंकर शर्मा
२०. बदला : गोल्डस्मिथ; अनुवादक : रामशंकर शर्मा
२१. राजनीति : नीति-विषयक कविता
२२. कविता : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (२७ छन्द)
२३. मैथिली रामायण, किष्किन्धा काण्ड : चन्दा झा
२४. पृथ्वीराज रासो : मोहनलाल, विष्णुलाल पाण्डेय
२५. सन्देह : बेकन; अनुवादक : रामशंकर शर्मा
२६. बैताल-पचीसी : लल्लूलाल
२७. भूगोल-हस्तामलक : शिवप्रसाद सितारेहिन्द
२८. विद्या : शिवप्रसाद सितारेहिन्द
२९. कविता : रहीम
३०. सूरसागर : सं० हरिश्चन्द्र
३१. महारानी विक्टोरिया : ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह
३२. वृन्द की कविता : वृन्द कवि
३३. प्रेमगंग-तरंग : तपसी राम
३४. प्रासंगिक कविता : दुर्गादत्त कवि

३५. कविता : श्यामल दास
३६. जानकीमंगल नाटक : शीतलाप्रसाद त्रिपाठी
३७. ऋणी होने का दु:ख : व्यास रामशंकर शर्मा
३८. कनरपटी घाट की लड़ाई : जी० ए० ग्रियर्सन
३९. कवित्त-रामायण : तुलसीदास
४०. आर्यावर्त्त का विलाप : लक्ष्मीप्रसाद
४१. मेघदूत : राजा लक्ष्मण सिंह
४२. रुक्मिणी-परिणय : महाराज रघुराज सिंह (छह छन्द)

प्रस्तुत संकलन में यह ध्यान रखा गया था कि हिन्दी के प्राचीन, मध्य और आधुनिक साहित्य की प्रतिनिधि-रचनाएँ संकलित की जायँ, जो वस्तुतः हिन्दी के विकास के अध्ययन की दृष्टि से महत्त्व की हों और उनसे विद्यार्थियों के मस्तिष्क पर हिन्दी के समग्र साहित्य का संस्कार पड़ सके। इस दिशा में यह संकलन सफल था। इसी कारण इसकी अधिक प्रतिष्ठा हुई।

'भाषासार' में प्रतिवर्ष उसके पाठ्यक्रम में परिवर्त्तन और संशोधन होता रहा और इस प्रकार सन् १९३६ ई० तक बिहार की हाईस्कूल और इण्टरमीडिएट-कक्षाओं में स्वीकृत पाठ्य-पुस्तक के रूप में प्रचलित था। प्रथम भाग के सन् १८९२ ई० तक आठ संस्करण प्रकाशित किये जा चुके थे।

भाषासार, दूसरा भाग (सन् १८८४ ई०, प्रथम संस्करण) : 'भाषासार' दूसरे भाग का पहला संस्करण सन् १८८४ ई० में प्रकाशित हुआ। इसका संकलन और सम्पादन साहबप्रसाद सिंह ने किया था। इसके प्रथम संकलन में निम्नलिखित विषय संकलित किये गये थे :

१. प्रेमसागर : लल्लूलाल कवि, ११—८१ अध्याय तक
२. काश्मीर-कुसुम : हरिश्चन्द्र
३. मानस : बालकाण्ड
४. वैतालकवि के ५ छन्द
५. कबीर की साखी
६. विनय प्रेम-पचासा : हरिश्चन्द्र
७. नीलदेवी का नौवाँ और दसवाँ दृश्य : हरिश्चन्द्र
८. कहानी ठेठ हिन्दी में
९. रामकथा : छोटूराम
१०. पूर्णप्रकाशचन्द्र प्रभा—११ स्तम्भ : हरिश्चन्द्र
११. हिन्दी-भाषा : हरिश्चन्द्र
१२. भजन : मुन्शी अम्बिकाप्रसाद

इसका दूसरा संस्करण सन् १८८७ ई० और तीसरा सन् १८९० ई० में हुआ। प्रत्येक संस्करण में नये विषय जोड़ दिये जाते थे। प्रायः इस संकलन के नये संस्करण में परिवर्त्तन

कर इसे अद्यतन पाठ्य-पुस्तक का रूप दिया जाता था। संकलयिता के निधन के बाद भी यह पाठ्य-पुस्तक रूप में प्रचलित था। सन् १९३३ ई० में इसका नवीन संस्करण खड्‌गविलास प्रेस से प्रकाशित हुआ। इस संस्करण का सम्पादन पण्डित रामकृष्ण पाण्डेय और नरेन्द्रनारायण सिंह ने किया था। इस प्रकार यह पाठ्य-पुस्तक न केवल उन्नीसवीं सदी की उल्लेखनीय पाठ्य-पुस्तक रही है, वरन् २०वीं सदी के तीसरे दशक तक यह पाठ्य-पुस्तक हिन्दी-साहित्य को आलोकित करती रही।

'भाषासार' की संकलन-दृष्टि और उसकी समीक्षा :

'भाषासार' उन्नीसवीं सदी में हिन्दी की प्रतिनिधि-पाठ्य-पुस्तक थी। उस संकलन ने न केवल हिन्दी के प्राचीन साहित्य को उजागर किया, वरन् प्राचीन, मध्य और आधुनिक साहित्य की रचनाओं का समावेश कर विद्यार्थियों को समसामयिक साहित्य से भी परिचय कराया। यह कृति इन्हीं कारणों से अधिक महत्त्वपूर्ण समझी गई।

यह उस आधुनिक साहित्य का संकलन है, जिस आधुनिक साहित्य के महत्त्व को आज हम स्वीकार कर रहे हैं। उसकी प्रतिष्ठा उसी समय की जा चुकी थी। इसके महत्त्व को संकलयिता ने उसी समय समझ लिया था। आज हिन्दी के शौकिया रंगमंच की खोज की जा रही है और रंगमंचीय नाटक की चर्चा की जाती है, उसका श्रीगणेश 'जानकीमंगल' नाटक द्वारा हो चुका था। वह नाटक बिहार के मिडिल स्कूल के छात्रों के पाठ्य-क्रम में लगभग पचास वर्षों से अधिक समय तक प्रचलित रहा। इस पुस्तक के महत्त्व को देखकर लन्दन के अँगरेजी पत्रों में समीक्षा प्रस्तुत की गई। लन्दन के 'द होमवार्ड मेल' ने ६ जुलाई, १८८५ ई० के अंक में इसकी समीक्षा की थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि खड्‌गविलास ने हिन्दी पाठ्य-पुस्तक-निर्माण द्वारा हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान की महती सेवा की।

सातवाँ अध्याय

खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित ग्रन्थों का सर्वेक्षण

हिन्दी के प्राचीन ग्रन्थों के प्रामाणिक संस्करण

विश्व की हर भाषा के साहित्य-प्रकाशन का मूल ध्येय धार्मिक साहित्य रहा है। प्रकाशन-संस्थाओं का उदय इसी भावना की प्रेरणा से हुआ। यूरोप में प्रकाशन-संस्थाओं के उदयकाल में बाइबिल, धार्मिक प्रवचन और ईसामसीह के जीवन-चरित्र का प्रकाशन हुआ। भारत में भी प्रकाशन-संस्थाओं के निर्माण के साथ ही गीता, रामचरितमानस, हनुमान-चालीसा प्रभृति पुस्तकों का प्रकाशन हुआ। खड्गविलास प्रेस इस भावना का अपवाद रहा है।

खड्गविलास प्रेस आधुनिक साहित्य के प्रकाशन का एकमात्र प्रतिनिधि प्रेस और प्रकाशन-संस्था है। इसका मूलभूत उद्देश्य समकालीन हिन्दी-लेखकों की रचनाओं का प्रकाशन रहा है। अपने प्रकाशनों के माध्यम से हिन्दी का प्रसार इसका मुख्य उद्देश्य रहा है, जबकि इसके समकालिक प्रकाशन-संस्थाओं का उद्देश्य प्राचीन साहित्य का प्रकाशन या विविध साहित्य का प्रकाशन रहा है। यद्यपि इस संस्था ने आधुनिक हिन्दी-साहित्य को विशिष्ट रूप में प्रकाशित किया, तथापि हिन्दी के प्राचीन ग्रन्थों के प्रकाशन में यह पीछे नहीं रही है। इसने हिन्दी के प्राचीन साहित्य का प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित कर हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि में चार चाँद लगाये हैं।

तुलसी-साहित्य : रामचरितमानस :

'रामचरितमानस' हिन्दू-समाज का लोकप्रिय धार्मिक और साहित्यिक ग्रन्थ है। इसके रचयिता गोस्वामी तुलसीदास भारतीय समाज के मूर्धन्य प्रतिनिधि-कवि हैं। हिन्दी-ग्रन्थों में मानस के जितने अधिक संस्करण हुए हैं, उतने भारतीय भाषा के किसी दूसरे ग्रन्थ के नहीं हुए। खड्गविलास प्रेस के संस्थापक-संचालक महाराज कुमार रामदीन सिंह स्वयं मानस के मर्मज्ञ रसिक थे। उन्होंने मानस के अनेक संस्करणों का तुलनात्मक अध्ययन किया था। वे 'मानस' के व्याख्याकारों और विद्वानों की प्रायः गोष्ठियाँ करते रहते थे और 'मानस'-विषयक अपनी शंकाओं का समाधान कराते थे। रामचरितमानस के अध्ययन-क्रम में इसके प्रामाणिक संस्करणों की कमी महसूस हुई। उनके सत्प्रयास के फलस्वरूप 'रामचरितमानस' का प्रामाणिक संस्करण सन् १८८६ ई० में प्रकाशित हुआ।

'रामचरितमानस' के पाठशोध का सर्वप्रथम प्रयास काशी में हुआ। काशी-निवासी और महल्ला छोटीपियरी के निवासी भागवतदास छत्री ने इस दिशा में सबसे पहले काम किया। वे मानस के प्रबुद्ध पाठक थे। उन्होंने अपने समकालीन प्रकाशित मानस के विभिन्न संस्करणों और प्राचीन सुलभ हस्तलेखों के आधार पर 'मानस' के पाठों का शोधन किया

किया था। उन्होंने 'मक्षिका स्थाने मक्षिका' रखने का प्रयास किया था। इस कारण उनका सम्पादित संस्करण सर्वोत्तम शुद्ध संस्करण माना जाता था। उन्होंने 'मानस' का पहला पाठशोध-संस्करण संवत् १९४२ वि० में प्रकाशित कराया। वह संस्करण काशी के जालपादेवी मुहल्ले के सरस्वती यन्त्रालय में छपा था। उक्त संस्करण अपनी पाठ-शुद्धता की दृष्टि से 'गोलागलीवाला संस्करण' के नाम से अभिज्ञात हुआ।[१] भागवतदास का यह प्रशंसनीय प्रयास व्यक्तिगत था।

मानस के पाठशोध का दूसरा उपक्रम काशी-नरेश ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह ने किया। काशिराज के विद्वान् सभासद् देवतीर्थ स्वामी ने, जिन्हें लोग काष्ठजिह्वा भी कहते थे, 'मानस-परिचर्या' की रचना की थी। इसमें उन्होंने संवत् १७०० वि० के हस्तलेख के आधार पर पाठशोध और टीका की थी। संवत् १७०० वि० वाली पोथी प्रामाणिक पोथी मानी गई है। काशी-नरेश ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह ने इस ग्रन्थ में 'परिशिष्ट' नाम से वार्त्तिक लिखा। महाराज के फुफेरे भाई हरिहर प्रसाद ने परिचर्या की टीका 'प्रकाश' नाम से लिखी। इस प्रकार यह ग्रन्थ मूल पाठशोध और तीनों टीकाओं से समन्वित होकर 'मानस-परिचर्या-परिशिष्ट-प्रकाश' नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह सबसे पहले सन् १८७५ ई० में बनारस लाइट प्रेस से मुद्रित हुआ। इसके पाठशोध में आधुनिक वैज्ञानिक ग्राफ-प्रणाली का उपयोग किया गया था।[२] इस संस्करण को खड्गविलास प्रेस से दो भागों में रजिस्टर-आकार में सन् १८९८ ई० में प्रकाशित किया गया।

उन्नीसवीं सदी में तुलसी-साहित्य के विद्वान् अध्येता और उसको उजागर करनेवाले जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन थे। बाबू रामदीन सिंह मानस के अध्ययन-क्रम में पाठभेद की अशुद्धता समझ चुके थे। वे मानस का पाठभेद-संस्करण प्रकाशित करने के लिए व्यग्र थे। संयोग की बात थी कि मानस-भक्त ग्रियर्सन का सहयोग उनको सहर्ष सुलभ हो गया।

'मानस' के पाठशोध की दिशा में खड्गविलास प्रेस ने संस्थागत रूप में सन् १८८६ ई० में कार्यारम्भ किया। इस क्रम में सन् १८८६ ई० तक प्रकाशित मानस के जितने भी संस्करण सुलभ थे, उनका संग्रह किया गया। ऐसे संग्रहों से इस संस्करण के सम्पादन में सहायता ली गई। संगृहीत मानस-ग्रन्थों की संख्या एक सौ छब्बीस थी। 'मानस' की प्राचीन पोथियों के संग्रह के सिलसिले में गोस्वामी तुलसीदास के हाथ की लिखी कही जानेवाली अयोध्याकाण्ड की भी प्रतिलिपि प्राप्त की गई। काशी-नरेश के ग्रन्थालय में संगृहीत सं० १७०४ वि० के 'मानस' के हस्तलेख का भी उपयोग इस संस्करण में हुआ। इस संस्करण की उल्लेखनीय विशेषता है—'मक्षिका स्थाने मक्षिका'। इसमें कल्पना से काम नहीं लिया गया।

रामचरितमानस का सम्पादन एक वर्ष तक चला। सम्पादन में आधुनिक वैज्ञानिक

---

१. मानस-अनुशीलन, पृ० ११-१२

१. रामचरितमानस, काशिराज-संस्करण, आत्मनिवेदन, पृ० ५

ग्राफ-शैली अपनाई गई। सम्पादन का कार्य पण्डित दामोदर शास्त्री ने किया। मानस के खड्गविलास प्रेस वाले संस्करण की कई विशेषताएँ हैं। पहली विशेषता यह है कि गोस्वामी तुलसीदास का प्रथम बार चित्र प्रकाशित किया गया। काशी के तुलसी-आश्रम, राजापुर के निकटवर्त्ती तुलसीदास के आश्रम, अयोध्याकाण्ड की राजापुरवाली प्रति के हस्तलेख के दस चित्र, तुलसीदास के हाथ का लिखा हुआ पंचनामा और काशिराज-पुस्तकालय में उपलब्ध सं० १७०४ वि० वाली पोथी के चार चित्र प्रकाशित किये गये।

इस संस्करण में तुलसी-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् डॉक्टर जी० ए० ग्रियर्सन का तुलसी-साहित्य के सम्बन्ध में जानकारी देनेवाला लेख प्रकाशित किया गया। तुलसी-दास के जीवन-चरित-लेखकों में बाबा वेणीमाधव दास विख्यात हैं और उनका 'गोसाईं-चरित' सुप्रसिद्ध है। लेकिन शोधकर्त्ताओं के अनुसार तुलसी-चरित के लेखक वेणीमाधव दास नहीं थे, बल्कि भवानीदास थे। इस सस्करण में भवानीदास-कृत 'गोसाईं-चरित' किसी अन्य प्रामाणिक जीवनी के अभाव में प्रकाशित किया गया। 'गोसाईं-चरित' १३० पृष्ठों में है। इसके साथ पण्डित अम्बिकादत्त व्यास-कृत 'मानस-प्रशंसा' भी प्रकाशित की गई। इसमें मानस की उपयोगिता और उसकी प्रशंसा है।

'मानस' के पाठशोध का उन्नीसवीं सदी में किया गया यह महत्त्वपूर्ण प्रयास था। इस संस्करण में पाठशोध के साथ दोहा और संस्कृत-छन्दों में छन्दों के अनुक्रम तो दिये ही गये हैं, साथ ही चौपाइयों में भी क्रम-संख्या दी गई है। इससे सन्दर्भ-लेखन में बहुत सहूलियत हो गई है।

मानस का प्रस्तुत संस्करण सचित्र और मोटे टाइप में है। भारत में जिन दिनों हाफ-टोन ब्लॉक का प्रचलन नहीं था, उन दिनों इस ग्रन्थ के हाफटोन ब्लॉक वियना से बनवाये गये थे। प्रगाढ़ श्रम और लगन से मानस का यह आलोचनात्मक संस्करण प्रकाशित किया गया, जो हिन्दी-भाषा-भाषी प्रदेशों में प्रसिद्ध हुआ। साथ ही विदेशों में भी इसकी प्रतिष्ठा हुई।

टीकाएँ :

खड्गविलास प्रेस ने 'मानस' की अनेक उत्तम टीकाओं का प्रकाशन भी किया। सन्त सिंह पंजाबी की 'मानस-भाव-प्रकाश' टीका, जिसका रचना-काल सं० १८७५—८६ वि० के मध्य है, मानस की टीकाओं में सर्वाधिक प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि तुलसी के शब्दों को जितना पंजाबीजी ने पकड़ा, उतना किसी अन्य टीकाकार ने नहीं। इस टीका का प्रकाशन सन् १९०१ ई० में हुआ।

इस प्रेस की प्रकाशित दूसरी प्रसिद्ध टीका 'रामायण-परिचर्या-परिशिष्ट-प्रकाश' है, जिसका उल्लेख पहले हो चुका है।

इस प्रेस ने मानस के विभिन्न सोपानों पर अलग-अलग टीकाकारों की टीकाएँ प्रकाशित कीं। ऐसी टीकाओं में शिवराम सिंह-कृत किष्किन्धाकाण्ड की 'मानसतत्त्व-प्रबोधिका टीका' का सन् १८८६ ई० में प्रकाशन हुआ। यह ९०० पृष्ठों की टीका है

इसमें 'रामायण-परिचर्या-परिशिष्ट-प्रकाश' से विशेष सहायता ली गई है। टीका की भाषा पुरानी हिन्दी है। अन्य टीकाओं की सहायता से अर्थ समझाने की कोशिश की गई है, लेकिन भाषा की दुर्बोधता से यह टीका अच्छी नहीं बन सकी। बालकाण्ड पर मुंशी गुरुसहाय लाल ने 'सन्त-मन-उन्मनी' टीका लिखी थी। यह 'मानसतत्त्व-विवरण' के नाम से प्रख्यात हुई। इसमें पाण्डित्य-प्रदर्शन अधिक है, और तात्त्विकता का अभाव है। यह संस्करण सन् १८८६ ई० में मुद्रित हुआ।

लब्धकीर्त्ति मानस-मर्मज्ञ पण्डित शिवलाल पाठक ने 'मानस-मयंक' नाम से मानस के सप्त सोपानों से चुनी गई ५०२ दोहे-चौपाइयों पर दोहा-छन्द में भाष्य किया था। इस छन्द-भाष्य पर उनके शिष्य इन्द्रदेव नारायण ने गद्य में वार्त्तिक लिखा। वार्त्तिककार ने पहले तुलसी के अर्थ को लिखा तथा बाद में पाठकजी के दोहा-भाष्य का गद्य में अर्थ प्रस्तुत किया। सामान्यतः वार्त्तिक अच्छा बन पड़ा है। वार्त्तिक का प्रकाशन सन् १९२० ई० में हुआ।

यशोधन मानस-मर्मज्ञ शेषधरजी ने मानस के उत्तरकाण्ड के 'ज्ञानदीपक' प्रसंग की स्वतन्त्र रूप से टीका लिखी। यह अत्यधिक प्रख्यात हुई और इसी प्रेस से प्रकाशित हुई।

गीतावली : गोस्वामी तुलसीदास की 'गीतावली' में सात काण्डों में मर्यादा पुरुषोत्तम राम का यश वर्णित है। गोस्वामीजी की यह प्रसिद्ध कृति मानी जाती है। इसपर महात्मा हरिहर प्रसाद ने टीका लिखी थी। यह टीका ब्रजभाषा-गद्य में है। समकालीन परिवेश के लिए इस टीका की उपयोगिता थी और इसकी पर्याप्त चर्चा हुई थी। यह सन् १९०६ ई० में खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित हुई।

कवित्त-रामायण : तुलसीदास की यह तीसरी कृति है। उनके ग्रन्थों के प्रामाणिक संस्करण के प्रकाशन में खड्गविलास प्रेस का अन्यतम अवदान है। पण्डित रामगुलाम द्विवेदी, बैजनाथदास और भागवतदास छत्री की प्रतियों के आधार पर इस संस्करण का सम्पादन किया गया था। इसमें छन्दों के अनुक्रम और पाठभेद पर विशेष ध्यान दिया गया था। साथ ही ब्रजभाषा-गद्य में हरिहर प्रसाद की टीका भी दी गई है। इस पुस्तक को प्रामाणिक स्वरूप प्रदान करने के लिए पुस्तक के अन्त में अनेक सन्दर्भ-सूचनाएँ दी गई हैं, जिनसे पुस्तक की उपादेयता बढ़ गई है। इसका प्रकाशन सन् १८९७ ई० में हुआ।

विनयपत्रिका : काशी-निवासी हरिहर प्रसाद ने ब्रजभाषा-गद्य में 'विनयपत्रिका' की टीका की थी। इस संस्करण का प्रकाशन सन् १९०५ ई० में हुआ। ब्रजभाषा-टीका आज की दृष्टि से उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है, फिर भी हरिहर प्रसादजी मानस और तुलसी-साहित्य के मर्मज्ञ थे। इस दृष्टि से इस संस्करण का अपना महत्त्व है।

हनुमानबाहुक : इसका प्रामाणिक संस्करण सन् १८९७ ई० में प्रकाशित हुआ। इसमें किसी तरह का पाठभेद नहीं दिया गया, फिर भी इसके सन्दर्भ में कई प्रामाणिक जानकारियाँ टिप्पणी में दी गई हैं।

श्रीबरवा-रामायण : उन्नीसवीं सदी में तुलसी-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् मिर्जापुर-निवासी पण्डित रामगुलाम द्विवेदी थे। उन्होंने सबसे पहले तुलसी के बारह ग्रन्थों को प्रामाणिक घोषित किया। इसके बाद उन ग्रन्थों की टीकाएँ लिखी गईं। पण्डित वन्दन पाठक तुलसी-साहित्य के अच्छे अध्येता माने जाते थे। उन्होंने भी तुलसीदास के ग्रन्थों पर टीकाएँ लिखीं। बरवा-रामायण पर उनकी 'स्नेह-प्रकाशिका टीका' प्रसिद्ध है। उक्त टीका इस प्रेस से सन् १८९६ ई० में प्रकाशित हुई। यह ब्रजभाषा-गद्य में लिखी गई है।

रामलला-नहछू : पण्डित वन्दनराम की टीका-सहित इस पुस्तक का प्रकाशन सन् १८८९ ई० में हुआ। इसमें यथास्थान रामदीन सिंह ने टिप्पणियाँ दी हैं, जिनसे पुस्तक की उपादेयता बढ़ गई है। टीका की भाषा ब्रजभाषा है।

सूर-साहित्य : खड्गविलास प्रेस ने जहाँ हिन्दी के मूर्धन्य कवि तुलसी के ग्रन्थों के प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित किये, वहाँ वह हिन्दी के पीयूषवर्षी सूरदास के ग्रन्थों के प्रकाशन में पीछे नहीं रहा। उसने सूरदास की प्रसिद्ध कृति 'साहित्यलहरी' का सटीक संस्करण सन् १८९२ ई० में प्रकाशित किया। टीका ब्रजभाषा-गद्य में है। पाठभेद का भी उल्लेख यथास्थान किया गया है। पुस्तक के अन्त में सूरदास के जीवन से सम्बद्ध अनेक सन्दर्भ-सूचनाएँ दी गई हैं, जिनसे पुस्तक की प्रामाणिकता और उपयोगिता बढ़ गई है। सूरदास की 'साहित्यलहरी' के प्रामाणिक संस्करण के प्रकाशन का यह प्रथम प्रयास था।

सूरदास की दूसरी रचना 'सूर के कूट' को 'सूरशतक-पूर्वार्द्ध' नाम से राधाकृष्णदास ने संकलित किया था। इसका प्रकाशन सन् १८८९ ई० में हुआ। इसमें ५० पद हैं। यथास्थान पाठभेदों का भी संकेत है। इसमें अनेक ऐसी टिप्पणियाँ दी गई हैं, जिनसे यह कृति अधिक प्रामाणिक हो गई है। इस प्रकार खड्गविलास प्रेस ने सूर-साहित्य को भी लोक-मानस तक पहुँचाने का प्रयास किया।

रीति-साहित्य का प्रकाशन :

भारतेन्दु-युग रीतिकाल का अवसान-काल था। एक ओर आधुनिक साहित्य के प्रणयन का प्रयास चल रहा था और दूसरी ओर परम्परावादी साहित्यकार ब्रजभाषा के माधुर्य के प्रलोभन से आकृष्ट हो शृंगार-वृत्तियों का निरूपण कर रहे थे। ऐसे संक्रमण-काल में रीति-परम्परा के अनेक कवियों ने रीति-साहित्य का प्रणयन किया, जिसका हिन्दी-साहित्य में अपना स्थान है। खड्गविलास प्रेस ने रीतिधारा के इस प्रकार के कुछ कवियों की रचनाएँ भी प्रकाशित कीं। उन रचनाओं का साहित्यिक मूल्य तो है ही।

इस संस्था ने हिन्दी के जिन रीति-ग्रन्थों का प्रकाशन किया, उनमें 'बिहारी-वंशी-बीसा', 'बिहारी-वसन्त-विनोद' और 'नखसिख-भूषण' की रचना छपरा-निवासी बिहारी सिंह ने की थी। प्रारम्भिक दो पुस्तकों की विषय-वस्तु शृंगारिक कवित्त है, जिनमें

विभिन्न प्रकार की अनुभूतियों के चित्र हैं। 'नखसिख-भूषण' में नायिका के अंग-प्रत्यंग का परम्परावादी ढंग से वर्णन किया गया है। 'रसिक-विनोद' नायिका-भेद-विषयक पुस्तक है। इसमें नायिकाओं के लक्षण और उनके उदाहरण दिये गये हैं। इसमें परम्परा से इतर कोई नई बात नहीं है। लाल खड्गबहादुर मल्ल ने इसकी रचना की थी।

इस संस्था ने सबसे उत्कृष्ट जिस रीति-साहित्य का प्रकाशन किया, वह 'रस-रहस्य' टेकारी-निवासी और टेकारी-दरबार के वरिष्ठ कवि दिनेश द्विवेदी 'दीन' द्वारा प्रणीत हुआ था। लेखक के निधन के ४२ वर्ष बाद सन् १८८७ ई० में इसका प्रकाशन हुआ। इसका रचना-काल सं० १८८३ वि० है।

यह ग्रन्थ सात 'विलासों' में विभाजित है। लेखक ने इसमें नायिका-भेद और रस का विवेचन किया है। ग्रन्थ का वैशिष्ट्य यह है कि कवि ने स्वतन्त्र रूप से नायिका का विवेचन और गम्भीरता के साथ रस-निरूपण किया है। अतः यह पुस्तक रीति-साहित्य की परम्परा की महत्त्वपूर्ण कड़ी है।[1]

डलमऊ-निवासी दत्तकवि-कृत 'लालित्य-लता' का भी प्रकाशन हुआ। इसमें भी रीतिकाव्य-धारा के शृंगार-विषयक ब्रजभाषा-छन्दों का संकलन है। इसमें नायक-नायिका के लक्षण तो नहीं दिये गये हैं, परन्तु विभिन्न प्रकार की शृंगारिक कृतियों का विवेचन अवश्य है।

काशिराज के दरबारी कवि नारायण कवि की रचना 'अष्टयाम' का प्रकाशन सन् १८८७ ई० में हुआ। इसमें नायिकाओं के आठ प्रहर के क्रिया-कलाप का वर्णन है। हिन्दी-रीति-साहित्य में 'अष्टयाम' की परम्परा रही है। उस परम्परा को आगे बढ़ाने का यह प्रयास था। यह अत्यन्त सरस रचना है, जिसमें मधुचर्या का सरस चित्रण किया गया है।

'काव्यरत्नाकर' (सन् १८९२ ई०) शृंगाररस के कवित्तों और सवैयों का संकलन है। यह पुस्तक काशी-निवासी हरिशंकर सिंह की है। इसके प्रारम्भिक १०० छन्दों में ऋतु-वर्णन और शृंगार-भावों की मार्मिक अभिव्यक्ति है। अन्त में मुकरी, अलंकार और छन्दों का विवेचन है। रचना सरस है।

हरिशंकर कवि की अन्य रचनाएँ—शृंगार-शतक, वेदान्त-शतक, नीतिपंचाशिका और गृहस्थाचार एक ही पुस्तक में संकलित हैं। दोहा छन्द में शृंगार, वेदान्त, नीति और गृहस्थाचार की उक्तियाँ कही गई हैं। रचना अच्छी बन पड़ी है।

प्राचीन खण्डकाव्य : सुदामा-चरित :

ब्रजभाषा में सुदामा-चरित को लेकर अनेक रचनाएँ हुई हैं, जिनमें नरोत्तमदास का 'सुदामाचरित' सबसे प्रसिद्ध कृति है। किन्तु, नरोत्तमदास से इतर कवियों में बिहार के

---

१. 'साहित्य' त्रैमासिक, वर्ष ११, अंक ४

मुजफ्फरपुर-निवासी हलधरदास का 'सुदामाचरित' (सन् १६०५ ई०) भी प्रसिद्ध हुआ। इसके अनेक संस्करण प्रकाशित हुए। हलधरदास नरोत्तमदास के बाद के कवि हैं। नरोत्तमदास ने अपनी रचना में दोहा, कवित्त और सवैया छन्दों का व्यवहार किया है, जबकि हलधरदास ने २६५ छप्पय छन्दों में अपनी रचना पूरी की है। हास्य-व्यंग्य का पुट देकर इसे मनोरम बनाने का प्रयास किया गया है। हिन्दी का यह उत्कृष्ट खण्डकाव्य है। खड्गविलास प्रेस में उपलब्ध प्राचीन पोथियों के आधार पर पण्डित प्रेमन पाण्डेय ने हलधरदास-कृत 'सुदामाचरित' का सम्पादन किया था।

संग्रह-साहित्य : सुन्दरी-तिलक

भारतेन्दु-युग आधुनिक हिन्दी-साहित्य का उद्भव-काल था। वह युग रीतिकाव्य-धारा का पर्यवसान-काल भी रहा है। आधुनिकता के उदय के बावजूद रीति-साहित्य की ओर साहित्यकारों की प्रवृत्ति कम नहीं हुई। ब्रजभाषा में रचित शृंगारपरक रचनाओं से लोग आत्मविभोर हो जाते थे। इसलिए भारतेन्दु-युग में सरल शृंगारिक कवित्त-सवैयों के अनेक संकलन प्रकाशित हुए। खड्गविलास प्रेस ने भी अनेक प्रकाशन किये, जिनमें महत्त्वपूर्ण संकलन 'सुन्दरी-तिलक' की चर्चा अभीष्ट विषय है।

'सुन्दरी-तिलक' भारतेन्दु-युग का सर्वाधिक प्रसिद्ध संकलन है। उन्नीसवीं सदी के अनेक प्रकाशकों ने इसका अलग-अलग प्रकाशन किया था। इसकी उपयोगिता, सरलता और लोकप्रियता का सबल प्रमाण यह है कि पिछली शताब्दी में नवलकिशोर प्रेस ने इसके दस संस्करण छापे। यह रचना भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाम से छापी गई और लोकप्रिय हुई। खड्गविलास प्रेस ने भी इसे प्रकाशित किया, किन्तु इस रचना के मूल संकलयिता और इसके वास्तविक स्वरूप का मूल्यांकन अबतक नहीं हुआ।

'सुन्दरी-तिलक' के मूल संकलयिता मन्नालाल 'द्विज' और हनुमान कवि थे। दोनों भारतेन्दु के मित्र थे। उन्हीं की सत्प्रेरणा से इसका संकलन सन् १८६८ ई० में किया गया। इसका पहला संस्करण मन्नालाल ने अपने वाराणसी के संस्कृत यन्त्रालय से सन् १८६८ ई० में प्रकाशित किया। इसका दूसरा संस्करण परिवर्त्तन और परिवर्द्धन के साथ सन् १८७१ ई० में प्रकाशित हुआ। दोनों संस्करण लीथो में मन्नालाल जी के प्रेस से मुद्रित हुए। इसकी विशेषता यह थी कि इसमें केवल सवैया छन्दों में रचित सरस रचनाओं का संकलन किया गया था। पहले संस्करण में दो सौ सवैये संकलित किये गये थे और दूसरे में छन्दों की संख्या २६५ कर दी गई। यह कृति भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाम से प्रख्यात हुई। पहले संस्करण में ४५ कवियों की रचनाएँ थीं और दूसरे में ५९ कवियों की रचनाएँ आ गईं।

खड्गविलास प्रेस में 'सुन्दरी-तिलक' का संस्करण भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाम से सन् १८९२ ई० में प्रचारित किया गया, जिसमें १५५ कवियों की रचनाएँ थीं। छन्दों की संख्या १४५५ हो गई। इस संस्करण में कवित्त छन्द की भी सरस रचनाएँ संकलित की गईं। इसमें भारतेन्दु और उनके कई मित्रों की रचनाएँ सन्निविष्ट हो गईं।

अतः यह संस्करण विशुद्ध खड्गविलासीय संस्करण हो गया। पहलेवाली सीमा नहीं रही। यह संकलन रामदीन सिंह ने किया था। यद्यपि इस पुस्तक की मौलिकता नष्ट हो गई, तथापि अनेक नवीन सरस छन्दों के संकलन से रसज्ञों के आनन्द-वर्द्धन में वृद्धि हुई।

दूसरा महत्त्वपूर्ण संग्रह शिवप्रसाद पाण्डेय 'सुमति' द्वारा रचित और संकलित 'विनय-पद्य-संग्रह' (सन् १९१६ ई०) है। यह पुस्तक तीन भागों में है, जिसमें सुमतिजी की अपनी रचनाओं के साथ तुलसी, सूर, भारतेन्दु-युग के कवियों और द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के भजन, विनय आदि संकलित हैं। इसमें समकालीन और पूर्ववर्त्ती कवियों की उन रचनाओं का संकलन है, जो प्रचलित रही हैं। अतः यह संकलन उपयोगी है।

आधुनिक साहित्य का प्रकाशन

प्रियप्रवास : हिन्दी-साहित्य के आधुनिक काल की विधा गद्य है। उपन्यास, नाटक, कहानी और निबन्धों के माध्यम से आधुनिक साहित्य का विकास हुआ है। गद्य-साहित्य की प्रधानता के साथ ही खड़ीबोली-काव्य का भी विकास होने लगा। जिस खड़ी-बोली-कविता का शुभारम्भ महेश नारायण ने किया, उसका विकास श्रीधर पाठक प्रभृति कवियों की रचनाओं में और उसका चरम स्वरूप 'हरिऔध' के 'प्रियप्रवास' में दिखाई पड़ता है। हमने जैसाकि पिछले अध्याय में संकेत किया है, खड्गविलास प्रेस आधुनिक हिन्दी-साहित्य के प्रकाशन का प्रमुख केन्द्र रहा है। सौभाग्य की बात है कि आधुनिक हिन्दी का प्रथम महाकाव्य 'प्रियप्रवास' का प्रकाशन सबसे पहले खड्गविलास प्रेस ने किया।

आधुनिक हिन्दी का प्रथम महाकाव्य 'प्रियप्रवास' पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की श्रेष्ठ रचना है। इस महाकाव्य की रचना का शुभारम्भ १५ अक्टूबर, १९०८ ई० को हरिऔधजी ने किया था। इसके प्रणयन में लगभग पाँच वर्ष लगे। महाकाव्य-रचना की समाप्ति २४ फरवरी, १९१३ ई० को हुई।[1] कवि ने पुस्तक में रचना-तिथि का उल्लेख नहीं किया है।

इस ग्रन्थ का धारावाहिक प्रकाशन 'श्रीहरिश्चन्द्र-कला' के सन् १९१३ ई० के अप्रैल-अंक से प्रारम्भ होकर ८ अंकों में समाप्त हुआ। पुस्तकाकार पहला संस्करण सन् १९१४ ई०, दूसरा सन् १९२१ ई० और तीसरा सन् १९३० ई० में प्रकाशित हुआ। 'प्रियप्रवास' में प्रथम संस्करण के बाद अनेक स्थलों पर संशोधन हुए। वे संशोधन प्रायः दूसरे और तीसरे संस्करणों तक किये गये। इस संस्था ने आधुनिक हिन्दी के प्रकाशन में खड़ीबोली के प्रथम महाकाव्य का प्रकाशन कर आधुनिक हिन्दी के गौरव का विस्तार किया।

महासमर-कवितावली (सन् १९१८ ई०) : प्रथम विश्व-महायुद्ध के सन्दर्भ में यह पुस्तक लिखी गई थी। इसमें उद्बोधन-गीत हैं, जो खड़ीबोली में हैं। अँगरेजी राज्य की

---

१. हरिऔध और उनका साहित्य, पृ० २२४

प्रशस्ति में यह पुस्तक लिखी गई है। कवि ने एक स्थान पर लिखा है :

महाराज जीवें बड़ा नाम पावें
बढ़ी धाक भगवान दिन-दिन बढ़ावें।

महारानी नित रँगरलियाँ मनावें
हम उनके रहें और काम उनके आवें।

ब्रिटिश जाति जीते सुजस हो सवाया
सदा हम सबों पर रहे उसकी छाया।

अन्त में कवि ने कहा :

धूम होगी जरमनों के हार की
जीत होवेगी ब्रिटिश सरकार की।

चोखे चौपदे (सन् १९२४ ई०) : 'चोखे चौपदे' में एक हजार मुक्तकों का संकलन है। इसमें 'गागर में सागर', 'केसर की क्यारी' और 'अनमोल हीरे' शीर्षकों में एक हजार मुक्तक हैं, जो खड़ीबोली में हैं। यह संग्रह हिन्दी-साहित्य की उत्कृष्ट निधि है। एक मुक्तक है :

आ वसंत बना रहा है और मन
बौर आमों को अनूठा मिल गया।
फूल उठते हैं सुने कोयल कुहू
फूल खिलते देखकर दिल खिल गया।

बोलचाल या चुभते चौपदे (सन् ९९२४ ई०) : हरिऔधजी का यह दूसरा मुक्तक काव्य-संग्रह है। इस काव्य-पुस्तक में शिख से नख तक के अंगों पर लगभग तीन हजार छन्दों की रचना की गई है। सभी मुक्तक मर्मस्पर्शी हैं। इसीलिए इसका नाम 'चुभते चौपदे' रखा गया। इन मुक्तकों का वैशिष्ट्य यह है कि इनमें जो मुहावरेदारी अपनाई गई है, वह हृदय को स्पर्श करने में सफल है। नाक के सम्बन्ध में एक मुक्तक है :

चाहतें बेतरह गईं कुचली, साँसतें भी हुईं नहीं कुछ कम।
आप लें, या कभी न हम लेवें, नाक में हो गया हमारा दम॥

यह खड़ीबोली की अन्यतम काव्य-कृति है।

नाटक-साहित्य :

आधुनिक हिन्दी-नाटक-साहित्य के लेखन का प्रयास उन्नीसवीं सदी के छठे दशक में हो गया था। भारतेन्दु के पूर्व कई हिन्दी-लेखकों ने इस दिशा में प्रयास किया था, किन्तु भारतेन्दु ने इस दिशा में क्रान्तिकारी कार्य किया। नाटक-साहित्य के प्रणयन के साथ ही गद्य के विकास में योग मिला। खड्गविलास प्रेस ने आधुनिक नाटक-साहित्य के प्रकाशन में विशेष योगदान किया।

हिन्दी-नाटक-साहित्य के लेखन में भारतेन्दु अपने समकालीन लेखकों के लिए प्रेरणा-स्रोत थे। उन्होंने जितने भी नाटक लिखे, उनमें से कुछ को छोड़ शेष सभी किसी-न-किसी प्रेस से पहले ही मुद्रित-प्रकाशित हो चुके थे। इसलिए उनके नाटक-साहित्य का खड्गविलास प्रेस से बाद में प्रकाशन हुआ।

खड्गविलास प्रेस ने दामोदर शास्त्री का 'रामलीला' नाटक सात भागों में (सन् १८८२ ई० से सन् १८८८ ई०), हरिश्चन्द्र की अंधेर नगरी (सन् १८८२ ई०), भारत-दुर्दशा (सन् १८८३ ई०), सत्यहरिश्चन्द्र (सन् १८८७ ई०), माधुरी (सन् १८८८ ई०), विषस्य विषमौषधम् (सन् १८८८ ई०), दुर्लभ बन्धु (सन् १८८८ ई०), मुद्राराक्षस (सन् १८८८ ई०), पाखण्ड-विडम्बन (सन् १८८८ ई०), सती-प्रताप (सन् १८९२ ई०), विद्यासुन्दर (सन १८८८ ई०), रत्नावली (सन् १९०५ ई०), नीलदेवी (सन् १८८८ ई०), चन्द्रावली (सन १८८८ ई०), भारत-जननी, कर्पूरमंजरी, धनंजय-विजय और प्रेमयोगिनी का प्रकाशन किया। खड्गबहादुर मल्ल, अम्बिकादत्त व्यास और प्रतापनारायण मिश्र के नाटक भी इस प्रेस ने छापे।[1] इनके साथ ही लाला श्रीनिवासदास का 'तप्तासंवरण' (सन् १८८३ ई०), रामनारायण मिश्र का 'जनकबाग-दर्शन' और शिवनन्दन सहाय का 'कृष्ण-सुदामा' नाटक प्रकाशित किये गये।

हिन्दी के इतने उत्कृष्ट नाटकों का इतने बड़े पैमाने पर प्रकाशन का यह पहला अभिनव प्रयास था। इन नाटकों के प्रकाशन के साथ ही इन्हें जनमानस तक पहुँचाने का सफल प्रयास भी इस प्रेस ने किया। पण्डित शीतलाप्रसाद त्रिपाठी-कृत हिन्दी के प्रथम अभिनीत 'जानकीमंगल' नाटक का भी प्रकाशन किया, जिसका प्रथम अभिनय सन् १८६८ ई० में रायल थियेटर में हुआ था, जो लगभग ५० वर्षों तक बिहार और बंगाल के विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम में था।

उपन्यास :

गद्य-शैली का विकास उपन्यास के माध्यम से अधिक सम्भव है। यह ऐसी साहित्यिक विधा है, जिसके माध्यम से हिन्दी-भाषा को जनमानस तक सम्प्रेषित किया जा सकता है। उपन्यास जनमानस की लोकप्रिय खुराक है। यह आधुनिक युग की देन है। प्रारम्भ में हिन्दी में उपन्यासों का अभाव था। बँगला में सुलभ उपन्यासों का हिन्दी-अनुवाद प्रस्तुत कर इस अभाव की पूर्त्ति की गई, किन्तु हिन्दी में मौलिक उपन्यासों की भी जरूरत थी। इस दिशा में खड्गविलास प्रेस ने हरिश्चन्द्र के 'पूर्णप्रकाश-चन्द्रप्रभा' का प्रकाशन किया। यह उपन्यास अनुवाद या छायानुवाद है।

मौलिक उपन्यासों के प्रकाशन के क्रम में इस संस्थान में हरिऔध-रचित 'ठेठ हिन्दी का ठाट' (सन् १८९९ ई०), अधखिला फूल (सन् १९०५ ई०) और व्रजनन्दन सहाय-कृत 'सौन्दर्योपासक' (सन् १९११ ई०) का प्रकाशन हुआ। 'ठेठ हिन्दी का ठाट' आई० सी० एस० की परीक्षा के हिन्दी-पाठ्यक्रम में स्वीकृत था। 'अधखिला फूल' में खड़ीबोली का प्रयोग द्रष्टव्य है। 'सौन्दर्योपासक' हिन्दी का मौलिक उपन्यास है, जो भावना-प्रधान उपन्यास की नई शैली में लिखा गया है। पाठकों ने इसका समुचित समादर किया।

---

१. इस ग्रन्थ का पाँचवाँ अध्याय देखें।

जीवनी-साहित्य :

जीवनी और आत्मकथा-साहित्य दोनों की उपलब्धि सामान्य पाठकों के लिए एक ही बात है। दोनों के अध्ययन से व्यक्ति को अपने चरित्र-निर्माण में प्रेरणा मिलती है, यद्यपि जीवनी की अपेक्षा आत्मचरित अधिक प्रेरणादायक होता है। इसलिए दोनों प्रकार के साहित्य का महत्त्व है। साहित्य की यह प्रतियोगी विधा है। खड्ग-विलास प्रेस ने हिन्दी-साहित्य की उपर्युक्त विधा पर साहित्य प्रकाशित कर जीवनी-साहित्य को वैभवशाली बनाया।

सन् १८८२ ई० में 'बिहार-दर्पण' के प्रकाशन से जीवनी-साहित्य की माला का शुभारम्भ हुआ। इस पुस्तक में बिहार के उन १९ महापुरुषों की जीवनियाँ संकलित हैं, जिन्होंने श्रम, साधना और सेवा से बिहार का गौरव बढ़ाया था। इसी क्रम में इस संस्था से साहित्यकारों की जीवनी का प्रकाशन शुरू हुआ। राधाकृष्णदास-कृत 'नागरीदास का जीवन-चरित्र' (सन् १८९४ ई०), दत्तकवि (कवि दुर्गादत्त) की जीवनी (सन् १८९६ ई०), टेकारी-दरबार के 'जवाहिर कवि' की जीवनी (सन् १८९७ ई०), प्रतापनारायण मिश्र की आत्मकथा 'प्रतापचरित्र' (जो पूर्ण न हो सका), अम्बिका दत्त व्यास की आत्मकथा—'निज वृत्तान्त' (सन् १९०१ ई०), कर्नल जेम्स टाड की जीवनी (सन् १९०२ ई०), रामदीन सिंह की जीवनी (सन् १९०३ ई०), सप्तम एडवर्ड की जीवनी (सन् १९०४ ई०), राधाकृष्णदास की जीवनी (सन् १९०७ ई०), भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की जीवनी (सन् १९०५ ई०); बलदेवप्रसाद मिश्र की जीवनी (सन् १९०८ ई०), साहबप्रसाद सिंह की जीवनी (सन् १९०५ ई०), मीराबाई की जीवनी, भगवान् रूपकला की जीवनी (सन् १९२७ ई०), फ्रेडरिक पिन्काट-कृत 'विक्टोरिया-चरित' (सन् १८९४ ई०) का प्रकाशन इस प्रेस से हुआ। प्रत्येक पुस्तक में सम्बद्ध साहित्यकारों का स्वतन्त्र जीवन-चरित दिया गया है। जीवनी-लेखन के क्षेत्र में यह अनुकरणीय प्रयास था।

यात्रा-साहित्य :

गद्यात्मक विधा के साहित्य में, यात्रा-साहित्य की एक विशेष प्रकार की संजीदगी होती है। ऐसी कृतियों के माध्यम से घर बैठे दर्शनीय स्थलों की जानकारी होती है और ज्ञानवर्द्धन के साथ-साथ मनोरंजन भी होता है। इस क्षेत्र में इस संस्था से छह यात्रा-विवरणों के प्रकाशन हुए। भारतेन्दु-युगीन प्रखरमति साहित्यकार पण्डित दामोदर शास्त्री-कृत 'मैं वही हूँ' (सन् १८८६ ई०), 'मेरी पूर्व-दिग्यात्रा' (सन् १८८५ ई०), 'मेरी दक्षिण-दिग्यात्रा' (सन् १८८६ ई०), और 'मेरी जन्मभूमि-यात्रा' (सन् १८८८ ई०) यहाँ से प्रकाशित हुए। इन चारों पुस्तकों में उन्होंने अपने जन्मस्थान से काशी और चारों धाम की यात्रा का वर्णन किया है, जो रोचक और ज्ञानवर्द्धक है। यद्यपि इन पुस्तकों की भाषा बहुत अच्छी नहीं है, तथापि इनकी धार्मिक और साहित्यिक दृष्टि स्पष्ट रूप से पाठकों को प्रभावित करती है। साथ ही इनके समकालीन अनेक साहित्यकारों के सम्बन्ध में जानकारी मिलती है।

यात्रा-साहित्य के क्रम में भारतेन्दु के अभिन्नहृदय मित्र व्यास रामशंकर शर्मा ने 'पंजाब-यात्रा' (सन् १६०७ ई०) और 'परिभ्रमण' (सन् १९०६ ई०) नामक दो पुस्तकें लिखीं। इन दोनों की विषयवस्तु काशी से पंजाब की यात्रा है। जाते समय आगरा और दिल्ली के भ्रमण के सम्बन्ध में लेखक ने रोचक विवरण प्रस्तुत किया है। पुस्तक 'डायरी-शैली' और सरल प्रवाहमय गद्य में लिखी गई है। सम्भवतः उन्नीसवीं सदी में हिन्दी-साहित्य में भारतेन्दु के लेखों के बाद यात्रा-पुस्तक लिखने का इन लेखकों का प्रथम प्रयास था। इससे हिन्दी के यात्रा-साहित्य को अग्रगति मिली।

निबन्ध-साहित्य :

हिन्दी में निबन्ध-लेखन की शुरुआत भारतेन्दु-युग के लेखकों ने की। भारतेन्दु की पत्रकारिता के साथ निबन्ध-लेखन की परम्परा आरम्भ हुई। 'कविवचन-सुधा' और 'हरिश्चन्द्र -मैगजीन' या 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' के माध्यम से हिन्दी में अच्छे निबन्ध लिखे गये। खड्गविलास प्रेस भारतेन्दु-साहित्य के प्रकाशन का प्रमुख केन्द्र था। इसलिए उनकी रचनाएँ इस प्रेस से छपीं। साथ ही समकालीन लेखकों की निबन्ध-पुस्तकें यहाँ से प्रकाशित हुईं।

राधाचरण गोस्वामी का 'नापित-स्तोत्र' (सन् १८८२ ई०), रामचरित्र सिंह का 'हास-विलास' (सन् १८८२ ई०), खड्गबहादुर मल्ल का 'विजयादशमी-चरित' (सन् १८८४ ई०),'लेक्चर' (सन् १८८६ ई०), 'बालोपदेश' (सन् १८८७ ई०), 'सद्धर्म-निरूपण', अम्बिकादत्त व्यास का 'दयानन्द-मतमूलोच्छेद' (सन् १८८५ ई०), हरिश्चन्द्र का 'संगीतसार' (सन् १८८६ ई०), 'वैष्णवता और भारतवर्ष' (सन् १८९५ ई०), 'वैष्णवता' (सन् १८८९ ई०),'हिन्दी-भाषा' 'कंकड़स्तोत्र','गो-महिमा' (सन् १८९० ई०),'विविध प्रबन्ध (सन् १८९० ई०), शेरबहादुर सिंह का 'वेश्यास्तोत्र' (सन् १८९० ई०), प्रतापनारायण मिश्र का 'शैवसर्वस्व' (सन् १८९० ई०), 'सुचाल-शिक्षा'(सन् १८९१ ई०), और चन्द्रशेखर शास्त्री का 'भरत-चरित्र' (सन् १९२९ ई०)—इस प्रकाशन संस्था की उल्लेखनीय निबन्ध-पुस्तकें हैं। निबन्ध की आत्मा वैयक्तिक निबन्ध में होती है। उस युग के वैयक्तिक निबन्धकारों में प्रतापनारायण मिश्र और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के निबन्ध ही उस स्तर के निबन्ध हैं। शेष लेखकों के निबन्ध लेख की कोटि में रखे जा सकते हैं। इस प्रकार इस प्रेस ने साहित्यिक निबन्धों का प्रकाशन कर निबन्ध-साहित्य को नई दिशा दी।

शीतलाप्रसाद सिंह-कृत 'उपदेश-कुसुमाकर' (सन् १८९२ ई०) भी निबन्धों का संकलन है। सभी निबन्ध बालकों के लिए लिखे गये हैं, जिनमें उपदेशात्मकता अधिक है। क्षमा, धैर्य, मूर्खता, भाई-भाई का प्रेम जैसे विषयों पर निबन्ध संकलित हैं।

आलोचना :

उन्नीसवीं सदी में हिन्दी-साहित्य का विकास तेजी से हो रहा था। अतः आलोचनात्मक साहित्य की रचना नहीं हो सकी। इस दिशा में इस संस्था ने ध्यान अवश्य दिया। हिन्दी के आलोचनात्मक साहित्य की रचना के लिए लेखकों से आग्रह किया गया।

इस प्रयत्न के फलस्वरूप दो आलोचनात्मक कृतियों का प्रकाशन हो सका, जिनका हिन्दी-साहित्य में विशेष स्थान है। उनके नाम हैं : 'सचित्र हरिश्चन्द्र का जीवन-चरित्र' (सन् १९०५ ई०) और 'मुहावरा' (सन् १९२७ ई०)।

भारतेन्दु हरिचन्द्र की जीवनी हिन्दी-साहित्य की ऐसी आलोचनात्मक कृति है, जिसमें भारतेन्दु के प्रामाणिक जीवन-चरित्र के साथ ही उनकी कृतियों का साहित्यिक और आलोचनात्मक मूल्यांकन किया गया है। इसमें अत्यन्त प्रामाणिक जानकारी दी गई है। आज भी यह ग्रन्थ अपने-आप में अकेला है और भारतेन्दु-साहित्य की जानकारी के लिए आकर-ग्रन्थ के रूप में स्वीकृत है।

दूसरी पुस्तक हरिऔधकृत 'मुहावरा' है। इस पुस्तक में अत्यन्त विद्वत्ता के साथ हिन्दी-मुहावरों और बोलचाल की भाषा में उनके उपयोग पर गम्भीरता के साथ विचार किया गया है। इस विषय पर यह अकेली पुस्तक है। यह पुस्तक सन् १९२७ ई० में इस संस्था से प्रकाशित हुई थी।

व्याकरण :

शब्द या वाक्य जिस नियम से अनुशासित होता है, उसे व्याकरण या शब्दानुशासन कहते हैं। किसी भी भाषा का अनुशासन उसके व्याकरण से होता है। इसलिए प्रत्येक भाषा का अपना व्याकरण होता है। हिन्दी-भाषा का अपना व्याकरण है। उन्नीसवीं सदी में हिन्दी-व्याकरण लिखने का कई बार प्रयास हुआ। अनेक अच्छे व्याकरण प्रकाशित भी हुए। खड्गविलास प्रेस ने इस दिशा में भगीरथ-कार्य किया।

इस संस्था से चण्डीप्रसाद सिंह-कृत 'वर्ण-विनोद' (सन् १८८३ ई०), भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का 'हिन्दी-व्याकरण' (सन् १८८३ ई०), कन्हैयाप्रसाद मिश्र का 'लघु व्याकरण' (सन् १८८५ ई०), 'लेख-नियम' (सन् १८८४ ई०) और 'बाल-चन्द्रिका' (सन् १८९० ई०), भाषा-व्याकरण-दर्शन का प्रकाशन हुआ। ये सभी पुस्तकें व्याकरण-पाठ्य-पुस्तक स्तर की और छोटे दर्जे के विद्यार्थियों के लिए थीं। इन व्याकरण-पुस्तकों को हिन्दी का प्रतिनिधि व्याकरण नहीं कहा जा सकता था। ऐसे व्याकरण की आवश्यकता थी, जिसे हिन्दी का परिनिष्ठित व्याकरण कहा जा सके। अतः रामदीन सिंह ने तारणपुर-निवासी रामचरण सिंह से हिन्दी का व्याकरण 'भाषा-प्रभाकर' (सन् १८८४ ई०) लिखवाकर प्रकाशित किया।

'भाषा-प्रभाकर' हिन्दी का मानक व्याकरण रहा है, जिसमें व्याकरण के विभिन्न अंगों पर सूक्ष्मतापूर्वक विचार किया गया है। हिन्दी-व्याकरण-सम्बन्धी २८३ नियम बनाये गये। इन नियमों के अनुसार हिन्दी-भाषा पर अनुशासन का प्रयत्न किया गया। साथ ही इस पुस्तक में छन्दों पर भी विचार किया गया। छन्द-सम्बन्धी ९६ नियम बनाये गये। छन्दों के लक्षण और उदाहरण भी दिये गये। यह व्याकरण इतना लोक-प्रिय हुआ कि इसके चार संस्करण प्रकाशित हुए। विदेशी विद्वानों ने इसकी सराहना की। इस प्रेस का ऐसा सौभाग्य था कि हिन्दी-पुस्तकों की लन्दन के अँगरेजी-पत्रों में

समीक्षा प्रकाशित की गई थी। समकालीन लन्दन के 'ओवरलैण्ड मेल' और 'होमवार्ड मेल' ने इस पुस्तक की समीक्षा करते हुए लिखा था :

THE

OVERLAND MAIL & HOMEWARD MAIL

December 4 & 8, 1885

A HINDI GRAMMAR[१]

The Bhashaprabhakar by a Zamindar of Taranpur is a much more crefully prepared book than is usual in India. The author has set to work in a critical spirit, having first collected all the Hindi Grammars of which he had any knowledge, both native and European, with the object of producing a new book which should supplement their deficiencies and avoid their errors. He has been successful to a creditable extent, and many of his statements give native sanction to the novelties (by some called heresies) which appeared in this country in Pincott's 'Hindi Manual'. "Babu Ram Charan gives the forms BAITH RAHA and BAITH RAHA THA as regular tenses of verbs, just as was done for the first time by the author of the 'Hindi Manual', and he goes further by allowing a conditional form also, such as BAITH RAHA HOGA. The assertions that all verbs of saying and speaking require the ablative, and that Karake is interchangeable with se, will be interesting to those Europeans who have read modern Hindi attentively. It will be new to many to hear that TUMARA is considered a recent improvement on TUMHARA. A rather novel feature in this book is an explanation of the English marks of punctuation, and the use of such marks throughout the volume."

शब्दकोश :

किसी भी साहित्य का सौष्ठव और उसकी गरिमा का संकेत उसके शब्दकोश से मिलता है। जो भाषा जितनी अधिक समृद्ध होती है उसकी शब्द-संख्या भी उतनी ही अधिक होती है। शब्द-भाण्डार को स्मृति में रखना और एक शब्द के अनेक पर्याय को जान पाना हर व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं है। इसलिए शब्दकोश-निर्माण की आवश्यकता होती है। खड्गविलास प्रेस ने इस दिशा में प्रकाशन किये।

इस संस्था ने सबसे पहले नन्ददासकृत पुराना शब्दकोश 'अनेकार्थ भाषा' (सन् १८८४ ई०), चन्दनरामकृत नामार्णव (सन् १८८२ ई०) और रामदासकृत 'शब्दार्थ-प्रकाश' (सन् १९०६ ई०) का प्रकाशन किया। ये सभी शब्दकोश सामान्य कोटि के थे। वास्तव में ये पर्यायवाची कोश थे। अतः सामान्य जानकारी की दृष्टि से उस समय के लिए ये उपयोगी शब्दकोश थे।

---

१. *Bhashaprabhakar* : A Grammar of the Hindi Language by Babu Ram Charan Singh, Khadgavilas Press, Bankipore, Behar.

इस संस्था ने भागलपुर के मुन्दीचक ग्राम-निवासी बाबा बैंजूदासकृत 'विवेककोश' (सन् १८९२ ई०) का प्रकाशन किया था। इस कोश की रचना बाबा बैंजूदास ने सं० १९११ वि० में की थी। इस कोश को संशोधित और परिवर्द्धित कर शीतलप्रसाद सिंह ने इसका सम्पादन किया था। इस शब्दकोश का पहला संस्करण सन् १८९२ ई० में प्रकाशित हुआ। इस वैशिष्ट्य का प्रतिपादन करते हुए संपादक ने लिखा था :

"इस कोश में चमत्कार यह है कि साहित्य जाननेवालों के सिवाय वैद्य, कवि, वैयाकरण इत्यादि को भी लाभ पहुँच सकता है; क्योंकि औषधि तथा रोगों के नाम; पिंगल के छन्द, जातिवाचक शब्दों के भेद और यौगिक शब्द इत्यादि बनाने की रीति उत्तम प्रकार से लिखी गई है।"

धार्मिक साहित्य :

उन्नीसवीं सदी के साहित्यकारों में आधुनिक चेतना के साथ धर्म के प्रति आस्था थी। धर्म सम्प्रदाय रूप में नहीं, बल्कि सांस्कृतिक चेतना के प्रतीक-रूप में था। अतः धार्मिक साहित्य की भी समकालीन साहित्यकारों ने रचना की। खड्गविलास प्रेस ने धार्मिक रचनाओं का प्रकाशन किया।

इस संस्था ने धार्मिक कोटि की जिन रचनाओं का प्रकाशन किया उनमें 'तदीय सर्वस्व' (सन् १८८४ ई०), पुनपुना-माहात्म्य (सन् १८८६ ई०), सनातन धर्म की जय (सन् १८८७ ई०), कार्त्तिक-नैमित्तिक कृत्य (सन् १८९० ई०), मार्गशीर्ष-महिमा (सन् १८९० ई०), कार्त्तिक-कर्मविधि (सन् १८९० ई०), सांख्य-तरंगिणी (सन् १८९१ ई०), अबोधध्वान्त मार्त्तण्ड (सन् १८९२ ई०), गंगास्थिति-समय-मीमांसा (सन् १८९४ ई०), पातंजल दर्शन-प्रकाश (सन् १८९७ ई०), संस्कृत में नित्य तर्पण-विधि (सन् १९२२ ई०), साधन-संग्रह (सन् १९०० ई०), श्रीगंगा-माहात्म्य (सन् १९०४ ई०), श्रीशंकरप्रसाद-मीमांसा (सन् १९१२ ई०), षोडशी पूजा, भक्तिसूत्र वैजयन्ती (सन् १८८९ ई०) और वैष्णव-सर्वस्व उल्लेखनीय हैं। पुस्तकें मौलिक या संस्कृत-ग्रन्थों की टीका-सहित हैं।

सामान्य जनता की सांस्कृतिक चेतना को उद्बुद्ध बनाये रखने में ऐसे ग्रन्थों की आवश्यकता थी, जिसकी पूर्त्ति खड्गविलास प्रेस ने की। उपर्युक्त पुस्तकों में सभी पूजा-पाठवाले ही ग्रन्थ नहीं थे, बल्कि भारतीय दर्शन का प्रतिपादन करनेवाले ग्रन्थ भी थे। 'पातंजल दर्शन-प्रकाश' भारतीय हठयोग पर प्रकाश डालनेवाली महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। इन प्रकाशित सभी पुस्तकों का अपना महत्त्व है।

इतिहास-ग्रन्थ :

हिन्दी में इतिहास-ग्रन्थ लिखने का सबसे पहला प्रयास राजा शिवप्रसाद 'सितारे-हिन्द' ने किया था। उन्होंने सन् १८६४ ई० में 'इतिहास-तिमिर-नाशक' की रचना की थी। वह हिन्दी में भारतीय इतिहास की प्रथम प्रामाणिक पुस्तक थी। उसके बाद हिन्दी में उस पुस्तक पर आधारित अन्य पुस्तकें और वह पुस्तक भी पाठ्य-पुस्तक-

रूप में स्वीकृत रहीं। फिर भी हिन्दी में भारतीय इतिहास-सम्बन्धी पुस्तकों का अभाव बना रहा। खड्गविलास प्रेस ने इस अभाव की पूर्त्ति का प्रयास किया।

भारतेन्दु-हरिश्चन्द्र की पुस्तक 'बूँदी का इतिहास' (सन् १८८२ ई०), खत्रियों की उत्पत्ति (सन् १८८३ ई०), कालचक्र (सन् १८९२ ई०), बादशाह-दर्पण (सन् १८८४ ई०), काश्मीर-कुसुम और पुरावृत्त-संग्रह का भी प्रकाशन किया। दामोदर शास्त्री के 'चित्तौर-गढ़' (सन् १८९० ई०) का प्रकाशन किया। राजा श्यामलदास ने उदयदुर-राजवंश का इतिहास लिखा था, जिसका (सन् १९२४ ई०) में प्रकाशन हुआ। ये सभी किसी राज-विशेष के इतिहास या क्षेत्र-विशेष के इतिहास हैं। 'नेपाल का इतिहास' (सन् १९०९ ई०) इसी ढंग का है। इस प्रकार अलग-अलग पुस्तकों से भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में जानकारी होती है।

इस संस्था ने भारतीय इतिहास पर दो-तीन महत्त्वपूर्ण मौलिक कृतियों का प्रकाशन किया। इनमें दीनदयाल सिंह-कृत 'भारतवर्षीय इतिहास' (सन् १८९० ई०) मौलिक और प्रामाणिक कृति है। इस पुस्तक में पृथ्वी के आदिकाल से ब्रिटिश साम्राज्य-काल तक के इतिहास का विवेचन किया गया है। यह पुस्तक लोकप्रिय भी हुई। दूसरी पुस्तक उमानाथ मिश्रकृत 'हिन्दुस्तान का इतिहास' (सन् १९०६ ई०) थी, जो बिहार के स्कूलों में पाठ्य-पुस्तक के रूप में स्वीकृत थी।

बँगला-पुस्तकों का हिन्दी-अनुवाद

पुनर्जागरण का आगमन वंग-प्रदेश में हुआ। वहीं से उसकी लहर देश के विभिन्न भागों में फैली। इसीलिए आधुनिकता का प्रभाव वहाँ अत्यधिक है। अँगरेजी शिक्षा के प्रचार और प्रसार के कारण ज्ञान-भाण्डार में भी सबसे पहले अभिवृद्धि वहीं हुई। इसी कारण बँगला में आधुनिक साहित्य का प्राचुर्य है। साहित्य की विभिन्न विधाओं को बँगला-भाषा में परिपुष्ट करने का अधिक प्रयास भी हुआ।

बंकिम-साहित्य :

आधुनिक गद्य-साहित्य की प्रमुख और प्रचलित विधा उपन्यास का, हिन्दी की अपेक्षा, सबसे पहले प्रणयन और विकास बँगला में हुआ। इसमें बँगला के दो उपन्यकासारों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। वे थे बंकिमचन्द्र वन्द्योपाध्याय और शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय। दोनों बँगला-उपन्यास-साहित्य की विभूति थे। जिन दिनों हिन्दी में अँगुली पर गिनने के लिए भी उपन्यास नहीं थे, उन दिनों इन उपन्यास-सम्राटों की बँगला-उपन्यास-जगत् में धूम मच चुकी थी। हिन्दी-पाठकों के समक्ष ऐसी कोई रचना हिन्दी में नहीं थी, जिसे इतने चाव से पढ़ा जा सके। इसीलिए बँगला-उपन्यास के अनुवाद की ओर दृष्टि गई।

इस प्रेस की स्थापना के बाद रामदीन सिंह का ध्यान उपन्यास-साहित्य की ओर भी गया। तबतक हिन्दी में मौलिक उपन्यास लिखा नहीं गया था। जो उपन्यास

थे, वे केवल नाम लेने के लिए थे। इसलिए हिन्दी में बँगला से अनुवाद के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प न था। इस दिशा में सर्वप्रथम प्रयास गदाधर सिंह ने किया था। उन्होंने सन् १८७०-७२ ई० के आसपास बंकिमचन्द्र की 'दुर्गेशनन्दिनी' उपन्यास का हिन्दी-रूपान्तर 'कविवचन-सुधा' में प्रकाशित कराया। अनुवाद और प्रकाशन के लिए बंकिम बाबू से अनुमति नहीं ली गई थी। इस कारण उन्होंने इसके प्रकाशन पर आपत्ति की। पण्डित रामनारायण प्रभाकर ने बंकिम बाबू से प्रकाशन की अनुमति माँगी। उन्होंने अनुमति नहीं दी। सात-आठ वर्षों तक निरन्तर प्रयास के बाद कुछ लाभांश पर प्रकाशन की अनुमति मिली। यह पुस्तक सन् १८८२ ई० में प्रकाशित हो सकी।

बंकिम बाबू के उपन्यास बंगाल में लोकप्रिय और अत्यधिक प्रचलित हो रहे थे। हिन्दी-पाठक भी उन्हें पढ़ना चाहते थे। रामदीन सिंह की दृष्टि उस ओर गई। संयोग की बात है कि बंकिम बाबू के पिता पटना में सदरे-आला थे। बंकिम बाबू अपने पिता के पास पटना आये। यह सूचना बाबू रामदीन सिंह को मिली। वे बंकिम बाबू से मिले। उन्हें अपने प्रेस में बुला ले आये। उन्हें अपना संग्रहालय दिखाया। देखकर वे बहुत प्रभावित हुए। बाबू साहब ने उनसे उनके उपन्यासों के हिन्दी-अनुवाद की इच्छा प्रकट की। उन्होंने सहर्ष सुझाव मान लिया और अपने समस्त उपन्यासों के हिन्दी-अनुवाद का एकाधिकार दे दिया। खड्गविलास प्रेस को दिये गये उनकी पुस्तकों के प्रकाशन के अधिकार की चर्चा करते हुए एक लेखिका ने लिखा है :

"मैं जहाँ तक जानती हूँ स्वर्गीय बंकिम बाबू की कुल पुस्तकों के हिन्दी-अनुवाद का अधिकार खड्गविलास प्रेस के स्वामी ने ले लिया था। न मालूम किस तरह से ये लोग बिना अनुमति लिये उनकी पुस्तकें छापने का साहस करते हैं।"[1]

एक स्थान पर रामदीन सिंह के ज्येष्ठ पुत्र रामरणविजय सिंह ने लिखा है कि बंकिम बाबू के पिता पटना में सदरे-आला थे। बंकिम बाबू कलकत्ता से पटना अपने पिता से मिलने आये। रामदीन सिंह को यह सूचना मिली। उनका परिचय बंकिम बाबू के पिता से था। उनके पिता से आग्रह कर वे बंकिम बाबू को अपने खड्गविलास प्रेस में ले आये। बाबू साहब ने अपना संग्रहालय दिखाया। बँगला-पुस्तकों का हिन्दी-अनुवाद, जिसे उन्होंने प्रकाशित किया था, दिखाया। उनसे उनके उपन्यासों का हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित करने के लिए आग्रह किया। बंकिम बाबू रामदीन सिंह से अत्यन्त प्रभावित हुए। उन्होंने अपनी रचनाओं के अनुवाद और प्रकाशन का अधिकार दिया। बाबू साहब ने उनकी समस्त कृतियों का हिन्दी-अनुवाद छापा। बंकिम बाबू की औपन्यासिक कृतियों में राजसिंह, राधारानी, इन्दिरा, युगलांगुरीय, कपालकुण्डला, कृष्णकान्त का दानपत्र, दुर्गेशनन्दिनी, चन्द्रशेखर, देवी चौधुरानी और रजनी का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया। इन उपन्यासों के अनुवादक भारतेन्दु-युग के

---

१. 'समालोचक', दूसरा भाग, जनवरी-फरवरी, पृ० २६०

प्रमुख साहित्यकार रहे हैं। अनुवादकों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र, प्रभुदयाल पाण्डेय, किशोरीलाल गोस्वामी, ब्रजनन्दन सहाय, अक्षयवट मिश्र, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' और राधाकृष्ण दास थे।

बंकिमचन्द्र के उपन्यासों के अनुवाद की भाषा ऐसी रखी गई, जो सरल और बोधगम्य हो। सामान्य पाठक भी विना किसी परेशानी के उसे समझ सके। यही कारण है कि उनके उपन्यासों के हिन्दी-संस्करण अत्यधिक लोकप्रिय हुए। वस्तुतः इन उपन्यासों के माध्यम से हिन्दी के स्वरूप का निखार हुआ। इन उपन्यासों में हिन्दी-भाषा के जिस स्वरूप को प्रचलित किया गया था, उसका उदाहरण निम्नलिखित है, जो 'इन्दिरा' से लिया गया है :

"बहुत दिन पीछे मैं ससुराल जाती थी। मैं उन्नीस वर्ष की हो गई थी, तथापि आज तक ससुर के घर का काम-काज नहीं किया। इसका कारण यह है कि मेरे पिता धनी और ससुर दरिद्र हैं, विवाह के कुछ दिन पीछे ससुर ने मुझे ले जाने के लिये आदमी भेजा था, किन्तु पिता ने नहीं भेजा, बोले कि, 'समधीजी से कहना कि पहिले जामाता द्रव्य उपार्जन करना सीखें,—तब बहू को ले जायँ—अभी हमारी बेटी को खिलावेंगे क्या' ?"

बंकिमचन्द्र के उपन्यासों के अतिरिक्त बँगला के अन्य उपन्यासकारों में नगेन्द्रनाथ गुप्त के 'अमरसिंह', हरप्रसाद शास्त्री के 'राजकुमार कुणाल', पूर्णचन्द्र चट्टोपाध्याय की 'मधुमती' और 'मृण्मयी' का हिन्दी-अनुवाद इस प्रेस ने प्रकाशित किया। इस प्रकार हिन्दी में उपन्यास-साहित्य के अभाव की पूर्त्ति कर हिन्दी-पाठकों को हिन्दी पढ़ने के लिए प्रेरित किया।

जीवन-चरित :

महापुरुषों के जीवन-चरित का अध्ययन किसी भी युवक के चरित्र-निर्माण में प्रेरणा-दायक होता है। इसीलिए भारतीय साहित्य में चरित्र-लेखन की परम्परा रही है। अन्य साहित्य की भाँति बँगला में इस दिशा में भी पर्याप्त काम हो चुका था। बँगला के प्रसिद्ध लेखकों में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, रजनीकान्त गुप्त, वीरेश्वर पाण्डेय प्रभृति ने अनेक भारतीय एवं विदेशी महापुरुषों के जीवन-चरित लिखे थे। खड्ग-विलास प्रेस ने उन जीवन-चरितों का हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित किया। इस ढंग की कृतियों में चरिताष्टक, चरितावली, आर्यकीर्त्ति और आर्यचरित का प्रतापनारायण मिश्र, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' और राधाकृष्ण दास जैसे साहित्यकारों ने हिन्दी-अनुवाद प्रस्तुत किया।

'चरितावली' में विदेशी महापुरुषों की जीवनी और उनकी उपलब्धियों की चर्चा है। 'आर्यकीर्त्ति' में भारतीय मनीषियों का जीवन-परिचय है। 'चरिताष्टक' में बंगाल के महापुरुषों का जीवन-परिचय और उनके द्वारा देश के निर्माण में किये गये अंशदान का मूल्यांकन किया गया है। ऐसे महत्त्वपूर्ण साहित्य का हिन्दी-अनुवाद

प्रकाशित कर उक्त प्रेस ने हिन्दीभाषी युवकों के चरित्र-निर्माण में योगदान किया और साथ ही हिन्दी में इस विधा-विशेष के अभाव की पूर्त्ति की।

निबन्ध :

बँगला में विविध विषयों से सम्बद्ध निबन्धों के अनेक संकलन प्रकाशित हो चुके थे। हिन्दी में ऐसे संकलनों का प्रायः अभाव था। इसलिए यह आवश्यक था कि ऐसे निबन्धों का अनुवाद हिन्दी में प्रस्तुत किया जाय। इस दिशा में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की 'आख्यान-मंजरी' (तीन भाग), कथामाला, जो छोटी-छोटी कहानियों का संग्रह है, कृष्णानन्द स्वामी पारिव्राजक के 'पंचामृत' का हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित किया गया। 'पंचामृत' दर्शन-विषयक पुस्तक है। इन सभी पुस्तकों के अनुवादक हिन्दी के विशिष्ट साहित्यकार रहे हैं। इसलिए अनुवाद में मूल की आत्मा को उन्होंने जीवित रखा है।

स्वास्थ्य-विषयक पुस्तकें :

मानव-जीवन का मूलभूत अंग उसका स्वास्थ्य होता है। इसलिए स्वस्थ रहने के लिए क्या करना चाहिए, इसकी जानकारी आवश्यक है। इस दृष्टि से इस विषय पर बँगला में उपलब्ध स्वास्थ्य-विषयक महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का हिन्दी-अनुवाद कराया गया। बँगला के लेखकों में रामचरण सेन, गंगाप्रसाद मुखोपाध्याय, यदुनाथ मुखर्जी, राय राधिकाप्रसन्न मुखर्जी की 'नियुक्तशिक्षा' (व्यायाम और कुश्ती-कला के सम्बन्ध में), 'मातृशिक्षा', 'शरीर-पालन', 'स्वास्थ्य-रक्षा', 'सरल स्वास्थ्य-रक्षा' और 'स्वास्थ्य-विद्या' का हिन्दी-अनुवाद प्रस्तुत किया गया। स्वस्थ रहने के लिए स्वास्थ्य-सम्बन्धी जिन बातों की जानकारी होनी चाहिए, उनकी जानकारी हमें इन पुस्तकों से मिलती है। 'शरीर-पालन' नामक पुस्तक में तेल की स्वास्थ्यजनित उपयोगिता का निदर्शन करते हुए कहा गया है :

"सर्सों के तेल में गन्धक का अंश है। इसलिये शरीर में मलने से खुजली, दाद वगैरह जाते रहते हैं। सर्सों का तेल बर्रे की मशहूर दवा है। तेल का जैसा गुण समझते थे वैसा दुनिया के और किसी मुल्क के हकीम डाक्टर आजतक नहीं समझते हैं। वैदक शास्त्र के मत से पुराने कठिन रोग में तेल मलना फायदे की बात है।"

इस प्रकार बँगला से स्वास्थ्य-सम्बन्धी उपयोगी पुस्तकों का प्रकाशन कर हिन्दी के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त कमी को दूर करने का श्लाघ्य प्रयास किया गया।

बँगला-पाठ्यपुस्तकों का हिन्दी-अनुवाद :

बँगला-साहित्य में आधुनिकता और रचनात्मक भावबोध सबसे पहले आया। इसीलिए बँगला-साहित्य और भाषा के विधा-वैभिन्न्य का विकास पहले हुआ। बँगला भाषा शिक्षा के माध्यम के रूप में हिन्दी से पहले स्वीकृत हुई। अतः बँगला में पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण पहले हुआ। अच्छी-अच्छी पाठ्य-पुस्तकें तैयार की गईं। जब

बिहार में शिक्षा के माध्यम के रूप में हिन्दी को मान्यता मिली तब विद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जाने लगी। लेकिन तबतक हिन्दी में पाठ्य-पुस्तकों का अभाव था और हिन्दी में सभी विषयों की पुस्तकें तत्काल तैयार करना सम्भव भी न था। अतः बँगला-पाठ्य-पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद ही एकमात्र सहज और सरल उपाय था। इसलिए खड्गविलास प्रेस ने हिन्दी में मौलिक पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण के साथ ही बँगला की विभिन्न विषयों की पाठ्य-पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद कराया और उनका प्रकाशन भी किया।

प्रारम्भिक कक्षा के लिए ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का 'वर्ण-परिचय' (सन् १८९५ ई०), जिसमें ककहरा और शब्द-निर्माण की जानकारी दी गई है, 'बोधोदय' (सन् १८९४ ई०), तिनकौड़ी वन्द्योपाध्याय की 'शिशु-रामायण' (सन् १८९४ ई०), वीरेश्वर पाण्डेय का 'शिशु-विज्ञान' (सन् १८९६ ई०) और मदनमोहन तर्कालंकार की 'शिशु-शिक्षा' (तीन भाग, सन १८९३ ई०) का हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित किया गया। ये सभी अनूदित पुस्तकें बिहार के विद्यालयों में पाठ्य-पुस्तक के रूप में मान्य थीं। इन्हीं का प्रचलन तेजी के साथ हुआ।

बालोपयोगी इतिहास की पुस्तकें भी बँगला से अनूदित हुईं। इस तरह की रचनाओं में ईशानचन्द्र घोष का 'बंगाल का इतिहास' (सन् १८९६ ई०), रामगति न्यायरत्न का 'बंगाल का इतिहास' (सन् १८९८ ई०), राजकृष्ण मुखर्जी-कृत 'सूबे बंगाल का इतिहास' (सन् १८९१ ई०) और 'सेन राजगण' (सन् १८९१ ई०) का प्रकाशन किया गया। ये सभी पुस्तकें बिहार के स्कूलों में पाठ्यक्रम में इतिहास-पुस्तक के रूप में निर्धारित थीं।

चन्द्रनाथ वसुकृत बँगला की पाठ्य-पुस्तक 'भाषा·नूतन पाठ' का सन् १९०२ ई० में अनुवाद प्रस्तुत किया गया। बिहार की पाठशालाओं के लिए यह स्वीकृत पुस्तक थी। संस्कृत के विद्यार्थियों के ज्ञान के लिए ईश्वरचन्द्र विद्यासागर-कृत 'व्याकरण-कौमुदी' (सात भागों में) का हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित किया गया। पुस्तक बहुत उपयोगी थी। यह हिन्दी और संस्कृत के छात्रों के लिए समान रूप से लाभकारी रही है।

अतः खड्गविलास प्रेस ने बँगला की पाठ्य-पुस्तकों का अनुवाद प्रस्तुत कर हिन्दी में पाठ्य-पुस्तकों की तात्कालिक समस्या का समाधान कर हिन्दी-भाषा के प्रचार में योग दिया और इस प्रकार बिहार की शिक्षा के विकास में सर्वथा प्रशंसनीय योगदान किया।

●

आठवाँ अध्याय

खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित ग्रन्थों की वर्गीकृत सूची

काव्य

क्रमांक	अनुक्रमांक	पुस्तक का नाम	लेखक	प्रकाशन-तिथि	संस्करण	आकार	पृष्ठ
१	२	३	४	५	६	७	८
१.	१	बिहारी बंशी बीसा	बिहारी सिंह	सन् १८८१ ई०		२१ × १२.२ सें०मी०	७
						५ × ८.५	
२.	२	बिहारी बसन्त विनोद	बिहारी सिंह	सन् १८८१ ई०		२१ × १२.२ ,,	९
						८.५ × ५ ,,	
३.	३	बिहारी नखशिख भूषण	बिहारी सिंह	सन् १८८१ ई०		२०.६ × १२.५ ,,	२०
४.	४	नवीन बिरहमासा	ब्रजवल्लभदास	सन् १८८१ ई०		२१ × १२.२ ,,	२८
५.	५	दामिनी-दूतिका	राधाचरण गोस्वामी	सन् १८८२ ई०		२१.२ × १३ ,,	५
६.	६	फाग-अनुराग	लाल खड्गबहादुर मल्ल	सन् १८८२ ई०	प्रथम	२१.२ × १३ ,,	४२
		फाग-अनुराग	,, ,, ,,	सन् १८८६ ई०	दूसरा	२१.२ × १३ ,,	४४
७.	७	पीयूषधारा	,, ,, ,,	सन् १८८२ ई०		२१.२ × १३ ,,	२८

१	२	३	४	५	६	७	८
८.	८	पावस प्रेम-प्रवाह	लाल खड्गबहादुर मल्ल	सन् १८८२ ई०		२१.२ × १३ सें०मी०	१६
९.	९	सुधाबूँद	,, ,, ,,	सन् १८८२ ई०	प्रथम	२२ × १३ ,,	७
१०.	१०	सुन्दरकाण्ड रामायण	तुलसीदास	सन् १८८३ ई०	प्रथम	२१ × १३.५ ,,	३१
				सन् १८८५ ई०	दूसरा	२१ × १३. ५ ,,	३४
११	११	प्रेमप्रलाप	हरिश्चन्द्र	सन् १८८३ ई०	प्रथम	२१ × १३ ,,	१३
१२.	१२	सुन्दरकाण्ड	तुलसीदास	सन् १८८४ ई०	तीसरा	१८.५ × ११. ५ ,,	७२
१३.	१३	सुधाबूँद	लाल खड्गबहादुर मल्ल	सन् १८८४ ई०	दूसरी बार	१८.२ × ११ ,,	२४
१४.	१४	रसिक-विनोद	,, ,, ,,	सन् १८८५ ई०	प्रथम	२२ × १३ ,,	३६
१५.	१५	Curiosities of Indian Literature	G. A. Grierson	सन् १८८५ ई०	प्रथम	१७ × ६ ,,	२५
१६.	१६	पावस-पचासा	अम्बिकादत्त व्यास	सन् १८८६ ई०	प्रथम	८.१ × ५ इंच	१६
				सन् १८८७ ई०	द्वितीय		
१७.	१७	स्फुट काव्य	बिहारी सिंह	सन् १८८७ ई०	प्रथम	८.५ × ५ ,,	६
१८.	१८	रसरहस्य	दिनेश द्विवेदी	सन् १८८७ ई०	प्रथम	८.५ × ५ ,,	११३
१९.	१९	अष्टयाम	सं० साहबप्रसाद सिंह नारायण कवि	सन् १८८७ ई०	प्रथम	८.१ × ५ ,,	४०
२०.	२०	रामचरितमानस	तुलसीदास	सन् १८८९ ई०	प्रथम	१४ × १०.५ ,,	८०+५०५
२१.	२१	भक्तसर्वस्व	हरिश्चन्द्र	सन् १८८८ ई०	प्रथम	९.२ × ५ ,,	२८
२२.	२२	होली	,,	सन् १८८९ ई०	प्रथम	९ × ६ ,,	३४
२३.	२३	प्रेममालिका	,,	सन् १८८९ ई०	प्रथम	२५ × १५.५ सें०मी०	३७
२४.	२४	सुजानशतक	घनानन्द (सं०हरिश्चन्द्र)	सन् १८८९ ई०	प्रथम	२४ × १६ ,,	१६
२५.	२५	कृष्णचरित	हरिश्चन्द्र	सन् १८८९ ई०	प्रथम	२४.५ × १६ ,,	३०

१	२	३	४	५	६	७		८
२६.	२६	मधुमुकुल	हरिश्चन्द्र	सन् १८८९ ई०	प्रथम	२५.५ × १६	सें०मी०	३८
२७.	२७	प्रेमतरंग	हरिश्चन्द्र	सन् १८८९ ई०	प्रथम	२५ × १६	,,	६४
				सन् १९२७ ई०	दूसरा	१८ × १२.५	,,	४४
२८.	२८	विदुरनीति	गोपालदास गिरधर	सन् १८९० ई०	प्रथम	२३ × १५	,,	४२
२९.	२९	वृन्दसतसई	वृन्दकवि; सं० जयप्रकाशलाल	सन् १८९०ई०	प्रथम	१८ × ११.५	,,	६८
३०.	३०	भावरसामृत	बाबा गुलाब सिंह	सन् १९९१ ई०	प्रथम	१८ × ४१/२	इंच	५०+१०
३१.	३१	उत्तरार्द्ध भक्तमाल	हरिश्चन्द्र	सन् १८९२ ई०	प्रथम	२४ × १५.५	सें०मी०	३६
३२.	३२	काव्यरत्नाकर	हरिशंकर सिंह	सन् १८९२ ई०	प्रथम	९ × ६	,,	५६
३३.	३३	श्रीशशिवंश-विनोद	गणेश सिंह	सन् १८९६ ई०	,,	३०.५ × २०	,,	१६१
३४.	३४	रामनीतिशतक	तुलसीदास स० रामदीन सिंह	सन् १८९३ ई०	प्रथम	२३ × १४.५	,,	८
३५.	३५	रामकलेवा-रहस्य	रामनाथ प्रधान	सन् १८९३ ई०	प्रथम	२३ × १५	,,	५५
३६.	३६	रामहोरी-रहस्य	रामनाथ प्रधान	सन् १८९३ ई०	प्रथम	२३ × १५	,,	४३
३७.	३७	Vaishnav Hymns	G. A. Grierson	सन् १८९३ ई०	दूसरा	१८ × १२	,,	३०
३८.	३८	नानकविनय	तेगबहादुर सं० रामदीन सिंह	सन् १८९३ ई०	प्रथम	९ ५ × ६ ५	इंच	३६
३९.	३९	श्रीमिथला-विलास	महात्मा शूरकिशोर	सन् १८९५ ई०	प्रथम	९ × ६	,,	२७
४०.	४०	लालित्यलता	दत्तकवि(जाजमऊवासी)	सन् १८९६ ई०	प्रथम	२४.५ × १५.५	सें०मी०	३७
४१.	४१	लोकोक्तिशतक	प्रतापनारायण मिश्र	सन् १८९६ ई०	प्रथम	२५.५ × १६.५	,,	११
४२.	४२	तृप्यन्ताम्	,, ,, ,,	सन् १८९६ ई०	प्रथम	१९.५ × १२.५	,,	३०
				सन् १९१४ ई०	दूसरा	१९ × १२.५	,,	२१

१	२	३	४	५	६	७	८
४३.	४३	उत्सवप्रकाशिका	परमहंसलाल दास	सन् १८९६ ई०	प्रथम	६ × ६ इंच	५४
४४.	४४	हनुमानबाहुक	तुलसीदास	सन् १८९७ ई०	प्रथम	२४.८ × १७ सें०मी०	१४
		कवित्तरामायण	सं० रामदीन सिंह				१६
४५.	४५	राधासुधाशतक	हठी सं० हरिश्चन्द्र	सन् १८९७ ई०	प्रथम	२४.५ × १६.५ ,,	२८
४६.	४६	जुबिली-साठिका	पुत्तनलाल सुशील	सन् १८९७ ई०		२१ × १२.५ ,,	३०
४७.	४७	प्रेमप्रलाप	हरिश्चन्द्र	सन् १८९७ ई०	प्रथम	२५ × १६.५ ,,	३३
४८.	४८	हनुमानबाहुक	तुलसीदास	सन् १८९७ ई०	प्रथम	२४ × १५.५ ,,	१४
४९.	४९	श्रीक्षेत्रज्ञान	स्वामी भंजनदेव	सन् १८९८ ई०	प्रथम	२३ × १५	
५०.	५०	Songs of Gopichand	G. A. Grierson	सन् १८९९ ई०		१८ × १३.५ ,,	४६
५१.	५१	रामनीतिशतक	तुलसीदास	सन् १८९९ ई०	दूसरा	२२ × १४ ,,	
५२.	५२	आल्हा	जी० ए० ग्रियर्सन	सन् १९०० ई०		२२.३ × १३.३ ,,	
५३.	५३	लेक्चर	इन्द्रदेव नारायण	सन् १९०० ई०	प्रथम	८ × ५.३ इंच	
५४.	५४	मानस : किष्किन्धाकाण्ड	तुलसीदास	सन् १९०० ई०	प्रथम	२२ × १३.५ सें मी०	१६
				सन् १९०५ ई०	दूसरा	१८ × १२ ,,	
				सन् १९०७ ई०	तीसरा		
				सन् १९१४ ई०	चौथा		
				सन् १९१५ ई०	पाँचवाँ		
५५.	५५	श्रीव्रजविनोद	ब्रजनन्दन सहाय	सन् १९०० ई०	प्रथम	९ × ५.५ इंच	
५६.	५६	सुदामाचरित	हलधर दास सं० प्रेम पाण्डेय	सन् १९०२ ई०	प्रथम	९ × ६ ,,	१५९
५७.	५७	भजनावली-शतक	गुलाब दास	सन् १९०४ ई०	प्रथम	८ × ४.५ ,,	४८

१	२	३	४	५	६	७	८
५८.	५८	रसरत्नाकर	गिरधरदास	सन् १९०६ ई०	प्रथम	२५.५ × १६.५ सें०मी०	२४
५९.	५९	कृष्ण-सुदामा	शिवनन्दन सहाय	सन् १९०७ ई०		२६ × १७ ,,	३८
६०.	६०	सत्यभामा-मंगल	ब्रजनन्दन सहाय	सन् १९०८ ई०		२४ × १५ ,,	
६१	६१	हितशिक्षा	पुत्तनलाल सुशील	सन् १९०८ ई०	प्रथम	२१.५ × १२.५ ,,	२२
६२.	६२	स्तोत्रपुष्पांजलि	पृथ्वीनाथ सिंह	सन् १९०९ ई०		१८.२ × १२ ,,	४१
६३.	६३	काव्योपवन	अयोध्यासिंह उपाध्याय	सन् १९०९ ई०	प्रथम	९.३ × ६ ३ इंच	११ + १७४ + ५
६४.	६४	सुमति-विनोद	शिवप्रसाद पाण्डेय 'सुमति'	सन १९१० ई०	प्रथम	२४ २ × १६ ५ सें०मी०	५२
६५.	६५	कवित्त-रामायण	तुलसीदास सं० रामदीन सिंह	सन् १९१० ई०	दूसरा	२४.५ × १६ ,,	११८
६६.	६६	माधुरी	हरिश्चन्द्र	सन् १९१० ई०	दूसरा	२४.५ × १६ ,,	८
६७.	६७	प्रियप्रवास	अयोध्यासिंह उपाध्याय	सन् १९१४ ई०	प्रथम	२२ × १३.५ ,,	१ + ५३ + २५५
			,, ,,	सन् १९२१ ई०	दूसरा	२२ × १३.५ ,,	५२ + २५२
			,, ,,	सन १९३० ई०	तीसरा	२२ × १३.५ ,,	५२ + २५२
६८.	६८	मन की लहर	प्रताप ना० मिश्र	सन् १९१४ ई०	प्रथम	२२.५ × १४ ,,	३६
६९.	६९	महासमर कवितावली	अयोध्यासिंह उपाध्याय	सन् १९१८ ई०	प्रथम	१९.५ × १२ ८ ,,	२४
७०.	७०	शिक्षादर्पण (संस्कृत)	कन्हैयालाल त्रिपाठी	सन् १९०५ ई०		१८.५ × ११.५ ,,	११०

१	२	३	४	५	६	७	८
७१	७१	सुधाबून्द	लाल खड्गबहादुर मल्ल	सन् १९१५ ई०	दूसरा	१८.५ × १२.८ सें०मी०	२०
७२.	७२	चौखे चौपदे	अयोध्यासिंह उपाध्याय	सन् १९२४ ई०	प्रथम	१८ × १२ ,,	२+२६७+५
७३.	७३	चुभते चौपदे	,, ,,	सन् १९२४ ई०	प्रथम	१६.५ × १० ,,	९+२४५
७४.	७४	प्रेमाश्रु-वर्षण	हरिश्चन्द्र	सन् १९२७ ई०	दूसरा	१७ × ११. ५ ,,	१९
७५.	७५	रागसंग्रह	हरिश्चन्द्र	सन् १९२७ ई०	दूसरा	१७ × ११.५ ,,	५५
७६.	७६	रसखान-शतक	प्रतापनारायण मिश्र	सन् १८९२ ई०	प्रथम	२४.५ × १६ ,,	३४
७७.	७७	जोगिन-लीला	लाल खड्ग-बहादुर मल्ल	सन् १८८३ ई०	प्रथम	२१.३ × १३.५ ,,	१३

काव्य : टीका

१	२	३	४	५	६	७	८
७८	१	किष्किन्धाकाण्ड :	तुलसीदास				
		मानस तत्त्व-प्रबोधिनी टीका	टी० शिवराम सिंह	सन् १८८६ ई०		२१.५ × १२ सें०मी०	९००
	२	रामललानहछू :	तुलसीदास				
		नेह-प्रकाशिका टीका	टी० बन्दन पाठक	सन् १८८९ ई०	प्रथम	२४.५ × १६. ५ ,,	१५
	३	सूरशतक	सूरदास टी० बालकृष्ण दास	सन् १८८९ ई०	प्रथम	२०.२ × १५.५ ,,	४६
	४	वैराग्यसंदीपिनी :	तुलसीदास :	सन् १८८९ ई०		२२.५ × १५.५ ,,	१२+५०
		नेह-प्रकाशिका टीका	टी० बन्दन पाठक				

१	२	३	४	५	६	७	८
	५	सूरशतक : पूर्वार्द्ध	सूरदास : टी० बालकृष्ण दास	सन् १८८९ ई०	प्रथम	२२.५ × १५.५ सें०मी०	४९
	६	साहित्य-लहरी	सूरदास : सरदार कवि	सन् १८९२ ई०	प्रथम	२३ × १५ ,,	२२०
	७	बरवा रामायण	तुलसीदास : टी० बन्दन पाठक	सन् १८९६ ई०	प्रथम	२४.५ × १६ ,,	५०
	८	रामायण परिचर्या-प्रकाश (बाल० से अयोध्या० तक)	तुलसीदास टी० हरिहर प्रसाद	सन् १८९८ ई०	प्रथम	३६ × २५ ,,	४+२४० +१८७
	९	रामायण परिचर्या-प्रकाश (अरण्य से उत्तरकाण्ड)	तुलसी-दास : टी० हरिहर प्रसाद	सन् १८९९ ई०	प्रथम	३६ × २५	४२+२८+६० +१०८+१३९
	१०	रसिकरहस्य	कबीर : हरिऔध	सन् १८९९ ई०	प्रथम	१८ × ११ ,,	१६
	११	मानसमयंक : बालकाण्ड	तुलसीदास	सन् १९०४ ई०		२५.५ × १७ ,,	६४
	१२	विनयपत्रिका	तुलसीदास : टी० हरिहर प्रसाद	सन् १९०५ ई०	प्रथम	९ × ६ इंच	३६३
	१३	विनयपत्रिका	तुलसीदास : टी० हरिहर प्रसाद	सन् १९०५ ई०		२५ × १६.५ सें०मी०	१२६
	१४	गीतावली	तुलसीदास : टी० हरिहर प्रसाद	सन् १९०६ ई०		२५ × १७.५ ,,	७२
	१५	गीतावली	तुलसीदास : टी० हरिहर प्रसाद	सन् १९०६ ई०		२४.५ × १६ ,,	११४

१	२	३	४	५	६	७	८
	१६	मानसमयंक (सम्पूर्ण)	तुलसीदास : टी० शिवलाल पाठक : इन्द्रदेवनारायण	सन् १९२० ई०	प्रथम	८.४ × ५.५ इंच	७३५
	१७	आल्हारामायण : बाल-अयोध्या०	चतुर्भुज मिश्र	सन् १८९६ ई०	प्रथम		
	१८	आल्हारामायण : सुन्दरकाण्ड	चतुर्भुज मिश्र	सन् १८९४ ई०	दूसरा	९.३ × ६ ,,	६४
	१९	ज्ञानदीपक	तुलसीदास : टी० शेषदत्त	सन् १८९७ ई०	प्रथम	२३.७ × १३ सें०मी०	३८

काव्यानुवाद

१	२	३	४	५	६	७	८
	१	श्रीगीतगोविन्दानन्द	जयदेव				
			अनु० हरिश्चन्द्र	सन् १८८२ ई०	प्रथम	२१.६ × १३.४ सें०मी०	१६+२४
				सन् १८९० ई०	दूसरा	२५ × १६ ,,	४३
	२	उजाड़ ग्राम	गोल्डस्मिथ : अनु० पुत्तनलाल सुशील	सन् १८९९ ई०	प्रथम	२२.५ × १४ ,,	३२
	३	यात्री	गोल्डस्मिथ : अनु० पुत्तनलाल सुशील	सन् १८९९ ई०	प्रथम	२२ × १३ ,,	२६
	४	कविता-कुसुम	शिवनन्दन सहाय	सन् १९०६ ई०	प्रथम	२२.५ × १४.२ ,,	३०
	५	सावित्री-चरित्र	शीतलाप्रसाद त्रिपाठी	सन् १९०८ ई०		२४.५ × १६ ,,	२८
	६	गौरीगिरीश (प्रथम भाग)	हरिमंगल मिश्र	सन् १९११ ई०	प्रथम	२०.६ × १३ ,,	८४

काव्य-संग्रह

१	२	३	४	५	६	७	८
	१	भारतेन्दु-कला	सं० रामदीन सिंह	सन् १८८३ ई०		२१ × १३ ,,	३४

१	२	३	४	५	६	७	८
	२	हिन्दी-भाषा	सं०हरिश्चन्द्र	सन् १८८३ ई०		२१.५ × १३.५ सें०मी०	
	३	शिशिर-सुषमा	सं० राधाचरण गोस्वामी	सन् १८८३ ई०	प्रथम	२१.२ × १३ ,,	१६
	४	काव्यकला : प्रथम किरण	सं०साहबप्रसाद सिंह	सन् १८८५ ई०	प्रथम	२२ × १३.५ ,,	१५२
	५	हास्यरत्न	सं० चण्डीप्रसाद सिंह	सन् १८८६ ई०	प्रथम	८ × ५ इंच	४२
	६	पहेली-भूषण (प्रथम भाग)	सं० चण्डीप्रसाद सिंह	सन् १८८६ ई०	प्रथम	२१.५ × १३ सें०मी०	८
	७	नीतिमंजरी	सं० हर्षनाथ तिवारी	सन् १८८७ ई०	प्रथम	८ × ५ इंच	४८
	८	सुमनोऽञ्जली	सं० हरिश्चन्द्र	सन् १८८८ ई०	प्रथम	२४ × १६ सें०मी०	१०
	९	मानसोपायन	सं० हरिश्चन्द्र	सन् १८८८ ई०		९.२ × ६ इंच	१०५
	१०	गुलजारे पुरबहार (प्रथम भाग)	सं० हरिश्चन्द्र	सन् १८९१ ई०	प्रथम	२५.१ × १५.५ सें०मी०	१६४
	११	सुन्दरीतिलक	सं० हरिश्चन्द्र	सन् १८९२ ई०	प्रथम	२३ × १५ ,,	४२४
	१२.	समस्यापूर्त्तिसार	सं० बख्शराम पाण्डेय 'सुजान'	सन् १८९६ ई०	प्रथम	८ × ५ इंच	२३
	१३.	मानस-विनोद	सं० प्रतापनारायण मिश्र	सन् १८९८ ई०	प्रथम	२३ × १३ सें०मी०	२४
	१४.	नीतिमंजरी	सं० हर्षनाथ तिवारी	सन् १९०० ई०		२२ × १३ ,,	५५
	१५.	विचित्र संग्रह	सं० शिवनन्दन सहाय	सन् १९०५ ई०	दूसरा	९ × ६ इंच	१२
	१६.	रामगीता	सं० सीतारामशरण 'रूपकला'	सन् १९२७ ई०	प्रथम	१८ × १२ सें०मी०	८६
	१७.	सूर-सूक्ति-सुधा	सं० वासुदेव ठाकुर	सन् १९२९ ई०		१८ × १३ ,,	५७ + ३६

नाटक

१	२	३	४	५	६	७	८
	१.	रामलीला नाटक : बालकाण्ड	दामोदर शास्त्री सप्रे	सन् १८८२ ई०		२० × १२ सें०मी०	५९
	२.	रामलीला नाटक : अयोध्याकाण्ड	,,	सन् १८८३ ई०	प्रथम	२० × १२ ,,	२००

१	२	३	४	५	६	७	८
	३.	रामलीला नाटक : अयोध्या०	दामोदर शास्त्री सप्रे	सन् १८८३ ई०	तीसरा	२० × १२ सें०मी०	२००
	४.	रामलीला नाटक : अरण्य०	,,	सन् १८८४ ई०		२० × १२ ,,	१२०
	५.	रामलीला नाटक : युद्धकाण्ड	,,	सन् १८८७ ई०		२० × १२ ,,	१५२
	६.	रामलीला नाटक : सुन्दरकाण्ड	,,	सन् १८८७ ई०		२० × १२ ,,	१५२
	७.	रामलीला नाटक : किष्किन्धा काण्ड	,,	सन् १८८७ ई०		२० × १२ ,,	१०६
	८.	रामलीला नाटक : सुन्दरकाण्ड	,,	सन् १८८७ ई०		२० × १२ ,,	८८
	९.	रामलीला नाटक : उत्तरकाण्ड	,,	सन् १८८८ ई०		२० × १२ ,,	७८
	१०.	अन्धेरनगरी	हरिश्चन्द्र	सन् १८८२ ई०		२१ × १२.५ ,,	२२
	११.	भारतदुर्दशा	हरिश्चन्द्र	सन् १८८३ ई०	प्रथम	२१.२ × १३ ,,	३६
		,,	,,	सन् १९०७ ई०	दूसरा	२५ × १६.५ ,,	२६
		,,	,,	सन् १९१४ ई०	तीसरा	१७.५ × ११.५ ,,	३८
	१२.	तप्तासंवरण	लाला श्रीनिवासदास	सन् १८८३ ई०	प्रथम	२१ × १३.५ ,,	३९
	१३.	जोगिन-लीला	लाल खड्गबहादुर मल्ल	सन् १८८३ ई०	प्रथम	२१ × १३.५ ,,	१३
	१४.	महारास नाटक	,, ,,	सन् १८८५ ई०		२२.५ × १३.५ ,,	६४ + २
	१५.	रतिकुसुमायुध	,, ,,	सन् १८८५ ई०	प्रथम	२२.५ × १३.५ ,,	७४
		,,	,, ,,	सन् १८८८ ई०	दूसरा	९ × ६ इंच	२८
	१६.	बालविवाह-दूषक	देवदत्त मिश्र	सन् १८८५ ई०	प्रथम	२२.५ × १३.५ सें०मी०	४२
	१७.	गोसंकट	अम्बिकादत्त व्यास	सन् १८८६ ई०	प्रथम	१८ × ११.५ ,,	४०
		,,	,,	सन् १८८६ ई०	दूसरा	१८ × ११.५ ,,	४४
	१८.	हरितालिका नाटिका	लाल खड्गबहादुर मल्ल	सन् १८८७ ई०	प्रथम	१८ × ११ ,,	४०
		,,	,,		दूसरा	१९ × ११.५ ,,	३५

१	२	३	४	५	६	७	८
	१६.	भारतसौभाग्य	अम्बिकादत्त व्यास	सन् १८८७ ई०	प्रथम	२२ × १३.३ सें०मी०	४७+४
	२०.	सत्यहरिश्चन्द्र	हरिश्चन्द्र	सन् १८८७ ई०	प्रथम	९ × ६ इंच	५०
		,,	,,	सन् १८८९ ई०	दूसरा	२५.३ × १६ सें०मी०	७६
		,,	,,	सन् १९०५ ई०	नूतन संस्करण	८ × ४ इंच	८२
	२१.	सामवतम्	अम्बिकादत्त व्यास	सन् १८८८ ई०		२४.२ × १६ सें०मी०	१०+६+२
		,,				,,	+१३९+१४+४
	२२.	भारत-ललना	लाल खड्गबहादुर मल्ल	सन् १८८८ ई०	प्रथम	९ × ६ इंच	१७
		,,		सन् १९०१ ई०	दूसरा	१३ × ११ सें०मी०	४४
		,,		सन् १९०६ ई०	तीसरा	१३ × ११ ,,	४४
	२३.	भारत आरत	लाल खड्गबहादुर मल्ल	सन् १८८८ ई०	प्रथम २	२४. × १५.५ ,,	१७
		,,	,,	सन् १८८५ ई०	पहली बार	२१ × १३.५ ,,	
	२४.	माधुरी	हरिश्चन्द्र	सन् १८८८ ई०	प्रथम	९ × ६ इंच	८
	२५.	श्रीचन्द्रावली	हरिश्चन्द्र	सन् १८८८ ई०	प्रथम	६ × ६ ,,	४५
		,,	,,		दूसरा		
		,,	,,	सन् १९१४ ई०	तीसरा	१७.५ × ११.५ सें०मी०	६९
	२६.	विषस्य विषमौषधम्	हरिश्चन्द्र	सन् १८८८ ई०	प्रथम	२४ × १५ ,,	६
		,,	,,	सन् १९१० ई०	दूसरा	२४.५ × १६ ,,	१०
	२७.	दुर्लभ बन्धु	,,	सन् १८८८ ई०	प्रथम	२४.३ × १५ ,,	८४
		,,	,,	सन् १९०९ ई०	दूसरा	२४.५ × १६ ,,	
	२८.	मुद्राराक्षस	हरिश्चन्द्र	सन् १८८७ ई०	प्रथम	९ × ५.५ इंच	९८+१४
		,,	,,	सन् १८८८ ई०	प्रथम	२३ × १५ सें०मी०	६८+२१

१	२	३	४	५	६	७	८
		मुद्राराक्षस	हरिश्चन्द्र		दूसरा		
		,,	,,		तीसरा		
		,,	,,		चौथा		
		,,	,,		पाँचवां		
		,,	,,		छठा		
		,,	,,		सातवाँ		
		,,	,,		आठवाँ		
		,,	,,		नौवाँ	१८.५ × १२.५ सें०मी०	१९६
	२९.	हम्मीरहठ	प्रतापनारायण मिश्र	सन् १८८८ ई०		२२ × १४.५ ,,	३२
	३०.	पाखण्ड-विडम्बन	हरिश्चन्द्र	सन् १८८८ ई०	प्रथम	२५ × १६.५ ,,	११
		,,	,,	सन् १९१० ई०	दूसरा		
		,,	,,	सन् १९१४ ई०	तीसरा	१७.५ × ११.५ ,,	१६
	३१.	कल्पवृक्ष	लाल खड्गबहादुर मल्ल	सन् १८८८ ई०	प्रथम	५.४ × ४ इंच	६४
		,,	,,	सन् १८८८ ई०	प्रथम	१८ × ११ सें०मी०	२+१+२+४०
	३२.	सती-प्रताप	हरिश्चन्द्र	सन् १८९२ ई०	प्रथम	२४.५ × १५.५ ,,	२५
		,,	,,	सन् १९०५ ई०	दूसरा	२४ × १६ ,,	२८
		,,	,,	सन् १९१४ ई०	तीसरा	१७.५ × १२ ३ ,,	३८
	३३.	संगीत-शाकुन्तल	प्रतापनारायण मिश्र	सन् १८९९ ई०	प्रथम	२१ × १३.५ ,,	११२+२
		,,	,,	सन् १९०९ ई०	दूसरा	२२.५ × १३.५ ,,	२+१३५

१	२	३	४	५	६	७	८
	३४.	विद्यासुन्दर	हरिश्चन्द्र	सन् १८८८ ई०	प्रथम	२५.५ × १६.५ सें०मी०	३६
				सन् १९०५ ई०	दूसरा	२५.५ × १६.५ ,,	३८
				सन् १९१४ ई०	तीसरा	१७.५ × ११.५ ,,	६०
	३५.	रत्नावली	हरिश्चन्द्र	सन् १९०५ ई०	दूसरा	२३.५ × १५.५ ,,	४
	३६.	नीलदेवी	हरिश्चन्द्र	सन् १९०६ ई०	दूसरा	२५ × १६.५ ,,	१४
	३७.	जनक-बाग-दर्शन	रामनारायण मिश्र 'द्विजदेव'	सन् १९०६ ई०	प्रथम	८$\frac{1}{2}$ × ५ इंच	
	३८.	चन्द्रावली नाटिका	हरिश्चन्द्र	सम् १९०७ ई०	दूसरी बार	२३ × १५.५ सें०मी०	५२
	३९.	भारत-जननी	हरिश्चन्द्र	सन् १९०८ ई०	दूसरी बार	२३ × १५.५ ,,	१५
				सम् १९१४ ई०	तीसरी बार	१७.५ × ११.५ ,,	१८
	४०.	कर्पूरमंजरी	हरिश्चन्द्र	सन् १९०८ ई०	दूसरी बार	२३ × १५.५ ,,	३६
				सन् १९१४ ई०	तीसरी बार	१७.५ × ११.५ ,,	४८
	४१.	शिवाशिव	विन्ध्येश्वरीदत्त शुक्ल 'अनाथ'	सन् १९०९ ई०	प्रथम	९ × ६ इंच	१९५
	४२.	धनंजय-विजय	हरिश्चन्द्र	सन् १९१० ई०	दूसरा	२३ × १५.५ सें०मी०	१६
				सन् १९१४ ई०	तीसरा	१७.५ × १५.५ ,,	२४
	४३.	विषस्य विषमौषधम्	हरिश्चन्द्र	सन् १९१० ई०	दूसरा	२३.५ × १५.५ ,,	१०
				सन् १९१४ ई०	तीसरा	१८ × १२.७ ,,	१४
४	४४.	प्रेमयोगिनी	हरिश्चन्द्र	सन् १९११ ई०	दूसरा	२३.५ × १५.५ ,,	२६
				सन् १९१४ ई०	तीसरा	१८ × १२.८ ,,	४०

१	२	३	४	५	६	७	८
	४५	दुर्लभ बन्धु	हरिश्चन्द्र	सन् १९१३ ई०	तीसरा	१७.५ × ११.५ सें०मी०	११८
					पाँचवाँ	१८.७ × १२.५ ,,	१४६
				सन् १९३० ई०	छठा	१८.७ × १२.५ ,,	
	४६	भारत-दुर्दशा	हरिश्चन्द्र	सन् १९१४ ई०	तीसरा	१८.५ × १२.५ ,,	३८
		उपन्यास : मौलिक					
	१	ठेठ हिन्दी का ठाट	अयोध्यासिंह उपाध्याय	सन् १८९९ ई०	प्रथम	२१.५ × १३ सें०मी०	८२+२
				सन् १९०७ ई०	दूसरा	,, ,,	
				सन् १९१९ ई०	चौथा	,,	
				सन् १९२८ ई०	छठा	१८.५ × १२.५ ,,	
	२	अद्भुत प्रायश्चित्त	बृजनन्दन सहाय	सन् १९०५ ई०	प्रथम	२३.५ × १४.५ ,,	४९
				सन् १९१० ई०	दूसरा	१८.१ × १२.८ ,,	
	३	अपराजिता	सकलनारायण शर्मा	सन् १९०७ ई०		२१ × १३.५ ,,	१४
	४	अधखिला फूल	अयोध्यासिंह उपाध्याय	सन् १९०५ ई०	प्रथम	२१.९ × १३.५ ,,	२+३९+१७६
			,,	सन् १९२८ ई०	तीसरा	१८.५ × १२.८ ,,	२४६
			,,	सन् १९४३ ई०	संशो०संस्क०	७ × ४.८ इंच	२४६
	५	सौन्दर्योपासक	बृजनन्दन सहाय	सन् १९११ ई०	प्रथम		
				सन् १९१९ ई०	दूसग		
				सन् १९३५ ई०	तसीरा	१८.५ × १२.३ सें०मी०	२३८

१	२	३	४	५	६	७	८
			उपन्यास : अनूदित				
	१	पूर्णप्रकाश चन्द्रप्रभा	हरिश्चन्द्र	सन् १८८९ ई०	प्रथम		
			,,	सन् १९२१ ई०	दूसरा		
	२	रजनी	अक्षयवट मिश्र 'विप्र'	सन् १९१७ ई०	प्रथम		११६
	३	मृण्मयी	ईश्वरीप्रसाद शर्मा	सन् १९११ ई०	प्रथम		
	४	राजसिंह	बंकिमचन्द्र : प्रतापनारायण मिश्र	सन् १८९४ ई०	प्रथम	२४ × १५ सें०मी०	६०
	५	इन्दिरा	,, ,,	सन् १८९४ ई०	प्रथम	२२ × १४ ,,	२३
	६	युगलांगुरीय	,, ,,	सन् १८९४ ई०	प्रथम	९ × ६ इंच	१९
		,,	,, ,,	सन् १८९७ ई०	दूसरा	१७ × ११ सें०मी०	३७
		,,	,, ,,	सन् १९१४ ई०	तीसरा	१८ × १२ ,,	३१
	७	राधारानी	,, ,,	सन् १८९४ ई०	प्रथम	२२ × १५ ,,	२०
			संशो० हरिऔधजी	सन् १८९७ ई०	दूसरा	१७ × ११ ,,	
				सन् १८१८ ई०		१८ × १२ ,,	४२
	८	कृष्णकान्त का दानपत्र	बंकिमचन्द्र; अनु० अयोध्यासिंह उपाध्याय	सन् १८९८ ई०	प्रथम	६ × ४ इंच	२६८
				सन् १८१९ ई०	दूसरा	२१ × १३ सें०मी०	
	९	रिप-वान विंकल	अयोध्यासिंह उपाध्याय	सन् १८९९ ई०	प्रथम	२१.३ × १३.५ ,,	२३
	१०	कपालकुण्डला	बंकिमचन्द्र : प्रताप ना० मिश्र	सन् १९०१ ई०	प्रथम	२२ × १३ ,,	१०७
	७	,,	,, ,,	सन् १९३५ ई०	तीसरा	१८.८ × १२.५ ,,	१३८+४

१	२	३	४	५	६	७		८
	८	दुर्गेशनन्दिनी	वंकिमचन्द्र : राधाकृष्णदास	सन् १९०१ ई०		२२ × १३.५	सें०मी०	१७४
	९	अमरसिंह	नगेन्द्रनाथ गुप्त : प्रतापना० मिश्र	सन् १८०७ ई०	प्रथम	२२ × १४.५	,,	१२०
	१०	चन्द्रशेखर	वंकिमचन्द्र : वृजनन्दन सहाय	सन् १९०७ ई०		२२ × १४.५	,,	२८+१६५+३
	११	इन्दिरा	वंकिमचन्द्र : किशोरीलाल गो०	सन् १९०८ ई०		२२ × १४.५	,,	१५८
				सन् १९१८ ई० (२)				
	१२	राजसिंह	,, ,,	सन् १९१० ई०		२२ × १४.५	,,	१४१
	१३	देवी चौधुरानी	वंकिमचन्द्र : अक्षयवट मिश्र	सन् १९१३ ई०		९ × ५.५ इंच		
			: प्रभुदयाल पाण्डेय					
	१४	राजेन्द्रमालती	प्रसिद्ध मायावी	सन् १८९७ ई०	प्रथम	२४.५ × १५.५	सें०मी०	३१
				सन् १९०६ ई०	दूसरा			
	१५	आदर्श मँगनी (कहानी)	अनु० : ईश्वरीप्रसाद शर्मा	सन् १९०९ ई०	प्रथम	९ × ६ इंच		३१
	१६	मधुमती	पूर्णचन्द्र चट्टोपाध्याय	सन् १८८६ ई०	प्रथम			२९
			अनु० : व्यास रामशंकर शर्मा					
	१७	इन्दिरा	प्रतापनारायण मिश्र	सन् १८९४ ई०	प्रथम	९ × ६ ,,		२९
	१८	अमरसिंह	,, ,,	सन् १९०७ ई०				
	१९	राजकुमार कुणाल	हरप्रसाद शास्त्री	सन् १९२७ ई०	प्रथम	२१.५ × १३.५	सें०मी०	२५२
			अनु० : लक्ष्मीधर वाजपेयी					

व्याकरण

	१	वर्णविनोद	चण्डीप्रसाद सिंह	सन् १८८३ ई०		१८ × १२	,,	४१

१	२	३	४	५	६	७	८
	२	हिन्दी-व्याकरण	हरिश्चन्द्र	सन् १८८३ ई०		१८ × १०.७ सें०मी०	२०
	३	लेख-नियम	छत्रधारी सिंह	सन् १८८४ ई०	प्रथम	८ × ५ इंच	१५
	४	भाषा-प्रभाकर	रामचरण सिंह				
				सन् १८८७ ई०	दूसरा	२३ × १५ सें०मी०	११७
				सन् १८९१ ई०	चौथा	२५ × १३.२ ,,	१२२
				सन् १९१८ ई०	नवीन सं०	१८.२ × १२.५ ,,	१३४
				सन् १९२७ ई०	नवीन सं०	१८.५ × १२.५ ,,	[illegible]
	५	लघुव्याकरण	कन्हैयाप्रसाद मिश्र	सन् १८८८ ई०	प्रथम	२२ × १३ ,,	
	६	व्याकरण की उपक्रमणिका	ईश्वरचन्द्र विद्यासागर अनु० : प्यारीमोहन वन्द्योपाध्याय	सन् १८८७ ई०	आठवाँ	२१ × १३.५ ,,	८३
	७	बालचन्द्रिका	कन्हैयालाल त्रिपाठी	सन् १८९० ई०	प्रथम	८.५ × ५ इंच	१४८
	८	भाषा-व्याकरण-दर्पण	कालीप्रसाद त्रिपाठी	सन् १८९२ ई०	पाँचवाँ	८ × ५ ,,	४८

व्याकरण : अनूदित

१	२	३	४	५	६	७	८
	९	व्याकरण-कौमुदी, प्रथम भाग	ईश्वरचन्द्र विद्यासागर अनु० : गोकर्ण सिंह	सन् १८९५ ई०	प्रथम	७ × ४ ,,	१२६
	१०	व्याकरण-कौमुदी, दूसरा भाग ,,	,,	सन् १८९५ ई०	,,	७ × ४ ,,	१६८
	११	व्याकरण-कौमुदी, तीसरा भाग ,,	,,	सन् १८९५ ई०	,,	७ × ४ ,,	६७
	१२	व्याकरण-कौमुदी, चौथा भाग ,,	,,	सन् १८९५ ई०	,,	७ × ४ ,,	२३०

१	२	३	४	५	६	७	८
	१३	संस्कृत-व्याकरण की उपक्रमणिका	ईश्वरचन्द्र विद्यासागर	सन् १८९६ ई०	दूसरा	७ × ४ इंच	११०
			अनु० : गोकर्ण सिंह				
	१४	भाषाव्याकरणसार	महादेव प्रसाद	सन् १८९९ ई०	दूसरा	५.५ × ४ ,,	७२
				सन् १८९५ ई०	छठा	१७.५ × ११ सें०मी०	१३२
				सन् १८९६ ई०	सातवाँ		
	१५	भाषाविज्ञानांकुर	रामगरीब चौबे	सन् १८९९ ई०	प्रथम	२१.८ × १३.१ ,,	१०२
	१६	भाषाचन्द्रोदय	श्रीलाल				
			सं० : चण्डीप्रसाद सिंह	सन् १८९९ ई०	,,	२२ × १३.५ ,,	६०
	१७	हिन्दी-सिद्धान्त-प्रकाश	सकलनारायण शर्मा	सन् १९०६ ई०	,,	८.२ × ५ इंच	९२ + ४
	१८	भाषाभास्कर	पादरी एथरिंगटन	सन् १९२५ ई०	अ० मु०	१८ × १२.५ ,,	१२८
				सन् १९२७ ई०	न० सं०		
	१९	हिन्दी-सिद्धान्त-प्रकाश	सम्पादक-मण्डल	सन् १९०६ ई०	प्रथम	२२.५ × १४ सें०मी०	९३

कोश

१	२	३	४	५	६	७	८
	१	अनेकार्थ भाषा	नन्ददास	सन् १८८४ ई०	अ० मु०	२४ × ७ × १५ ,,	१३
	२	विवेक-कोश	बाबा वैजूदास				
			सं० : शीतलप्रसाद सिंह	सन् १८९२ ई०		२१.८ × १३.३ ,,	६८३
	३	शब्दार्थ-प्रकाश	रामदास राय	सन् १९०६ ई०	प्रथम	२२ × १४ ,,	३२
	४	नामावर्ण	चन्दनराम; सं० रामचरित सिंह	सन् १९०५ ई०	,,	२२.५ × १३.५ ,,	३८

१	२	३	४	५	६	७	८
		जीवनी					
	१	नागरीदास का जीवन-चरित्र	राधाकृष्ण दास	सन् १८९४ ई०	प्रथम	९ × ६ इंच	२३
	२	दत्तकवि का जीवन-चरित्र	चण्डीप्रसाद सिंह	सन् १८९६ ई०	,,	८ × ५ ,,	३०
	३	जवाहिर कवि का जीवन-चरित्र	पुत्तनलाल 'सुशील'	सन् १८९९ ई०	दूसरा	२०·५ × १२.५ सें०मी०	२६
	४	प्रतापचरित्र	प्रतापनारायण मिश्र	सन् १८९७ ई०	प्रथम	८ × ४.५ इंच	८
	५	निज वृत्तान्त	अम्बिकादत्त व्यास			२३ × १४.५ सें०मी०	५६
	६	कर्नल जेम्स टाड का जीवन-चरित्र	गौरीशंकर हीराचन्द ओझा	सन् १९०२ ई०		२१.५ × १३.५ ,,	४०
	७.	बाबू रामदीन सिंह की जीवनी	जैनेन्द्रकिशोर	सन् १९०३ ई०	प्रथम		६
				सन् १९१४ ई०	दूसरा	२३ × १४ ,,	६
	८	सप्तम एडवर्ड की सक्षिप्त जीवनी	गोकर्ण सिंह	सन् १९०४ ई०	प्रथम	८·५ × ५ इंच	
	९	बाबू राधाकृष्णदास की जीवनी	बृजनन्दन सहाय	सन् १९०७ ई०		२२.५ × १३.५ सें०मी०	१४
	१०	पं० बलदेवप्रसाद मिश्र	बृजनन्दन सहाय	सन् १९०८ ई०		२५ × १३ ,,	१४
	११	साहबप्रसाद सिंह की जीवनी	शिवनन्दन सहाय	सन् १९०५ ई०	प्रथम	२५ × १७ ,,	६८
				सन् १९०७ ई०	दूसरा	१५ × १७ ,,	६८
	१२	महाराजकुमार रामदीन सिंह की जीवनी	नरेन्द्रनारायण सिंह	सन् १९१३ ई०		७ × ४ इंच	१२
	१३	मीराबाई की जीवनी	भगवानदास 'रूपकला'	सन् १९२३ ई०	प्रथम	२३ × १३ सें०मी०	१२
	१४	गौरांग महाप्रभु	शिवनन्दन सहाय	सन् १९२७ ई०	,,	८ × ५ इंच	५०१+४+१०
	१५	स्वामी-चरितामृत	अम्बिकादत्त व्यास	सन् १८९८ ई०	,,	२४ × १५ सें०मी०	३२

१	२	३	४	५	६	७	८
	१६	विक्टोरिया-चरित्र	फ्रेडरिक पिन्कॉट	सन् १८८७ ई०	प्रथम	२४ × ६ सें०मी०	१९७
					दूसरा	२४ × ६ ,,	१९७

जीवनी-संकलन : मौलिक

१	२	३	४	५	६	७	८
	१	विहारदर्पण	रामदीन सिंह	सन् १८८३ ई०	दूसरा	८ × ४ इंच	३१२
	२	बिहारदर्पण, दूसरा खण्ड	,, ,,	सन् १८८९ ई०	प्रथम	२२ × १५ सें०मी०	७७ से १५२
	३	होनहार बालक, प्रथम भाग	मुंशी देवीप्रसाद मुनसिफ	सन् १९२६ ई०	,,	१८ × १२ ,,	३९
	४	,, ,, दूसरा ,,	,, ,,	सन् १९-६ ई०	,,	,, ,,	३१
	५	,, ,, तीसरा ,,	,, ,,	सन् १९२६ ई०	,,	,, ,,	३६
	६	होनहार बालक	,, ,,	सन् १९११ ई०	प्रथम	७ × ५ इंच	७४
	७	पुण्दकीर्त्तन	चन्द्रशेखर ओझा	सन् १९२२ ई०		९ × ५ ,,	१७३

अनूदित

१	२	३	४	५	६	७	८
	१	चरिताष्टक	ईश्वरचन्द्र विद्यासागर				
			अनु० : प्रतापनारायण मिश्र	सन् १८९४ ई०	प्रथम	९.५ × ६.५ इंच	८०
	२	चरितावली	अनु० : अयोध्यासिंह उपाध्याय	सन् १८९९ ई०	प्रथम	८ × ५ ,,	६०
	३	आर्यकीर्त्ति, प्रथम भाग	रजनीकान्त गुप्त				
			अनु० : प्रतापनाराण मिश्र	सन् १८९९ ई०	प्रथम	९ × ६ ,,	४०
	४	आर्यकीर्त्ति, दूसरा भाग	,, ,,	सन् १९०८ ई०	प्रथम	१८.५ × १२ सें०मी०	७९
	५	जयदेव-चरित	सरयूप्रसाद मिश्र	सन् १९०१ ई०	प्रथम	२२ × १३ ,,	८०

१	२	३	४	५	६	७	८
	६	आर्यचरित	वीरेश्वर पाण्डेय				
			अनु० : राधाकृष्ण दास	सन् १८९६ ई०	प्रथम	८ × ४ इंच	५२
		यात्रा-साहित्य					
	१	मेरी पूर्व दिग्यात्रा	दामोदर विष्णु सप्रे शास्त्री	सन् १८८५ ई०	प्रथम	२२ × १३ सें०मी०	५५
	२	मैं वही हूँ	,, ,, ,,	सन् १८८६ ई०	प्रथम	२२ × १३ ,,	६३
	३	मेरी दक्षिण-दिग्यात्रा	,, ,, ,,	सन् १८८६ ई०	प्रथम	२२ × १३	१०८
	४	मेरी जन्मभूमि-यात्रा	,, ,, ,,	सन् १८८८ ई०	प्रथम	२२ × १३ ,,	७६+९+१८+२
	५	पंजाब-यात्रा	रामशंकर व्यास	सन् १९०७ ई०	प्रथम	९ × ६ इंच	६३
	६	परिभ्रमण	रामशंकर व्यास	सन् १९०९ ई०	प्रथम	९ × ६ ,,	१८३+५
		आलोचना					
	१	नाटक	हरिश्चन्द्र	सन् १८८५ ई०	प्रथम	२५ × १५ सें०मी०	५३
	२	संस्कृत-कवियों का समय-निपरूण	हरिमोहन प्रामाणिक अनु० : सरयूप्रसाद मिश्र	सन् १९०१ ई०	प्रथम	२२ × १३ ,,	१६१
	३	बोल-चाल	अयोध्यासिंह उपाध्याय	सन् १९२७ ई०	प्रथम	२२ × १३ ,,	२४९
				सन् १९२८ ई०	दूसरा	९ × ५ इंच	२४९+८
	४	तुलसीदास	शिवनन्दन सहाय	सन् १९१६ ई०	प्रथम	२३ × १६ सें०मी०	४३२
	५	हरिश्चन्द्र का जीवन-चरित	शिवनन्दन सहाय	सन् १९०५ ई०	प्रथम	२३ × १६ ,,	
				सन् १९०७ ई०	दूसरा	२३ × १६ ,,	

१	२	३	४	५	६	७	८
		धार्मिक साहित्य					
	१	तदीय सर्वस्व	हरिश्चन्द्र	सन् १८८४ ई०	प्रथम	२२ × १३	सें०मी० ७१
				सन् १८८९ ई०	दूसरा	,, ,,	,, ५६
	२	पुनःपुना-माहात्म्य	टिम्बल ओझा	सन् १८८९ ई०	दूसरा	२४ × १६	,, २०
	३	सनातन धर्म की जय	शिवनन्दन सहाय	सन् १८८६ ई०	प्रथम	२५ × १३	,, १५
	४	कार्त्तिक नैमित्तिक कृत्य	हरिश्चद्र	सन् १८९० ई०	प्रथम	२३ × १५	,, २८
	५	मार्गशीर्ष-महिमा	,,	सन् १८९० ई०	प्रथम	९ × ६	इंच ६
	६	कार्त्तिक-कर्मविधि	,,	सन् १८९० ई०	प्रथम	२४ × १६	सें०मी० ३०
	७	सांख्य-तरंगिणी	अम्बिकादत्त व्यास	सन् १८९१ ई०	प्रथम	२१ × १२	,, ६३ + २
	८	अबोधध्वान्त मार्त्तण्ड	बालराम स्वामी	सन् १८९२ ई०	प्रथम	९ × ६	इंच १०१
	९	गंगास्थिति-समय-मीमांस	बालराम स्वामी	सन् १८९४ ई०	प्रथम	२३ × १५	,, २४
	१०	पातंजल दर्शन-प्रकाश	,, ,,	सन् १८९७ ई०	प्रथम	२४ × २५	सें० मी० ४०६ + १०
	११	नित्यतर्पण-पद्धति	शिवप्रसाद पाण्डेय	सन् १९२२ ई०	प्रथम	१६ × १०	,, १४
	१२	साधन-संग्रह	एक भूमिहार ब्राह्मण	सन् १९०० ई०	प्रथम	८ × ५	,, २१३ + ४
	१३	श्रीगंगामाहात्म्य	एक परम सन्त	सन् १९०४ ई०	प्रथम	७ × ४	,, ५०
	१४	कुलीन-परिचय	,, ,,	सन् १९०५ ई०	प्रथम	९ × ६	३२
	१५	शंकरप्रसाद मीमांसा	सकलनारायण शर्मा	सन् १९१२ ई०	प्रथम	९ × ६	,, २०
	१६	षोडसी-पूजा	बालकृष्ण दास		—	१८ × १२	,, १६
	१७	भक्तिसूत्र-वैजयन्ती	शाण्डिल्य ऋषि अनु० हरिश्चन्द्र	सन् १८८९ ई०	प्रथम	२४ × १६	,, २४
	१८	वैष्णवसर्वस्व (पूर्वार्द्ध)	हरिश्चन्द्र	—	प्रथम	२४ × १५	,, १५

इतिहास : मौलिक

१	२	३	४	५	६	७	८
	१	बूँदी का राजवंश	हरिश्चन्द्र	सन् १८८२ ई०	प्रथम	६ × ३ इंच	१२
	२	खत्रियों की उत्पत्ति	हरिश्चन्द्र तथा शिवना० सिंह	सन् १८८३ ई०	प्रथम	८ × ५ ,,	२४
	३	बादशाह-दर्पण	हरिश्चन्द्र	सन् १८८४ ई०	प्रथम	२७ × २२ सें०मी०	२४
	४	विश्वेनवंश-वाटिका	लाल खड्गबहादुर मल्ल	सन् १८८७ ई०	प्रथम	२४ × १५ ,,	७ + १ + ६२ + ४
	५	चित्तौरगढ़	हरिश्चन्द्र	सन् १८९० ई०	—	२४ × १५ ,,	२७
	६	भारतवर्षीय इतिहास	दीनदयाल सिंह	सन् १८९० ई०	प्रथम	२४ × १६ ,,	२४४
	७	चित्तौरगढ़	दामोदर शास्त्री	सन् १८९१ ई०	—	१७ × १० ,,	४४
	८	कालचक्र	हरिश्चन्द्र	सन् १८९२ ई०	प्रथम	९ × ६ ,,	२०
				सन् १८९६ ई०	दूसरा	९ × ६ ,,	२०
	९	भारतवर्ष का समस्त इतिहास	गोकर्ण सिंह	सन् १८९९ ई०		२२ × १४ ,,	१४६
	१०	हिन्दुस्तान का इतिहास, प्र० भाग	उमानाथ मिश्र	सन् १९०१ ई०		२१ × १३ ,,	६६
	११	उदयपुर का राजवंश	कविराज श्यामलदास	सन् १९०४ ई०		९ × ६ इंच	१८
	१२	नेपाल का प्राचीन इतिहास	सरयूप्रसाद मिश्र	सन् १९०९ ई०	प्रथम	८ × ४ ,,	१५४
	१३	सिद्धनाथ-कुसुमांजलि	सकलनारायण शर्मा	सन् १९११ ई०	प्रथम	९ × ६ ,,	
	१४	काश्मीर-कुसुम	हरिश्चन्द्र	सन् १९१६ ई०	दूसरा	१८ × १२ सें० मी०	३९
	१५	पुरावृत्त-संग्रह	हरिश्चन्द्र	सन् १९१७ ई०	दूसरा	१८ × १२ ,,	६६
	१६	भारतीय शासन-पद्धति	राधाकृष्ण झा	सन् १९२१ ई०	दूसरा	२२ × १४ ,,	४२८ + २ + २

१	२	३	४	५	६	७	८
		इतिहास : अनूदित					
	१	सूबे-बंगाल का इतिहास	अनु० : प्रतापनारायण मिश्र	सन् १८९१ ई०	प्रथम (?)	२४ × १५ सें०मी०	१२२
	२	सेन-राजगण	,, ,,	सन् १८९१ ई०	प्रथम	९ × ६ इंच	४०
	३	बंगाल का इतिहास	आर० के० उपाध्याय	सन् १८९७ ई०	प्रथम	७ × ४ ,,	१४२
			अनु० : गोकर्ण सिंह	सन् १९०० ई०	दूसरा	७ × ४ ,,	१४८
	४	बंगाल का इतिहास	रामगति न्यायरत्न अनु० : प्रेमदास	सन् १८९८ ई०	तीसरा	२३ × १४ सें०मी०	१२६
	५	बंगाल का इतिहास	ईशानचन्द्र घोष	सन् १८९९ ई०		२३ × १४ ,,	७३
		भूगोल					
	१	भूतत्त्व-प्रदीप	मुंशी रामप्रकाश लाल	सन् १८८५ ई०	प्रथम	२१ × १२ ,,	६०
				सन् १८८७ ई०	दूसरा	२३ × १५ ,,	४६
	२	सूबे-बंगाल का भूगोल	प्रतापनारायण मिश्र	सन् १८९४ ई०	प्रथम	२४ × १६ ,,	५८
		विविध					
	१	रसायनशास्त्र	आनन्दविहारी	सन् १९०६ ई०	प्रथम	२१ × १३ ,,	१४२
	२	अर्थशास्त्र	बृजनन्दन सहाय	सन् १९०६ ई०	प्रथम	२२ × १४ ,,	४२
	३	तर्कशास्त्र	परमानन्द	सन् १९०६ ई०	प्रथम	२१ × १३ ,,	६८

१	२	३	४	५	६	७	८
			निबन्ध : मौलिक				
	१	नापित-स्तोत्र	राधाचरण गोस्वामी	सन् १८८२ ई०		२१ × १३ सें०मी०	८
	२	हास-विलास, प्रथम भाग	रामचरित्र सिंह	सन् १८८२ ई०	प्रथम	२१ × १३ ,,	७६
				सन् १८८७ ई०	दूसरा	२१ × १२ ,,	९०
	३	हास-विलास, दूसरा भाग	रामचरित्र सिंह	सन् १८८५ ई०	प्रथम	२१ × १२ ,,	१४४
	४	छोटा वस्तु-विचार, प्रथम भाग	चण्डीप्रसाद सिंह	सन् १८८३ ई०		२१ × १३ ,,	४८
	५	हितप्रबोध	बिहारीलाल चौबे	सन् १८८३ ई०		२१ × १३ ,,	
	६	सज्जन-विलास, प्रथम भाग	साहबप्रसाद सिंह	सन् १८८३ ई०		२२ × १३ ,,	
	७	विजयादशमी-चरित	लाल खड्गबहादुर मल्ल	सन् १८८४ ई०			
	८	दयानन्द-मत-मूलोच्छेद	अम्बिकादत्त व्यास	सन् १८८५ ई०	प्रथम	२२ × १३ ,,	५९ + २३ + २१ + १९ + १४
	९	लेक्चर	लाल खड्गबहादुर मल्ल	सन् १८८६ ई०	प्रथम	२१ × १३ ,,	१४
	१०	बालोपदेश	,, ,,	सन् १८८७ ई०	प्रथम	१७ × ११ ,,	३२
				सन् १८९९ ई०	दूसरा	१३ × ११ ,,	४८
	११	संगीतसार	हरिश्चन्द्र	सन् १८८३ ई०	प्रथम	२१ × १३ ,,	१९
				सन् १८८९ ई०	दूसरा	२४ × १५ ,,	१२
	१२	वैष्णवता और भारतबर्ष	,,	सन् १८९५ ई०	दूसरा	२४ × १५ ,,	१३
	१३	वैष्णवता	,,	सन् १८८९ ई०	प्रथम	२४ × १५ ,,	११
	१४	शैवसर्वस्व	प्रतापनारायण मिश्र	सन् १८९० ई०	प्रथम	२४ × १६ ,,	३२
	१५	गो-महिमा	हरिश्चन्द्र	सन् १८९० ई०	प्रथम	२४ × १६ ,,	२०

१	२	२	४	५	६	७	८
	१६	विविध प्रबन्ध	हरिश्चन्द्र	सन् १८९० ई०	प्रथम	२१ × १५ सें०मी०	४०
	१७	सद्धर्म-निरूपण	लाल खड्गबहादुर मल्ल	सन् १८९१ ई०	प्रथम	२४ × १५ ,,	१५
	१८	उद्बोधन	अयोध्याप्रसाद उपाध्याय	सन् १९०६ ई०	प्रथम	२२ × १४ ,,	४६
	१९	शिक्षा-संग्रह, प्रथम भाग	रघुनाथ द्विवेदी	सन् १९०८ ई०	प्रथम	२४ × १६ ,,	५६
	२०	वेश्यास्तोत्र	शेरबहादुर सिंह तथा हरिश्चन्द्र	सन् १८९४ ई०	तीसरा	६ × ४ इंच	४९
					चौथा	१८ × १२ सें०मी०	३२
	२१	दशावतार-कथा	अक्षयवट मिश्र 'विप्रचन्द'	सन् १९१७ ई०	प्रथम	६ × ४ इंच	१४४
	२२	उपदेश-रामायण	,, ,, ,,	सन् १९२० ई०	प्रथम	१८ × २२ सें०मी०	२२१
	२३	भरत-चरित	चन्द्रशेखर शास्त्री	सन् १९२९ ई०	प्रथम	१९ × १२ ,,	१४७
	२४	सुचाल-शिक्षा, प्रथम भाग	प्रतापनारायण मिश्र	सन् १८९१ ई०	प्रथम	२४ × १६ ,,	—
		,, ,, ,,		सन् १८९२ ई०	प्रथम	२४ × १६ ,,	६८ + ४
				सन् १९११ ई०	दूसरा		
				सन् १८९६ ई०	प्रथम	२४ × १६ ,,	६२ + ४
				सन् १९११ ई०	—	—	—
				सन् १९२८ ई०	प्रथम	१८ × १२ ,,	९८ + ६

निबन्ध : अनूदित

१	आख्यान-मंजरी, प्रथम भाग	ईश्वरचन्द्र विद्यासागर अनु० : प्रतापनाराण मिश्र	सन् १८९८ ई०	प्रथम	२२ × १३ ,,	९८
२	आख्यान-मंजरी, दूसरा भाग					
३	आख्यानमंजरी : तीसरा भाग					

१	२	३	४	५	६	७	८
	४	नीतिरत्नावली	कृष्णप्रसाद सेन अनु० : प्रतापनारायण मिश्र	सन् १८६० ई०	प्रथम	२३ × १५ सें०मी०	३४
	५	कथामाला	ईश्वरचन्द्र विद्यासागर अनु० : प्रतापनारायण मिश्र	सन् १८९० ई०	प्रथम	२२ × १५	४५
	६	पंचामृत	कृष्णानन्द स्वामी परिव्राजक अनु० : प्रतापनारायण मिश्र	सन् १८६१ ई०	प्रथम	९ × ६ इंच	४३
			स्वास्थ्य-विज्ञान : मौलिक				
	१	नियुद्ध-शिक्षा, प्रथम भाग	दामोदर गुरु (अच्युतानन्द स्वामी)	सन् १८८२ ई०	प्रथम	२१ × १३ सें० मी०	४८
	२	नियुद्धशि-क्षा, दूसरा भाग	दामोदर शास्त्री	सन् १८८२ ई०	,,	२१ × १३ ,,	४०
	३	प्लेग-निवारण	जंगबहादुर सिंह	सन् १९०५ ई०	,,	८ × ४ ,,	१६
	४	मानव-सन्ततिशास्त्र	मुंशी हीरालाल	सन् १९१३ ई०	,,	६ × ६ ,,	२४६
	५	आरोग्य-शिक्षा	अयोध्याप्रसाद मिश्र	—	—	२१ × १३ ,,	९२
	६	स्वास्थ्य-विद्या	प्रतापनारायण मिश्र (भानुचन्द्र बनर्जी)	सन् १८९८ ई०	दूसरा	१६ × ११ ,,	१४८
		,, ,,	,,	सन् १९०१ ई०	चौथा	१८ × ११ ,,	१३२
			अनूदित				
	१	नियुद्ध शिक्षा, प्रथम भाग	रामचरण सेन अनु० : दामोदर शास्त्री	सन् १९०० ई०		८ × ५ इंच	६४

१	२	३	४	५	६	७	८
	२	मातृशिक्षा, प्रथम भाग	गंगाप्रसाद मुखोपाध्याय अनु० सरयूप्रसाद मिश्र	सन् १८८५ ई०	प्रथम	८ × ५ इंच	१४४ + ४
	३	मातृशिक्षा, दूसरा भाग	,, ,,	सन् १८८५ ई०	,,	८ × ५ ,,	१४४ + ४
	४	शरीरपालन	यदुनाथ मुखर्जी अनु० : सियारघुवरशरण भगवानप्रसाद	सन् १८८५ ई०	—	१७ × ११ सें०मी०	१३६
	५	स्वास्थ्य-रक्षा सचित्र	राय राधिकाप्रसन्न मुखर्जी अनु० : रामदीन सिंह	सन् १८९३ ई०	—	७ × ४ इंच	१७१
	६	सरल स्वास्थ्य-रक्षा	राधिका प्रसन्न मुखोपाध्याय	सन् १८९६ ई०	प्रथम	२१ × १३ सें०मी०	४८
			पं० नन्द मिश्र	सन् १८९७ ई०		२१ × १३ ,,	४८

पाठ्यपुस्तक

१	२	३	४	५	६	७	८
	१	वर्णविनोद, पहला भाग					
	२	वर्णविनोद, दूसरा भाग					
	३	वर्णविनोद, तीसरा भाग	चण्डीप्रसाद सिंह	सन् १८८३ ई०			२४
	४	पहली पुस्तक	साहबप्रसाद सिंह	सन् १८८[illegible] ई०		७ × ४ ,,	६०
	५	हित-प्रबोध	बिहारीलाल चौबे	सन् १८८३ ई०		२२ × १४ ,,	३९
	६	भाषातत्त्वबोध, दूसरा भाग	साहबप्रसाद सिंह	सन् १८८[illegible] ई०		७ × ४ ,,	७२
		,, ,, : पहला भाग	,, ,,				
	७	श्रीरामलीला तथा भीष्मस्तवराज	हरिश्चन्द्र	सन् १८८४ ई०		८ × ५ ,,	१६

१	२	३	४	५	६	७	८
	८	भाषासार, दूसरा भाग	साहबप्रसाद सिंह	सन् १८८४ ई०	प्रथम	१२ × २१ सें०मी०	२८८
	९	भाषासार, प्रथम भाग	साहबप्रसाद सिंह	सन् १८८३ ई०	प्रथम	२१ × १३ ,,	१८८
		,, ,,	,,	,,	दूसरा	२१ × १३ ,,	
		,, ,,	,,	सन् १८८४ ई०	तीसरा	२२ × १३ ,,	१८४
		,, ,,	,,	सन् १८८५ ई०	चौथा	२१ × १२ ,,	२१०
		,, ,,	,,	सन् १८८७ ई०	पाँचवाँ	२४ × १५ ,,	१४४
		,, ,,	,,				
		,, ,,	,,	सन् १८९० ई०	सातवाँ	२४ × १६ ,,	१८६
		,, ,,	,,	सन् १८९२ ई०	आठवाँ	२२ × १३ ,,	१८४
	१०	भाषासार, दूसरा भाग	,,	सन् १८८७ ई०	दूसरा	२३ × १५ ,,	१७६
		,, ,,	,,	सन् १८९० ई०	तीसरा	१२ × १६ ,,	१३६
	११	हिन्दी-भाषा की दूसरी पुस्तक	हरिश्चन्द्र	सन् १८८५ ई०	प्रथम	१८ × १० ,,	९६
	१२	विद्या की जड़	ठाकुरदयाल सिंह	सन् १८८६ ई०	दूसरा	२१ × १२ ,,	१०६
	१३	साहित्यभूषण, प्रथम भाग	महादेव प्रसाद	सन् १८८७ ई०	प्रथम	२४ × १५ ,	१९६
	१४	बालदीपक, दूसरा भाग	फ्रेडरिक पिन्काट	सन् १८८७ ई०	प्रथम	१८ × ११ ,,	११८
	१५	बालदीपक, पहला भाग	,, ,,				
	१६	बालदीपक, तीसरा भाग	,, ,,				
	१७	बालदीपक, चौथा भाग	,, ,,	सन् १८९२ ई०	तीसरा	१७ × १० ,,	२३४
	१८	सुता प्रबोध	साहबप्रसाद सिंह	सन् १८८७ ई०	प्रथम	१८ × ११ ,,	१४४
				सन् १८८८ ई०	तीसरा	१७ × १० ,,	१४४

१	२	३	४	५	६	७	८
	१९	हितदर्शक	नन्दकिशोर प्रसाद	सन् १८८८ ई०	प्रथम	१८ × १० सें०मा०	७२ कैथीभाषा में
	२०	रामकथा : प्रथम	छोटूराम तिवारी	सन् १८८८ ई०	दूसरा	७ × ५ इंच	१४१
	२१	बालबोध : पहला भाग	ठाकुरदयाल सिंह	सन् १८८८ ई०	तीसरा	५ × ४ ,,	११४
	२२	प्राकृतिक भूगोल-दीपिका	राय रामप्रसाद सिन्हा	सन् १८९० ई०	प्रथम	६ × ६ ,,	६८
	२३	भूगोल-संग्रह : प्रथम भाग	दीनदयाल सिंह	सन् १८९० ई०	प्रथम	२२ × १३ सें० मी०	२८०
	२४	गुल्दस्त-ए-अंग्रेजी	कृष्णदेवनारायण सिंह	सन् १८९१ ई०	प्रथम	९ × ६ इंच	४०
	२५	उपदेश-कुसुमाकर	शीतलप्रसाद सिंह	सन् १८९२ ई०	प्रथम	६ × ६ ,,	७४
				सन् १९१३ ई०	चौथा	१८ × १२ सें० मी०	१२४
	२६	प्रशस्तिसंग्रह वा पत्रबोध	हरिश्चन्द्र	सन् १९६४ ई०	प्रथम	९ × ६ इंच	
	२७	पत्रबोध : प्रथम खण्ड	हरिश्चन्द्र	सन् १८९४ ई०	प्रथम	२५ × १६ सें०मी०	६४
	२८	हिन्दी भाषा की पहली पुस्तक	हरिश्चन्द्र	सन् १८९५ ई०	प्रथम	१८ × ११ ,,	५२
	२९	हिन्दी भाषा की दूसरी पुस्तक	हरिश्चन्द्र	सन् १८९५ ई०	प्रथम	१८ × १० ,,	६६
	३०	हिन्दी भाषा की तीसरी पुस्तक	,,	सन् १८९६ ई०	तीसरा	१७ × ११ ,,	१४८
	३१	हिन्दी भाषा की चौथी पुस्तक	,,	सन् १८९५ ई०	तीसरा	८ × ४ इंच	१६०
				सन् १८९८ ई०	पाँचवाँ	२२ × १३ सें०मी०	१८४
	३२	बातचीत : प्रथम भाग	चण्डीप्रसाद सिंह	सन् १८९६ ई०	प्रथम	८ × ५ इंच	५६
	३३	बंगाल का भू-वृत्तान्त	रामदीन सिंह	सन् १८९६ ई०	प्रथम	२४ × १६ सें० मी०	५८
	३४	समझ की सीढ़ी : पहला भाग	रामदीन सिंह	सन् १८९७ ई०	तीसरा	७ × ४ इंच	१०० कैथीलिपि में
	३५	बाल-खेल	दामोदर शास्त्री	सन् १८९७ ई०		२४ × १५ सें०मी०	१८

१	२	३	४	५	६	७	८
	३६	समस्त जमींदारी : पहला भाग	उमानाथ मिश्र	सन् १८६७ ई०	पाँचवाँ	१८×११ सें० मी०	७२
	३७	विद्योदय	हरिश्चन्द्र	सन् १८९८ ई०	प्रथम	२२×१३ ,,	६४
		,,	,,	सन् १९११ ई०	दूसरा	१७×११ ,,	६६
	३८	देशी खेल : पहला भाग	पुत्तनलाल 'सुशील'	सन् १९०० ई०	प्रथम	७×४ इंच	७२
	३९	रानी बोडेशिया	रामगरीब चौबे	सन् १९०१ ई०		२२×१२ सें० मी०	
	४०	सचित्र वर्ण-परिचय	मथुरानाथ सिन्हा	सन् १९०१ ई०		१८×११ ,,	
	४१	हिन्दी किंडर-गार्टन : भाग १	रामदीन सिंह	सन् १९०१ ई०	प्रथम	२१×१२ ,,	८४
	४२	हिन्दी-किताब : पहला भाग	मुंशी राधालाल माथुर				
	४३	हिन्दी-किताब : दूसरा भाग	मुंशी राधालाल माथुर	सन् १९०१ ई०	पन्द्रहवाँ	१८×११ ,,	
	४४	हितोपदेशः : पहला भाग					
	४५	हितोपदेश : दूसरा भाग	रामदीन सिंह	सन् १९०२ ई०		६×४ इंच	१४४
	४६	भारतवर्ष का इतिहास	गोकर्ण सिंह	सन् १९०४ ई०		२२×१३ सें० मी०	१३०+४
	४७	हिन्दी-शिक्षा (प्रथम अंश)	रामदास राय	सन् १९०५ ई०		२२×१४ ,,	४२
	४८	बालबोध	रामदीन सिंह	सन् १९०५ ई०		७×४ इंच	७५
	४९	साहित्यभूषण	रामदीन सिंह	सन् १९०७ ई०		१८×१२ सें० मी०	१९१
	५०	स्त्रीशिक्षा : पहला भाग	साहबप्रसाद सिंह				
	५१	स्त्रीशिक्षा : दूसरा भाग	साहबप्रसाद सिंह	सन् १९०९ ई०		१८×१२ ,,	११२
	५२	सचित्र वर्ण-परिचय	मथुराप्रसाद सिन्हा	सन् १९१३ ई०		१८×१२ ,,	३२
	५३	सचित्र वर्ण-परिचय	गोकर्ण सिंह	सन् १९१७ ई०		१८×१२ ,,	३२
	५४	शिशु-प्रमोद		सन् १९२७ ई०		१८×१२ ,,	३२

१	२	३	४	५	६	७		८
	५५	प्रतापकथा-संग्रह	प्रतापनारायण मिश्र	सन् १९२८ ई०		१९ × १३ सें० मी०		६०
	५६	हिन्दी-वर्णमाला : पहाड़ा सहित	चण्डीप्रसाद सिंह	सन् १९३१ ई०		१२ × १६	,,	१६

बँगला से : अनूदित

१	२	३	४	५	६	७		८
	१	वर्णपरिचय : दूसरा भाग	ईश्वरचन्द्र विद्यासागर अनु० प्रतापनारायण मिश्र	सन् १८९५ ई०	प्रथम	१८ × ११	,,	३६
		,, ,,	,, ,,	सन् १८९७ ई०	दूसरा	१८ × ११	,,	३६
		,, ,,	,, ,,	सन् १९०५ ई०		१८ × ११	,,	३१
		,, ,,	,, ,,	सन् १९०० ई०		७ × ४	इंच	३०
	२	शिशुरामायण	तिनकौड़ी वन्द्योपाध्याय अनु० : किशोरीलाल	सन् १८९४ ई०	प्रथम	२४ × १६ सें० मी०		२९
	३	बोधोदय	ईश्वरचन्द विद्यासागर अनु० : प्रतापनारायण मिश्र	सन् १८९४ ई०	प्रथम	१८ × ११	,,	१०२
	४	शिश-विज्ञान	वीरेश्वर पाण्डेय [अनु० : प्रतापनारायण मिश्र	सन् १८९६ ई०	प्रथम	२२ × १३	,,	५४
				सन् १८९९ ई०	तीसरा	९८ × ११	,,	६४
				सन् १९०० ई०	चौथा	१८ × ११	,,	६६
	५	शिशु-शिक्षा : तीसरा भाग	मदनमोहन तर्कालंकार अनु० : प्रतापनारायण मिश्र	सन् १८९३ ई०	प्रथम	१७ × ११	,,	४१

१	२	३	४	५	६	६	८
	६	शिशु-शिक्षा : दूसरा भाग	,, ,,	सन् १८९४ ई०	प्रथम	१८ × ११ सें० मी०	२०
	७	शिशु-शिक्षा : पहला भाग	,, ,,	सन् १८९४ ई०	प्रथम	१८ × ११ ,,	२०
	८	भाषा नूतन पाठ	चन्द्रनाथ वसु अनु० : रामशंकर व्यास	सन् १९०२ ई०	नवीन संस्करण	५ × ४ इंच	१०७

पाठ्यपुस्तक : गणित

१	२	३	४	५	६	६	८
	१	क्षेत्र-तत्त्व	रामदीन सिंह	सन् १८८१ ई०	प्रथम	२१ × १५ सें० मी०	१७७
	२	गुरुगणित-शतक : दूसरा भाग	साहबप्रसाद सिंह	सन् १८८२ ई०	प्रथम	८ × ५ इंच	७६
				सन् १८८३ ई०	दूसरा	८ × ५ ,,	७६
				सन् १८८२ ई०	तीसरा	२१ × १५ सें० मी०	४१
	३	गुरुगणित-शतक : प्रथम भाग	साहबप्रसाद सिंह	सन् १८७९ ई०	प्रथम	८ × ५ इंच	३६
				(ब्राञ्च बोधोदय प्रेस में मुद्रित)			
				सन् १८८२ ई०	तीसरा	२१ × १३ सें० मी०	७२ + ४१
	४	गणित बत्तीसी : पहला भाग	साहबप्रसाद सिंह	सन् १८८४ ई०		१७ × १० ,,	६४ कैथीलिपि में
	५	गणित-बत्तीसी : दूसरा भाग	साहबप्रसाद सिंह	सन् १८८४ ई०		१७ × १० ,,	६७ कैथीलिपि में
	६	गणित-बत्तीसी : तीसरा भाग	साहबप्रसाद सिंह	सन् १८८६ ई०	दूसरा	१७ + १० ,,	५७
	७	गणित-बत्तीसी : चौथा भाग	साहबप्रसाद सिंह	सन् १८८५ ई०	पहला	१७ × १० ,,	६१ कैथीलिपि में
	८	गणित-कौमुदी	लक्ष्मीशंकर नागर	सन् १८८४ ई०	प्रथम	२१ + १३ ,,	५४
	९	गणितसार : पहला भाग	कालिकाप्रसाद सिंह	सन् १८८६ ई०	प्रथम		५७
	१०	गणितसार : दूसरा	,, ,,	सन् १८८६ ई०	प्रथम		५२

१	२	३	४	५	६	७	८
	११	देशी हिसाब : पहला भाग	उमानाथ मिश्र	सन् १८८९ ई०	दूसरा	२२ × १३ सें०मी०	१४४ कैथीलिपि
				सन् १९०४ ई०		६ × ५ इंच	६८
१	१२	देशी हिसाब : दूसरा भाग	उमानाथ मिश्र	सन् १८८९ ई०	दूसरी बार	२१ × २५ सें०मी०	१०४
				सन् १८८८ ई०		२२ × १३ ,,	७९
				सन् १८६३ ई०	छठा	२१ × १२ ,,	
				सन् १८६९ ई०	तेरहवाँ	२१ × १२ ,,	६०
				सन् १९०६ ई०		९ × ५ इंच	८०
	१३	देशी हिसाब : तीसरा भाग	उमानाथ मिश्र	सन् १८८८ ई०		२२ × १३ सें०मी०	४२
				सन् १८८९ ई०		२१ × १५ ,,	७४
				सन् १८९० ई०	तीसरा	२२ × १३ ,,	९६
	१४	देशी हिसाब : चौथा भाग	उमानाथ मिश्र	सन् १८८९ ई०	प्रथम	२१ × १५ ,,	९६
	१५	क्षेत्रनाप विद्या : पहला भाग	उमानाथ मिश्र	सन् १८८९ ई०	प्रथम	२१ × १५ ,,	६०
	१६	अंकगणित : प्रथम भाग	अयोध्यासिंह उपाध्याय	सन् १८९६ ई०	प्रथम	२२ × १३ ,,	९२
	१७	अंकगणित	गोकर्ण सिंह	सन् १९०० ई०	दूसरा	१८ × ११ ,,	९४
	१८	भाषा-लीलावती	मैथिल स्वामी	सन् १९११ ई०	प्रथम	१८ × १२ ,,	
	१९	समस्त महाजनी	उमानाथ मिश्र	सन् १९२७ ई०	तीसरा	७ × ४ इंच	५०

विविध

१	रेखागणित : पाँचवाँ	रामगूदर सहाय	सन् १८६५ ई०	प्रथम	६ × ६ ,,	१४०
२	बृहद् राशिमाला	—	सन् १८९८ ई०	द्वितीय	२० × १३ सें०मी०	२६

१	२	३	४	५	६	७	८
	३	उत्सावली	हरिश्चन्द्र		प्रथम	२४ × १६ सें०मी०	८
	४	राजनीतिमाला	गुरुप्रसाद सिंह	सन् १९०१ ई०		२१ × १३ ,,	१९
	५	कानून ताधी रात शौहर	हरिश्चन्द्र	सन् १९०५ ई०	प्रथम	९ × ६ इंच	१२
	६	हिन्दी-सिद्धान्त-प्रकरण	सम्पादक-मण्डल	सन् १९०६ ई०	प्रथम	२१ × १३ सें०मी०	९३
	७	मिथिला-हितशिक्षा	वृजनन्दन मिश्र	सन् १९०८ ई०		२५ × १६ ,,	२८
	८	यीशू का जन्मकाल और शक-संवत्	हरिमंगल मिश्र	सन् १९०९ ई०	प्रथम	१८ × १२ ,,	१०
	९	श्रीसीता जी	अनु० : रघुनाथ द्विवेदी	सन् १९०९ ई०	प्रथम	१८ × १२ ,,	६४

परिशिष्ट (१)

बाबू रामचरित्र सिंह और बाबू भूदेव मुकुरजी

"एक सुशिक्षित पुरुष मौजा तारनपुर परगना मनेर थाना बाँकीपुर जिला पटना के बाबू रामचरित्र सिंह थे। इनसे और बाबू भूदेव मुखोपाध्याय से बहुत वार्त्तालाप थी, एक बार पण्डित छोटूराम तिवारी पटना कॉलेज के प्रोफेसर और बाबू नव्वोकुमार बानूरजी बैठे थे उसी समय में और बाबू रामचरित्र सिंह आये और इन लोगों को प्रणाम कर बैठ गये, बड़ी देर तक इतिहास के विषय में बात-चीत हुई। बाबू भूदेव मुखोपाध्याय ने बाबू रामचरित्र सिंह से कहा कि जितनी जानकारी आप अन्य देश के इतिहासों में रखते हैं, उतनी जानकारी अपने देश के इतिहास में रखते तो बड़ी बात होती। इसपर बाबू रामचरित्र सिंह ने कहा कि इतनी जानकारी तो नहीं रखता हूँ पर कुछ रखता हूँ। इस पर बाबू भूदेव मुखोपाध्याय ने कहा कि कुछ बताइये और कई एक बातें पूछे; सबों का उत्तर रामचरित्र सिंह देते गये। इसपर बहुत प्रसन्न हुए और कहे कि आप मुझसे बराबर मिलिये और बिहार के विषय में बहुत कुछ कहिये। तथा इस देश में जितनी प्रकार की गीते हैं उन सबका इतिहास से सम्बन्ध है। मुझे उसको सुनाइये और उसका वृत्तान्त भी कहिये। इस बात को रामचरित्र सिंह ने स्वीकार किया और उन सबको इकट्ठाकर बाबू भूदेव मुखोपाध्याय को सुनाये और उन सबों में नीचे लिखी हुई गीतें थीं।

आल्हा : यह बड़ा भारी इतिहास सम्बन्धी गीत है। कुछ अंश इसका जी० ए० गिरिअर्सन साहिब छपवाये हैं और इसका कुछ अंश फतहगढ़ में छपा है।

लोरिक : बिहार के अहीरों का पूरा इतिहास है। इसे अहीर (गोप) लोग गाते हैं।

कुँवर विजई—इसको भी जी० ए० गिरिअर्सन साहब ने उल्था कर छपवाया है।

दीनाभद्री की गीत : इसे भी जी० ए० गिरिअर्सन साहब ने छपवाया है।

गोपीचन्द भरथरी : इसे भी जी० ए० गिरिअर्सन साहब ने छपवाया है।

सलहेस की गीत : एक त्रिहुत का दुसाध था। त्रिहुत में दुसाध लोग इसका पूजन करते हैं।

दयालसिंह का गीत : यह त्रिहुत का नामी मल्लाह था। इत्यादि गीतों को सुनाये। बाबू भूदेव मुकुरजी इससे बहुत प्रसन्न हुये थे। एक बार रामचरित्र सिंह और भूदेव मुखोपाध्याय से विद्यापति के विषय में बातचीत हुई थी। रामचरित्र सिंह पूरे प्रमाण से साबित कर दिया कि विद्यापति त्रिहुत के थे। इस पर भूदेव बाबू बहुत प्रसन्न हुए।

और हिन्दी में उनके जीवन-चरित छापने को कहे पर अफसोस है कि उसी वर्ष रामचरित्र सिंह श्रावन महीने में मर गये। यह बात सन् १८८२ ई० की है।"[1]

(२)

बाबू भूदेव मुखोपाध्य तथा पण्डित नन्द मिश्र

"पटना से ४ कोस दक्खिन एक गाँव वसमकुरा है। उस गाँव में पण्डित नन्द मिश्र नामक एक प्रसिद्ध पण्डित रहते थे। ये व्याकरण तथा पुराण में अद्वितीय थे। ऐसा उत्तम स्वभाव के पण्डित कदाचित् कोई मिले। इनका आचार ऋषियों का-सा था। घास गढ़कर गऊ को अपने हाथ से खिलाते थे और साथ ही साथ लड़कों को पढ़ाते भी थे। एक बार इनकी प्रशंसा सुनकर बाबू भूदेव मुखोपाध्याय ने इनसे भेंट करने की इच्छा की। संयोगवश पटने में आये तो पण्डित छोटूराम तिवारीजी से बाबू भूदेव बाबू से मुलाकात कराई। पहले व्याकरण के विषय में बातचीत हुई। इनकी असाधारण बुद्धि देखकर भूदेव बाबू ने पुराण में कई एक शंका और पूर्वापर का दोष दिखाये पर पण्डित नन्द मिश्रजी ने कहा कि अमुक पुराण अमुक कल्प की है और पुराणों के श्लोक भी पढ़ते गये। इसपर भूदेव बाबू बहुत प्रसन्न हुए और यहाँ तक कहे कि पुराण के पण्डित से तो आज ही मुझे भेंट हुआ है। इसके बाद भूदेव बाबू ने पूछा कि बिहार कसबा के समीप बड़गाँव नगर है और वहाँ वाले उसे कुण्डलपुर कहते हैं और कृष्णचन्द्र की स्त्री रुक्मीनी का नैहर वहाँ बताते हैं। इसपर क्या राय है। पण्डित नन्द मिश्रजी ने कहा कि मेरी राय से यह कुण्डलपुर नहीं है क्योंकि पुराणों में कुण्डलपुर विदर्भ देश में लिखा है और यह मगध देश है। दूसरे कृष्ण के कई पीढ़ियों का ब्याह कुण्डलपुर में हुआ है और प्रद्युम अनरुद्ध का ब्याह कुण्डलपुर में हुआ है और दक्खिन देश की रीति है। दूसरे राजगृह और कुण्डलपुर का अन्तर लगभग ४ कोस का है। उस समय वहाँ जरासन्ध राज्य करता था। पण्डित नन्द मिश्र की बातों से भूदेव मुकुरजी बहुत प्रसन्न हुए।"[2]

(३)

दक्षिण दिग्यात्रा

दामोदर विष्णु सप्रे कण्डकर

जिला सतारा, बम्बई।

हाथीगली, ब्रह्माघाट

बाबू गोविन्ददास गोपालदास के

---

१. बाबू रामदीन सिंह की नोटबुक में लिखित टिप्पणी।

२. बाबू रामदीन सिंह की टिप्पणी।

मकान में। श्रीनाथ द्वारा
सरस्वती अखाड़े में। पटना खड्ग
विलास प्रेस। ७ सितम्बर, शुक्रवार
सन् १८८३ ई०। १६४० बि०

मेरा आश्रयभूत खड्गविलास प्रेस और उसके अध्यक्ष महाराजकुमार बाबू रामदीन सिंह प्रभृति। ये मेरे किये हुये सब ग्रन्थों को मुद्रण करें आज तक मुद्रित ग्रन्थों का मूल्य लें इनका प्रचार करें। यदि मुद्रण मूल्य से कुछ बचे तो प्रतिमुद्रा आठ आना स्वयं लेकर चार आने स्त्री और चार आने भाई को दें। जो जो मेरे लेख का विषय इधर-उधर सामयिक पत्रों में वा अन्यत्र है वे भी पुस्तकाकार मुद्रित करें, नियुद्ध शिक्षा सचित्र वैसे ही मैं वही हूँ, जीवन चरित्र के साथ सर्व मेरे मित्र या अन्यों से संग्रह करके मेरे पत्र भी मुद्रित करें; सर्व यात्रा भी इसी में निविष्ट करनी चाहिए। इन्होंने जैसा लेख विषयक उत्साह दिया ऐसा आज तक किसी ने नहीं दिया। रामलीला के शेष तीन काण्ड भी यदि स्वयं रामदीन सिंह लिखें और हरिश्चन्द्र प्रभृति भाषा संशोधन करें तो अत्युत्तम। अन्य भी राजोपदेशादिक अवश्य मुद्रण करने चाहिए।

विशेषतः प्रत्येक पुस्तक की पाँच-पाँच प्रति भाई और भार्या को दी जाय और योग रीति से पठन रसिकों के देने के अर्थ अधिक भी वे चाहें तो पुस्तकों के लिये नहीं न हो। मेरे प्रिय मित्रों को भी एक एक प्रति पुस्तक दी जाय।

मेरे विषय जो गोपालदास को पुस्तक दिये उनके बिक्री का उपाय करके उसका ऋण चुका देना। कदाचित प्रसंगवश से भार्या वा भाई खड्गविलास से द्रव्य साहाय्य चाहें तो यथाशक्ति करने में हानि नहीं।

—मेरी दक्षिण यात्रा से।

(४)

प्रियप्रवास छापने के नियम (प्रेस-संकेत)

(१) हैडिंग के टाइप प्रथम पृष्ठ पर नोट कर दिये हैं वैसा ही बनाना चाहिए—

(२) ऊ—(फूल का रेखा संकेत) इसी फूल में रखिए—

(३) रूल और कौरनर सब पृ० में रहेगा।
पी०२२ एन०३१, पृ०२२ नं०५१

(४) द्रुतविलम्बित आदि—ग्रेट प्राइमर में कम्पोज होगा।
(२२ एम) पर शार्दूल० और **मन्द्राक्रान्ता** पा० नं ०१ में कम्पोज (?) करना होगा।

(५) तीन चरण में एक २ **पाई** रेंज के साथ चौथे में केवल अंक रहेगा —

(६) हेडिंग—बाईं और **प्रियप्रवास** दाहिनी ओर सर्ग (प्रथम द्वितीय इटीसी) पाइका नं ०१ बम्बई में रहेगा—

(७) अगर प० जी (कवि हरिऔध) क्राउन ८ पेजी (मुद्राराक्षस) का आकार नहीं पसन्द करेंगे तो २४ एम में डेमी पर छपवाना होगा—उस हालत में २२ एम वाले मैटर के इधर उधर एक २ एम भर्ती देनी होगी—

(८) **क्राउन** साइज होने पर शीघ्रता की सम्भावना हो तो ८ **पेज** ही छपा करे क्योंकि २५ नवम्बर तक जरूर छाप देनी होगी इसलिए शीघ्रता पर प्रिण्टर महाशय ध्यान दें........

(९) एक ही आदमी पेज बाँधे...........

इसमें—श्री च० पा० मिश्र

श्री गोविन्द शरण तिवारी

श्री भगवानदास और

श्री कोमल मिलके करें........

(कुछ बदलना हो तो पूछें)—

(१०) स्याही जैसी मुद्राराक्षस में है—कागज ड० क्राउन ३२ वा ३६ डे० २४ पौं० आवेरी फिनिश........

(११) मुद्रण-संख्या प० जी के उत्तर आने पर ठीक होगी पर १००० से कम नहीं...

(१२) प्रत्येक सर्ग का प्रथम अक्षर फूल में बने—मैटर आध एम से कं० हो।

(१३) प्रत्येक छन्द पर एक लेड बेशी रहे.......एक तरह का लेड काम में लाया जाय ताकि लाइन पर लाइन पड़े....लाइन **मोट०** करे......०

(१४) सर्गों के अन्त में केवल फ्रेंच रूल रहे ० (यदि प०जी कहेंगे तो कोई चित्र रहा करेगा न तो नहीं।)

(१५) १ ली वार प्रूफ कापी रजिस्ट्री से जाय........पीछे केवल प्रूफ टिकट साटकर।

(१६) लेबल कम्पोज करके छाप लेना चाहिए प्रूफ भेजने के लिए.........
सावधानी से दो वार देखकर प्रूफ जाय ......वहाँ से आने पर करेक्शन होकर प्रेस पर जाय......उसको भी बा० रा० प्र० सिंह ही देखेंगे...(मैं रहूँ तो सेकेण्ड प्रूफ मैं देखूँगा न तो बा० रा० प्र० सिंह देखेंगे) लेख-भ्रम देखने पर कापी के विरुद्ध यदि कुछ करना हो तो प्रूफ के साथ पूछ लेना चाहिए....

(१७) छापते समय......शारदा बाबू ...... बा० च० सिंह—मैशीनमैन सावधानी रखें—बा०वि० द० सिंह कभी कभी निगरानी करेंगे।

—गोकर्ण

संकेत

प० जी—कवि हरिऔध जी
बा०रा० प्र० सिंह.......बाबू रामप्रसाद सिंह
बा० च० सिंह...... बाबू चण्डी सिंह
बा० वि० द० सिंह.......बाबू विश्वेश्वरदयाल सिंह

(५)

रामदीन सिंह के मित्र

१. अम्बिकादत्त व्यास, २. अयोध्याप्रसाद खत्री, ३. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', ४. उमानाथ मिश्र, ५. 'बिहारबन्धु'-सम्पादक, केशवराम भट्ट; ६. गोपालराम गहमरी, ७. जवाहिर मल, ८. जाँर्ज अब्राहम ग्रियर्सन, ९. दीनदयाल सिंह, १०. 'विद्यार्थी' के सम्पादक, दामोदरविष्णु सप्रे शास्त्री; ११. देवदत्त मिश्र; मझौली, १२. 'उचित वक्ता' के सम्पादक दुर्गाप्रसाद मिश्र; १३. 'ब्राह्मण' के सम्पादक प्रतापनारायण मिश्र; १४. फ्रेडरिक पिंकॉट; १५. बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय; १६. 'आनन्द-कादम्बिनी' के सम्पादक बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'; १७. बाबा सुमेरसिंह साहेबजादे; १८. 'भारतमित्र' के सम्पादक बालमुकुन्द गुप्त; १९. बालरामस्वामी 'उदासीन'; २०. बिहारीलाल चौबे, २१. भगवान रूपकलाजी, २२. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, २३. भूदेवमुखोपाध्याय, २४. उदयपुर-नरेश महाराजाधिराज सज्जन सिंह; २५. 'भारतजीवन' के सम्पादक रामकृष्ण वर्मा 'बलवीर'; २६. राधाकृष्णदास, २७. राधाचरण गोस्वामी, २८. मुंशी राधालाल माथुर, २९. रामचरित्र सिंह, ३०. रामशंकर व्यास शर्मा, ३१. मझौली-नरेश लाल खड्गबहादुर मल्ल, ३२. लाला श्रीनिवासदास, ३३. सकलनारायण शर्मा, ३४. सरयूप्रसाद मिश्र, ३५. शीतलाप्रसाद त्रिपाठी, ३६. शिवनन्दन सहाय और ३७. श्यामसुन्दरदास।

खड्गविलास प्रेस के लेखक

प्राचीन लेखक :

१. गोस्वामी तुलसीदास, २. घनानन्द ३. चन्दनराम, ४. जीवाराम चौबे, ५. गुरु तेग-बहादुर, ६. बन्दन पाठक, ७. बाबा बैजूदास, ८ रामनाथ प्रधान, ९. सूरदास, १०. हलधरदास।

समकालीन लेखक :

१. अम्बिकादत्त व्यास, २. अक्षयवट मिश्र 'विप्र', ३. अयोध्याप्रसाद खत्री, ४. अयोध्या-सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', ५. आनन्दविहारी, ६. इन्द्रदेवनारायण, ७. ईश्वरीप्रसाद शर्मा, ८. उमानाथ मिश्र, ९. कन्हैयाप्रसाद त्रिपाठी, १०. कालीप्रसाद त्रिपाठी, ११. कालिकाप्रसाद

सिंह, १२. कविराज श्यामलदास, १३. केशवराम भट्ट, १४. किशोरीलाल गोस्वामी, १५. कृष्णदेवनारायण सिंह 'गोप', १६. गणपति सिंह, १७. गणेश सिंह, १८. गयाप्रसाद मिश्र, १९. गिरधरदास, २०. गुरुप्रसाद सिंह, २१. गुरुसहाय लाल, २२. गोकर्ण सिंह, २३. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, २४. ज्ञानानन्द, २५. चण्डीप्रसाद सिंह, २६. चतुर्भुज मिश्र, २७. चन्द्रशेखर ओझा, २८. चन्द्रशेखरधर मिश्र, २९. जवाहिर मल, ३०. छोटूराम तिवारी, ३१. जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन, ३२. जंगबहादुर सिंह, ३३. टिम्बल ओझा, ३४. ठाकुरदयाल सिंह, ३५. नन्द मिश्र, ३६. नरेन्द्रनारायण सिंह, ३७. नारायण कवि, ३८. तपसीराम, ३९. दीनदयाल सिंह, ४०. दिनेश द्विवेदी 'दीन', ४१. दमोदरविष्णु सप्रे शास्त्री, ४२. देवदत्त मिश्र, ४३. दुर्गादत्त व्यास 'दत्त', ४४. प्रेमन पाण्डेय, ४५. दुर्गाप्रसाद मिश्र, ४६. प्रतापनारायण मिश्र, ४७. पृथ्वीनाथ सिंह, ४८. परमहंसलाल दास, ४९. परमानन्द, ५०. पुत्तनलाल 'सुशील', ५१. फ्रेडरिक पिंकॉट, ५२. बंकिमचन्द्र चटर्जी, ५३. बलदेव प्रसाद, ५४. बाबा सुमेर सिंह 'साहेबजादे', ५५. बालरामस्वामी 'उदासीन', ५६. बिहारी सिंह, ५७. बृजनन्दन सहाय, ५८. बालकृष्ण दास, ५९. बिहारीलाल चौबे, ६०. भगवान रूपकलाजी, ६१. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, ६२. भूदेव मुखोपाध्याय, ६३. मुंशी देवीप्रसाद चौधरी, ६४. मुन्शी रामप्रकाश लाल, ६५. मुन्शी हीरालाल, ६६. मथुरानाथ सिन्हा, ६७. महादेव प्रसाद, ६८. महावीरप्रसाद द्विवेदी, ६९. रघुनाथ द्विवेदी, ७०. रमाकान्त शरण, ७१. रामगरीब चौबे, ७२. रामचरण सिंह, ७३. रामदीन सिंह, ७४. रामदास राय, ७५. रामरणविजय सिंह, ७६. रामनारायण मिश्र 'द्विजदेव', ७७. रामकृष्ण वर्मा 'बलवीर', ७८. राधाकृष्णदास, ७९. राधाचरण गोस्वामी, ८०. राधालाल माथुर, ८१. रामगूदर सहाय, ८२. रामचरित्र सिंह, ८३. रामप्रसाद सिंह, ८४. राम प्रसादलाल, ८५. रामशंकर व्यास शर्मा, ८६. लक्ष्मीधर वाजपेयी, ८७. लाल खड्गबहादुर मल्ल, ८८. लाला श्रीनिवास दास, ८९. वासुदेव ठाकुर, ९०. विश्वेश्वरदत्त शुक्ल 'अनाथ', ९१ सकलनारायण शर्मा, ९२. सरयूप्रसाद मिश्र, ९३. सरदार कवि, ९४. साहबप्रसाद सिंह, ९५. सीताराम शरण 'रूपकला', ९६. स्वामी भंजनदेव, ९७. शेषदत्त, ९८. शार्ङ्गधर सिंह, ९९. शीतलाप्रसाद त्रिपाठी, १००. शीतलाप्रसाद सिंह, १०१. शिवलाल पाठक, १०२. शिवप्रसाद पाण्डेय 'सुमति', १०३. शिवनन्दन सहाय, १०४. शिवराम सिंह, १०५. श्यामसुन्दर दास, १०६. हरिमंगल मिश्र, १०७. हरिशंकर सिंह, १०८. हरिप्रसाद सिंह, १०९. हर्षनाथ तिवारी और ११०. क्षत्रधारी सिंह ।

●

परिशिष्ट २

सज्जन-कीर्त्ति-सुधाकर की पूर्त्ति

'क्षत्रिय-पत्रिका' का विज्ञापन

घोषणा-पत्र

(१)

विकसित क्षत्रीय पत्रिका भारत सरवर माँह।
करहिं कृपा या पर सदा जो क्षत्रिय नर नांह ॥
तौं यह थोरहिं दिवस में सकै सकल दुख मेटि।
करै एकता प्रबल पुनि सब क्षत्रियन समेटि ॥

श्रीमन्महाराजकुमार बाबू रामदीन सिंह। संवत १९३७ विक्रमाब्द।

प्रायः आजकल जितने वर्ण हैं सभी अपनी-अपनी उन्नती करने में तत्पर हैं और क्रमशः उन्नत होते जाते हैं। इसके दृढ़ प्रमाण स्वरूप तो यही यूरोपिय लोग हैं जो हम लोगों पर आधिपत्य जमाए हुए हैं। अभी कुछ न्यूनाधिक दो सहस्त्र वर्ष व्यतीत नहीं हुआ कि ये लोग वृक्ष के खोलड़ों में निवास एवं जीव हिंसा द्वारा उदर पूर्ण करते थे और वस्त्र के स्थान में पशुचर्म पहन कर काल यापन करते थे। परन्तु आज भूमण्डल में इनके सदृश्य कोई वर्ण सभ्य नहीं ठहर सकता। अब सोचना चाहिये कि इनकी इतनी उन्नती का क्या कारण है, तो यही ठहरता है कि इनमें ऐक्यता और बहुदर्शिता यही दो प्रधान हैं। और ऐक्यता और बहुदर्शिता कैसे हो सकती है कि समाचार पत्रों की उन्नती से। अतएव यूरोपियनों की उन्नती केवल समाचार पत्रों से साधित हुई है। अब प्यारे पाठक वर्ग इसको जाने दीजिये और अपने भारतवर्ष में ही देख लीजिये कि बंगबासियों में आज कल कैसी ऐक्यता विराजमान है। फिर, कायस्थों की ओर दृष्टिपात कीजिये कि जो लोग तीन युगों से शुद्र थे। अब क्षत्रिय हो गये तो इसका भी कारण पढ़ना लिखना और समाचार पत्रों का देखना ही है। इसी प्रकार सकल वर्ण उन्नत होते जाते हैं तो पश्चाताप का विषय है कि क्षत्रिय लोग ऐसे समय में कि जब उन्नती साधन का अच्छा औसर है गाढ़ी निद्रा में निमग्न रहें।

ऐ ! मेरे प्यारे क्षत्रिय सपूतों, कुछ भी तो सोचो कि हमारे ही कुल में रघु, राम, युधिष्ठिर, अर्जुन और कर्ण प्रभृति कैसे-कैसे महापुरुष हो गए हैं कि जिनका जस अद्यावधि दिन दुना रात चौगुना हो रहा है तो धिक्कार है हमारे क्षत्रित्व पर कि कायस्थ प्रभृति नीच वर्ग बड़े-बड़े स्थानों पर नियत होते हैं और हमारे बन्धु बान्धव प्यादगीरी कर केवल ३ या ४ मुद्रा में कालयापन करते हैं। कहिये तो भला इस प्रकार भारतवर्ष में अद्यावधि कैसे-कैसे प्रबल प्रतापी धीरवीर क्षत्रिय राजे राज्य करते हैं परन्तु अपने बान्धव क्षत्रियों के उपकारार्थ कोई कुछ नहीं करता है। इसके न करने का प्रधान कारण यही है कि कोई उन्हें उपदेश

देने वाला नहीं है। नहीं तो जिनके भण्डार में प्रतिवर्ष कोटीशः मुद्रा अपर कामों में व्यय होता है जिसमें लक्ष्यावधि मुद्रा तो भांडभगतियों को सेत में दिया जाता है फिर आत्म वर्गिय बान्धवों के हेतु जरूर सहस्रावधि व्यय हुआ करता है।

अब इसे 'क्षत्रिय पत्रिका' के प्रचार होने से ये सभी बुराइयाँ दूर हो जायगीं और क्षत्रियों में जो इस समय परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, प्रभृति बुराइयाँ दिखाई देती हैं थोड़े ही समय में निर्मूल हो जायँगी और परस्पर प्रीति जो इस समय गूलर का फूल हो गया है थोड़े ही दिनों में समूल विकसित होकर अमृत तुल्य फल फलेगा कि जिसे भक्षण करके क्षत्रिय लोग धैर्यता, विद्या, वीरता, विवेकता और धर्म-सत्कर्म में निरत होंगे और उन लोगों पर विदित हो जायगा कि हम किस वंश में हैं और हमको क्या करना योग्य और क्या करना अयोग्य है और हमारे वंश में कैसे कैसे धीरवीर विद्वान हो गये हैं कि जिनका अनुशरण करने से इस लोक में यश और परलोक में सुजस लाभ होगा। निदान हमारे कहने का आशय यह है कि स्वजन लोग मिलकर इसका प्रबन्ध करें कि जिससे क्षत्रिय लोग सुधर जायें नहीं तो ऐसा अवसर फिर ना मिलेगा और यावत ये लोग नहीं सुधरेंगे तावत आप निश्चय जान रक्खें कि भारतवर्ष की दुरवस्था नहीं छुटेगी। अतएव स्वदेशोपकारार्थ सब वर्णों एवं विशेषतः क्षत्रियों की इस पत्रिका के सहायक में तनमन अथ च धन द्वारा सहाय करने में त्रुटि करना योग्य नहीं।

अब बिचारना चाहिये कि इसके प्रचार होने में दो वस्तु की आवश्यकता है प्रथम द्रव्य और दूसरीं विद्या की। परन्तु ये दोनों बातें ऐसी हैं कि एक दूसरी में ऐसी विपरीत है कि जिनके पास द्रव्य है वे विद्या का नाम नहीं जानते और जिनको अच्छी विद्या आती है उनपर श्री लक्ष्मी जू की ऐसी कृपा कटाक्ष है कि बड़ी दुरवस्था के साथ उदर पूर्ण करते हैं। अब कहीं सहस्रों बरणों लक्षों में एक ऐसे भी हैं जिनको शिक्षा और धन दोनों समान हैं परन्तु वे लोग भी देशोपकार के नाम मात्र से वंचित हैं। उनमें से सैकड़ों पीछे दो चार मनुष्य ऐसे भी कहा सकते हैं कि जिनके हृदय में स्वदेशोपकार का संचार होता भी है तो उनमें से एक दूसरे से सैकड़ों कोस दूर के अन्तर पर निवास करते हैं फिर इतने अन्तर पर निवास और इतनी थोड़ी संख्या के लोगों का क्या हो सकता है?

अब इस पत्र द्वारा वे सब विद्वान लोग आपस में परस्पर अलाप करके देशोपकारक साधन में समर्थ हो सकेंगे। और यथासाध्य सहाय्य करेंगे। अब मैं भारतवर्षीय बड़े बड़े महाराजधिराजों के पास विज्ञापन भेजकर आशा करता हूँ कि इस समय के क्षत्रियों की दुरवस्था पर दृष्टिपात करके क्षत्रिय कुल के राजे महाराजे मेरी कामना को अवश्य सुफल करेंगे।

जबतक कोई राजा या महाराजा आज्ञा न देवे तब तक या कि इसकी व्यतिरिक्त जो सौ ग्राहक दृढ़ न हो जावे कि वे ग्राहक दाहक न होवें अर्थात् मूल्य भेजने में हीला हवाला न करें तो भी मैं इस पत्रिका के प्रकाशित करने में समर्थ होऊँगा। नहीं तो वही कदाचित हमने अपने उत्साह से त्रुटि सहकर निकाला भी तो वही एक साल चलकर बन्द हो जायगी। क्योंकि घर से दो चार हजार का त्रुटि सहकर देशोपकार में तत्पर होना साधारण व्यक्ति

का काम नहीं है तो शोच का स्थान है कि साल दो साल चलने से कुछ देशोपकारक न होकर वरण अन्य वर्णों के सम्मुख क्षत्रियों को उपहासास्पद बनना पड़ेगा ।

इसलिये जब तक कोई महाराजधिराज आज्ञा न देवेंगे 'क्षत्रिय पत्रिका' प्रकाशित न होगी । इस पत्र का वार्षिक मूल्य डाकव्यय सहित ६।= रक्खा गया है और प्रतिमास में ४० पृष्ठ छपेगी । और पृष्ठांक ग्रन्थानुसार छपेगा कि जिससे यह सुविधा होगी कि ग्राहक लोग प्रतिवर्ष के अन्त में सभी ग्रन्थों को पृष्ठांक मिलाकर अलग पुस्तक बना लेवें ।

जो लोग अपनी बनाई किम्बा दूसरे की बनाई पुस्तक इसमें छपवाकर साहाय्य किया चाहें तो उनको चाहिये कि उस ग्रन्थ को मेरे पास भेज देवें क्योंकि जो विषय इसमें छपेगी वर्ष के अन्त में सम्पूर्ण कर दी जायगी और उस समय यह नहीं देखा जायगा कि चालिस पृष्ट से बेसी न हो वरण जितने पृष्ठांकों में सम्पूर्ण विषय जो कि वर्ष भर में प्रकाशित होयगें अन्त के मास में पूरे कर दिये जावेगें, अतएव, पुस्तक पहले भेज देने से मैं उसके छपाने का प्रथम से ही प्रबन्ध कर दूँगा । समस्या वा राजों की पुरावृत्ति प्रभृति विषय पुस्तकाकार से पृथक-पृथक छापे जायेगें ।

'क्षत्रिय पत्रिका' में निम्नलिखित विषय क्रमश: प्रकाशित होंगे, इतिहास, परिहास, आयुर्वेद, धर्म्मशास्त्र तथा राजनीति का उल्था, बड़े-बड़े महोदयों का जीवनचरित, विज्ञान, दर्शन, प्राचीन या नवीन ललित काव्य, वीररस काव्य, नाटक, नियुद्ध शिक्षा, स्वास्थ्य रक्षा और अन्यान्य शरीर रक्षक विषय और भारतवर्षीय क्षत्रियों की वंशावली विस्तारपूर्वक छापी जायगी । इसके अतिरिक्त अनुवादित प्रकरण प्रभृति समयानुसार इसमें छापे जायँगे और राज्य सम्बन्धी तथा क्षत्रिय सम्बन्धी उपकारक वार्ता रहा करेगी और प्राचीन आर्य्यों के धर्म-कर्म्म की समालोचना की जायगी । और प्रात्यस्तम्भ भी मुद्रित होगा ।

जो लोग 'क्षत्रिय पत्रिका' के ग्राहक होंगे उनको प्रथम अंक से पत्रिका लेना होगा उसे व्यतिरिक्त ग्राहक होने से उनकी और हमको परस्पर असुविधा होगा अतएव कोई महाशय ग्राहक चाहे जबही पत्रिका प्रथम अंक से लेनी पड़ेगी ये नियम केवल वर्ष भर के लिये है इसके उपारान्त फिर भी इसी क्रम से जानो ।

कदाचित कोई यह कहे कि यहीं आप अपनी जीविका निर्वाह करने के हेतु कहते हैं तो उन लोगों को इस पत्रिका के खर्च को भी देखना चाहिये कि इसके प्रचार होने में कितना रुपया व्यय होगा इसके देखने मात्र से ही उन लोगों का समाधान हो सकता है अतएव विशेष लिखने की कुछ आवश्यकता नहीं है । और इस पत्रिका के प्रकाशित करने से कुछ मेरा यह काम नहीं है कि मैं सम्पादक होऊँ उसे नहीं चाहे कोई स्वजन इसके प्रकाशित करने का भार अपने सिर पर लेवे तो मैं उसे लेख द्वारा सहायता दिया करूँगा और क्षत्रियों की अवस्था सुधर जाय वही मुझे परम लाभ है ।

पाठक अब यदि आपको सम्पूर्ण बखेड़े को त्याग ग्राहक होना स्वीकार हो तो शीघ्र होइये नहीं तो कृपाकर और ही विषय को देखिये ।

अब मैं उपसंहारकाल में भारतवर्षीय महाराजाओं से सविनय प्रार्थना करता हूँ कि आप लोग कृपा करके आज्ञा देवें तो मैं इसको छापकर प्रकाशित करूँ और बाबू और साधारण क्षत्रियों से भी मेरी प्रार्थना है कि आप लोग यथासाध्य सहाय्य करें तो एक नहीं अनेक पत्रिका प्रकाशित हो सकती हैं यह तो एक ही है। मुझे आशा है कि आप लोग सहाय्य करने में विलम्ब नहीं करेंगें।

जिन महाशयों को ग्राहक होना किम्बा सहाय्य देना स्वीकृत हो निम्नलिखित ठिकाने पर पत्र भेजें—

बिहार बन्धु छापाखाना, बाँकीपुर, साधोराम भट्ट ने छापकर प्रकाशित किया।

११९।५।८०, आर्य्य चिकित्सालय, चौहट्टा, बाँकीपुर

श्री ५ युत महाराजकुमार बाबू रामदीन सिंह

'क्षत्रिय पत्रिका' की सूची

खण्ड १ : संख्या १ सन् १८८१ ई०

ज्येष्ठ, गंगादशमी, १९३८ सं०

'क्षत्रिय पत्रिका' का उद्देश्य था—

विकसित क्षत्रिय पत्रिका भारत सरवर माह
करहिं कृपा या पर सदा, जो क्षत्रिय नर नाह
तो यह थोरहिं दिवस में सकै सकल दुख मेटि
करै एकता प्रबल पुनि, सब क्षत्रिय समेटि
अब पढ़ि-पढ़ि यह पत्रिका करि-करि हिय उत्साह
बाढ़ौ क्षत्रीगण बहुरि, निरखि उन्नती राह।

प्रकाशित लेखों की सूची—

१. उपक्रम
२. लाल खड्गबहादुर मल्ल का पत्र
३ विशेन क्षत्री की उत्पत्ति
४. 'क्षत्रिय पत्रिका' के अभिनंदन में रचित कवित्त
५. समस्यापूर्ति
६. चंद काम की बातें
७. लोहे पर अक्षर लिखने की तरकीब
८. ऐक्यता
९. होमियोपैथी, एलोपैथी तथा आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली
१०. मैं वही हूँ की भूमिका।
११. मैं वही हूँ—दामोदर शास्त्री

खण्ड १ : संख्या २ **सन् १८८१ आषाढ़ शुक्ल दशमी १९३८ वि०**

१. मझौली नरेश का पत्र
२. पावस कवित्त

३. पत्र—लाल खड्गबहादुर मल्ल
४. समाचारावली
५. क्षत्रिय-पत्रिका के अभिनन्दन में प्राप्त पत्र
६. समस्यापूर्त्ति—दिनचारि में डूबै हैं तमासै सवै—दीनदयाल सिंह
७. कवि रेवतकृत कविता
८. चन्द काम की बातें
९. होमियोपैथी, ऐलोपैथी तथा आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली
१०. आजकल की हालत
११. समालोचना—देववाणी, दामोदरशास्त्रीकृत
१२. संवाद-पत्र, सम्पादक और सरकार
१३. क्षत्रियों के उत्साह की कविता
१४. नियुद्ध शिक्षा
१५. मैं वही हूँ

खण्ड १ : संख्या ४, सन् १८८१ ई०, भाद्रपद, शुक्ल दशमी, सं० १९३८ वि०

१. नृपोपदेश
२. श्री वैद्यनाथजी—गुरुप्रसाद सिंह
३. गिद्धौर का वर्णन
४. प्रेरित पत्र—क्षत्रिय पत्रिका और क्षत्रियगण
५. पत्र—हरिश्चन्द्र कुलश्रेष्ठ
६. विद्या—खड्गबहादुर मल्ल
७. फिर वही (११ वीं अगस्त, १८८१ ई० के बिहार-बन्धु का जवाब)
८. पाठकगण
९. बद्तहजीबी का जवाब
१०. भारत सूत्र-संग्रह—राधाचरण गोस्वामी
११. विजयवल्लरी
१२. प्राप्ति-स्वीकार आनन्द कादम्बिनी
१३. स्फुट कविता खड्गविलास

खण्ड १ : संख्या ५, आश्विन, विजयादशमी, सं० १९३८ वि०

१. सच्ची राय—खड्गबहादुर मल्ल
२. विजयादशमीचरित-वर्णन
३. वैराग्याष्टक—बिहारीलाल चौबे
४. धन्य ! धन्य ! धन्य ! ! !
५. पुनः धन्यवाद—खड्गबहादुर मल्ल
६. कयामत

७. लेक्चर—रामशंकर व्यास
८. प्रेरित पत्र—अम्बिकादत्त व्यास
९. आपस का झगड़ा
१०. समालोचना
११. समाचारावली
१२. दुःख पर दुःख
१३. नियुद्ध शिक्षा
१४. मैं वही हूँ

खण्ड २ : संख्या १,६,७, भाद्र, आश्विन, कार्त्तिक शुक्लदशमी, १८८२ ई०

१. प्राप्ति
२. एड्रेस—(विक्टोरिया का स्वागत) खड्गबहादुर मल्ल
३. आवश्यकपत्र क्षत्रियों के नाम
४. कवित्त—खड्गबहादुर मल्ल।
५. भारत की नई एका, व्योपार और धर्म की उन्नति खड्गबहादुर मल्ल
६. रामलीला
७. फाग-अनुराग
८. सपने की सम्पत्ति
९. नामार्णव— चन्दनराम

खण्ड २ : संख्या १, २, सन् १८८२ ई०

१. सूचना
२. धन्यवाद
३. हिन्दी पर हिन्दू धर्म, और उर्दू पर मुसलमानी, ४—१३,—खड्गबहादुर मल्ल
४. प्रेरित पत्र
५. अयोध्याकाण्ड १—३६
६. हास-विलास १—३२
७. दुर्गेशनन्दिनी १—१६, पहला परिच्छेद
८. पियूषधारा १—१७
९. नापितस्तोत्र १—८

खण्ड २ : संख्या २, ३, सन् १८८२ ई०, सावन शुक्ला दशमी, सं० १९३९ बि०

१. अवश्य पठनीय है
२. देशहितैषी महाशयों से विशेष निवेदन
३. प्राप्त—रामचरित्र सिंह

४. अघटित घटितं
५. भारतदशा (कविता)
६. रामलीला नाटक

खण्ड २ : संख्या ८, सन् १८८२ ई०, मार्गशीर्ष, शुक्ल दशमी, सं० १९३८ वि०

१. नेपोलियन बोनापार्ट का जीवन-चरित्र—रामशंकर व्यास
२. समालोचना
३. श्री वैद्यनाथम्भजे—कुँवर रावणेश्वर प्रसाद सिंह, गिद्धौर
४. रामलीला—दामोरशास्त्री सप्रे

खण्ड २ : संख्या ९, १०, पौष-माघ, सं० १९३९ वि०

१. प्राप्त (कविता)—जवाहिर लाल
२. जी० एफ० निकोल का पत्र
३. मिस्रदेशीय युद्ध के महावीरों की परीक्षा—जी० एफ० निकोल
४. भारतीय सरकार का रिजोल्यूशन
५. वैष्णवपत्रिका, शिक्षासोपान—श्रीगोविन्दनारायण मिश्र
परीक्षागुरु की समालोचना
६. प्रेरित पत्र—गदाधर प्रसाद
७. जसदूलुह तस बनी बराता—बंका सिंह
८. बिहारबन्धु के समालोचक के समालोचक
९. मुंशी दरबारीलाल-लिखित कविता (होरी)
१०. क्षत्रियार्थ उपदेश
११. विजयवैजयन्ती—भारतेन्दु
१२. समाचारावली
१३. रामलीला

खण्ड २ : संख्या ११, फाल्गुन-शुक्ल दशमी, सं० १९३९ वि०

१. समालोचना
२. क्षत्रियार्थ उपदेश
३. भारतदुर्दशा—हरिश्चन्द्र
४. अपवर्ग पंचक
५. दानलीला
६. याददाश्त
७. जंगल में मंगल बस्ती में कड़ाका—दरबारीलाल
८. प्रेरित पत्र—हरिप्रसाद सिंह

९. बिहारबन्धु
१०. हिन्दीभाषा—हरिश्चन्द्र
११. बिहारबन्धु

खण्ड २ : संख्या १२-१३, चैत्र-वैशाख, सं० १९४० वि०

१. प्राप्त कविता
२. भारतेन्दु (समालोचना)
३. प्रेमालाप (कविता)
४. संगीतसार
५. सौताल
६. पत्र जी० एच० निकोल
७. कागज बनाने की रीति—साहबप्रसाद सिंह
८. छापने की विद्या
९. जोगिन-लीला

वार्षिक पत्रिका विद्याविनोद

सन् १८९४-१८९५ ई० (प्रथम भाग)

१. महारानी विक्टोरिया—१३६ पृ० तक
२. शिशुविज्ञान—५४ पृ० तक
३. आर्यचरित्र (प्रथम भाग)—५२ पृ० तक
४. बातचीत—५६ पृ० तक
५. दत्त कवि—१४ पृ० तक

विद्याविनोद : द्वितीय भाग

(सन् १८९६ ई०)

१. दत्तकवि, १४—३०
२. सरल स्वास्थ्य-रक्षा, १—४८
३. विद्योदय, १—६४
४. हितोपदेश, १—९६
५. हिन्दी की चौथी पुस्तक, १—५६

विद्याविनोद : तृतीय भाग

(सन् १८९७ ई०)

१. हकीम अफलातून—१

२. सम्राट मार्कस आरिलियस—९
३. हकीम अरशमीदस—१२
४. फिरदौसी—१५
५. हकीम बू अली सेना—१९
६. गलेलियो—२२
७. कप्तान कुक—२७
८. जॉर्ज स्टीफन्सन—२९
९. डाक्टर जेनर—३१
१०. विक्रमादित्य और शालिवाहन; ३४—४८

इसी अंक में परिशिष्टांक :

१. आख्यानमंजरी, द्वितीय भाग—६८
२. नीतिशतक—२६ (११३ छन्द तक)
३. कविवर बाबू जवाहिर लाल जी का जीवन-चरित—२६
४. रिपवान विंकल—२३ (हरिऔध)
५. श्रीपीपाजी की कथा—सीतारामशरण —५४
६. बातचीत—२०
७. श्रीमान् युवराज की यात्रा—१६

विद्याविनोद : चतुर्थ भाग

(सन् १८९८ ई०)

१. जुबिली साठिकी—३० पुत्तनलाल
२. आख्यान मंजरी (तृतीय भाग)—६८
३. पीपाजी की कथा, ५५—१२६

विद्याविनोद : पंचम भाग

(सन् १८९९ ई०)

१. रसायन (कीमियागरी), १—२३
२. भाषाऋजुपाठ (द्वितीय भाग)—४४
३. भाषाऋजुपाठ (तृतीय भाग), ३+५७
४. भाषा-चन्द्रोदय, भूमिका—६०
५. समस्त हिन्दुस्तान का इतिहास—६६
६. उजाड़ गाँव, भूमिका—४+३२

विद्याविनोद : षष्ठ भाग

(सन् १९०० ई०)

१. ठेठ हिन्दी का ठाट—हरिऔध, ८२+२
२. ग्रियर्सन साहब की विदाई—४८
३. कुछ बयान अपने देश की जबान का—रामगरीब चौबे, ४+१०२+२
४. आरोग्य-मंजरी का सूचीपत्र—१६

विद्याविनोद : सप्तम भाग

(सन् १९०१ ई०)

१. प्रबन्ध-मंजरी—८०
२. नीति-निबन्ध—१२६
३. मित्रता (सिसरो के लिलियस नामक निबन्ध का भाषानुवाद—गोपीनाथ शर्मा, ७४
४. दि आनरेबिल टामसन साहब बहादुर की संक्षिप्त जीवनी—रामगरीब चौबे; पृ० २६

विद्याविनोद : अष्टम भाग

१. विक्टोरिया, एडवर्ड षष्ठ, महारानी एलेक्जेण्डर, लॉर्ड कर्जन, ए० डब्ल्यू० क्राफ्ट, एलेक्जेण्डर पेडलर, सरजान उडवर्न तथा एण्टोनी पैट्रिक मैक्डोनल का चित्र।
२. लोअर प्राइमरी रीडर, प्रथम स्टैण्डर्ड—१७८
३. लोअर प्राइमरी साइंस रीडर, तृतीय भाग—१०८
४. लोअर प्राइमरी सांइस रीडर, चतुर्थ स्टैण्डर्ड—१४६

विद्याविनोद : एकादश भाग

(सन् १९०५ ई०)

१. उद्भिद विद्या—११६
२. हम हैं—९६, रोला छन्द—१०
३. बोध-विकास—६८
४. डॉ० ग्रियर्सन की जीवनी : काशीप्रसाद जायसवाल—४३

विद्याविनोद : द्वादश भाग

(सन् १९०६ ई०)

१. शिक्षा-विधायक प्रस्ताव—१४७
२. रसायनशास्त्र—१४२

विद्याविनोद : त्रयोदश भाग

(सन् १९०७ ई०)

१. कर्त्तव्य—५०
२. उपदेश
घर-गृहस्थी का शासन
अन्य लोगों के विषय में विचार
आत्मशिक्षा
दानशीलता
सन्तोष-वृत्ति धारण करने के उपाय
व्यावहारिक बुद्धिमत्ता
जापानी लोगों का रहन-सहन
चुने हुए उपदेश—८०
३ कार्य-सम्पादन
४. उत्तम पुस्तकों का सहवास कैसा उपकारी है—५६
५. सुदामा नाटक—४७

विद्याविनोद : चतुर्दश भाग

(सन् १९०८ ई०)

१. प्रबन्ध-रचनाविधि—१६
१. बालशिक्षा—५६
३, सदुपदेश-शती—१९
४. शिक्षा-संग्रह (दूसरा भाग)—२८
५. शिक्षा-संग्रह (तीसरा भाग)—२७
६. शिक्षा-संग्रह (चौथा भाग)—१६
७. आर्य-कीर्त्ति (दूसरा खण्ड)—७९
८. ईसफ की कहानी—३३

विद्याविनोद : पंचदश भाग

(सन् १९०९ ई०)

१. युधिष्ठिर का समय-निर्णय—योगेशचन्द्र राय—२६
२. यीशू का जन्म और शक-संवत् – १०
३. मेवाड़ का संक्षिप्त इतिहास—४८
४. क्षमा, धैर्य, परोपकार, परिश्रम, दूरदर्शिता, बुद्धि, डाह, आत्मप्रशंसा, अभिमान और सन्तोष—४८

५. स्त्रियों का गुण-वर्णन—६४
६. उद्धव नाटक—३८

विद्याविनोद : षोडश भाग
(सन् १९१० ई०)

१. न्यू हिन्दी रीडर—४४
२. प्रबन्ध-रचनाविधि, पहला भाग—६४
३. कविता-कुसुम—१६
४. सावित्री—३४
५. दमयन्ती—६५
६. न्यू हिन्दी-रीडर—६०

विद्याविनोद : सप्तदश भाग
(सन् १९११ ई०)

१. होनहार बालक—मुन्शी देवीप्रसाद—७४
२. प्रबन्ध-रचनाविधि, दूसरा भाग—१४४

विद्याविनोद : अष्टादश भाग
(सन् १९१२ ई०)

१. राजभक्ति
हिन्दी—७२
अँगरेजी + उर्दू—३०
२. बालव्यावहारिक ज्यामिति—४८
३. होनहार बालक—दूसरा भाग—५६

भाषा-प्रकाश का विज्ञापन

भाषा की उन्नति करने का यह उपाय बहुत अच्छा है कि एक पत्र ऐसा निकले जिसमें हर विषय के पुस्तक का लेख छपा करे। इस बात को सिद्ध करने के लिए कई एक मासिक पत्र बद्ध-परिकर हुए, परन्तु यह बात किसी से पूरी नहीं हुई। मोहन चन्द्रिका, चन्द्र चन्द्रिका और विद्यार्थी में स्मृत्यर्थ-दीपिका और देववाणी और क्षत्रिय पत्रिका में कई एक पुस्तकें तैयार हो चुकी हैं। आशा है कि भारतेन्दु से भी यह काम हो, पर जब उसका कोई निश्चय नहीं है तो क्या आशा हो सकती है। यद्यपि पुस्तकें बहुत बनती जाती हैं और विद्वानों के प्रयत्न से हर एक विषय की पुस्तक तैयार हो रही है पर अभी हमलोगों को चाहिए कि हिन्दी में जो पुस्तक प्रचलित की जाय उसका मूल्य बहुत अल्प रखा जाय न कि आजकल

की पत्रिकाओं के समान । अब मैं एक मासिक पत्र निकालना चाहता हूँ । उसमें सब प्रकार के लेख वर्त्तमान रहेंगे । पर एक विषय की समाप्ति कर दूसरे विषय में हाथ लगाया जायगा । इसमें ये विषय क्रमशः लिखे जायेंगे, काव्य, नाटक, नीति, रसायन, शिल्प, कृषि, उद्‌भिज, भूगर्भ-इतिहास, स्त्री-शिक्षा, वैद्यक, धर्मशास्त्र इत्यादि । अब सब लोगों को यह भी ज्ञात रहे कि ये सब लेख भारतभूषण भारतेन्दु संगृहीत । मास में इसका आकार चार फर्मा रहेगा और दाम दो आना होगा, जिन लोगों को लेने की इच्छा हो वे मुझे लिखें । यह पत्र वैशाख अक्षय तितीया से निकला करेगा । पर बिना सौ ग्राहक हुए यह पत्र न निकलेगा और जो २ विषय इसमें दिये जायेंगे उससे बढ़कर और पत्र में न मिलेंगे—यही प्रयत्न रहेगा ।[1]

साहब प्रसाद सिंह
क्षत्रिय-पत्रिका
खण्ड-२
संख्या ११-१२ ।

---

१. साहबप्रसाद सिंह की अपील, क्षत्रिय-पत्रिका : खण्ड २, सं० ११-१२ ।

परिशिष्ट ३

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पत्र : बाबू रामदीन सिंह के नाम

(पत्र-सं० १)

२३ सितम्बर, १८८२

प्रिय !

आपका पत्र और तार मिला। आपने जैसा अनुग्रह इस समय किया वह कहने के योग्य नहीं चित्त ही साक्षी है। आज शनिवार की दोपहर है अब तक बाबू साहबप्रसाद सिंह नहीं आए। शाम तक या रात तक शायद आवें। यद्यपि इस अवसर पर फिर कुछ आपको लिखना निरा झख मारना है किन्तु अत्यन्त कष्ट के कारण लिखता हूँ। हो सके तो एक सौ और भेज दीजिए। जो काम कमबख्त दरपेश है नहीं निकलता और मैं यहाँ किसी से उसका जिक्र तक नहीं किया चाहता इसी से फिर निर्लज्ज होकर लिखा। किन्तु जाने दीजिए बहुत कष्ट हो तो नहीं। क्षमा।

इसके पीछे जो नोटिस है मेरे अनुरोध से क्षत्रिय पत्रिका में छाप दीजिएगा।

भवदीय
हरिश्चन्द्र

सूचना

मेरी बनाई वा अनुवादित वा संग्रह की हुई पुस्तकों को श्री बाबू रामदेनी सिंह खड्ग-विलास के स्वामी छाप सकते हैं जब तक जिन पुस्तकों को ये छापते रहें और किसी को अधिकार नहीं कि छापैं।

हरिश्चन्द्र

२३ सितम्बर, १८८२

(पत्र-सं० २)

प्रिय !

बाबू साहबप्रसाद सिंह की शिष्टाचार मुझसे कुछ भी नहीं बन पड़ी। मेरा स्वभाव आपने देखा होगा कि बिल्कुल वाह्याडम्बरशून्य है इसी से मुझको जाहिरा कुछ नहीं आता। वह सब पत्र यहीं छापूँगा।

यह फिर मैं किस मुख से कहूँ कि हो सके तो शीघ्र एक और भेज दीजिए।

भवदीय
हरिश्चन्द्र

(पत्र-सं० ३)

प्रियवरेषु !

आपका पत्र आया । व्याकरण और बिहार-दर्पण आने पर मैं अपनी राय लिख भेजूँगा ।

काशीनाथ के मुकद्दिम में विलम्ब मेरे विन्ध्याचल चले जाने से हुआ था । वह सब कुछ तै हो गया आप खातिर जमा रखिए ।

भक्तिसूत्र बिना ऊं के छापिए ।

मेरे एक मित्र ने मुझसे बड़ा विश्वासघात किया । मेरा कुछ रुपया किसी कारण से उसके नाम रहता था । वह बेइमान होकर मिरजापुर चला गया । वरंच मैं इसी वास्ते विन्ध्याचल गया था । अब वह साफ इनकार कर गया खैर दीवानी फौजदारी जो कुछ होगी वह देख ली जायगी । अब एक गुप्त बात आपको लिखता हूँ कि रु० सब एक साथ हाथ से निकल जाने से मैं बहुत ही तंग हो गया हूँ नालिश दीवानी फौजदारी सभी करनी है । महाराज से माँगा तो कहा कि दूसरे महीने में देंगे । यदि हो सके तो शीघ्र सहायता कीजिए । वह यों कि मैं अपनी पुस्तकों में से जिसका आप चाहें स्वत्व हकतसनीक मैं आपके हाथ बेच डालूँ । वा और जैसे उचित समझिए । ४०० रु० की मुझको जरूरत है इसमें आपका किया जितना हो सकै वा न हो सकै जो कुछ हो तार द्वारा समाचार दीजिएगा । आदित्यवार तक रु० हमको यहाँ पहुँच जाना चाहिए । यहाँ **अन्धेर नगरी, विद्यासुन्दर** इत्यादि का लोगों ने ५५ रु० प्रति पुस्तक लगाया किन्तु लज्जा के कारण मैंने नहीं बेचा । वहाँ होगा तो जो वस्तु १ की बिकेगी वह आप नोटिस में ४ की लिखिएगा । तब हमारी आपकी और पुस्तक की प्रतिष्ठा रहेगी । वा यह जो आप न चाहें तो जो कुछ हो लिखिएगा । सिद्धान्त यह समझिए कि इस विषय को मैं विशेष नहीं लिख सकता इस समय सहायता कीजिएगा तो अगले जनम भर एहसान मानूँगा । और किसी बात से आपसे बाहर नहीं हूँगा । जो कुछ हों नहीं थोड़ा बहुत मंजूर हो शीघ्र तार दीजिए । मैं किसी विशेष कारण से यहाँ कुछ उपाय न करने के हेतु यों भुगतान किया चाहता हूँ । बड़ी घबड़ाहट में हूँ । उत्तर शीघ्र । यह पत्र आपको गुरुवार को मिलेगा उसी क्षण तार में जवाब दीजिएगा हो सके तो उसी दिन डाक द्वारा द्रव्य भेजिएगा । विशेष समाचार दूसरे पत्र में । यह सब वृत्त अभी गुप्त रखिएगा । ४०० रु० हो सकै अत्युत्तम नहीं जितना भेज सकिए । फेर भेजने लिखिएगा तो दो एक सप्ताह में फेर भेजूँगा । इति ।

भवदीय

हरिश्चन्द्र

(पत्र-सं० ४)

प्रियवन्धु !

आपका दो पत्र और एक कार्ड मिला अन्धेर नगरी के विषय में पूर्व ही मैं लिख चुका हूँ आप कुछ चिन्ता मत कीजिये एक अन्धेर नगरी आपका कितनी हानि करेगी आपने जो छापा है उसका टायटिल छापकर स्वयम् बेंचिये किसी को भेज देने की आवश्यकता नहीं। मेरा भेजा हुआ पुस्तकों के विषय का स्वत्व पत्र शीघ्र प्रकाश करके प्रचारित कर दीजिये फिर किसी को कुछ छापने का मुँह न रहै। बाबू काशीनाथ के विचित्र पत्र पीछे भेजूँगा। उनको देखकर आपको इस जाति की स्वार्थपरता और त्वच्छता प्रगट होगी मैं चार दिन से ज्वर से अत्यन्त अभिभूत हो रहा हूँ यही कारण है कि अपने हाथ से पत्र भी नहीं लिख सका। रुपये के विषय में यह निवेदन है कि जितना त्तयार हो इस पत्र के पाते ही रवाने कीजिये। एक २ क्षण में हानि और दुःख है वरंच इन्हीं चिन्ताओं के कारण मैं इस रुग्ण अवस्था को प्राप्त हुआ हूँ थोड़ा लिखा बहुत समझियेगा इति—
इससे विशेष मैं क्या लिखूँ

'तेरे बीमार को चारा नहीं गोयाई का
ए मसीहा यही मौका है मसीहाई का'

आश्विन शुक्ल १४, सं० १९३९   हरिश्चन्द्र

(पत्र-सं० ५)

१८८४ का प्रथम दिन

प्रियवरेषु

आपका पत्र मिला। आपने इतना लम्बाचौड़ा वृत्तान्त क्यों लिखा। केवल उस विषय का समाचार ही काफी था। मैंने उसी क्षण वकीलों से राय पूछी। उन लोगों ने कहा है कि इसके पीछे जो पत्र है उसकी नकल एक साथ रखकर आप उनको वकील के दस्तखत से नोटिस दीजिए जो इस पर वे नुकसानी न दें तो बेशक नालिश कीजिए अवश्य डिग्री होगी। यहीं से मैं नोटिस भेजता किन्तु मुझको उस छापेखाने का नाम आदि तो आपने लिखा ही नहीं फिर किसको भेजूँ।

अन्धेर नगरी मैं गली गली बाँटूगा या लुटा दूँगा मुझको कुछ ऐसा ही लाग है।

पत्रों से संग्रह करके यहाँ कौन छापता है? मुझको मालूम हो तो मैं मना करूँ।

भाषा ऋजुपाठ से रामकृष्ण से कोई सम्बन्ध नहीं वह अम्बिकादत्त जी का है। उनसे इनसे आजकल विगाड़ है। अ० द० ने स्वयं ५००० यह छपाया है। आजकल हरिप्रकाश प्रेस में छप रहा है।

हरिश्चन्द्र

(पत्र-सं० ६)

बनारस

२६ नवम्बर, १८८२

बाबू रामदीन सिंह

क्षत्रिय पत्रिका के स्वामी

बाँकीपुर

प्रियवरेषु

हमारे हिन्दी-व्याकरण का हमने सब स्वत्त्व आपको दे दिया। आप ही उसको छापें बेचें। और किसी का कौन कहे मैंने निज अधिकार भी उसपर से उठा लिया इससे अब हिन्दी-ग्रामर (व्याकरण) के स्वामी आप हैं और उसका कापी राइट आपको प्राप्त है।

हरिश्चन्द्र

(पत्र-सं० ७)

पोस्टकार्ड

तिथिहीन

श्रीकृष्ण

प्रियवरेषु

आपका कृपा पत्र आया आपने जो पुस्तक माँगी वह मेरे पास नहीं है। व्रजभूषण दास और कम्पनी, कविवचन सुधा आफिस गायघाट, बाबू बालेश्वर प्रसाद नार्मल स्कूल और हरिप्रकाश प्रेस नेपाली खपरा बनारस में मेरे यहाँ की पुस्तकें और क० व० सुधा और चन्द्रिका अपने अपने आफिस में मिलती है किन्तु ये पुस्तकें यहाँ कहीं नहीं मिलेंगी।

अनुग्रहाकांक्षी

हरिश्चन्द्र

आज की डाक में एक बड़ी अपूर्व वस्तु भेजी है। उदयपुर और जयपुर के राजभवन की लिखी उसी भाषा में वंशावली। इसकी ज्यों की त्यों नकल करा लीजिए और जल्दी फेर दीजिए बाकी कागजों को अपने पास रखिएगा। अन्धेर नगरी केवल २०० भेजिए। हमारे जिन ग्रन्थों को आप छापेंगे और कोई न छाप सकेगा। पत्रिका के वास्ते फिर कुछ लिखूँगा। लाल साहब यहीं हैं मैंने दर्शन किया था। कल लाल साहब डोमराँव जायेंगे।

राजिस्तान अङरेजी बँगला आदि में भेज दूँ ? जयपुर उदयपुर की जो वंशावली मैंने भेजी है वह वहाँ के चारण और बन्दी लोग हजारों रुपया दिये भी नहीं देते ।

भक्तमाले फिर भेजूँगा ।

हरिश्चन्द्र

(पत्र-सं० ८)

३।५।८३
बनारस

प्रणाम

पत्र मिला । मैं पहले ही लिख चुका हूँ कि **उचित वक्ता** को मैंने उस काल में आज्ञा दी थी जब आपके यहाँ छपने का जिक्र नहीं था । उनका रजिस्टरी कराना आपको बाधा नहीं कर सकता क्योंकि आपको तो पुस्तक मात्र छपाने छापने का मैंने अधिकार दिया है । आज फिर शरीर नहीं अच्छा है ।

कौशलेश कवितावली और कवि-हृदय-सुधाकर के छापने इत्यादि का सब सत्त्व आपको प्राप्त है ।

हरिश्चन्द्र

(पत्र-सं० ९)

तिथिहीन

प्रियवर !

आपका कृपापत्र आया था परन्तु मेरे माता का देहान्त हो गया इससे पत्रोत्तर में विलम्ब हुआ क्षमा कीजियेगा ।

'बुन्दी के राजवंशावली का नोट' और दोहे भेजे जाते हैं यह इतनी ही है । इसमें एक गलती है उसे बना लीजिएगा वह यह है कि (टाड साहब के मत से हर्ष राय) इसके आगे जो सन् लिखा है उसको ७५५ बना दीजिए ।

'अन्धेरनगरी' का एक दृश्य यहीं रह गया था । वह जाता है । इसे शीघ्रता से मुद्रित कीजिये क्योंकि ७ फरवरी को यह नाटक महराज डुमराँव के यहाँ खेला जायगा उस अवसर पर बाँटने के लिए इसकी आवश्यकता है, अतएव इसका प्रूफ बहुत ही शीघ्र भेजिए ।

हरिश्चन्द्र

परिश्रम देना क्षमा कीजिएगा
और भक्तमाल भी भेजिएगा ।

'भारत मित्र' के सम्पादक भी टाड साहिब का राजस्तान छापना चाहते हैं जो जगह छपना अच्छा न होगा आप उनको पत्र लिखकर तै कर लें ।

हरिश्चन्द्र

(पत्र-सं० १०)

१५।३।८४

प्रियवरेषु

आपके पत्र और पुस्तक भी मिले । आप एक मुसौदा कराकर भेज दीजिए तो उसी अनुसार स्टैम्प पर लिख पढ़ जाय ।

एक भाषासार और एक कैथी ग्रामर हमारे वास्ते भी भेज दीजिएगा ।

भाष्य अब हो जाय । मैं पटने से आकर फिर बीमार पड़ा था । इससे बिलम्ब हो गया ।

आपका—हरिश्चन्द्र

(पत्र-सं० ११)

तिथिहीन

श्रीकृष्ण

प्रियवर

आपका पत्र मिला । बाबू काशीनाथ के पत्र ही में जो उन्होंने बाबू रामकृष्ण के पत्र की पंक्तियाँ मेरे विषय में लिखी हैं उन्हीं से सब बात समझ लीजिए मेरे लिखने की कोई भी आवश्यकता नहीं । कलियुग के मित्र और शत्रु वा उदासीन का कुछ भेद मालूम ही नहीं पड़ता । मैं तो अपना सर्वस्व कलियुग के मित्रों के चरित्र पर न्योछावर कर चुका हूँ । आपसे इन लोगों से काम नहीं पड़ा है चुप से सब कुछ तमाशा देखते चलिए । विशेषकर जब पढ़े लिखे लोगों की यह दशा है तो औरों की कौन कहे । मेरी लिखी हुई आज्ञा सिवा आपके और किसी के भी पास नहीं है निश्चिन्त रहिए । इस विषय में मेरा अणुमात्र भी संसर्ग मत समझिएगा । इस समय अत्यन्त शीघ्रता में इतना ही लिखता हूँ । सविस्तार पीछे लिखूँगा ।

पूर्व में कई पत्र भेज चुका हूँ उत्तर नहीं मिला ।

भवदीय

हरिश्चन्द्र

(पत्र-सं० १२)

तिथिहीन

प्रियवरेषु

दो पत्र मिले । नाम जानने पर नोटिस नालिश करूँगा । जो किताब छापैं पहले रजिस्टरी करा लिया करें ।

इतिहास आदि का विचार करूँगा । माघ में पटने आता हूँ तब सब बातें होंगी ।

अभिन्न
हरिश्चन्द्र

(पत्र-सं० १३)

तिथिहीन

यतोधर्म्मस्ततः कृष्णो
यतः कृष्णस्ततो जयः

प्रिय !

कलकत्ता इक्जि्हिविशन में हिन्दी की किताबों के रखने की भी मंजूरी हुई । बिना एक क्षण के विलम्ब के आपके यहाँ की छपी पुस्तक मात्र की दो-दो कापी ऐसी तरह बन्द करके कि तनिक भी खराब न हों । इस पत्र को टेलिग्राफ समझिएगा ।

इस समय जल्दी में इतना ही ।

अभिन्न
हरिश्चन्द्र

(पत्र-सं १४)

तिथिहीन

बाबू साहबप्रसाद सिंह के नाम भारतेन्दु का पत्र

प्रियवरेषु निवेदनम्,

मैं रामनगर जाकर ऐसा फँस गया और प्रचंड वायु और वर्षा के कारण ऐसा रुक गया कि न आ सका । नदी का वेग तो रामनगर के नीचे इतना था कि तीन दिन घाट बन्द रहा । मुझे इस असभ्यता के कारण क्षमा कीजिएगा । मेरी जीवनावस्था कुछ ऐसी विचित्र है कि क्षणभर भी सावकाश नहीं मिलता । जो कोई मुझसे मिले वह मुझको

महा असभ्य समझे किन्तु सुहृद लोगों से यह आशा नहीं। उन सब पत्रों की नकल भेज दीजिए यहीं क्रम लगाकर छापूँगा और अपने पत्र भी उसी के साथ दूँगा। मेरे अपराधों को क्षमा क्षमा क्षमा।

भवदीय

हरिश्चन्द्र

(पत्र-सं० १६)

२५ मई १८८३

प्रियबरेषु

ठाकुर जाहर सिंह, बजीरपुरा, आगरा, इनको सौ दो सौ अंधेर नगरी लेनी है आप पूछकर आपके उनके सौदा पटै तो भेजिए।

कल बाबू रामकृष्ण आए थे नोटिस लेकर। बहुत झीखते थे। यदि आगे से वह लिख दें कि आपकी छापी पुस्तकें वे न छापेंगे तो आप मानिएगा ?

आगे से जो पुस्तक छापनी हो उसके पूर्व १ इश्तिहार भी दिया कीजिए कि मैं अमुक पुस्तक छापता हूँ जिसमें मेरा इतना व्यय होगा ! यदि कोई भूल से इसको छाप लेगा तो या तो उससे हम उसकी छापी हुई पुस्तक मात्र ले लेंगे। या अपने एडिशन का व्यय ले लेंगें। बकीलों से मालूम हुआ कि ऐसा नोटिस काम देगा।

शास्त्री कहाँ हैं ? मैं अभी वैसा ही हूँ। आप कहाँ हैं ?

स्नेहाभिलाषी—

हरिश्चन्द्र

(पत्र-सं० १७)

२६।१२।८३

काशी

प्रियवरेषु

मैंने सुना है कि बाबू राधालाल को आप पुस्तक नहीं देते और उसमें कारण यह है कि हिन्दी व्याकरण कोई दूसरा मनुष्य छापता है यदि यह वही हिन्दी व्याकरण है जो मेरा बनाया है तो दूसरे को क्या मजकूर है कि छापै यदि छापैगा वह मुजलिम होगा आप उसको अभी से नोटिस दे सकते हैं बाद मुद्दत के एक वस्तु कोर्स में हुई है उसको किसी की मजाल है कि छापै कोई छापै तो आप उससे अपनी नुकसानी नालिश करके ले सकते हैं। फिर किस बात की चिन्ता है। यही सब कहने का आज ही कल में बाबू राधालाल यहाँ

आने को हैं, उनको मना कीजिए। हिन्दी-व्याकरण सर्वतोभाव से आपका आप उसके स्वामी हैं और कोई कैसे छापैगा। चटपट प्रबन्ध कीजिए।

एक पत्र पहले भेजा है उत्तर इन दोनों का अतिशीघ्र आवैं।

अभिन्न
हरिश्चन्द्र

(पत्र-सं० १८)

सभवतः
२६ दिसम्बर, १९८३

प्रियवरेषु

बहुत दिनों से आपका कोई पत्र नहीं आया। कारण ऐसाबोध होता है कि इधर वर्ष समाप्ति में कोर्स इत्यादि छापने की भीड़ थी।

मुहम्मद अली हसन हुसैन की जीवनी जिन क० व० सुधा पत्रों में हो वह भेज दीजिए। देखकर लौटा दूँगा।

मैं किसी कारण से **अन्धेर नगरी** की कुछ कापी चाहता हूँ सो थोड़ी ही सी अपने काम के लायक छाप लेता हूँ किन्तु प्रकाशन इत्यादि के स्थान में नाम आपही का छपैगा क्योंकि ऐसा होने से ही उसका महत्त्व रहेगा। छपने पीछे दो तीन सौ कापी रेल द्वारा आपके पास पहुँचेगी। मुझको किसी लाग से तो तीन सौ कापी इसकी मुफ्त में बाँटनी है। सिद्ध प्रश्नावली और भक्तिसूत्र का क्या होता है? बड़े व्याकरण का पक्का यत्न कीजिए तो बना दूँ। शरीर अभी वैसा ही चला जाता है।

हरिश्चन्द्र

(पत्र-सं० १९)

प्रिय सम्पादक महाशय !

आपकी क्षत्रिय-पत्रिका के कई नम्बर मिले और अत्यन्त हर्ष हुआ ईश्वर करै आपकी पत्रिका द्वारा भारतवर्ष का पुनरुद्धार होय। मेरी बुद्धि में भी आपकी पत्रिका में वीर रस के काव्य विशेष रहने चाहिए। नेशनल संगीत नेशनल काव्य इन्हीं की भरती विशेष कीजिए वा पृथक पुस्तकाकार छापिए। चन्द्रिका में होली कजली जैसी नैशन छपी हैं और जो छोटे मोटे जातीय प्रसंग हैं वैसे ही सदा इसमें कुछ न कुछ रहा करै। प्राचीन राजों का वंश, उनकी कीर्ति, प्राचीन राजाओं के यश के कवित्त और उत्साह बढ़ाने वाले विषय अवश्य छपैं जिनमें आर्य्य लोगों की शिथिल और शीतल धमिनि में उष्ण रक्त फिर से प्रवाहित हो।

विजय बल्लरी नामक एक नवीन खण्ड काव्य भेजता हूँ। पहले यहीं छापने का विचार था किन्तु जब यही ठहरा कि क्षत्रिय-पत्रिका में छपै इसमें मैटर यहाँ डिस्ट्रिब्यूट कर दिया। इसको कृपा पूर्वक शुद्ध छापिएगा जिसमें मुझको फिर भी उत्साह हो।

चन्द्रिका की फाइल तो आपके पास होगी। उसमें भारत वीरत्व आदि विषय देखियेगा और यहाँ के योग्य जो कार्य हो लिखियेगा।

अनुग्रहाच्छुक
श्रीहरिश्चन्द्र

भाद्र शुक्ला ३ सं० १९३८
बनारस

भारतेन्दु की पुस्तकों का अधिकार-पत्र

(पत्र-सं० २०)

बनारस
१४ नवम्बर, १८८४

प्रिय !

दो पत्र मिले। जो पुस्तकें आप छाप चुके हैं या छापते हैं उनका सब अधिकार आप ही को है इस विषय में जब जैसे कहिए लिख दूँ। यदि यहाँ कोई लिखवाने आवे तो एक एक किताब सबमें की लिए आवें।

हरिश्चन्द्र

(पत्र-सं० २१)

बाबू रामदीन सिंह साहब, मालिक व मुहतमिम
क्षत्रिय-पत्रिका, खड्गविलास बाँकीपुर

आपको मैं इजाजत देता हूँ कि आप मेरे किताबों में से, जिनको आप चाहें, छापें और इस वास्ते कि जो किताबें आप छापें उनमें आपको नुकसान न हो। यह भी आपको लिखा जाता है कि जो चीज आप छाप लेंगें, उसको और कोई न छाप सकेगा, और अगर कोई छापे तो कानून हक तसनीफ के (कापी राइट) मुताबिक आप उसपर नुकसानी का दावा करने को मजाज होंगे और मेरे किताबों के सबब से आपको जो कुछ इनतिफाज हो उससे मुझको कोई वास्ता नहीं। वह कुल मुनाफा क्षत्रिय-पत्रिका के पर्चे में लगाया जायगा जिसके कि आप मालिक हैं। फकत मरकूम, २३ सितम्बर १८८२ ई०; मुकाम बनारस।

हरिश्चन्द्र
(ह०-अँगरेजी में है)

मुंशी राधालाल माथुर का पत्र

(पत्र-सं० २२)

गया
तारीख २१ जनवरी, १८८५ ई०

श्रीयुत बाबू गोकुलचन्द जी और राधाकृष्णदास जी योग्य लिखी गया से राधालाल का भगवत् स्मरण बाँचना। यहाँ वहाँ शुभ होवे—

आगे अत्यन्त खेद की और दुःख की बात है कि भारतवर्ष के भूषण श्री बाबू हरिश्चन्द्र जी इस लोक से उठ गये। यह वृत्तान्त लिखने में मनुष्य का कलेजा तो फटता ही है वरन् लेखनी के भी आँसू गिरते हैं परन्तु इस दैव घटना में बेबस हैं। हिन्दुस्तान का अभाग्य है कि ऐसा परोपकारी और देशहितकारी मनुष्य युवावस्था में इस भूमि से उठ गया हाय हाय पश्चाताप है पर हाथ मलने के सिवाय हमलोग कुछ नहीं करते हैं। आप तो उनके सहोदर भ्राता हैं सो आपको तो उनके परलोक सिधारने का पूरा शोक और दुःख है पर हमलोग भी जो उनके मित्र वर्ग में हैं उनको भी इतना दुःख हुआ है कि लिख नहीं सकते—

२—दूसरी बात हम अपने मतलब की लिखते हैं कि स्वर्गवासी श्रीयुत बाबू हरीश्चन्द्र जी में हमारे रु० १३५० ।।। ≡ ।। बाकी थे सो आप भी जानते हैं क्योंकि बहुत बार श्री बाबूराधाकृष्णदास जी ने स्वर्गवासी बाबूसाहिब की तरफ से हमको पत्रों का उत्तर लिखा है उन रुपयों में से रु० ३८०।= श्रीयुत स्वर्गवासी बाबू साहिब के मारफत वसूल हुए और ६०० रु० मित्र भाव से बाबूरामदेनी सिंह जी बाँकीपुर खड्गविलास प्रेस के अध्यक्ष ने स्वर्गवासी बाबूसाहिब के हिसाब में दिये कुल ९८० रु० तो इस्तरह से वसुल हुए अब केवल ३७० रु० साढ़े तेरह आना बाकी रहे हैं और ये रुपये बहुत थोड़े हैं सो यदि आप लोग स्वर्गवासी बाबूसाहिब के हिसाब में हमको दे देवें तो उनका दैन अदा हो जावे, हमको हमारा रुपया मिल जावे और स्वर्गवासी बाबू साहिब स्वर्ग में सुनकर आनन्दित होंगे इसलिये आप कृपा करके इन रुपयों का प्रबन्ध कर दें तो हम बहुत धन्यवाद मानेंगे। सो कृपा करके इसका उत्तर शीघ्र लिखिये।

हमारा हिसाब स्वर्गवासी बाबू साहिब के साथ था आप लोगों से कुछ सम्बन्ध नहीं था परन्तु आप उनके सहोदर भ्राता हैं सो विश्वास है कि स्वर्गवासी बाबू साहिब का दैन अदा करने में परिश्रम करेंगे। और हम परदेशी हैं हमको इतने रुपये डूब जाने से बहुत हानि पहुँचेगी और आप महाजन हैं आपका घर बड़ा है सो आपके इतने रुपये देने में कुछ घटी नहीं होगी सो कृपा करके इन रुपयों का प्रबन्ध करें और उत्तर लिखें और अधिक क्या लिखें आप सज्जन हैं और मित्र हैं—

आपका मित्र
राधालाल
डिपुटी इन्स्पेक्टर स्कुल, गया

मुंशी राधालाल माथुर की रसीद

(पत्र-सं० २३)

(१)

बाबू रामदेनी सिंह मैनेजर खड्गविलास प्रेस से ४५० रु० चार सौ पचार रुपया, बाबू हरिश्चन्द्र के हिसाब में वसूल पाया, इसलिये यह रसीद लिख दी कि वक्त पर काम आवे ।

राधालाल

तारीख १२ मई ।

डिपुटी इन्स्पेक्टर

सन् १८८४ ई०

जिला शाहाबाद

(एक आने का टिकट)

(२)

श्री हरि :

खड्गविलास प्रेस के अध्यक्ष बाबू रामदेनी सिंह से तीन सौ सत्तर रुपये साढ़े पन्द्रह आने बाबू हरिश्चन्द्र के हिसाब में वसूल पाये इसलिये यह रसीद लिख दी कि काम आवै ।

Radhalal

The 27th May 1885

Gaya

(एक आने का टिकट)

ता० २७ मई, १८८५

(३)

बाबू रामदेनी सिंह खड्गविलास प्रेस के मैनेजर से १५० रु० एक सौ पचास रुपये बाबू हरिश्चन्द्र के हिसाब में पाये । इसलिये रसीद लिख दी कि समय पर काम आवै ।

राधालाल

गया

(एक आना का टिकट)

तारीख १६
जनवरी सन् १८८५ ई०

राधाकृष्णदास का पत्र रामदीन सिंह के नाम

(पत्र-सं० २४)

बनारस
२१-८-८५

प्रियवर,

कृपा पत्र पाकर अत्यन्त आनन्द हुआ भला आपको इतने दिनों पर भुले हुए मित्र की याद तो आई । हमलोगों को यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आपको बा० दुर्गा

प्रसाद जी ने भी पुस्तकें छापने की इजाजत दे दी। बधाई देता हूँ। मेरे योग्य जो काम हो मैं करूँगा।

आप भाई साहब (बाबू हरिश्चन्द्र) के परमप्रिय मित्र थे। आप ऐसे मित्रों के रहते हुए उनकी कीर्त्ति चन्द्रिका का बन्द होना बड़े लज्जा की बात है इससे मैं चन्द्रिका के विषय में जो जो काररवायें हुई हैं वे सब लिखता हूँ आप अपनी सम्मिति और कहाँ तक सहायता की हिम्मत है सो लिखिये।

चन्द्रिका के दो नम्बर पूज्य भाई साहब ने निकाले थे तीसरा नम्बर तैयार हो चुका था कि वे इस चन्द्रिका ही को नहीं हम सभी को अनाथ कर चल दिये। उनके पीछे हमलोगों का विचार हुआ कि इस चन्द्रिका को बन्द न करैं चलावैं। हमलोगों ने उस तीसरे नम्बर को निकाला और उसकी छपाई इत्यादि अपने पास से लगाया आगे के नम्बरों में यह सलाह हुई कि उनके विषय में जितना शोक प्रकाश हुआ है वह सब इकट्ठा छप जाय और छापना प्रारम्भ हो गया वरन्त नौ फार्म छप भी गए। और इसका खर्च भी हमलोगों ने दिया। निदान इन सभों में हमलोगों का ११५ रु० के अन्दाज लगा। इतने में पंडित मोहनलाल विष्णलाल पंड्या का पत्र आया कि चन्द्रिका का अधिकार हमको बाबूसाहब बाजाब्ता दे गये हैं इससे तुम लोग बन्द कर दो। हमलोगों ने उन्हें उत्तर दिया कि चन्द्रिका चलाना आवश्यक है आप ही चाहे चलावैं हमलोगों ने फायदे के लिए नहीं चलाया था उन्होंने उत्तर कुछ न दिया पाँच छ महीने इस बीच में बीत गये अब डेढ़ दो महीना हुआ कि उन्होंने एक महाशय के जबानी इजाजत दी कि तुम छापो परन्तु हमलोगों ने लिखी इजाजत चाही सो अब तक नहीं मिलीं। इस बीच में बाबू रामकृष्ण से बातें हुईं। उनसे हमसे निम्न-लिखित शर्त्तों पर चन्द्रिका निकालने का ठीक हुआ।

१. इसका नाम हरिश्चन्द्र चन्द्रिका के बदले भारतेन्दु चन्द्रिका होगा।

२. उसकी आमदनी, खर्च, घाटा, नफा, प्रवन्ध जिम्मेदारी इत्यादि सब उनके सिर पर रहेगा। इसमें चार फार्म या तीन फार्म छपैंगे। तीन में तीन पुस्तकें एक स्फुट के लिए वह तीन फार्म जिसमें पुस्तकें रहैगी हजार छपैंगें जिसमें २५० तो चन्द्रिका के साथ लग जायेंगे ७५० की पुस्तकें तैयार होंगी। इनमें हमें २५० पुस्तकें वे हमें दे देंगे और पचीस कापी चन्द्रिका की बाकी से हमसे कुछ वास्ता नहीं। सम्पादक हम रहैं।

३. पिछले ११५ रु० वे हमें बाद मुजरा देने उस रुपया के जो हमने चन्द्रिका के मूल्य में पाया है (जो कि ४० रु० ४५ रु० के लगभग है) देंगे जो कि ७० रु० ७५ रु० के लगभग हुआ था। इसके वदले में वे इतनी चीजें पावैंगे २५० प्रति प्रेम प्रलाप दूसरा भाग दो फार्म द०=२५० प्रति बलिया का लेक्चर डेढ़ फार्म द०—॥ १५० प्रति चन्द्रिका ३रा नम्बर द०।) इन सभों का मूल्य ९४ रु० के लगभग हुआ। इसके सिवाय ९ फार्म शोक संग्रह के ५०० प्रति०।

परन्तु बीच में गड़बड़ यह हुई कि इसी बीच आपका विज्ञापन छपा उन्होंने कहा कि तुम चन्द्रिका में ही पूज्य भाई साहब के ग्रन्थ छापो और उनसे लड़ो खर्च लगेग तो हम देंगे और अगर हार जायँ और नुकसानी लगे तो वह भी हम ही देंगे बल्कि

लिखने को तयार थे पर हमने यह मंजूर नहीं किया और कहा कि हम लड़ना नहीं चाहते और पूज्य भाई साहब के लिखने के विरुद्ध नहीं करना चाहते तुम्हें लड़ना हो तो लड़ो। वह अगर हमें गवाह लिखा देंगे तो हम कदापि झूठ न बोलेंगे। बस इसी पर वे फिसल गये खैर। अगर आप चाहेंगे तो मैं आपको उनके पत्र भी दिखला दूंगा। अब मैं चाहता हूँ कि इन्हीं शर्त्तों पर आप यदि चन्द्रिका छापें तो बहुत अच्छा हो और घर ही की चीज घर में रहै। अपनी सम्मति शीघ्र ही लिखिये क्योंकि बहुत दिन चन्द्रिका बन्द हुए हो गये अब शीघ्रता करनी चाहिये। आपको नगद केवल १५ रु० देने होंगे जिनके बदले आप ६४ रु० की पुस्तकें पावैंगे। शीघ्र उत्तर दीजिये यदि उत्तर के बदले आप ही एक दिन के लिए चले आवैं तो बहुत ही अच्छा हो सब ठीक-ठीक हो जाय, क्योंकि पत्रों के द्वारा ठीक ठाक भुगतान नहीं हो सकता। एक दिन के लिए अवश्य कृपा कीजिये।

क्या पत्रिका मुझसे कुछ रुष्ठ है जो दर्शन नहीं देती ?

भवदीय
राधाकृष्णदास

यदि उत्तर में विलम्ब होगा तो मुझे मजबूर होकर और ही प्रबन्ध करना पड़ेगा।

बाबू गोकुलचन्द का पत्र

(पत्र-सं० २५)

प्रियवर,

पत्र आपका रजिस्टर्ड पहुँचा पुस्तकों के विषय में जो कुछ इन्तजाम स्वर्गीय भाई साहब कर गये होंगे वह सर्वथा हम लोगों को माननीय हम और विशेष इसका वृत्तान्त मुझको कुछ मालूम नहीं आपको यदि उसका सत्व प्राप्त हो आप अवश्य और लोगों को रोक सकते हैं इसमें हमारी कुछ आपत्ति नहीं और गवाही के लिए जो आप कहते हैं तो जो बात कि हमको विशेष रीति से मालूम नहीं इसमें क्या प्रयोजन हय और जो हमारे योग्य कार्य्य हो लिखियेगा कृपा रखियेगा।

स्नेहाभिलाषी
गोकुल चन्द्र

चैत सु० १
सं० १९४२

श्री राधाकृष्ण दास का पत्र

(पत्र-सं० २६)

५ नवम्बर ८५

प्रियवर

दो-तीन पत्र भेज चुके उत्तर नदारद कुशल तो है न ? मैं विवाह के कारण बिल्कुल

अहीमुल फुरसत है पुस्तकों की हद से ज्यादा आवश्यकता है पत्र देखते ही तुरन्त भेज दीजिए नहीं तो मेरा बड़ा नुकसान होगा।

उत्तर शीघ्र—

भवदीय
श्री राधाकृष्णदास

रामकृष्ण वर्मा का पत्र

(पत्र-सं० २७)

प्रियवर

यदि अयोध्याकाण्ड रामलीला नाटक आपके पास एकाद कापी हो तो भेज दीजिए बदले में जो कहियेगा भेज दूँगा—हाँ व्यासजी के पास तो हमने लिख दिया है आपको भी यदि चेत स्वीकार हो तो शीध्र पंचनामा लिख भेजिये या फिर जैसा जवाब लिखिये और अयोध्याकाण्ड शीघ्र भेजिये—बदले में जो कहियें भेज दूँ—

१८-११-८६

आपका
रामकृष्ण खत्री
भारतजीवन प्रेस
बनारस

लाल खड्गबहादुर मल्ल की पुस्तकों के अधिकार-पत्र

(पत्र-सं० २८)

मैंने निज कृत अनुवादित वा संग्रहीत पुस्तकों के छापने का अधिकार खड्गविलास यन्त्रालय को दिया है, अतएव उक्त प्रेस के म्यानेजर को आज्ञा बिना अन्य यन्त्राध्यक्षों को कुछ अधिकार नहीं है।

मझौली
जि०—गोरखपुर

लाल खड्गबहादुर मल्ल

(पत्र-सं० २९)

मझौली
२१-१२-८५

बाबू रामदीन सिंह जी,

इन दिनों यहाँ हम नहीं थे और फिर आज ही गोरखपुर जाते हैं इसीलिये उत्तर जाने में बिलम्ब हुआ बा० ह० चन्द्र जी की सब चिट्ठियाँ जाती हैं। विशेष समाचार फिर पीछे से लिखेगे यह पत्र शीघ्रता में लिखा है—

शुभम्—गोकुल प्रसाद को प्रणाम सभ महाशयों के चरणों में स्वीकार हो।

लाल खड्गबहादुर मल्ल
मझौली

(पत्र-सं० २९)

हिन्दी भाषा

हिन्दी भाषा की उन्नति के लिये जो लोग कटिबद्ध होकर लगते हैं, वे लोग लाखों का
उठाते और हानिएँ सहते हैं, परन्तु जिन देशवासी हिन्दीभाषी लोगों के लिये वे लोग कष्ट
स्वीकारपूर्वक धन व्यय करते हैं, वे देशवासी इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते । देखिये,
भारतेन्दु स्वर्गीय हरिश्चन्द्र महोदय ने लाखे पर पानी फेरा अपना लाख का घर खाक किया ।
परन्तु जिनके लिये किया, उन लोगों ने क्या किया ? कुछ नहीं । यदि इंगलैंड अमेरिका में
हरिश्चन्द्र जैसे कवि जन्म लेते तो वहाँ के लोग इस बात का अभिमान और गौरव करते
तथा धनधान्य से कवि का घर पूर्ण मात्रा से भरते । परन्तु यहाँ ठीक उससे विपरीत दशा
हुई । उक्त भारतेन्दु ने अपने कई लाख व्यय किये और अन्त को अर्थाभाव से उन्होंने अन्तिम
दशा में बड़े तंगी से दिन बिताये । उनको कोई ऐसा सहायक भी न मिला कि जो उनको
हिन्दी के विषय में कुछ सहायता करते । जीवन के शेषांश में उनकी आर्थिक दशा ऐसी
हो गयी थी कि, वे निज प्रणीत ग्रन्थों को छपवाने में भी असमर्थ हो गये थे । पुस्तकें
बनाकर प्रायः अन्य लोगों को छापने को दे दिया करते थे । ऐसा एक जन भी इनको न
मिला कि इनकी प्रणीत सब पुस्तकों ही को छापने में सम्मत होता । इससे भी ये बड़े दुखी
हो गये थे । जिन देशवासियों के लिये ये इतना कष्ट उठाते थे, उन लोगों ने कुछ भी
ध्यान न दिया । इनके नाम मात्र के स्वार्थी मित्र तो बहुत से थे, परन्तु किसी ने भी कुछ
सहायता देना स्वीकार न किया । जिन लोगों ने इनकी पुस्तकें छाप और बेच कर लाभ
उठाये थे, वे भी मौनावलम्बन कर रहे । अन्त को बाबूसाहब ने पटना खड्गविलास यन्त्राध्यक्ष
को अपना मनोगत भाव बतलाया । उक्त महाशय ने इनकी सब प्रकार से सहायता स्वीकार
की । अर्थ सहायता देना भी स्वीकार किया और पुस्तकों को यथानियम प्रकाशित करना
भी स्वीकार किया । वास्तव में बाबूसाहब को एक ऐसा मित्र मिला था, जिससे कि उनका
चित्त सन्तुष्ट हो गया था । उक्त खड्गविलास यन्त्राध्यक्ष के विषय में भारतेन्दु जी ने एक
पत्र यहाँ (कलकत्ता में) अपने एक मित्र को लिखा था, उसमें लिखा था कि—

प्रियवर,

इतने दिनों के अनन्तर मुझे एक हिन्दी के सच्चे प्रेमी मिले हैं, जो अपने वचन के सच्चे
और कार्य में पक्के हैं । इन्होंने मेरी पुस्तकों के छापने का प्रण किया है, और मेरी अर्थ
सहायता भी यथेष्ट कर रहे हैं जिससे मैं अब निश्चिन्त होकर कुछ लिखने में प्रवृत्त हूँ ।
परन्तु खेद है कि, उक्त मित्र कुछ काल पूर्व न मिले, नहीं तो मैं बहुत कुछ कर सकता,
क्योंकि, मेरा शरीर स्वस्थ्य रहता था । अब मेरा स्वास्थ्य भंग हो गया है इससे मैं यथा-
योग्य श्रम नहीं कर सकता । यों तो मेरे मित्र बहुत हैं परन्तु प्रायः सब सम्पत के साथी ही
निकले, अधिकांश स्वार्थी निकले । किसी से कुछ आशा नहीं, हाँ, इनमें अधिकांश मित्र वे
हैं, जो मेरे ग्रन्थों को छाप कर निज उदर पूर्ण करने ही को मित्रता का निदर्शन समझते
हैं । परन्तु ईश्वर का धन्यवाद है कि उसने इतने दिनों बाद एक सच्चा प्रेमी मिला दिया

जो कि, हिन्दी के लिये बड़े व्यग्र हैं और हिन्दी की उन्नति के लिये ठीक मेरी तरह तन, मन, धन श्रीकृष्णार्पण करने को कटिबद्ध हैं। आप इस समाचार से प्रसन्न होंगे कि ये बीच-बीच में मेरी अर्थ सहायता तो करते ही आते हैं। परन्तु सम्प्रति इन्होंने एक साथ ४००० रु० देकर मुझे ऋण से उऋण किया है। क्या आप ऐसे महात्मा का नाम भी सुनना चाहते हैं ? लीजिये सुनिये—इनका नाम महाराज कुमार श्रीरामदीन सिंह 'क्षत्रिय पत्रिका'—सम्पादक हैं। मैं अब किसी को पुस्तकें छापने न दूँगा, प्रकाशित अप्रकाशित समस्त पुस्तकों का स्वत्व भी इन्हीं को दिये देता हूँ।......आप अपनी सम्मति लिखियेगा।.........विशेष दूसरे पत्र में।.........

पाठक, उक्त पत्र से बाबूसाहब के हृदय का भाव स्पष्ट झलकता है। जीवन के शेषांश में उनकी हिन्दी की उन्नति की कैसी उत्कंठा थी और वे अर्थाभाव के मारे कैसे कुछ कष्ट पाते थे और अन्त को महाराज कुमार रामदीन सिंह के मिल जाने से वे कैसे प्रसन्न हो गये थे। ....।

—हिन्दी भाषा
'भारतमित्र', कलकत्ता, खंड १६
संख्या २८ : १३ जुलाई १८९३ ई०
(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की जीवनी में उद्धरित)
—शिवनन्दन सहाय्
खड्गविलास प्रेस, १९०५

निवेदन—३०

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी गोलोकवासी के सुहृद मित्रों से

श्री जगदीश्वर की कृपा से श्रीमान् भारतभूषण भारतेन्दु की ग्रन्थावली कला स्वरूप में बहुत कुछ प्रकाशित हो गई और थोड़ी बहुत जो शेष रह गई है शीघ्र ही प्रकाशित हो जायगी, परन्तु खेद का विषय है कि उस महामान्य का जीवनचरित अब तो जो लिखा जा सका, और उसके लिये प्रायः लोग उत्कंठित हो रहे हैं काशी निवासी पण्डित व्यास रामशंकर शर्मा जी ने कई बार अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार जीवनचरित लिखना चाहा परन्तु पूर्ण सामग्री प्रस्तुत न होने से कृत कार्य्य न हुये, श्री हरिश्चन्द्र जी कोई साधारण व्यक्ति न थे कि साधारण रीति पर उनकी यथार्थ चरितावली लिखी जाय उसके लिये बहुत सी बातें जाननी चाहिये। जहांतक हो सका व्यास जी तथा हम लोगों ने जीवन-चरित सम्बन्धी बहुत से विषय एकत्रित कर लिये हैं और अधिक विषय ज्ञान के आपेक्षी हैं क्योंकि अनेकानेक मित्र तथा गुणग्राहक हैं, जिनसे वे सब बातें अनायास ज्ञात हो सकती हैं। व्यास रामशंकर शर्मा जी ने अधिक विलम्ब उचित न समझकर हमलोगों को लिखा है कि विज्ञापन द्वारा समाचार-पत्रों में भारतेन्दु के मित्र वर्गों से प्रार्थना की जाय कि जो २ विषय जिस२ महाशय को विदित हो वे कृपा करके एक मास के भीतर लिख भेजें, अतएव श्री हरिश्चन्द्र जी के प्रेमी गुणज्ञ मित्रों से सविनय निवेदन है कि वे लोग

एक मास के भीतर जो २ बातें विदित हों उनको हमारे पास लिखकर अनुगृहीत करें जिसमें यह आवश्यक कार्य उनकी सहायता से सुसम्पन्न हो जाय। विषयों के भेजने में शीघ्रता प्रार्थनीय है क्योंकि उनके आ जाने पर व्यास जी के पास भेजे जायेंगे और व्यास जी उनको जीवनचरित में यथोचित स्थान देंगे यों तो जहाँ तक विशेष हो उत्तम है परन्तु निम्नलिखित विषयों पर अधिक ध्यान होना चाहिये।

विषय

(१) भारतेन्दु तथा उनके कुल का वृत्तान्त, (२) उदारता और गुण-ग्राहकता, (३) अप्रकाशित काव्य—उक्त कविशिरोमणि रचित। (४) प्रकाशनीय पत्र—अर्थात् उक्त महोदय के ऐसे पत्र जो परस्पर किसी विशेष विषय पर लिखे गये हों, (५) उनकी कहीं हुई चुटीली बातें जो प्रायः मित्र-मण्डली के समागम में वह कह देते थे। (६) उनके रचित ग्रन्थ, काव्य, लेक्चर आदि का समय, प्रयोजन और प्रसंग। (७) उनके उद्योग से जो सर्वसाधारण के उपयोग के कार्य्य हुए हों। (८) उनका समादर जो महाराज, राजा और विद्वान तथा महात्माओं के द्वारा हुआ हो। (९) उनकी देश-हितैषिता, महत्त्व, रुचि, मनोत्साह इत्यादि के उदाहरण। (१०) भारत तथा विदेशीय प्रसिद्ध और माननीय व्यक्तियों का परस्पर सम्बन्ध। (११) इसके अतिरिक्त और भी जो कुछ विदित हो।

निवेदक—
रामदीन सिंह
खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर।[1]

---

१. 'भारत जीवन', पृष्ठ ८, ३ जुलाई, १८९३ ई०, काशी।

परिशिष्ट ४

पण्डित प्रतापनारायण के सम्बन्ध में

सूचना

सब सज्जनों को विदित हो कि महर्षि कात्यायन कुमार पण्डितवर प्रतापनारायण मिश्रजी के शोक में जिन २ कृतज्ञों ने कुछ लिखा है वे सब संग्रह करके आगामी के नवम्बर में प्रकाशित किये जायेंगे। उसके बाद जीवनचरित छपेगा।

नीचे लिखे हुए लोगों का लेख प्रायः इसमें छपेगा :

निखिलशास्त्र निष्णात स्वामी बालराम उदासीन।
महन्त बाबा सुमेर सिंह साहब—हरमन्दिर, पटना।
प्रतापनारायण मिश्र।
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र।
पं० दामोदर शास्त्री।
पं० प्रभुदयाल पाण्डेय।
पं० सरयूप्रसाद मिश्र—इलाहाबाद।
पं० किशोरीलाल गोस्वामी—आरा।
पं० व्यास रामशंकर शर्मा—तहसीलदार महाराज बनारस चकिया।
बाबू राधाकृष्ण दास—काशी।
पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र—कलकत्ता।
बाबू दीनदयाल सिंह—तारणपुर।
बाबू शिवनन्दन सहाय—अखतियारपुर।
पं० अयोध्या सिंह—निजामाबाद।
बाबू गोकर्ण सिंह।
श्री पत्तनलाल कवि (उपनाम सुसील)—पटना।

निवेदन

जिन सज्जनों के पास पण्डित प्रतापनारायण मिश्र की भेजी चिट्ठियाँ हों वे कृपा-पूर्वक हमारे पास भेज दें। और निम्नलिखित जीवनचरित्र सम्बन्धी सूची के अनुसार जो कुछ हाल जानते हों कृपापूर्वक शीघ्र भेजें। जिसमें जीवनचरित्र में विलम्ब न हो।

—रामदीन सिंह
बाँकीपुर

पं० प्रतापनारायण मिश्र के मित्रों से निवेदन

१. प्रतापनारायण मिश्र की माता, पिता और दादा आदि का जन्मपत्र मिले तो भेजिए।

२. उनके मातुल-कुल का इतिहास तथा नामावली, कौन ब्राह्मण थे, क्या गोत्र था ? वैसे ही उनके श्वसुर-कुल का भी ।
३. इनके नौकरों का नाम आदि जो कुछ वृत्तान्त जानने योग्य हो वह लिखिए ।
४. पं० प्रतापनारायण मिश्र कहाँ २ गए थे ? और क्यों ? उन सबों का पूरा हाल बताइए ।
५. इनके दोस्तों का नाम धाम वृत्तान्त ज्ञात हो तो लिखिए ।
६. इनके विशेष सम्बन्धियों का नाम धामादि ज्ञात हो तो लिखिए ।
७. इनके गुरु का नाम तथा उनका वर्णन । शिक्षागुरु तथा पुरोहित का नाम आदि ज्ञात हो तो लिखिए ।
८. कौन २ विद्या पढ़े थे ? पढ़ानेवाले का नाम धामादि ।
९. इनके कामों की फिहरिस्त ।
१०. लायब्रेरी में कौन २ पुस्तकें थीं ? और क्या प्रबन्ध था ?
११. किन २ लोगों से मेल-मिलाप था ? वे कहाँ के थे ? बंगाल, बिहार, पश्चिमोत्तर, पंजाब, वा मन्दराज के ।
१२. किस २ वस्तु में इनकी रुचि थी ?
१३. विवाहादिक उत्सव किस २ समय हुए ? तारीख, मास, संवतादि भी लिखिए ।
१४. किन २ पण्डितों और कवियों से विशेष मेलमिलाप था ? समस्या और प्रश्नोत्तर क्या २ हुए थे और क्या उनको दिये गये थे ?
१५. बीमार कब २ पड़े थे ? किस २ की दवा से अच्छे हुए थे ?
१६. किन २ राजाओं और महात्माओं से मेलमिलाप था ? वे कहाँ के थे ? भक्त आदि को भी मेलमिलाप लिखा जाय । किसको क्या दिए ? उपदेश, रुपया वा वस्त्र आदि ।
१७. पूर्वावस्था में इनके पुरुषाओं की कैसी दशा थी ? समय किस बात में कटता था ?
१८. और लोगों के विवाहादि उत्सवों में कहाँ २ गये थे ?
१९. माता, पिता आदि के मरने की तारीख, महीना, साल संवतादि लिखिए ।
२०. वक्तृता (लेक्चर), उपदेश आदि कहाँ २ किसके २ प्रति दिए थे ।
२१. चिट्ठी-पत्री किन २ लोगों से थी ? किस २ से किस २ समय किस २ विषय में सहायता मिली ? तथा इनने किस २ को सहायता दी ?
२२. किन २ एडिटरों से मेलमिलाप तथा मत-मतान्तर था किसके साथ क्या बरताव था ?
२३. मुण्डन ब्याहादि में इनके कुल की क्या रीति थी ?
२४. ये कौन ब्राह्मण थे ? गोत्रादि क्या था ?
२५. कै भाई-बहन भतीजे वगैरह थे ?
२६. कितने रुपये खर्च किये ?

२७. वादविवाद मुकद्दमा वगैरह किसके २ साथ था ?

२८. इसके सिवाय और जो कुछ जानते हों लिखिए।

—रामदीन सिंह

विशेष विज्ञापन

ब्राह्मण बराबर छपा करेगा यह निश्चय किया गया है प्रतिमास ५ फारम रहा करेगा जिन लोगों को लेना हो उन लोगों को उचित है कि मूल्य अग्रिम एक रुपया और पोस्टेज ६ आना भेज दें ऐसा न होने से ब्राह्मण मेरे प्रेमी लोगों के सिवाय किसी के पास न जायगा।

—रामदीन सिंह[1]

प्रेरित पत्र

शोक ! शोक !! महाशोक !!!

आज यह शोक समाचार लिखते हुए लेखनी का हृदय विदीर्ण हुआ जाता है, अश्रु-प्रवाह रोके नहीं रुकता। कानपुरवासियों के दुःख का वारापार नहीं। हिन्दी भाषा आज अनाथनी हो गई, इसकी लहलहाती हुई लता मुरझा गई। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के बाद इसने जिस वृक्ष का सहारा लिया था उसे भी आज निर्दई दई ने कुठाराघात से काट गिराया। न मालूम विधाता को इससे क्या वैर है जो इसके सहायकारियों को नहीं देख सकता ? हा ! दुष्ट दैव ने भाषा रसिकों का एक अमूल्य रत्न हर लिया, इससे ब्रह्महत्या का भी कुछ डर न हुआ। यह लोकोक्ति बहुत सत्य है कि 'दुनिया में जिसकी अधिक चाह है उसकी स्वर्ग में भी चाह है।' तारीख ६ जुलाई को रात्रि के साढ़े दस बजे हिन्दी के सुलेखक कविशिरोमणि, भारतेन्दुमानी, ब्राह्मण सम्पादक पण्डित प्रतापनारायण मिश्र ने अपने इष्ट मित्रों और सहधर्मिणी को रोता छोड़ इस असार संसार को त्याग स्वर्ग की यात्रा की। इनकी अवस्था भी कुछ अधिक न थी केवल ३८ वर्ष की थी, वर्ष भर से बवासीर रोग से अत्यन्त पीड़ित रहा करते थे। अनेक उपाय से भी निरोग्य न हुए। इनके कोई भी सन्तान नहीं है, जीवनचरित इनका हम फिर कभी प्रकाश करेंगे। लेकिन गोस्वामी राधाचरण, पं० बालकृष्ण भट्ट, चौधरी बद्रीनारायण, बाबू रामकृष्ण वर्मा, मिश्र दुर्गाप्रसाद और प्रभुदयाल चौबे इत्यादि इनके मित्रवृन्दों से प्रार्थना है कि इनका शोक अवश्य लिखें। हम महाराज कुमार बाबू रामदीन सिंह बाँकीपुर निवासी को अनेकानेक धन्यवाद देते हैं जिन्होंने प्रतापनारायण मिश्र की मृत्यु के बाद कानपुर आकर उनकी विधवा को अनेक प्रकार का धैर्य दिया, और सब प्रकार की सहायता करने और उनकी बनाई पुस्तकों के छापने और कुछ दिवस तक ब्राह्मण के निकालते रहने का भी प्रण किया। जगदीश्वर ऐसे गुणग्राही, पुरोपकारी पुरुषरत्न को चिरंजीवी रखें।

ब्रजभूषणलाल गुप्त

भारतजीवन : १६ जुलाई १८९४ ई०, पृ० ८

JANAKI MANGAL

BENARES, April 4—Last night a Hindi drama named "Janaki Mangal" was acted by natives in the Assembly Rooms, by the order of His

---

१. ब्राह्मण, खण्ड १०, संख्या ११-१२, हरिश्चन्द्राब्द १०, सन् १८९४ ई०, बाँकीपुर, प्रतापनारायण मिश्र के निधन पर, पृष्ठ ४१—४४।

Highness the Maharaja of Benares. Our enlightened Maharaja who generally takes an interest in all that concerns the improvement of his countrymen, was present on the occasion; he was accompanied by Kunwar Sahib and his staff. The principal European and native citizens were invited to witness the performance. A few ladies and many military and civil officers were present, and many rich folks of the city. A native band of music attended the entertainment and played during the intervals of the play. As usual with the Sanskrit drama, first of all Sutrdhar (Manager) entered and read a few benedictory verses in Sanskrit. When the Manager had finished his speech, an actress entered and held a short conversation with the manager as how to please the audience. I must tell you that this is the way in which Sanskrit dramas used to commence. There is always a short discourse between the manager and some one else, which brings forth the subject of the play. While the dialogue was going on a noise was heard behind the scenes, and the manager said that Ram had come to the forest, which caused the noise. Thus they hastened to see him. The first scene was garden, in which Parvati (the bride of Siva, the Hindoo goddess of destruction) was sitting. Ram and his borther Lakshman entered the scene, and after speaking a few words about the expected arrival of Sita, requested the gardener to allow them to pluck flowers. While the two brothers were engaged in plucking the flowers Sita entered with her train of ladies. She paid homage to the goddess and began to walk in the garden. Meanwhile a lady of Sita's train came and said that she saw a youth of exquisite beauty roving in the forest, who had so enchanted her mind that she was out of her senses. While the maids were talking about Ram he came before them and was struck with the beauty of Sita. He said that the shaft of Cupid entered even his bosom, who was an ascetic. Then exeunt Ram and Sita with her train. The second and the last scene was regal hall, in which Janak (the father of Sita) was seated. The kings of different countries arrayed in different costumes, came to marry Sita. Ram entered the scene last of all. When all the princes were seated it was proclaimed that Janak has vowed to give his daughter to that prince who lifts up the bow placed in the hall. All the kings attempted to raise the bow one after another, but all failed. At last Ram rose, and taking up the bow, broke it into pieces. After the heroic deed of Ram he was married to Sita. Then came Parashram, who became very angry with Ram, and attempted to kill Lakshman but was at last appeased and acknowledged the superiority of Ram, when he could use the bow which Parashram gave him to try his strength. Then ended the entertainment. The play seems to have been taken from the first act of the Sanskrit drama called Hanuman Natak.[१]

---

१. 'Indian Mail & Monthly Registrar'—7th May, 1868, London.

आकर वाङ्मय-सूची

हिन्दी-ग्रन्थ

अरोड़ा, नारायण प्रसाद — मेरे गुरुजन, कानपुर, १९५४ ई० ।

उपाध्याय, अयोध्यासिंह — प्रियप्रवास, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, दूसरा संस्करण, १९१४ ई० । हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, पटना विश्वविद्यालय, पटना १९२४ ।

उमाशंकर — खड़ीबोली कविता-आन्दोलन के अगुआ स्वर्गीय अयोध्याप्रसाद खत्री, अयोध्याप्रसाद खत्री स्मृति-समिति, मुजफ्फरपुर, पहला संस्करण, १९५९ ई० । कलम का शिल्पी, निर्माण-प्रकाशन, कदमकुआँ, पटना, १९६१ ई० ।

खड्गविलास प्रेस — खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित पुस्तकों की सूची, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, सन् १९०६ और १९२५ ई० ।

गुप्त, डॉ० किशोरीलाल — भारतेन्दु और उनके सहयोगी कवि, हिन्दी-प्रचारक, वाराणसी, सं० २०१३ । हिन्दी-साहित्य का पहला इतिहास (अनुवाद), हिन्दी-प्रचारक, वाराणसी, १९५७ ई० ।

गुप्त, द्वारकाप्रसाद — गया के कवि और लेखक, गो-साहित्य-प्रकाशन-मण्डल, गया ।

गुप्त, डॉ० माताप्रसाद — हिन्दी पुस्तक-साहित्य, इलाहाबाद । साहित्य एकेडमी, इलाहाबाद ।

गौतम, डॉ० प्रेमप्रकाश — हिन्दी-गद्य का विकास, अनुसन्धान-प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, १९६६ ई० ।

चतुर्वेदी, नरेशचन्द्र — हिन्दी-साहित्य का विकास और कानपुर, भीष्म ऐण्ड ब्रदर्स, कानपुर, १९५७ ई० ।

चतुर्वेदी, बनारसीदास — प्रेमी अभिनन्दन-ग्रन्थ, बम्बई, १९४६ ई० ।

जैनेन्द्र किशोर — महाराजकुमार बाबू रामदीन सिंह की जीवनी, आरा नागरी-प्रचारिणी सभा, आरा, सन् १९०३ ई० ।

तासी, गार्साँ द
अनु० वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर — हिन्दुइ साहित्य का इतिहास, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, पहला संस्करण, सन् १९५३ ई० ।

तिवारी, डॉ० गोपीनाथ — भारतेन्दुकालीन नाटक-साहित्य, हिन्दी-भवन, पहला संस्करण, इलाहाबाद, सन् १९५९ ई० ।

तिवारी, नकछेदी — कविकीर्त्ति कलानिधि, पहला भाग, भारत-जीवन प्रेस, बनारस, सन् १८८४ ई० ।

तिवारी, डॉ० श्यामनारायण .... भारतेन्दु-मण्डल के सात प्रमुख लेखक, शोधप्रबन्ध, टंकित प्रति, सन् १९६६ ई० ।

त्रिपाठी, शीतलाप्रसाद .... जानकीमंगल नाटक, काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी, पहला संस्करण, सन् १८६८ ई० ।

सिंह, धीरेन्द्रनाथ (सं०) सावित्री-चरित, प्रथम संस्करण, इलाहाबाद, सन् १८७२ ई० ।

दीक्षित, बन्दीदीन .... मुन्शी नवलकिशोर का जीवनचरित, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, सन् १८९५ ई० ।

द्विवेदी, महावीरप्रसाद .... सुकवि-संकीर्त्तन, गंगा पुस्तकमाला, पहला संस्करण, लखनऊ, सं० १९८१ वि० ।

पाण्डेय, डॉ० राजबली .... गोरखपुर-जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास, गोरखपुर, सं० २००३ वि० ।

नागरी-प्रचारिणी सभा के विगत साठ वर्षों का सिंहावलोकन, सं० १९५०—२०१० वि०, नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं० २०१० वि० ।

हिन्दी में उच्चतर साहित्य, काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।

पाण्डेय, सुधाकर (सं०) .... शम्भुनारायण चौबे-कृत 'मानस-अनुशीलन', काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पहला संस्करण, सं० २०२४ वि० ।

पाठक, पद्मधर ... फ्रेडरिक पिंकॉट : व्यक्तित्व और कृतित्व, काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा, पहला संस्करण, सं० २०१७ वि० ।

पिंकाट, फ्रेडरिक .... बालदीपक, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पटना, तीसरा संस्करण, सन् १८९३ ई० ।

पाण्डेय, छविनाथ .... मुद्रण-कला, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना ।

ब्रजरत्नदास .... भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रथम संस्करण, इलाहाबाद, सन् १९३५ ई० ।

भारतेन्दु-मण्डल, श्रीकमलामणि ग्रन्थमाला कार्यालय, सुण्डिया, काशी, पहला संस्करण, संवत् २००६ वि० ।

भट्ट, डॉ० मधुकर .. बालकृष्ण भट्ट : व्यक्तित्व और कृतित्व (शोध-प्रबन्ध), बालकृष्ण प्रकाशन, वाराणसी, सन् १८७२ ई० ।

मल्ल, लाल खड्गबहादुर ... सुधाबुन्द, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८८२ ई० । पीयूषधारा, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८८२ ई० । फाग-

अनुराग, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८८२ ई०। जोगिन-लीला, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन्,१८८३ ई०। रसिक-विनोद, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८८५ ई०। भारत आरत, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८८५ ई०। रति-कुसुमायुध, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८८५ ई०। महारास नाटक, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८८५ ई०। लेक्चर, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८८६ ई०। बालोपदेश, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८८७ ई०। हरितालिका नाटक, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८८७ ई०। विश्वेनवंश-वाटिका, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८८७ ई०। भारत-ललना, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८८८ ई०। कल्पवृक्ष, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८८८ ई०। लाल खड्गबहादुर मल्ल की डायरी, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८८८ ई०। सद्धर्मनिरूपण, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८९१ ई०।

मल्ल, डॉ० विजयशंकर ... प्रतापनारायण-ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड, नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं० २०१४ वि०।

मिश्र, डॉ० कृष्णविहारी .... हिन्दी-पत्रकारिता, भारतीय ज्ञानपीठ-प्रकाशन, वाराणसी, पहला संस्करण, सन् १९६८ ई०।

मिश्र, प्रतापनारायण ... रसखान-शतक, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८९२ ई०। लोकोक्ति-शतक, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८९६ ई० मन की लहर, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, परिवर्द्धित संस्करण, सन् १९१४ ई०। तृप्यन्ताम, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, सन् १९१४ ई०। हठी हमीर नाटक, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८९८ ई०। संगीत-शाकुन्तल नाटक, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८९९ ई०। शैव-सर्वस्व, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला

संस्करण, सन् १८९० ई०। पंचामृत (अनुवाद), खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८६१ ई०। राधारानी (अनुवाद), खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८६४ ई०। राजसिंह (अनुवाद), खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८६४ ई०। युगलांगुरीय (अनुवाद), खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८९४ ई०। इन्दिरा (अनुवाद), खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८९४ ई०। कपालकुण्डला, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, सन् १९०१ ई०। सुचालशिक्षा, उचितवक्ता प्रेस, कलकत्ता, पहला संस्करण, सन् १८९२ ई०। आर्य-कीर्त्ति, पहला भाग, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८९१ ई०। दूसरा भाग, सन् १९०८ ई०। चरिताष्टक, पहला भाग (अनुवाद), खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन १८६४ ई०। सेनराजगण, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८६१ ई०। बोधोदय, उचितवक्ता प्रेस, कलकत्ता, सन् १८९४ ई०। स्वास्थ्यविद्या, उचितवक्ता प्रेस, कलकत्ता, पहला संस्करण, सन् १८९४ ई०। प्रतापकथा-संग्रह, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, सन् १९२८ ई०। शिशु-विज्ञान, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८६६ ई०। शिशु-शिक्षा, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, सन् १८९४ ई०। वर्णपरिचय, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, दूसरा संस्करण, सन् १८९५ ई०। अमरसिंह, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर।

मिश्र, डॉ० शितिकण्ठ .... खड़ीबोली-आन्दोलन, काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा, पहला संस्करण, सं० २०१३ वि०।

राधाकृष्णदास .... हिन्दी-भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी, सन् १८९४ ई०।

राय, डॉ० गोपाल .... हिन्दी-कथा-साहित्य और उसके विकास पर पाठकों की अभिरुचि का प्रभाव, ग्रन्थ-निकेतन, पटना, सन् १९६५ ई०। हिन्दी-उपन्यासकोश—(दो भाग), ग्रन्थ-निकेतन, पटना।

वर्मा, डॉ० शान्तिप्रकाश .... प्रतापनारायण मिश्र की हिन्दी-गद्य को देन, सस्ता साहित्य-भाण्डार, दिल्ली, सन् १९७० ई० ।

वाजपेयी, अम्बिकाप्रसाद .... समाचारपत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल, वाराणसी, सं० २०१० वि० ।

वार्ष्णेय, डॉ० लक्ष्मीसागर .... आधुनिक हिन्दी-साहित्य, हिन्दी-परिषद्, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण, सन् १९४१ ई० । आधुनिक हिन्दी-साहित्य की भूमिका, लोकभारती प्रकाशन, दूसरा संस्करण, सन् १९६६ ई० । फोर्ट विलियम कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, सं० २००४ वि० ।

व्यास, अम्बिकादत्त .... पावस-पचासा, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८८५ ई० । धर्म की घूम, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८८५ ई० । बिहारी-विहार, भारतजीवन प्रेस, काशी, सन् १८८५ ई० । मानस-प्रशंसा, खड्गविलास प्रेस, पहला संस्करण, सन् १८८९ ई० । गोसंकट नाटक, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८८६ ई० । भारत सौभाग्य-नाटक, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८८७ ई० । महा अन्धेरनगरी नाटक (अधूरा), खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, सन् १८८६ ई० । स्वामिचरितामृत, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८९८ ई० । निज वृत्तान्त, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १९०१ ई० । दयानन्द-मतमूलोच्छेद, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८८५ ई० । द्रव्यस्तोत्र, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, सं० १९३९ वि० ।

शर्मा, झाबरमल्ल और चतुर्वेदी, बनारसीदास .... बालमुकुन्द गुप्त-निबन्धावली, पहला और दूसरा भाग, कलकत्ता, सं० २००७ वि० ।

शर्मा, मन्नालाल 'द्विज' .... सुन्दरी-तिलक, वाराणसी संस्कृत यन्त्रालय, वाराणसी, पहला और दूसरा संस्करण, क्रमशः सन् १८६९ और सन् १८७२ ई० ।

शर्मा, डॉ० मुकुन्ददेव .... हरिऔध और उनका साहित्य, हिन्दी-साहित्य-कुटीर, वाराणसी, सं० २०१३ वि० ।

शर्मा, रामप्रीति ···· हरिऔध-अभिनन्दन-ग्रन्थ, आरा नागरी-प्रचारिणी सभा, आरा, सन् १९३६ ई० ।

शास्त्री, कमलापति, ···· पत्र और पत्रकार, ज्ञानमण्डल, वाराणसी, सं० २००२ वि० ।

टण्डन, पुरुषोत्तमदास और शास्त्री, दामोदर सप्रै ···· बालकाण्ड रामायण नाटक, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पटना, सन् १८८२ ई०। अयोध्याकाण्ड रामायण नाटक, खड्गविलास, प्रेस बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८८३ ई० । अरण्यकाण्ड रामायण नाटक, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, सन् १८८४ ई० । किष्किन्धाकाण्ड रामायण नाटक, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८८७ ई० । युद्धकाण्ड नाटक, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, सन् १८८७ ई० । सुन्दरकण्ड, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८८८ ई० । बालखेल वा ध्रुवचरित, खडगविलास प्रेस, बाँकीपुर, सन् १८८९ ई० । लखनऊ का इतिहास, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, सन् १८९७ ई० । चित्तौरगढ़, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, सन् १८९० ई० । मेरी जन्मभूमि-यात्रा, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८८७ ई० । मेरा छत्तीसवाँ वर्ष, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, सन् १८८४ ई० । मेरी दक्षिण-दिग्यात्रा, खड्गविलास प्रेस, पहला संस्करण, सन् १८८६ ई० । मेरी पूर्व-दिग्यात्रा, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८८५ ई० । मैं वही हूँ, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १८६६ ई० ।

शुक्ल, डॉ० केशरीनारायण ··· भारतेन्दु के निबन्ध, सरस्वती-मन्दिर, बनारस, सं० २००८ वि० ।

शुक्ल, रामचन्द्र ···· हिन्दी-साहित्य का इतिहास, काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सोलहवाँ संस्करण, सं० २०२५ वि० ।

शुक्ल, डॉ० सुरेशचन्द्र ···· पण्डित प्रतापनारायण मिश्र : जीवन और साहित्य, युगवाणी प्रकाशन, कानपुर, सं० २०२१ वि० ।

शैदा, विश्वनाथलाल और गुप्त, डॉ० किशोरीलाल ···· हरिऔध शती-स्मारक ग्रन्थ, हरिऔध-कलाभवन, प्रथम संस्करण, आजमगढ़, सं० २०२३ वि० ।

दास, श्यामसुन्दर ···· हिन्दी के निर्माता, पहला भाग, इण्डियन प्रेस, प्रयाग । हिन्दी-कोविद-रत्नमाला, दूसरा भाग, इण्डियन प्रेस, प्रयाग ।

श्रीकृष्णाचार्य .... हिन्दी का आदिमुद्रित ग्रन्थ, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, सन् १९६६ ई०।

सहाय, शिवनन्दन .... बाबू हरिश्चन्द्र की जीवनी, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १९०५ ई०। विगत पचास वर्षों में बिहार में हिन्दी की दशा, आरा-नागरी-प्रचारिणी सभा, आरा, सन् १९०६ ई०। बाबू साहबप्रसाद सिंह की जीवनी, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, सन् १९०७ ई०। सिक्ख गुरुओं की जीवनी, आरा-नागरी-प्रचारिणी सभा, आरा।

सहाय, शिवपूजन .... जयन्ती-स्मारक ग्रन्थ, पुस्तक-भण्डार, लहेरियासराय, दरभंगा, सन् १९४२ ई०। राजेन्द्र-अभिनन्दन-ग्रन्थ, आरा-नागरी-प्रचारिणी सभा, आरा, सन् १९४२ ई०। काँग्रेस अभिज्ञान-ग्रन्थ, पटना अधिवेशन, सन् १९६२ ई०। हिन्दी-साहित्य और बिहार, पहला और दूसरा भाग, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना, सन् १९६० ई० और १९६३ ई०। वे दिन वे लोग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् १९६५ ई०।

सहाय, शिवपूजन और शर्मा, नलिनविलोचन .... अयोध्याप्रसाद खत्री-स्मारक ग्रन्थ, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना, सन् १९६० ई०।

सिंह, अजीज .... क्षत्रिय वर्त्तमान, सन् १९२८ ई०।

सिंह, नरेन्द्रनारायण .... महाराजकुमार बाबू रामदीन सिंह की जीवनी, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, सन् १९३६ ई०।

सिंह, रामचरित्र .... नृपवंशावली, बिहारबन्धु छापाखाना, बाँकीपुर, सन् १८८० ई०। हास-विलास, दो भाग, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, सन् १८८२-८३ ई०।

सिंह, रामदीन .... बिहार-दर्पण, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पटना, दूसरा संस्करण, सन् १८८३ ई०। हितोपदेश, दूसरा भाग, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, सन् १९०२ ई०। बालबोध, खड्गविलास प्रेस, परिवर्द्धित संस्करण, सन् १९०५ ई०। हिन्दी-साहित्य, पहला भाग, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, परिवर्द्धित तीसरा संस्करण, सन् १९०० ई०। हरिश्चन्द्र-कला, पहला भाग, नाटकावली, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, सन् १८८८ ई०। स्वास्थ्य-रक्षा, खड्गविलास प्रेस, दूसरा संस्करण, सन् १८९४ ई०।

चित्र-सं० : १७

जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन

श्रीकृष्णाचार्य .... हिन्दी का आदिमुद्रित ग्रन्थ, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, सन् १९६६ ई० ।

सहाय, शिवनन्दन .... बाबू हरिश्चन्द्र की जीवनी, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पहला संस्करण, सन् १९०५ ई० । विगत पचास वर्षों में बिहार में हिन्दी की दशा, आरा-नागरी-प्रचारिणी सभा, आरा, सन् १९०६ ई०। बाबू साहबप्रसाद सिंह की जीवनी, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, सन् १९०७ ई०। सिक्ख गुरुओं की जीवनी, आरा-नागरी-प्रचारिणी सभा, आरा ।

सहाय, शिवपूजन .... जयन्ती-स्मारक ग्रन्थ, पुस्तक-भण्डार, लहेरियासराय, दरभंगा, सन् १९४२ ई० । राजेन्द्र-अभिनन्दन-ग्रन्थ, आरा-नागरी-प्रचारिणी सभा, आरा, सन् १९४२ ई० । काँग्रेस अभिज्ञान-ग्रन्थ, पटना अधिवेशन, सन् १९६२ ई० । हिन्दी-साहित्य और बिहार, पहला और दूसरा भाग, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना, सन् १९६० ई० और १९६३ ई० । वे दिन वे लोग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् १९६५ ई० ।

सहाय, शिवपूजन और शर्मा, नलिनविलोचन .... अयोध्याप्रसाद खत्री-स्मारक ग्रन्थ, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना, सन् १९६० ई० ।

सिंह, अजीज .... क्षत्रिय वर्त्तमान, सन् १९२८ ई० ।

सिंह, नरेन्द्रनारायण .... महाराजकुमार बाबू रामदीन सिंह की जीवनी, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, सन् १९३६ ई० ।

सिंह, रामचरित्र .... नृपवंशावली, बिहारबन्धु छापाखाना, बाँकीपुर, सन् १८८० ई० । हास-विलास, दो भाग, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, सन् १८८२-८३ ई० ।

सिंह, रामदीन .... बिहार-दर्पण, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पटना, दूसरा संस्करण, सन् १८८३ ई० । हितोपदेश, दूसरा भाग, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, सन् १९०२ ई० । बालबोध, खड्गविलास प्रेस, परिवर्द्धित संस्करण, सन् १९०५ ई० । हिन्दी-साहित्य, पहला भाग, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, परिवर्द्धित तीसरा संस्करण, सन् १९०० ई० । हरिश्चन्द्र-कला, पहला भाग, नाटकावली, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, सन् १८८८ ई० । स्वास्थ्य-रक्षा, खड्गविलास प्रेस, दूसरा संस्करण, सन् १८९४ ई० ।

चित्र-सं० : १७

जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन

सिंह, साहबप्रसाद .... भाषासार, पहला भाग, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, सन् १८९० ई० । भाषासार, दूसरा भाग, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर । काव्य-कला, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर । गुरुगणित शतक, पहला भाग, पहला संस्करण खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, सन् १८८२ ई० । गुरुगणित शतक, दूसरा भाग, ब्रांच बोधोदय प्रेस,पटना, सन् १८८२ ई० ।

सुधांशु, लक्ष्मीनारायण .... (सं०) हिन्दी-साहित्य का बृहत् इतिहास, पत्रकारिता-खण्ड, भाग ११, काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।

बिहार की साहित्यिक प्रगति, बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पटना, सन् १९५६ ई० ।

विश्वकोश .... हिन्दी-विश्वकोश, खण्ड ५ एवं ९, प्रथम संस्करण, काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।

फुटकर लेख

गौतम, प्रेमप्रकाश .... भारतेन्दु-युग से पूर्व के अध्यापक-लेखक, नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ७१, अंक १, पृष्ठ १०१—१०८ ।

चतुर्वेदी, श्रीनारायण .... मुन्शी नवलकिशोर का व्यक्तित्व और कृतित्व, भार्गव-पत्रिका, जयपुर, फरवरी, १९७० ई० ।

नागर, अमृतलाल .... मुन्शी नवलकिशोरजी एवं उनके महत्त्वपूर्ण कार्य, मार्ग-पत्रिका, जयपुर, फरवरी, १९७० ई० ।

पाण्डेय, छविनाथ .... हिन्दी की प्रगति में खड्गविलास प्रेस की देन, बिहार-समाचार, वर्ष १९, अंक २, २६ जनवरी, १९७२ ई० ।

पाठक, पद्मधर .... हिन्दी-भक्त श्रीफ्रेडरिक पिंकाट, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्-पत्रिका, पटना, वर्ष ३, अंक १, अप्रैल, १९६३ ई० ।

भार्गव, मनहरगोपाल .... पण्डित नवलकिशोर भार्गव की कुछ जीवन-झाँकियाँ, भार्गव-पत्रिका, जयपुर, फरवरी, १९७० ई० ।

भारद्वाज, लक्ष्मणप्रसाद .... मुन्शी नवलकिशोर भार्गव, भार्गव-पत्रिका, जयपुर, फरवरी, १९७० ई० ।

विद्यालंकार, शंकरदेव .... निर्णय-सागर मुद्रणालय की शताब्दी, मासिक सरस्वती, प्रयाग, जुलाई १९७१ ई० ।

विद्यालंकार, सत्यकाम .... पथप्रवर्त्तक, मासिक सरस्वती, प्रयाग, नवम्बर, १९७१ ई० ।

श्रीवास्तव, मुरलीधर .... नागरी-मुद्रण का संक्षिप्त इतिहास, हिन्दुस्तानी, भाग २९; प्रयाग, अंक १—४, जनवरी—दिसम्बर, १९६८ ई० ।

शर्मा, नलिनविलोचन .... उन्नीसवीं शताब्दी में हिन्दी-पुस्तकों की समीक्षा (अँगरेजी में), त्रैमासिक साहित्य, पटना, वर्ष १०, अंक १, जुलाई, १९५९ ई० ।

शर्मा, देवेन्द्र शास्त्री .... धर्मरत्न सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजी, श्रीवेंकटेश्वर समाचार : हीरक-जयन्ती-अंक, बम्बई, वर्ष ६१, अंक २७, पृ० १५१, सन् १९५६ ई० ।

सिंह, ठाकुर यदुवंशनारायण .... भारतेन्दु और बिहार, भारती-पत्रिका, वर्ष १, अंक १, अप्रैल, १९५१ ई०, बी० एन० कॉलेज, पटना ।

सिंह, धीरेन्द्रनाथ .... प्रतापनारायण मिश्र : व्यक्तित्व और कृतित्व, साप्ताहिक आज, वाराणसी, २ अक्टूबर, १९६१ ई० । विलायत में हिन्दी की प्रतिष्ठा करनेवाले पहले अँगरेज लेखक फ्रेडरिक पिंकाट, सप्ताहिक हिन्दुस्तान, वर्ष २१, अंक ४०; ४ जुलाई, १९७१ ई० (नई दिल्ली) । पण्डित अम्बिकादत्त व्यास, साप्ताहिक आज, वाराणसी, ४ अप्रैल, १९७१ ई० ।

पत्र-पत्रिकाएँ

(१) कविवचन-सुधा, (२) काशी-पत्रिका, (३) द्विज-पत्रिका, (४) नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, (५) नाट्यपत्र, (६) ब्राह्मण, (७) बालबोधिनी, (८) बिहारबन्धु, (९) विशाल भारत, (१०) समय विनोद संयुक्त सुदर्शन-समाचार, (११) विद्याविनोद, (१२) सरस्वती, (१३) सारसुधानिधि, (१४) हिन्दी-प्रदीप, (१५) हरिश्चन्द्र मैगजिन, (१६) हरिश्चन्द्र-कला, (१७) शिक्षा, (१८) क्षत्रिय-पत्रिका ।

ENGLISH BOOKS

Barns, Margaritta ... The Indian Press, Allen and Unwin, London, 1940.

Bhatnagar, Ramratan ... The Rise and Growth of Hindi Journalism, Kitabmahal, Allahabad, 1947.

Grierson, G. A. ... The Modern Vernacular Literature of Northern Hindustan, Calcutta, 1889.

Jennett, S. ... Pioneers of Printing, London, 1958.

Kumar, N. ... Journalism in Bihar, Bihar Government Publication, Patna, 1971.

Mcmurtrie, Dougalas C. ... The Book : The Story of Printing and Book-making, Oxford, 1957, 5th Edition.

Malviya, Madan Mohan ... Court Character and Primary Education in the N. W. P. & Oudh, Allahabad, 1897.

Mukherji, Radhika Prasana ... A few Notes on Hindi Printed by Behary lall Bannerjee At Merss J. G. Chatterjea & Cos' Press 44, Amherst Street, Calcutta, 1880.

Natrajan, J. ... History of Indian Journalism, Part II, Publication Divison, New Delhi, 1955.

Priolkar, A. K. ... The Printing Press in India, Marathi Granth Samshodhan Mandal, Bombay, 1958.

Roy, H. C. ... The Dynastic History of Northern India, Vol. II, Calcutta, 1936.

Saxena, Dr. Baburam ... History of Urdu Literature, Ram Narain Lal, Allahabad, 1934.

Siddiqi, A. ... Origin of Modern Hindustani Literature : Sources Material of Gilchrist Litters, Aligarh, 1963.

Smith, George ... Life of William Carey, London, 1937.

Steinberg, S. H. ... Five Hundred Years of Printing, Penguine, London, 1955.

Stewart, William ... The Story of Serampur and its College, Serampur, 1958.

Vedalankar, Sharda Devi ... The Development of Hindi Prose Literature in the early Nineteenth Century, 1800—1856 A. D. Lok Bharti Publication, Allahabad, 1969.

Diwakar, R. R. ... Bihar through the Ages, Orient Publication, Calcutta, 1959.

Carey Exhibition, ... National Library, Calcutta, 1955.
English Record of Shivajee (1659—1682), Shivaji Karyalaya, Poona, 1931.

ARTICLES

Grierson, G. A. ... The Early Publications of the Serampur Missionaries, Indian Antiquary, Vol. XXII, p. 221, 1903.

Jha, Jatashanker ... Early Printing Presses and News Papers in Bihar, Journal of the Bihar Research Society, Vol. L, No. 1—4, December, 1964, Patna.

Moraes, G. A. ... St. Francis Xavier Apostilic Nuncia, 1542—52, Journal of Asiatic Society of Bombay, Vol. 27, pp. 279, 1952.

Primrose, J. B. ... The First Press in India and its Printers, The Library, Fourth Series, Vol. XX, No. 1, London, December, 1939.

Rodeles, G. G. — Early Jesuit Printing in India, Journal of Asiatic Society of Bengal, Vol. IX, No. 4, April 1913.

Sen, Priyaranjan ... Hindi in ihe College of Fortt Wiliam, Calcutta Review, Vol. LIX, April—June, pp. 40—50, 1936.

Singh, R. R. ... Col. Sarngdhar Sinha, Journal of Historical Research, Ranchi University, Vol. VII. No. 2, 1964.

ENCYCLOPAEDIA

1. Encyclopaedia Britannica, 11th Edition, Vol. 5, 6, 8, 10, 12, 14, 18, 22 and 23.
2. Encyclopaedia of the Social Sciences, Vol. 12, London, 1955 Edition.
3. Universal Biography, London, 1909, Vol. VII, X, IV.
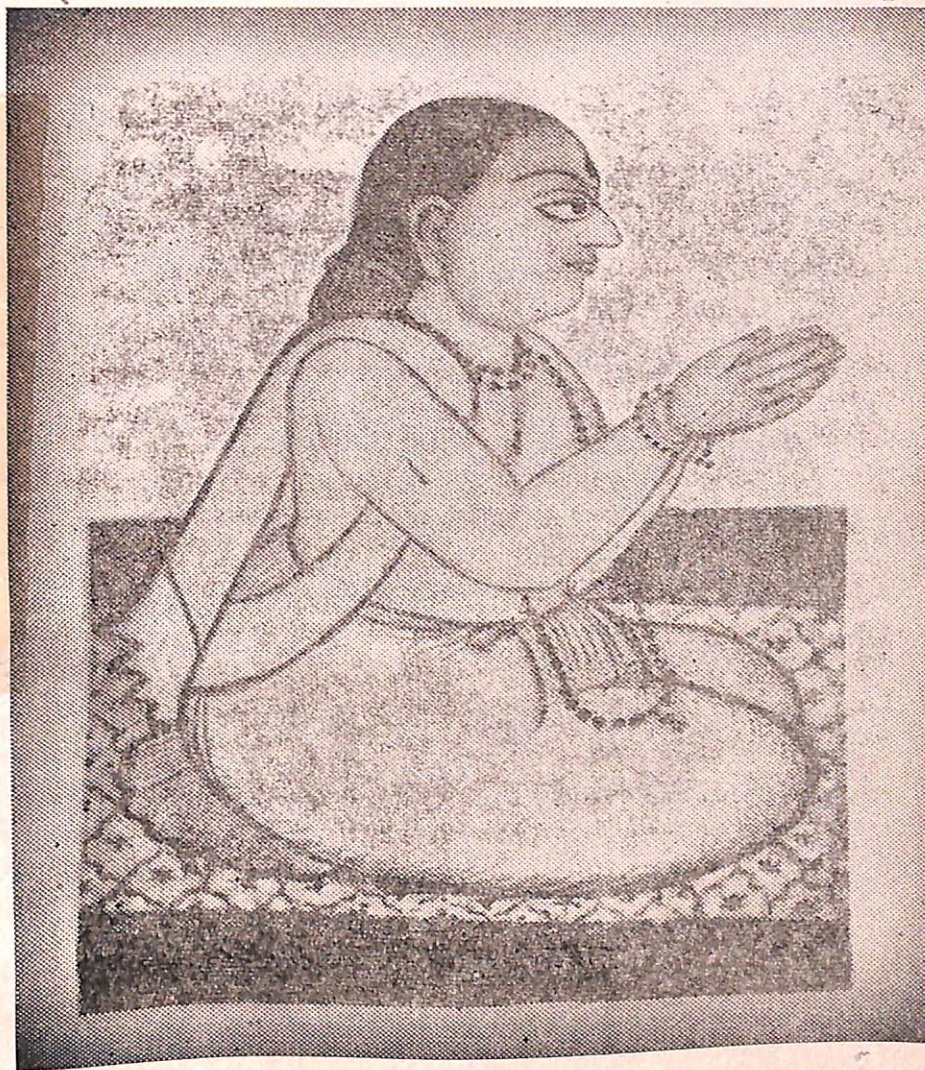
चित्र-सं० १३
गोस्वामी तुलसी दास का खड्गविलास प्रेस से सर्वप्रथम प्रकाशित चित्र

Diw

Care

Grie

Jha,

Mo

Pri

Ro

Se

Si

मासिकपत्रिका

वैशाख शुक्ला २

सं १९७० कला २ संख्या

श्रीहरिश्चन्द्रकला

अथवा

भारतभूषण भारतेन्दु श्रीहरिश्चन्द्र का

जीवन-सर्वस्वमय स्मारक पत्र ।

जगत उजागर औ नागर त्यों नागरीको गयो कविराज सुनि कठिन हियो करो
भारतको प्रेमी अरु नेमीहू बिलोकि ताहि ताके जसपुंजन को गानहू कियो करो
ताकी कवितानको वितान एकमांहि गांथि कीनोहै प्रकास यापै नजर दियोकरो
चहकि चहूंदिस तें रसिक चकोरगन हरिचंदकला के पियूष को पियोकरो॥१॥
बुध कों हिय बारिधि सो उमगै हुलसै अति प्रीतिहु की कमला
अति कूरन कीं कलुषी कविताहु चलौ मति ज्यों कुलटा अबला॥
चुप ठानो सबै तिमि चोर चलांकहु नाहिं करैं किहुँ को जो भला
रससाने अमन्द अनन्द करो या नई उनई हरिचन्दकला ॥२॥

हिन्दीभाषा के प्रेमी तथा रसिक जनों के मनोविलास के लिये
क्षत्रियपत्रिका-सम्पादक स्वर्गीय महाराजकुमार रामदीन सिंहात्मज
बाबू रामरणविजय सिंह द्वारा संगृहीत और प्रकाशित ।

पटना—"खड्गविलास" प्रेस बांकीपुर.

बाबू चण्डीप्रसाद सिंह द्वारा मुद्रित

श्रीहरिश्चन्द्र संवत् २८ } १९७० { सन् १९१३ ईस्वी

मूल्य अग्रिम वार्षिक ६)] [डाकमहसूल १२ आने

चित्र-सं० : १५

'हरिश्चन्द्र-कला' पत्रिका का मुखपृष्ठ

चित्र-सं० : १६

भूदेव मुखोपाध्याय
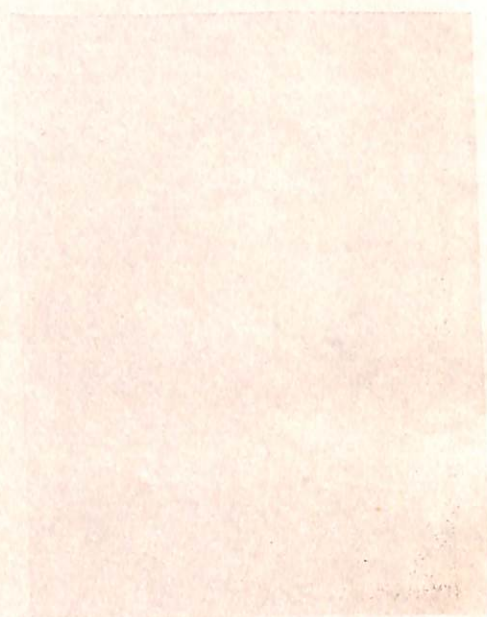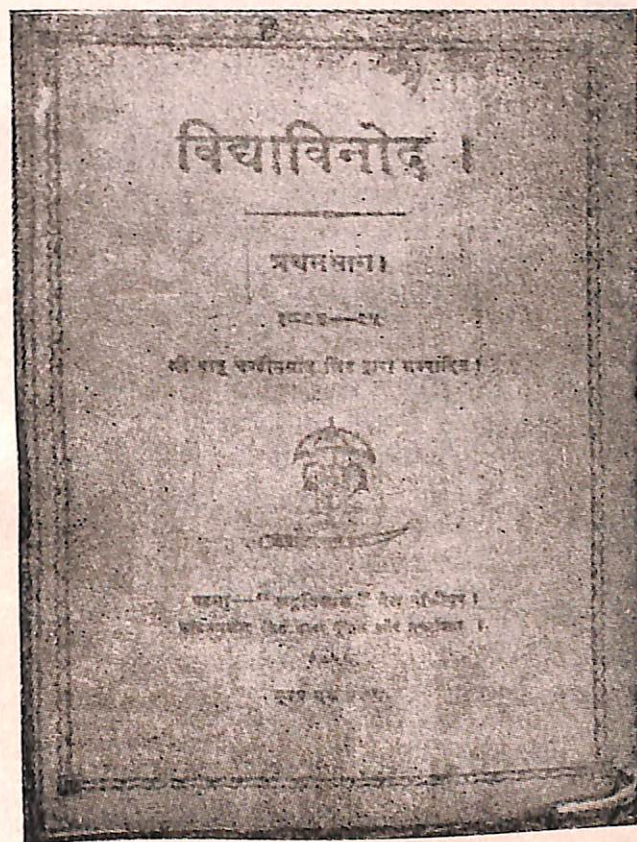
चित्र-सं० : १८

'विद्या-विनोद' पत्रिका का मुखपृष्ठ
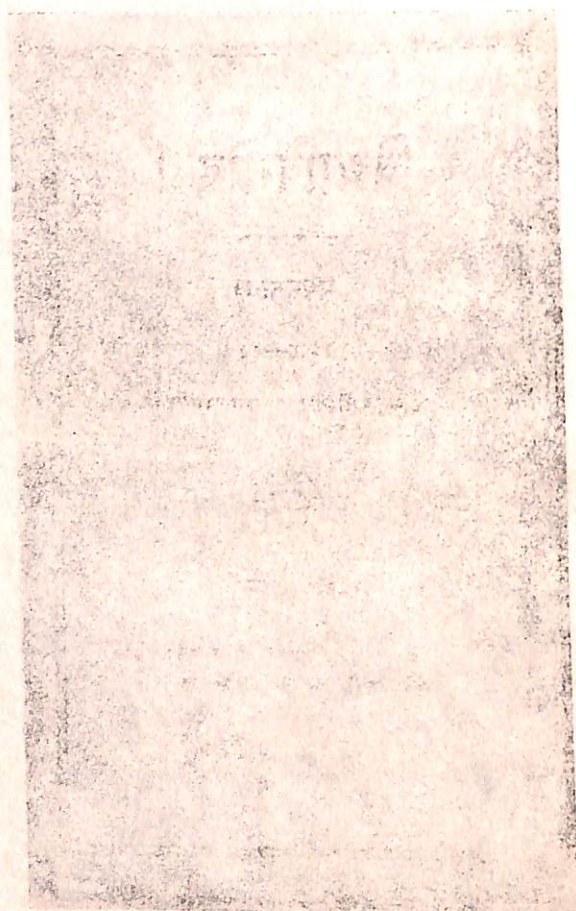
द्विजपत्रिका।

अर्थात

ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य को सुधारनवाली पाक्षिक पुस्तिका

१ खण्ड] माघ कृष्ण १५। [संख्या २५]

विद्या, धर्म, नीति, व्यवहार, कर्म्म, इतिहास, प्राचीन, प्रणाली, अनुवाद, काव्य, नाटक, परिहास, साहित्य, दर्शन, स्त्री-शिक्षा, पंचप्रपंच, प्रेरितपत्र आदि विविध विषय में।

पढ़ौ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य कुलोत्तम आलस आपनी दूरि धरो।
कुल देश औ धर्म के प्रेम उमंग सों एकता के -रंगरङ्ग भरी॥
जुपै रीति औ नीतिन देखन चाहहु मानहु बोल हमारी खरी।
अति विद्या विवेक भरी उमगो द्विजपत्रिका पै अनुराग करो॥१॥

"खड्गविलास" प्रेस—बांकीपुर।

साहबप्रसाद सिंह ने छाप कर प्रकाशित किया।

१८९१.

मय पोष्टेज समेत वार्षिक ७)

चित्र-सं० : १६

'द्विज-पत्रिका' का मुखपृष्ठ

रंगनाबाग २३।१।१९६७।

मान्यवर

बाबू साहेब आचार्य सिंह जी

बाबू हरि प्रताप सिंह जी

बाबू राम चौ सिंह जी

बाबू राम परीक्षा सिंह आदि

बाबू रामानन्द सिंह आदि

प्रणाम — चिरंजीवी श्री रामदेव विजय सिंह का यज्ञोपवीत और चिरंजीवी श्री शारंगधर का चूड़ाकरण माघ शुक्ला एकादशी बुध को १० बजे दिन में है कृपा कर आप लोग अपने चरण कमलों को लाकर इस कार्य को सफल कीजिये और माघ शुक्ल ६ नौमी को आइये पूर्ण रूप से आशा है कि इस शुभ काम में आप लोग अवश्य पधारेंगे

आप का दर्शनाभिलाषी

रामदीन सिंह

चित्र-सं० : २०

महाराजकुमार रामदीन सिंह की हस्तलिपि

अनुक्रमणिका

झ

ट

थ

द

न

भ

य

ह